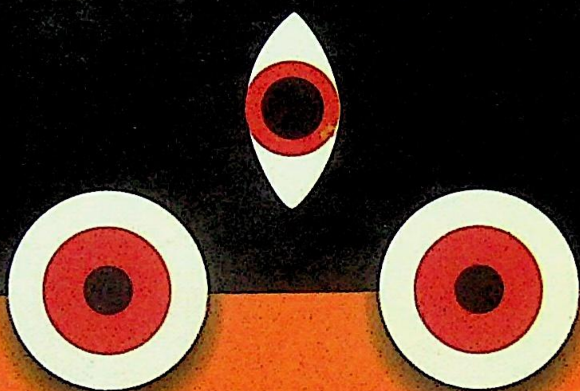
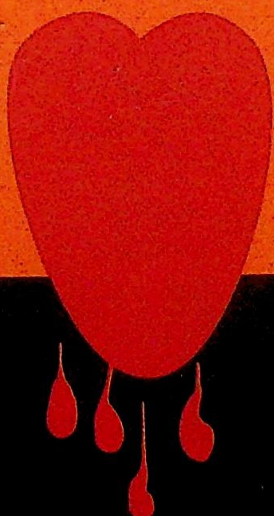
महाकाल संहिता

कामकला खण्डः





डॉ. किशोर नाथ झा

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्
इलाहाबाद

महाकालसंहिता

उत्तरार्द्धभागः

कामकलाखण्डः

•

सम्पादकः

डॉ० किशोरनाथ झा

•



गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्,

प्रयागः

महाकालसंहिता

॥ कामकलाखण्डः ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म देव्युपासनमेव च ।
उभयं कुर्वते देवि मदुदीरितवेदिनः ॥१०।१२६४॥

वेदाविरुद्धं कुर्वन्ति यद्यदागमचोदितम् ।
आगमादेशितमपि जहति श्रुत्यचोदितम् ॥१२।११३८॥

वर्त्मद्वयं भगवता दर्शितं करुणावशात् ।
यस्येच्छा वर्तते यत्र स तत्र रमतां सुखम् ॥११।११३०॥

[महाकालसंहिता—गुह्यकालीखण्डः]

महाकालसंहिता

उत्तरार्द्धभागः

कामकलाखण्डः



सम्पादकः

डॉ० किशोरनाथ झा





गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम् , प्रयागः
आजाद पार्क, प्रयागः - २
१९८६

प्रकाशक :

डॉ० गोपराजूरामा

प्राचार्यः

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्

चन्द्रशेखर आजाद पार्क

इलाहाबाद - २११००२

तृतीय संस्करणम् : २००६

मूल्यम्

मुद्रक :

एकेडमी प्रेस

दारागंज

इलाहाबाद - २११ ००६

FOREWORD

With a sense of extreme gratification we present to the lovers of Tāntric Literature and the devotees of Parāśakti the second re-edited and greatly revised edition of the second volume of the illustrious Tāntric work, the Mahākālasaṃhitā, ascribed to some Ādinātha and supposed to have been composed in the 10th C. Though constituting the later part of the Samhitā, this volume was issued first in view of its smaller extent and incidentally, it was the first work to be published by this Vidyapeetha after its take over by the Rashtriya Saṇskrit Sansthan in the year 1971.

This volume is aptly named as the Kāmakalā-Khaṇḍa since it deals with the wish-fulfilling aspect of the goddess Mahākālī. Goddess Mahākālī, according to this text, is the Chief Goddess of the whole Tāntric system based on the Vāmācāra practices who manifests Herself in fiftyone (51) different female forms, some furious and other benign, in order to receive worship from her devotees according to their own concept of divinity and subjective preferences. The central aspect of the Goddess behind all these varied manifestations remains, however, to be that of Kāmakalā Kālī whose Mantra, Yantra and Dhyāna provide the basic framework of the ritual of Pūjā.

The Kāmakalā-Khaṇḍa is a sort of appendix to the main body of the work which is known as Guhyakāli-Khaṇḍa. Both Khaṇḍas together constitute what is known as the Mahākāla-saṃhitā. In spite of the claims of many other smaller texts professing to be 'genuine parts' of the Mahākālasaṃhitā and of the views of some Tāntric Sādhakas who consider a few other texts too as forming part of the greater Mahākālasaṃhitā, it looks certain that the original Saṃhitā consisted of these two Khaṇḍas only since most of the quotations from the Mahākālasaṃhitā in younger works like Tārābhakti-sudhārṇava

and Puraścaryārṇava are available in these two khaṇḍas and the internal evidences also suggest the existence of Guhya and Kāma khaṇḍas only.

Accordingly, revised edition has a different numbering of the Paṭalas. Whereas in the first edition the 15 Paṭalas of this Khaṇḍa were numbered as Paṭala 241 to Paṭala. 255 following a few manuscripts, in the present edition they have been numbered plainly as Paṭala 1 to 15. When the first edition was printed, we were of the opinion that we may be able to get the intervening Paṭalas in future, a hope and an assumption which have not materialised themselves.

An initiated sādhaka would immediately discern that this part of the Mahākālasaṃhitā contains a number of Mantras and Prayogas which are held exceptionally sacred and kept zealously secret by the Preceptors of this esoteric science even from the most favourite of their pupils. A few of the Tāntrikas were, therefore, not very happy when this Khaṇḍa was first out in 1971. The situation has taken a slightly positive turn now after 15 years. Dr. Umesh Mishra, the Secretary of Sir Ganganatha Jha Research Institute had entrusted the task of editing this work to the foremost of all Tāntric scholars of that time, namely Mahāmahopādhyāya Gopinatha Kavirāja of Varanasi. We are now very happy that the first edition could be brought out under his able and scholarly editorship. He is also the person who dictated an erudite preface to this work. The reader shall find that preface in an unaltered and unmodified form in this edition too. It is possible that a few of its portions may not be easily inelligible to all of us but this is quite natural in the case of an exposition which has been given of a very secret subject by a scholar who himself was an outstanding Tāntric Sādhaka and who viewed the things from a much higher plane and a much different perspective than that of a common Sanskritist.

Since the serial numbers of Patalas given in the preface of Mm. Gopinatha Kaviraj correspond to the old edition the readers are advised to read No. 1 instead of No. 241, No. 2 instead of No. 242 and so on. The last Patala i. e. No. 15 corresponds to Patala 255 of the old edition.

In preparing this new and revised edition, Dr. Kishora Nath Jha has not only utilised the manuscript material which could not be considered last time due to its late arrival or non-availability at that time, but has also tried to rectify the editorial and printing mistakes of the last edition. He has done this work with full devotion and utmost sincerity and has embellished this work with a number of new and useful appendices. I offer my sincere thanks to him and congratulate him for this scholarly production.

I hope that both the scholars as well as the sādhakas shall find the work useful in their own way and both shall derive benefit from it according to their own needs and desires. Let the goddess Kāmakalā fulfil their wishes.

G. C. TRIPATHI
PRINCIPAL
G. N. Jha K. S. Vidyapeetha

Allahabad
Chaitra Pūrṇimā, VS 2043
24th April, 1986.

आमुख

अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा-
प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्तैकमूर्तिः ।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

जगदम्बा की असीम अनुकम्पा से महाकालसंहिता के कामकलाखण्ड का यह दूसरा संस्करण विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। इसका प्रथम संस्करण आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व इसी विद्यापीठ से प्रकाशित हुआ था। पाठकों तथा साधकों ने उसका उचित आदर किया, उसी का फल है कि इस संस्करण के प्रकाशन की आवश्यकता हुई। विविधशास्त्र विशारद आगम पारदृश्वा पुण्यश्लोक महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज ने इसकी विस्तृत एवं वैदुष्यपूर्ण भूमिका लिखी थी। उस भूमिका में सम्पादकीय त्रुटियों की ओर भी उन्होंने संकेत किया था। अतः इस नवीन संस्करण में उन त्रुटियों का परिमार्जन तथा परिष्कार उचित एवं आवश्यक प्रतीत हुआ। इस दिशा में यद्यपि यथामति प्रयास किया गया है, तथापि–

"सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः"

की उक्ति के अनुसार सावधानी रखनेपर भी मुद्रण की कुछ अशुद्धियां रह गयीं। अतएव अन्त में खेद के साथ शुद्धिपत्र देना पड़ा।

"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः" से मानवबुद्धि को कहाँ तक बचाया जा सकता है।

मातृकाओं के आधार पर मूलपाठ का परिष्कार, आलोचनात्मिका टिप्पणी में यथासंभव ग्रन्थ के आशयों का अवबोधन, ग्रन्थान्तरों में उपलब्ध इस संहिता के पद्यों का सङ्कलन, धारणीय और पूजनीय यन्त्रों का स्वरूप, ग्रन्थ में समागत बीज और कूट आदि का स्वरूप-निर्देशपूर्वक वर्णानुक्रमकोष तथा विशिष्टशब्दों की सूची क्रमशः परिशिष्टरूप में यहाँ समाविष्ट हैं। आशा तथा विश्वास है कि इन परिशिष्टों से जिज्ञासु पाठकों तथा साधकों का उपकार होगा। फिर भी बुद्धिमान्द्य जन्य प्रमाद से मन का सशंक होना

स्वाभाविक है। महाकवि कालिदास ने कहा है—

"आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्"।

इस संस्करण में भी महामनीषी कविराज जी की उस वैदुष्य पूर्ण भूमिका को यथावत् रक्खा गया है। वह अपने आप में आगमिक रहस्यों का नवनीतकल्प निर्यास है। आलोचनात्मिका टिप्पणी में पाठालोचन एवं व्याख्यान पर बल दिया गया है। अतएव कर्मकाण्ड की प्रक्रिया, साधना की पद्धति, मन्त्र तथा उपमन्त्र का स्वरूप और पारिभाषिक पदों के अर्थ का प्रकाशन यहाँ देखा जा सकता है। फिर भी चतुर्दश पटल के विषय इस टिप्पणी में समाविष्ट नहीं हो सके हैं। इस पटल के प्रतिपाद्य टिप्पणी की अपेक्षा नहीं रखते। यहाँ एक आख्यायिका दी गयी है, जिससे देवी का माहात्म्य, इनके दश सहस्र वर्णात्मकमन्त्र (प्राणायुताक्षरी मन्त्र) का महत्त्व तथा इस संहिता के सम्प्रदायक्रम का बोध कराया गया है, जो स्वतः सुगम, सरल और सुस्पष्ट है।

भारत में प्रायः सर्वत्र ही चिरकाल से उपासना की दो धाराएं— नैगमिक और आगमिक—प्रचलित रही हैं। पौराणिक उपासना में प्रायः दोनों ही धाराओं का समावेश रहा है। यह त्रिवेणीरूपा उपासना धारा दीर्घकाल से भारत में बहती आ रही है तथा अभिवृद्ध है। अतएव 'सनातन" शब्द से भी इसका परिचय मिलता है। यज्ञ यागादि कर्मकाण्ड तथा ब्रह्मज्ञान-रूप वेदान्त चिन्तन यदि नैगमिक उपासना है, तो मूर्तिपूजा में भक्ति तथा विश्वास एवं जागतिक वस्तुओं में देवत्व के आरोप और पूजा प्रधानतया आगमिक उपासना है। गो, ब्राह्मण, खञ्जन, चाष, वट, अश्वत्थ, गङ्गा तथा पृथिवी आदि की पूजा, लतासाधना एवं कुमारीभोजन आदि अन्यथा उपपन्न नहीं होते हैं।

शाक्त तन्त्रों में नारी के सभी रूपों की आराधना विहित है। दुहिता रूप में, भगिनी रूप में, पत्नी रूप में तथा जननी रूप में इनकी पूजा होती आ रही है। साथ ही कुमारीपूजा, सधवाभोजन, सुवासिनी-सत्कार, शक्ति-पूजा तथा मातृ रूप में इष्टदेवी की पूजा तो भारतीय संस्कृति के अनिवार्य अङ्ग जैसी मानी जाती है। इसी तरह वटुक पूजा, विप्रपूजा तथा गुरुपूजा के साथ पितरों का श्राद्धरूप आराधन भी हमारी संस्कृति के अंग हैं।

हमें ध्यान रखना चाहिए कि धर्मान्तरों में ईश्वर सर्वसत्तावान् शासक होने से कठोर हैं। दुःख के त्राता एवं परोपकारी हैं। अतएव धर्म के मूल में असद्-वृत्ति से निवृत्ति या दुःख की वेदना निहित है। किन्तु सनातन धर्म में प्रभु की दयालुता ही प्रसिद्ध है, और इसके मूल में आनन्द की बीज निहित है। अतएव ईश्वर पति, पत्नी, प्रिय तथा मित्र सब कुछ है। इन सभी रूपों में ये उपासक द्वारा पूजित होते हैं। इनसे साधक निःसकोच वात्सल्य, सांसारिक सुखभोग तथा अपवर्ग सब कुछ प्रार्थित कर उन्हें प्राप्त कर लेता है। यहाँ तक कि श्रृङ्गाररस के अधिष्ठाता भी परात्पर परमेश्वर भगवान् विष्णु माने गये हैं। अतएव भारतीय साधना में भोग, संभोग तथा अपवर्ग सब कुछ उपासना के फल रूप में ही स्वीकृत हैं। किसी साधक की उक्ति है—

देवीपदाम्भोजयुगार्चकानां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव

सनातन धर्मावलम्बी साधक सच्ची भक्ति से सब कुछ अपनी इष्ट देवता को समर्पित कर कृत-कृत्य और निश्चिन्त हो जाता है—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥

उपासना में इतनी उदारता अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ तो जैसे ज्ञान और कर्म का समुच्चय अपवर्ग का साधक है। इसी तरह विलास और तपस् भी तिलतण्डुल की तरह रहकर जीवन के लिए उपादेय है। हाँ, यहाँ सन्तुलन की अपेक्षा अवश्य है। फलतः भारतीय संस्कृति और कला, धर्म और दर्शन, लोक और वेद तथा आचार और विचार – इसी सनातन पथ की उपासना की उपज है। इसके उदार समन्वयबुद्धि के कारण ही भारतीय धर्म परम्परा विविधता में भी एकता और एकता में भी विविधता देखती आ रही है। यह विषय इतना स्पष्ट है कि प्रतिपादन की बहुत अपेक्षा नहीं रखता। सौन्दर्य के उपासक, नव जलधर-रुचि कृष्ण तथा सौन्दर्याधिष्ठात्रियों की पराकाष्ठा त्रिपुरसुन्दरी-श्रीविद्या की उपासना में यदि मर्यादित हैं तो विकरालतमा काली की भयङ्करता की परम अवधि कामकलाकाली की उपासना भी यहीं प्रचलित है। "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" का उद्घोष

जहाँ किया जाता रहा, वहीं "अहिंसा परमो धर्मः" की घोषणा भी चलती रही है। भारतीय संस्कार अर्धनारीश्वर की तथा राधा-कृष्ण की प्रणयलीला एवं महारास की मधुर उपासना में; संभोगरत मानव मूर्तियों के उत्कीर्णन तथा वर्णन में तथा यक्षिणी की साधना में उतनी ही आस्था रखता है, जितना वैराग्य, वेदान्त सम्मत ब्रह्म-चिन्तन, हठयोग तथा अष्टाङ्ग योग की परम अवधि समाधि में। वैष्णवी उपासना की धारा जहीं प्रवाहित होती रही है, जहाँ शैवी उपासना-धारा तथा शाक्त उपासना धारा बहती है। हाँ इतना अवश्य है कि मर्यादा का ध्यान सर्वत्र अनिवार्यतः रक्खा गया है। उन्मर्याद या विशृङ्खल होना भारतीय संस्कार के प्रतिकूल पड़ता है। फलतः इस संहिता के मुख्य प्रतिपाद्य कामकलाख्य योग, पञ्च मकार, शक्ति-पूजा, शिवावलि और पशुबलि आदि के प्रति अनास्था, अनादर या घृणा कथमपि वांछनीय नहीं है। अधिकारी के अनुसार उपासना की विविधता उचित है। वह शिष्टानुमत होकर ही शास्त्र में निर्दिष्ट और लोक में प्रचलित है। अधिकारी की रुचि और प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर ही महाकाल संहिता में एक श्लोक कहा गया है :—

वर्त्मद्वयं दर्शितं भगवता करुणावशात्।
यस्येच्छा वर्तते यत्र स तत्र रमतां सुखम् ॥

यहाँ वामाचार और दक्षिणाचार को हृदय में रखकर 'वर्त्मद्वयं' कहा गया है। किन्तु यह पद विविध सम्प्रदायों एवं विभिन्न मार्गों का भी प्रतिनिधित्व कर सकता है या उन सबों के लिए उपलक्षण स्वरूप है। महाकाल संहिता तो सर्वथा समन्वयात्मक दृष्टि को अपनाकर अपना एक स्वतन्त्र ही स्मार्त शाक्त सम्प्रदाय चलाती हुई अन्य शाक्त सम्प्रदायों की घोर निन्दा करती है। इसके लिए गुह्यकाली खण्ड का दशम पटल देखा जा सकता है। इसकी अपनी स्पष्ट उद्घोषणा है :

वेदाविरुद्धं कुर्वन्ति यद्यदागमचोदितम् ।
आगमादेशितमपि जहति श्रुत्यचोदितम् ॥

तथा

श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म देव्युपासनमेव च ।
उभयं कुर्वते देवि मबुदीरितवेदिनः ॥

यद्यपि उपास्यों के भेद से आगमिक उपासना की अनेकता स्वाभाविक है तथापि इसकी तीन मुख्य उपधाराएँ— वैष्णव, शैव तथा शाक्त अधिक

प्रचलित हुईं । सौर तथा गाणपत्य उपासना की विरलता ही देखने में आती है ।

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुती ।
मतं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते ।।

इस प्रसिद्ध पद्य से भी इस बात की पुष्टि होती है । मार्ग भेद से जैसे वैष्णवी उपासना मुख्यतया दो भागों में विभक्त हैं—पञ्चरात्र तथा वैखानस (भागवत या सात्वत) तथा जैसे शैव उपासना लिङ्गायत, पाशुपत, शैव तथा वीरशैव आदि भेदों से बहुमुखी है, इसी तरह उपास्य भेद के कारण शाक्त उपासना के भी दो प्रमुख भेद देखे जाते हैं—श्री विद्या की उपासना तथा काली उपासना ।

यद्यपि श्रीमद्भागवत में दश महाविद्याएँ शीघ्र अपवर्ग साधिका के रूप में वर्णित है, तन्त्रों में एक सौ आठ सिद्धिपीठों की अधिष्ठात्री देवियाँ प्रसिद्ध हैं और पार्वती, दुर्गा तथा सरस्वती आदि माङ्गल्यदायिनी सकल मनोरथ साधिका पौराणिक देवियों की उपासना भारतीय जनमानस में चिरकाल से रूढ़मूल है तथापि उपास्य रूप में इन दो देवताओं—श्री विद्या (त्रिपुर सुन्दरी) एवं काली की उपासना ही अधिक प्रचलित हुई ।

श्री विद्या (त्रिपुरसुन्दरी) की उपासना भारत के प्रायः प्रत्येक भाग में देखी जाती है। जगदम्बा के सौम्य स्वरूप की पराकाष्ठा श्रीविद्या हैं, अतएव त्रिपुरसुन्दरी इनका अन्वर्थक नाम है । आदि शङ्कराचार्य ने पराम्बा के इसी रूप की अराधना की थी । अतएव काश्मीर से केरल तक इनके सभी पीठों में सभी मठों में श्रीयन्त्र की स्थापना और श्रीविद्या की उपासना आदि-काल से चलती आ रही है ।

आद्याशक्ति काली की उपासना नेपाल, मिथिला, बङ्गाल तथा आसाम में अर्थात् भारत के पूर्वांचलों में अधिक पायी जाती है । विकराल रूप की परम अवधि काली मानी गयी हैं । किन्तु यह दृष्टि भेद मात्र है । यद्यपि पापियों के अर्थात् दुष्कर्म रत प्राणियों के नाश तथा धर्मात्माओं अर्थात् सुकृतशीलों के परित्राण के लिए ही अरूपा, निराकारा तथा चिन्मयी जगदम्बा परिस्थिति के अनुकूल विविध नाम और रूप का परिग्रह करती हैं तथापि अधिकारी साधकों के स्वभाव, रुचि और प्रवृत्ति की विभिन्नता से भी वह

परम्बा उपासकों के आन्तर परिकल्पनाओं के आधार पर बाह्य जागतिक आकृति का परिग्रह करती रही हैं। इस तरह के आख्यान तन्त्र ग्रन्थों में मिलते हैं। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अपने लिए ऐसा ही कहा है :

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

इस संहिता के गुह्यकाली खण्ड में पटलसंख्या दो में इसी अरूपा परम्बा के विराट् रूपों का वर्णन है। पहले ही कहा जा चुका है कि भागवत में मोक्ष साधना की निकटता की दृष्टि से परामम्बा के अनन्तरूपों में से साररूप में दश स्वरूपों का उल्लेख है जो दश महाविद्या के रूप में प्रसिद्ध हैं—काली, तारा, त्रिपुरसुन्दरी, भुवनेश्वरी, मातङ्गी, भैरवी, छिन्नमस्ता, बगलामुखी, धूमावती तथा कमला। पुनश्च प्रत्येक के भी अवान्तर भेद शास्त्रों में निर्दिष्ट है। इस प्रसगं में महाकालसंहिता कहती है :

काली नवविधा प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।

× ×

यथा त्रिभेदा तारा स्यात् सुन्दरी सप्तसप्ततिः आदि ।

अधिसंख्य तन्त्रों में तो इन दश महाविद्याओं का तादात्म्य भगवान् विष्णु के दश अवतारों के साथ स्थापित किया गया है, और काली तथा कृष्ण में एक्य स्थापना के लिए निपुण प्रयत्न हुआ है। मुण्डमाला तन्त्र तथा शक्ति संगम तन्त्र इस प्रसंग में अवलोकनीय है। महाकालसंहिता कहती है कि काली ही तीनों लोकों की प्रमदाओं के कामोन्माद के प्रशमन हेतु द्वापर में वंशीधर श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित हुई —

स्त्रीणां त्रैलोक्यजातानां कामोन्मादैकहेतवे ।
वंशीधरं कृष्णदेहं द्वापरे संचकार ह ॥

अभिप्राय यह है कि औपनिषदिक ब्रह्म, नैयायिक का ईश्वर, पुराणों के शिव तथा विष्णु और आगमिक जगदम्बा (काली या त्रिपुरसुन्दरी) किसी एक ही ईशना शक्ति के पर्याय हैं। इनमें तत्त्वतः परस्पर भेद नहीं है। दृष्टि दोष से इनमें भिन्नता का आभास या अनुभव होता है। महाकालसंहिता स्पष्ट करती है :

—'बिन्दुः पुंलिङ्ग उदितो ब्रह्म चैव नपुंसकम् ।
स्त्रीलिङ्गा गुह्यकाली च त्रयमेतत्समं मतम् ॥"

यद्यपि उपर्युक्त इन दश देवियों की पृथक् पृथक् उपासना-पद्धति, तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, ध्यान, सहस्रनाम, कवच तथा स्तोत्र आदि शाक्त आगमों में उपलब्ध हैं तथापि अधिक प्रचार श्रीविद्या और काली का ही देखा जाता है। कामकला काली तो आद्या शक्ति के भी भयङ्करतम स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। अतएव प्रसिद्ध कामकलातत्व से इस देवता का विशेष सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है। कामकलाविलास में उक्त कामकलातत्त्व का परिचय मिलता है जिससे श्री विद्या का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यहां तो उत्तम, मध्यम तथा अधम रूप तीन कोटियों में निर्दिष्ट कामकलाख्य योग के कारण उक्तयोग की अधिष्ठात्री के रूप में कामकलाकाली हम लोगों के समक्ष आती हैं। चूंकि यहां कामकलाख्य योग वर्णित हुआ है, उसकी अधिष्ठात्री कामकलाकाली मानी गयी हैं और इनके मन्त्र, यन्त्र, कवच, स्तोत्र तथा सहस्रनाम आदि इस ग्रन्थ में दिये गये हैं। सम्भवतः इसी कारण इसका नाम कामकला खण्ड रक्खा गया होगा।

वस्तुतः यह कामकलाखण्ड महाकालसंहिता के गुह्यकाली खण्ड का परिशिष्टात्मक भाग है। यहाँ मुख्यतया विविध प्रयोगों का निर्देश हुआ है, जो ऐहिक सिद्धियों के सम्पादन में समर्थ हैं। पूजा का विशेष विवरण यहां नहीं दिया गया है। जब कि गुह्यकाली खण्ड में काली की (विशेषकर गुह्यकाली की) पूजा का साङ्गोपाङ्ग विवरण प्रस्तुत है। इस क्रम में प्रातः काल से लेकर शयन-काल पर्यन्त साधक के कृत्य, मन्त्र तथा उपमन्त्र का स्वरूप और माहात्म्य, यन्त्र, तान्त्रिक गायत्री, षडङ्गन्यास, साधारणन्यास, षोढान्यास लघुषोढा, महाषोढा, बाह्य पूजा के विविध प्रकार (नित्य, नैमित्तिक, काम्य, शारदी, वासन्ती, बिन्दु, आवरण, शक्ति, कुमारी आदि) शिवा बलि, विविध उपचार (पञ्चोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार तथा राजोपचार आदि) मानस पूजा, योग, ध्यान, कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम, पवित्रारोहण, दमनारोपण तथा उपासना के सम्प्रदाय आदि विशदरूप में उक्त गुह्यकाली खण्ड में वर्णित हुए हैं। और कामकला खण्ड में कहीं तो स्पष्टतः और कहीं संकेत रूप में उसी पद्धति से कार्य सम्पादन के लिए कहा गया है—

"क्वचिच्च गुह्यकालीवत्" ॥२।५१॥
पूजायां वा प्रयोगे वा होमे वा तर्पणेऽथवा।
गुह्यकाली विधानेन सर्वं कार्यं शुचिस्मिते ॥ ३।३१–३२॥
अत्रानुक्तं विधानं यत्तत्सर्वं तत्प्रकल्पयेत्।

तस्मात् इसको उक्त खण्ड का परिशिष्ट मानना आपत्तिजनक नहीं है। यद्यपि कामकलाकाली का ध्यान, मन्त्र, यन्त्र, स्तोत्र, कवच तथा सहस्रनाम आदि यहाँ पृथक् रूप में निर्दिष्ट हैं, जो दोनों देवियों में भिन्नता प्रतिपादित करने के लिए पर्याप्त हैं। तथापि इस खण्ड के आरम्भ में ही दोनों का ऐक्य कण्ठतः कहकर व्यवहार से भी उसको सिद्ध करने का प्रयास किया गया है, जो अभी अभी हमलोगों ने देखा है। इस खण्ड के प्रथम पटल में कहा है —

या गुह्यकाली सैवेयं काली कामकलाभिधा।
मन्त्रभेदाद् ध्यानभेदाद् भवेत् कामकलात्मिका ॥ १।४७ ॥

यद्यपि यहाँ स्पष्ट प्रतिपादित है कि ऐहिक सिद्धियाँ परम पुरुषार्थ मोक्ष में बाधक होतीं हैं। तथापि साधकों के प्राक्तन कर्मानुकूल रुचि तथा स्वभाव के अनुरूप प्रवृत्ति देखी जाती है। ऐहिक सिद्धियों में भी बहुतों का लगाव होता है। अतएव उनके उपाय का निर्देश शास्त्रों में यत्र तत्र मिलता है। यहाँ भी वह उसी रूप में अवस्थित है, फलतः वह अनुचित नहीं कहा जा सकता है।

इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्यों का परिचय भूमिका में विशद रूप में दिया जा चुका है। अतएव यहाँ मैं उसको पुनः प्रस्तुत करना उचित नहीं समझता हूँ। हाँ, एक बात कह देना उपयुक्त समझता हूँ कि लोक में धारणा है कि महाकाल संहिता के अनेक खण्ड रहे होगें, जिनमें से केवल दो ही खण्ड हम लोगों को मिल पाये हैं। किन्तु बाह्य तथा आभ्यन्तर साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि दो खण्डों में ही यह संहिता परिपूर्ण है। बीजोद्धाराख्य चतुर्थ पटल के आरम्भ में एक पंक्ति है :

ज्ञातुं न शक्या देवेशि विविधाः कामगुह्ययोः।

यदि इस संहिता के और खण्ड होते तो 'कामगुह्ययोः' में द्विवचन विभक्ति नहीं होती और अन्य खण्डों का भी उल्लेख होता। कामकलाखण्ड में कहा गया है :

शास्त्रेऽस्मिन्नेव कथितो गुह्यकाली महामनुः

अर्थात् इस संहिता में गुह्यकाली के मन्त्र आदि पहले कहे जा चुके हैं। यहीं अन्य देवताओं के विषय में ग्रन्थान्तरों का उल्लेख है :

श्मशानकाल्याः भेदास्तु डामरे प्रतिपादिताः ।

भीमातन्त्रे कालकालीमनुरुक्तो मया तव ।। १४६-४७ ।।

मातृकाएँ भी दो ही खण्डों की उपलब्ध होती है। चौथी बात यह है कि ताराभक्तिसुधार्णव एवं पुरश्चर्यार्णव में उद्धृत इस संहिता की पद्यावली सम्पूर्णतया इन्हीं दोनों खण्डों की मिलती हैं। अतः यह संहिता दो ही खण्डों में परिपूर्ण है।

अन्त में यहाँ मैं इस कार्य में सहयोग के लिए अपने सारस्वतबन्धु कु० अर्चना चतुर्वेदी, डा० प्रकाश पाण्डेय तथा पण्डित रामकिशोर झा (विद्यापीठ के शैक्षिक सदस्य) को शतशः आशोर्वाद एवं साधुवाद देना नहीं भूल सकता, जिनकी सहायता मुझे समय-समय पर मिलती रही है। पूज्य चरण गुरुदेव प्रो० अनन्तलाल ठाकुर, कल्याणमित्र डा० गयाचरण त्रिपाठी (अपने प्राचार्य) तथा सुहृत्तम डॉ० शिवकुमार मिश्र, एवं डॉ० जगन्नाथ पाठक (इस विद्यापीठ के प्रवाचक) का मैं अधमर्ण हूँ और साभार कृतज्ञता स्वीकार करता हूँ। इन सभी का सत्परामर्श मुझे इस कार्य में सर्वदा सुलभ रहा और यथासमय आलोकपात करता रहा है। इस विद्यापीठ के संग्रहाध्यक्ष पण्डित श्री जीवेश्वर झा ने मातृकाएँ सुलभ कराकर तथा अरविन्द प्रिन्टर्स के सहृदय व्यवस्थापक श्री गोविन्दशरण दास जी ने मुद्रण की कठिनाइयों को दूर कर जो उपकार किया है, इसके लिए मैं उन सबों का हृदय से कृतज्ञ हूँ।

इस संस्करण में अपनी त्रुटियाँ देखकर मैं पाठकों से निवेदन करूंगा कि वे भगवान् शिव की तरह गुणग्राही होकर दोषों के लिए मुझे क्षमा करेंगे। किसी कवि ने कहा है :—

गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः ।

शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति ।।

इति

महाशिवरात्रि, २०४२ वि० सं०
८-३-१९८६ ई०

विनीत :
किशोर नाथ झा

विषय-सूची

विषया: पृष्ठसंख्या

विषया: पृष्ठसंख्या

विषयाः | पृष्ठसंख्या

विषयाः **पृष्ठसंख्या**

भूमिका

(१)

महाकालसंहिता के अन्तर्गत कामकला खण्ड की भूमिका लिखने के पहले मैं इस ग्रन्थ के विद्वान् पाठकों के सम्मुख एक विनम्र निवेदन प्रस्तुत कर रहा हूँ। आज प्रायः एक वर्ष से ऊपर शारीरिक अस्वस्थता के कारण मैं पठन-पाठन तथा गम्भीर तत्त्वों के अनुशीलन से विरत रह रहा हूँ। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से बहुत पहले दिवङ्गत विद्वान् म० म० उमेश मिश्र महाशय ने महाकालसंहिता के प्रकाशन में उद्योगी होकर मेरे ऊपर इसके सम्पादन का दुरूह कार्य समर्पित किया। उमेश मिश्र जी मेरे अतीव स्नेहपात्र थे। मैंने उनके आग्रह की यथार्थता की उपलब्धि करते हुए सम्पादन का कार्य-भार अपने ऊपर लिया। शारीरिक अपटुता रहने पर भी मैं अपने सुयोग्य शिष्य श्री हेमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती जी की सहायता से ग्रन्थ-सम्पादन कार्य में अग्रसर हुआ। जब शरीर स्वस्थ रहता था तब इस ग्रन्थ के सम्पादन के उपयोगी भिन्न-भिन्न विषयों के अन्वेषण के कार्य में उन्हें प्रेरित करता था। उन्हीं के श्रम से आज यह भूमिका सर्वसाधारण के समक्ष उपस्थित करने में सफल हो रहा हूँ। इसलिए श्री भगवान् के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ। श्रीमान् हेमेन्द्र जी ने मेरे निकट से प्राप्त निर्देश के अनुसार मुझसे लब्ध तत्त्वोपदेश को यथायथ रूप से संग्रह करते हुए इस भूमिका में सन्निविष्ट कर दिया है। उनका यह आनुकूल्य सर्वथा स्मरणीय है।

(२)

हम लोग यहाँ कौलिक साधना के अनुगत रूप में पूर्णता-प्राप्ति का एक दिग्दर्शन प्रस्तुत करेंगे।

सृष्टि के मूल में एक बोध-समुद्र विद्यमान है। इसे अकूल कहा जाता है। उस अकूल बोध-समुद्र में तरङ्ग का उन्मेष भी अनुग्रह नाम से परिचित है। पूर्णत्व के मार्ग में अग्रसर होने के लिए अनुग्रह सब से पहली आवश्यक वस्तु है। इस अनुग्रह

के प्रभाव से निद्रित चित् शक्ति जागृत हो उठती है, जिसके फलस्वरूप साधक के जीवन में एक विशाल परिवर्तन संघटित हो जाता है।

हमारी दृष्टि के सम्मुख जो विश्व जगत् प्रसारित है; जीवमात्र ही उसे बाह्य स्थित समझते हैं। वस्तुतः वह बाहर कहीं नहीं है, वह अपने अन्तर में ही है। यह जागृत चित् शक्ति के प्रभाव से अनुभूत होता है। किन्तु माया के प्रभाव से आन्तर वस्तु भी बाह्य स्थित प्रतीत होती है।

अनादि काल से जीव काल-समुद्र में तैर रहा है। वह अपने पूर्ण स्वरूप से विच्युत होकर काल की धारा में बहता हुआ जा रहा है। वह नहीं जानता है कि यह दृश्यमान विश्व, दर्पण में दृश्यमान नगरी के सदृश है। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्बित विश्व दर्पण में ही स्थित है, दर्पण से भिन्न उसकी कोई पृथक् सत्ता नहीं है, ठीक उसी प्रकार बोध-समुद्र में भासमान अनन्त भावरूप सत्ता भी बोध से अतिरिक्त वस्तु नहीं है। लेकिन काल के प्रभाव से अनन्त विकल्पजाल से बद्ध होने के कारण जीव निजान्तर्गत विश्व को निज स्वरूप से अतिरिक्त रूप में समझता है। जब अनुग्रह शक्ति का सञ्चार होता है तब धीरे धीरे विकल्पों का यह जाल टूटने लगता है। अनुग्रह के सञ्चार के परिणाम-स्वरूप उन्मेष प्राप्त चित्-शक्ति काल को ग्रसना प्रारम्भ कर देती है। फलतः विकल्पजाल भी क्रमशः क्षीण होने लगता है।

विकल्पों की क्षीणता प्रमेयों की शुद्धि के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अनुग्रह-सञ्चार के पहले जीव माया के द्वारा बद्ध रह कर जिन्हें प्रमेय समझता था, वे थे अशुद्ध प्रमेय। विकल्प के टूटने पर प्रमेयों की शुद्धि सम्पन्न होती है। उस समय "बाहर नाम की कोई स्थिति नहीं रहती है। सभी अन्तर में ही अनुभूत होते हैं"। प्रमेयों की शुद्धि होने पर ही शुद्ध प्रमेय उस समय रहते हैं। जागृत चित् शक्ति के प्रभाव से विश्व का परिशुद्ध रूप आत्मस्वरूप में ही अनुभूत होता है। शङ्कराचार्य की भाषा में उसी समय कहा जा सकता है—

'विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम्'

माया के प्रभाव से जितने दिन जीव शरीर को, मन को तथा प्राण आदि को आत्मा के रूप में देखता है, तब तक बाहर में स्थित विश्व निज स्वरूप से भिन्न प्रतीत होता है, लेकिन चित् शक्ति के विकास-सम्पन्न होने पर यह देहात्मभाव कट जाता है। फलतः विश्व तब बाहर दृष्टिगोचर नहीं होता है। वह अन्तर में ही स्थित रहता है।

जागृत चित्-शक्ति बुभुक्षु जैसी है। जागृत होने के साथ-साथ बाहर दृश्यमान विश्व को वह ग्रसती है और ग्रास-सम्पन्न होने पर उसे अन्तर में ले जाती है। पहले विसर्ग से विश्व का सर्जन हुआ था। अब बिन्दु की प्रक्रिया से बाहर उत्सृष्ट विश्व को अन्तर में स्थापित किया जाता है, अर्थात् शक्ति उसे अपने अन्दर खींच लेती है।

बिन्दु की प्रक्रिया से विश्व को अन्तर में स्थापित करने के पश्चात् वास्तविक भोग सम्पन्न होता है। बद्ध जीवों का जो भोग है, कौलिक दृष्टि से उसे भोग नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि साधारण जीव भोग करना नहीं जानता है। जो लोग प्रकृत-वीर हैं वे ही वास्तविक भोक्ता हैं। पशु अर्थात् बद्ध जीव जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में स्थित रहता है और इन तीनों अवस्थाओं में पृथक्-पृथक् भोक्ता के रूपमें उसका भोग सम्पन्न होता है। तुरीयानन्द रूप में उन तीनों अवस्थाओं के एक ही भोक्ता के रूप में उसका भोग सम्पन्न नहीं हो सकता है। जागृत चित्-शक्ति के विकास के परिणाम-स्वरूप जब प्रमेयों की शुद्धि सम्पादित होती है तब एक ओर जैसे विषयों की शुद्धि होती है ठीक उसी प्रकार दूसरी ओर विषयों के ग्रहण करने वाले इन्द्रिय-समूह भी शुद्ध रूप धारण करते हैं। उस चक्षु द्वारा अन्तः स्थित विषयों के ग्रहण के समय शुद्ध विषयों का ग्रहण सम्पादित होता है। यह भोग ही श्री भगवान् की अर्चना है तथा यही उपासना है। यह जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति में होती है। जब जिसकी अवस्था में रहा जाता है वहीं उनकी पूजा होती है। यह दुर्बल का काम नहीं है। यही वीरभाव है। भगवान् शङ्कराचार्य जी ने कहा है—

यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिल
शम्भो ! तवाराधनम्।

भोग के बाद तृप्ति होती है। तृप्ति के बाद अन्तर्मुख दशा का आविर्भाव होता है। इस अन्तर्मुख दशा में ग्राह्य भी नहीं रहता है और ग्राह्यों के जो ग्रहण हैं वे भी अन्तर्लीन हो जाते हैं। लेकिन प्रश्न उठता है कि तृप्ति किसकी होती है ? उस समय करणेश्वरी देवी विषय के साथ अन्त में तृप्ति लाभ करती है। इस तृप्ति के फल-स्वरूप करणेश्वरी देवी चिदाकाश रूपी भैरवनाथ के साथ आलिङ्गित होकर पूर्णरूप से अन्तर्मुख हो जाती है। तब करणेश्वरी देवी और चिद् भैरवनाथ अभिन्न हो जाते हैं। यही आलिङ्गित होना शयानभाव का तात्पर्य है। लेकिन जब तक इन्द्रिय-समू

आकाङ्क्षा युक्त रहते हैं तब तक करणेश्वरी देवी गण चिदाकाशनाथ का आलिङ्गन नहीं कर सकती हैं।

इन्द्रियों से विषय-भोग की आकाङ्क्षा निवृत्त न होने पर श्वास-प्रश्वास की क्रिया चलती रहती है। और, असंख्य नाड़ियों में नाना प्रकार की क्रियाएं नहीं रुकती हैं। जब तक यह क्रिया चलती रहती है तब तक आन्तर तथा बाह्य द्वादशान्त तक गमनागमन की क्रिया भी चलती रहती है। अन्तर्मुख गति से आन्तर द्वादशान्त में प्रवेश होता है तथा बहिर्मुख गति से बाह्य द्वादशान्त में प्रवेश होता है। ये दोनों अर्थात् द्वादशान्तद्वय संघट्टस्थान के नाम से प्रख्यात हैं। जब इन संघट्टस्थानों में सन्धि होती है तब परप्रमातृभाव का उन्मेष होता है। इस प्रकार प्रमाण तथा प्रमेयों की सन्धि संघट्टस्थानों में भी होती हैं। परप्रमातृदेवी परा संविद्रूपा है—इसमें सन्देह नहीं। जब परप्रमातृभाव का उदय होता है अर्थात् जब परसंविद् स्थिति का उदय होता है तब वह देवी अपने तेज तथा दीप्ति के प्रभाव से मितप्रमातृभाव को ग्रास करती हुई अपने स्वरूप में मग्न होकर रहती हैं। तब एक ओर जैसे प्राण तथा अपानों के संघर्ष-जनित क्षोभ की निवृति होती है वैसे दूसरी ओर प्रमाण तथा प्रमेयों के संघर्ष भी निवृत्त होते हैं, अर्थात् परासंविद् देवी अपने तेज के द्वारा प्राण तथा अपान के संघर्ष तथा प्रमाण एवं प्रमेयों के क्षोभ को निवृत्त करती हैं। उस समय एक प्रकार की निर्विकल्प दशा का उदय होता है। उत्पलाचार्य आदि के सिद्धान्त में यह स्थिति आध्यात्मिक शिवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय चन्द्र और सूर्य दोनों के ही अस्तमित हो जाने के कारण उसे रात्रि शब्द से अभिहित किया जाता है।

इस स्थिति के बाद एक विशिष्ट स्थिति का उदय होता है। इस स्थिति में दो भाग दिखाई पड़ते हैं—एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तरीण। बाह्य स्थिति में स्वरूप का आच्छादन होता है और आभ्यन्तरीण स्थिति में स्वरूप का उन्मीलन होता है। यह अवस्था योगियों के लिए कठिन परीक्षा स्थल है। यहां एक ओर जैसे प्राण की क्रिया निरुद्ध रहती है वैसे दूसरी ओर प्रमाण तथा प्रमेयों के संघर्ष से उत्पन्न क्षोभ भी निवृत्त हो जाता है। इस स्थिति में सर्वदा आत्मानुसन्धान जागृत नहीं रखने पर वह स्वरूप महामाया के द्वारा आवृत हो जाता है। लेकिन आत्मानुसन्धान जागृत रहने पर स्वरूप का विकास सम्पन्न होता है। इस अवस्था को महाव्योम कहते हैं। उस व्योम में चन्द्र तथा सूर्य की गति नहीं है अर्थात् प्राण अपान की क्रिया तथा प्रमाण एवं प्रमेयों की क्रिया भी नहीं है। इसी का नामान्तर है चिदाकाश। इतनी

दूर तक ऊर्ध्वंगति सम्पन्न होने पर भी योगियों के चित्त में शङ्का का उदय हो सकता है। लेकिन योगी स्वात्मानुसन्धान रूप प्रयत्न के द्वारा उन्हें दूर कर सकते हैं। आत्मानुसन्धान रहने पर स्पष्ट अनुभव होने लगता है कि विकल्परूपी समग्र जगत् अन्तर्मुख पद में लीन है। उस समय आत्मा चराचर को ग्रसता हुआ, उस ग्रास के उल्लास में एकरसमय स्थिति को प्राप्त करता है। यह स्थिति परप्रमातृदशा की ही स्थिति है– इसमें सन्देह नहीं।

यहाँ ध्यान रखना आवश्यक है कि स्वरूप का निमीलन तथा उन्मीलन दोनों ही व्यापार पूर्ण दशा में रहते हैं। किन्तु गुरुकृपा के प्रभाव से स्वरूप का निमीलन समूल उपसंहृत हो जाता है, अर्थात् संसार-चक्र आत्मा रूपी अग्नि में दग्ध होकर अभेद ज्ञान में पर्यवसित होता है और अन्तर्मुख पद के आश्रय से अद्वय स्वरूप में स्थित होता है। उस समय स्वरूप का गोपन या निमीलन नहीं होता है। बाह्य वृत्ति का भी उदय नहीं होता है। इस स्थिति का पारिभाषिक नाम है भावसंहार। यह उन्मन स्थिति में निर्विकल्प आत्मसंवेदन के उदय होने पर प्रकाशित होता है। इस स्थिति में आत्मस्वरूपभूत प्रज्वलित अग्नि में भावमय विश्व का संहार हो जाता है। उस समय परासंविद्रूपा देवी की महिमा से सब प्रकार के प्रमेयों का उच्छेद हो जाता है। इस स्थिति में भेद का ज्ञान नहीं रहता है। हेय तथा उपादेय का बोध भी तिरोहित हो जाता है।

लेकिन इतना होते हुए भी यह पूर्णाहंता-स्वरूप नहीं है। क्योंकि संस्कार रहने के कारण अल्पमात्रा में इदन्ता का लेश उस समय भी रह जाता है। कौलगण का कहना है कि इस स्थिति में योगियों को इस प्रकार के विमर्श का उदय होता है— "मैंने ही यह सब अभेद में भासित कर लिया है", अर्थात् संसार होने पर भी संहार का संस्कार रहने के कारण उस संहार का परामर्श होता है। बाद में वह संस्कार भी नहीं रहता है। इस संस्कार के नाश के बाद योगी का अनुभव—"सब मैं ही हूँ" इस प्रकार का होता है। इसके परवर्ती स्थिति में परासंविद् जिस रूप में आत्मप्रकाश करती है, वह संहार की ही और गम्भीर स्थितियाँ है। पहले जो भावसंहार की बात कही गई है, वह प्रमेय के संहार का संहार था। लेकिन इस समय जो संहार का स्वरूप प्रकट होता है उसमें प्रमाण भी उपसंहृत हो जाता है। यह भूमि सदाशिव-दशा के अनुरूप है। इस अवस्था में शंका या ग्लानि के उदय होने पर पर भी योगियों के मार्ग में कोई विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकता है। इस स्थिति में प्रमेय सर्वाङ्गीण लीन है लेकिन प्रमाण में स्थित प्रमेयों की जीवनी शक्ति अब तक रहती है। इसी

जीवन-शक्ति को दार्शनिक परिभाषा में द्वादश इन्द्रिय रूप में वर्णित किया जाता है। आगम मत में यह सूर्य का ही एक रूप है।

इसके बाद द्वादश इन्द्रियात्मक सूर्य अहङ्कार रूप परमादित्य में विलीन हो जाता है। किसी किसी आगम-मत के अनुसार इसी का नामान्तर भर्गशिखा है। इस अवस्था में समस्त कलाओं का उपसंहार होकर केवल परमा कला या अमा कला ही वर्तमान रहती है। यही शिवकला है तथा परप्रमातृरूपा है।

यह अहङ्कार रूपी परमादित्य होने पर भी परिच्छिन्न प्रमाता है। परमादित्य के बाद जो अहंसत्ता का उदय होता है वह परमादित्य से उत्कृष्ट होने पर भी परिच्छिन्न प्रमाता है। इसका पारिभाषिक नाम है कालाग्निरूप। इसके बाद रुद्रा-वस्था के अतिक्रान्त होने पर भैरव अवस्था का उदय होता है। भैरव का जो रूप सर्वप्रथम आत्मप्रकाश करता है उसका नाम है महाकाल भैरव। परासंविद् यहाँ महाकाली रूप में प्रकाशित होती है। महाकाल भैरव यहाँ पञ्चकृत्य सम्पादन करते हैं लेकिन निरपेक्ष रूप से नहीं। क्योंकि यह स्वतन्त्र नहीं है। जिनकी इच्छा से वह सृष्टि आदि पञ्चकृत्य करते हैं वह स्वयं जगदम्बा है। भैरव अवस्था में परम तेज के गर्भ में सब प्रकार की परिच्छिन्न अहन्ता विलीन हो जाती है। उस महान् अग्नि में दग्ध होकर विश्व के साथ अभेदमय पूर्णाहंता विद्यमान रहती है। इस स्थिति में आने पर योगी परम शिव के सदृश पञ्चकृत्य कार्य करते हैं। परम शिव का पञ्चकृत्य इस अवस्था में व्यापिनी कला में प्रकाशित होता है—यह बहुतों का मत है। पश्चात् महाकाल भैरव भी नहीं रहता है। यह महाभैरव की अवस्था है जो महाकाल का भी अतीत है। इस स्थिति में सब कुछ शान्त रहता है किसी का संस्कार भी नहीं रहता है। जो स्वात्म संवेदन क्रम से अधिक से अधिक मात्रा में परिस्फुट होते हुए विकसित हो रहा था, उसकी पूर्णता यहाँ होती है। उस समय महाकाली स्वधाम में या अकूल में प्रविष्ट होने के लिए उन्मुख रहती है। इसलिए यह काल के द्वारा कलित अवस्था नहीं है। इस अवस्था में योगी शमना भूमि में प्रविष्ट हो गये हैं—ऐसा कहा जा सकता है। उस समय काल की सत्ता नहीं रहती है। उस स्थिति में अनन्त काल क्षणमात्र रूप में प्रतीत होता है।

इसके बाद जिस स्थिति का विकास होता है वह क्रम विकास का अन्तिम चरण है। यह परम शिव की स्थिति है। इस स्थान में परासंविद् देवी के स्वरूप का साक्षात्कार होता है। वह देवी पूर्णरूपा तथा कृशरूपा दोनों एक साथ है। यह अघटन पटीयसी है। जब यह अपने आश्रित देवी गणों का उदय करती हैं, प्रमाण

प्रमाता आदि पदों तथा सृष्टि आदि समस्त चक्रों का विकास करती है, तब वह पूर्ण है। और जब वह सब कुछ अपने में लीन कर लेती है, केवल कालसंकर्षिणी नाम का एक चक्र शेष रहता है उस समय वह कृशा कही जाती है।

इस स्थिति में कोई क्रम नहीं है, यौगपद्य भी नहीं है। क्रम-अक्रम का सम्बन्ध भी नहीं है। क्रम के विज्ञान से देवी का क्रम विकसित होता है। एवं प्रमेय आदि आत्मसंवित्ति के रूप में भासित होते हैं। यही जीव की पूर्णता प्राप्ति है।

(३)

तान्त्रिक साहित्य के अनुसन्धित्सु पाठकों के लिए कामकला अपरिचित तत्त्व नहीं है। प्रसिद्ध है कि भगवान् शङ्कराचार्य को कामकला का तत्त्व विशेष रूप से ज्ञात था। उपासनाक्रम में सौन्दर्यलहरी के त्रिपुरसुन्दरी स्तोत्र में इसका वर्णन भी उन्होंने किया है। कादि तथा हादि के मत में श्री-विद्या की उपासना का जो क्रम साधक-समाज में प्रचलित है उसके पढ़ने से कामकला के सम्बन्ध में पाठक-समाज में एक धारणा अवश्य ही उत्पन्न होती है। पुण्यानन्द-रचित कामकलाविलास एवं नटनानन्द-रचित उसकी व्याख्या कामकला के सम्बन्ध में प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कामकला के सम्बन्ध में योगिनीहृदय नामक तन्त्र ग्रन्थ में तथा अमृतानन्द एवं भास्करराय रचित उसकी व्याख्या दीपिका तथा सेतुबन्ध में विस्तार से विवरण मिलता है। कामकला का महत्त्व अति प्राचीन काल से ही उपासक सम्प्रदायों में परिज्ञात है। श्री-विद्या की उपासना के क्रम का अनुसन्धान करते हुए कामकला का जो परिचय विभिन्न तन्त्रों में तथा उनकी व्याख्याओं में मिलता है वह दक्षिण भारत का क्रम है, ऐसा हम लोग समझते हैं। किन्तु उत्तर भारत में तथा पूर्व भारत में काली क्रम का अनुसरण करते हुए उसके उपासना क्रम में अनुगतरूप से कामकला रहस्य के सम्बन्ध में विशेष परिचय का ज्ञापक एक भी ग्रन्थ आज तक उपलब्ध नहीं हुआ है। फिर भी इतना निःसन्देह कहा जा सकता है कि कामकलारहस्य अन्य सभी शाक्त उपासनाओं में भी ज्ञात था। और इसका सामान्य प्रभाव भी था। इस विषय में हम ने कुछ संक्षिप्त आलोचना बाद में की है।

महाकालसंहिता का यह कामकला खण्ड नामक जो ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, उसमें एक नवीन धारा का सन्धान मिल सकता है—ऐसी धारणा हमलोगों की थी। लेकिन इस ग्रन्थ के पाठ से इस प्रकार का कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं

हुआ। इसमें विवृत कामकला रहस्य का जो आभास मिलता है वह दक्षिण भारत में प्रचलित कामकला विज्ञान से कुछ अंश में भिन्न है, इतना कहा जा सकता है। मैं कामकला का रहस्य पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने के पहले प्रसङ्ग से इस विषय की कुछ आलोचना करना चाहता हूँ, जिससे उस रहस्य को समझने में सुविधा हो।

शाक्त उपासना का चरम लक्ष्य है अद्वैत की प्राप्ति। तान्त्रिक आचार्य गण परमसत्ता के रूप में जिसका निर्देश करते हैं वह स्वरूपतः निष्कल परम पद है। वही परमशिव पद से अभिहित होता है तथा पराशक्ति या महाशक्ति रूप में वर्णित किया जाता है। वह अखण्ड प्रकाश रूप अथवा चिद्रूप है। वह सत् होने पर भी चित् है एवं चित् होने पर भी सत् है। परम स्वातन्त्र्य ही उसका स्वभाव है। स्वातन्त्र्य शब्द का तात्पर्य अन्य निरपेक्षता से होने के कारण वह आनन्द रूप है। क्योंकि जहाँ द्वितीय सत्ता नहीं है और द्वितीय की जहाँ अपेक्षा भी नहीं है, वहाँ वह स्वरूप स्वभावतः आनन्दमय है। यह स्थिति केवल प्रकाश रूप नहीं है, स्वयं प्रकाश है। अर्थात् प्रकाश होकर भी वह विमर्शमय है। स्वातन्त्र्य शक्ति के प्रभाव से वह अद्वितीय रहते हुए द्वितीय हो सकता है, निःस्पन्द होते हुए भी स्पन्दशील हो सकता है। इसीलिए तान्त्रिक आचार्य गण शिव तथा शक्ति में भेद नहीं मानते हैं। वस्तुतः दोनों एक तथा अभिन्न हैं, जो परम शिव हैं वही परमा शक्ति हैं। शक्ति के बिना शिव इच्छाहीन, ज्ञानहीन तथा क्रियाहीन हैं और स्पन्दन में भी असमर्थ हैं। शिव और शक्ति की यह अभिन्नता परमसार्व है—यही सामरस्य है।

इस विषय को किञ्चित् विस्तृत रूप में कहने की चेष्टा करता हूँ। हम जो सृष्टि देखते हैं वह बहुस्वरूप है। वह बहु होने पर भी मूलतः एक है। एक से बहु में अवतरण करते समय दो की आवश्यकता होती है। यह जो द्वितीय सत्ता है यह दो अवस्थाओं में प्रकाशित होती है-(१) एक के साथ अभिन्न रूप में जडित-यह प्रथम अवस्था, (२) एक से भिन्न रूप में प्रकाशमान जो अभिन्न रूप में जडित है उस सत्ता को यामल सत्ता कहते हैं। इन दो सत्ताओं के बिना सृष्टि नहीं हो सकती है। एक और दो जहाँ यामल रूप में प्रकाशमान है, वहाँ उभय के मिलन से परम अद्वैत सत्ता का प्रकाश होता है। और जहाँ एक तथा दो पृथक् रूप में स्थित है वहाँ उभय के मिलन से भेदमय बाह्य जगत् का प्रकाश होता है। प्रथम स्थिति को अन्तरङ्गा शक्ति कहा जा सकता है और दूसरे को बहिरङ्गा शक्ति। आगम शास्त्रों में रेखा-विन्यास के द्वारा इस तत्त्व को समझाने की चेष्टा भी की गई है। भेदमय सृष्टि तथा पूर्णता में प्रवेश उभयत्र ही शक्ति का खेल है। एक शक्ति

शिवतत्त्व तक पहुंचा देती है और दूसरी शक्ति जीव तथा जगत् की ओर ले जाती है।

सृष्टि के मूल में बिन्दु है। परम स्वरूप के स्वातन्त्र्य से जब स्पन्दन इस बिन्दु का स्पर्श करता है तब बिन्दु रेखारूप में परिणत हो जाता है। सब से ह्रस्व रेखा दो बिन्दुओं से. गठित है। इसकी परवर्ती सृष्टि बिन्दु से नहीं होती है। तीन रेखाओं की आवश्यकता होती है। इन तीनों रेखाओं के संयोग से जो त्रिकोण उत्पन्न होता है, वह सृष्टि का मूल [योनि] है। वेदान्त में इसलिए—'योनेः शरीरम्' इस प्रकार कहा गया है। योनि का आश्रय लिये बिना शरीर उत्पन्न नहीं होता है।

सृष्टि के मूल में मातृका है। मातृका शब्द का अर्थ है माँ। मातृका या महामातृका विश्वजननी है एक ही परमसत्ता, जो इस के सम्बन्ध वश बहु रूप में प्रकाशमान होती है। मातृका मूल में एक तथा अभिन्न है। वस्तुतः यह अक्षरब्रह्म की क्षरात्मक स्वरूपभूता शक्ति है। प्राचीन आगमों में परावाग् रूप में इसी की प्रशंसा कीर्तित है। वैदिकसाहित्य में शब्दब्रह्म रूप में जिसका निर्देश मिलता है, वह भी यही है। शब्दब्रह्म या परामातृका ही विश्वजननी है।

इस विषय की आलोचना के प्रसङ्ग में तीन प्रकारों के स्तरों की धारणा करनी आवश्यक है। एक ऐसा स्तर है, जहाँ सृष्टि, संरक्षण तथा संहार आदि कुछ भी नहीं है। यहाँ पूर्ण सत्य अपनी महिमा में पूर्णतः विराजमान है। यहाँ शिव शक्ति का प्रश्न नहीं है। जीव तथा जगत् का भी प्रश्न नहीं उठता। यह एक अद्वय परम स्थिति है। इसके अतिरिक्त एक और स्थिति है, जिसे द्वितीय स्थिति कहा जा सकता है। वहाँ परब्रह्म भी है तथा शब्दब्रह्म भी उससे अभिन्न रूप में है। यही शब्दब्रह्म वहाँ परावाग् रूप में उल्लिखित हुआ है। वह स्थिति युगल भावापन्न है। तान्त्रिक परिभाषा में यह शिव तथा शक्ति का समरसात्मक भाव है। यह सामरस्य नित्य सिद्ध है। पहिली स्थिति जैसे नित्यसिद्ध है दूसरी भी तद्रूप है। इसके बाद सामरस्य का भङ्ग होता है। तब तृतीय सत्ता का आविर्भाव होता है। यह तृतीय सत्ता जीव और जगत् रूप है। समरस अवस्था में तृतीय स्थिति का आविर्भाव नहीं होता है। क्योंकि वह अद्वय की स्थिति है। पहले जिस स्थिति का वर्णन किया गया है, वह अद्वयस्थिति भी नहीं है, वह विकल्पहीन स्थिति है। अद्वय स्थिति में विकल्प है, द्वैतस्थिति में तो है ही, लेकिन जो द्वैताद्वैतविवर्जित है. वहाँ विकल्प की सम्भावना कैसे हो सकती है?

जो अखण्ड महासत्य जगत् का प्रकाश कर रहा है, उसकी स्वरूपभूता शक्ति

मातृका नाम से परिचित है । मातृका महाशक्ति का ही नाम है । मातृकारहितं अर्थात् शक्तिहीन महाप्रकाश प्रकाश स्वरूप होते हुए भी प्रकाशमान नहीं है । इसलिए महाजनों का कथन है—

वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती ।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥

अर्थात् ज्ञान अथवा बोध की एक शाश्वत अथवा नित्यसिद्ध वाग्रूपता है । इसलिए ज्ञान या प्रकाश स्वयंप्रकाश है । अर्थात् प्रकाश स्वरूप में यदि वाग्-रूपता नहीं होती तो वह स्वरूपतः प्रकाश होते हुए भी प्रकाशमान नहीं हो सकता था, क्योंकि मातृका ही प्रत्यवमर्शिनी शक्ति है । मातृका के अन्तर्लीन हो जाने पर प्रकाश प्रकाश ही रह जाता है, लेकिन वह अपने को प्रकाश रूप में पहचान नहीं सकता । केवल इतना ही नहीं, इस शक्ति का आश्रय करती हुई समग्र सत्ता प्रकाशमान होती है ।

समग्र जगत् ईश्वर, जीव तथा जड़ पदार्थ समष्टिरूप में मातृका से उद्भूत है, अर्थात् अहंरूप में जो प्रकाशमान है उसके मूल में भी मातृका है । यह अहं पूर्ण अहं हो सकता है, और परिच्छिन्न अहं भी हो सकता है । किन्तु क्षेत्रों में मातृका का ही खेल है । आदि के अकार से अन्त के हकार पर्यन्त का जो महामण्डल है, यही मातृका मण्डल है । अकार से हकार तक पञ्चाशत् मातृका के समष्टिरूप में प्रकाशमान रहने पर पूर्ण अहं सत्ता की अभिव्यक्ति होती है । सच्चिदानन्द ब्रह्म अव्यक्तरूप में सत् तथा प्रकाश रूप में आत्मप्रकाश रूपी है । अखण्ड मातृकामण्डल पूर्ण अहं परमेश्वर का नित्यसिद्ध निजस्वरूप है । यह स्वरूप नित्यप्रकाशमान स्वयं-सिद्ध और परिपूर्ण है । इसके बाहर कुछ नहीं है और न रह ही सकता है ।

महाकाल

पूर्ण अहं एक तथा अभिन्न है । भिन्न अवयव रहने पर भी वह एक ही है— 'सूत्रे मणिगणा इव', माला में कितने ही फूल क्यों न हो, पुष्पों का अन्तर्वर्ती सूत्र एक ही होता है । यह अकार से हकार तक प्रसरित है । इस अहं में अन्य कोई पदार्थ नहीं है । अगर होता तो यह अहं, अहं तथा इदं के समन्वय के रूप में परिणत होता । पूर्ण अहं चैतन्य स्वरूप है । उसमें इदं नहीं है । एकमात्र अहंता ही है । इदंता स्वातन्त्र्य से सृष्टि की उन्मुख अवस्था में आविर्भूत होती है । इदंता के स्फुरण के

पहले सर्वप्रथम सर्वशून्यरूप परमाकाश का आविर्भाव होता है। और उसी के आश्रय से अनन्त अहं द्वितीयरूप में प्रकट होता है । इसी का नाम इदं सृष्टि है, जो महासमष्टिरूप है और जिसे हम महासृष्टि कहते हैं। हम लोगों के खण्डकाल के जगत में अनन्त लोक लोकान्तर जो कुछ हैं, थे और होंगे, सभी नित्य वर्तमानरूप में उस महासृष्टि में विद्यमान है। उस स्थान में काल नहीं है, क्योंकि काल परिमाण का साधक है, जो अतीत, अनागत तथा वर्तमान रूप में हम लोगों के सम्मुख उपस्थित होता है। अतएव उस भूमि में ऐसे काल का कोई अस्तित्व नहीं है। तान्त्रिक गण इसे महाकाल कहते हैं। अहं से इदं रूप में भासमान होने पर ही वह सृष्टि के रूप में वर्णित होने के योग्य है। इस सृष्टि का न आदि है; न अन्त है। इसलिए इसे महासृष्टि कहते हैं। इस स्थिति को पूर्ण स्थिति नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि यह भी परिच्छिन्न अवस्था है। यह इदं रूप में भासमान है अहं रूप में नहीं। इस महासृष्टि का संहार ही महासंहार है। महासृष्टि का अन्त नहीं है। काल के रूप में उसके अवसान की कल्पना नहीं की जा सकती है। लेकिन उसका भी अवसान है। और वह होता है पूर्णअहंता-वोध के साथ साथ।

महाकाल या महासृष्टि के सम्बन्ध में आलोचना के प्रसङ्ग से प्राचीन साङ्ख्य के दृष्टिकोण से यहाँ कुछ कहना मैं आवश्यक समझता हूँ। साङ्ख्य में प्रकृति और पुरुष भिन्न है। पुरुष चिद्रूप या प्रकाशरूप है लेकिन प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। यह त्रिगुण मिथ्या नहीं है, सत्य है। पुरुष अपरिणामी है लेकिन प्रकृति नित्य परिणाम शील है। प्रकृति का परिणाम क्यों होता है—इस विषय में प्राचीन आचार्यों के अनेक विचार हैं। किसी किसी का कहना है—'कालाद् गुणव्यतिकरः'। लेकिन प्रसिद्ध साङ्ख्य यह स्वीकार नहीं करता है। साङ्ख्यमत में परिणाम का कोई बाह्य हेतु नहीं है। स्वभाव ही उसका एक मात्र कारण है। इसलिए प्रकृति को स्वतः परिणामिनी कहा जाता है। सूक्ष्मरूप से देखने पर यह परिणाम दो प्रकार के प्रतीत होते हैं। प्रथम स्वरूप परिणाम है; यह स्वतः परिणाम है। और दूसरा विसदृश परिणाम है। स्वतः परिणाम से सृष्टि नहीं होती हैं। लेकिन विसदृश परिणाम के फलस्वरूप सृष्टि का उदय होता है। विसदृश परिणाम के धर्म, लक्षण तथा अवस्था तीन विभाग होते हैं। प्रकृति के प्रथम परिणाम को धर्मपरिणाम, धर्म के प्रथम परिणाम को लक्षण-परिणाम और लक्षणपरिणाम के बाद का अवस्थापरिणाम है। अतीत, अनागत और वर्तमान यह तीन लक्षणपरिणाम में रहते हैं। साङ्ख्य सत्कार्यवादी है। सृष्टि के परिणाम के फलस्वरूप होने पर भी असत् की सृष्टि नहीं होती है। जो पहले अभिव्यक्त नहीं था बाद में वही अभिव्यक्त होकर सद्रूप में परिणत होता है। जो

अनागत काल में सद्रूप में दृष्ट होता है वही वर्तमानकाल में कार्यरूप में अभिव्यक्त होता है। अतः जो भी नहीं है वह भी अनागत लक्षण में है। लेकिन जो अनागत लक्षण में भी दृष्टिगोचर नहीं होता है, वह वर्तमान में कैसे आ सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य गण कहते हैं कि वह परिणाम अनागत में न रहने पर भी धर्मपरिणाम के रूप में तो रह सकता है । वह धर्म परिणाम अनागत के माध्यम से वर्तमान में आ सकता है। विसदृश परिणाम का प्रथम परिणाम है धर्मपरिणाम। अतः किसी वस्तु का अस्तित्व धर्मपरिणाम में होने पर योगी कह सकते हैं कि यह धर्मपरिणाम में अवश्य ही उपस्थित होगा। अवश्य उसे लक्षणपरिणाम के भीतर से गुजरना पड़ेगा। लेकिन जब वह योगी देखता है कि उस वस्तु का अस्तित्व धर्मपरिणाम में भी नहीं है, तब उसे कहना पड़ता है कि इसका अस्तित्व या इसका उद्भव होना संभव ही नही है। किन्तु तान्त्रिक इस जगह कहेंगे कि यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि साङ्ख्य दृष्टि से धर्मपरिणाम में जिसका अस्तित्व विद्यमान नहीं है, तान्त्रिकदृष्टि से वह भी सदृशपरिणामिनी प्रकृति के गर्भ में हैं। तान्त्रिक ईश्वरवादी हैं। इसलिए उनकी दृष्टि में ईश्वर ही सदृश परिणामिनी प्रकृति को क्षुब्ध कर सकता है। लेकिन साङ्ख्य का पुरुष वैसा नहीं कर सकता है। तान्त्रिक का ईश्वर स्वातन्त्र्यमय है । वह अपने स्वातन्त्र्यबल से सदृशपरिणाम को भी विसदृशपरिणाम में परिवर्तित कर सकता है। इसके फलस्वरूप जो सृष्ट होकर प्रकाशमान होता है वही महासृष्टि है। यह वेदान्त में, साङ्ख्य में तथा पातञ्जल में भी नहीं है।

महासृष्टि जैसे समग्र सृष्टि के अन्तर्गत यावतीय सत्ता की समष्टि रूप है, उसी प्रकार महासंहार भी समग्र विश्व का उपसंहार स्वरूप है। महासंहार के बाद विश्व नहीं रहता है, रह भी नहीं सकता है। पूर्ण महासंहार होने पर इदंरूप में प्रतीयमान सत्ता का अस्तित्व होना संभव नहीं है। उस समय एक मात्र परिपूर्ण अहं ही रहता है।

पथ का विवरण

अब, मैं यहां साधना पथ का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता हूं। हमने पहले ही उल्लेख किया है कि जो वस्तु पूर्ण है वह अखण्ड, महाप्रकाश तथा पराशक्ति का सम्मिलित एवं संमूर्छित रूप है। उसे हम पूर्ण अहंता के रूप में निर्दिष्ट करते हैं। यह अहंरूपी होने पर भी अहङ्कार रूपी नहीं है। पूर्णस्थिति में अहङ्कार का होना

संभव ही नहीं है। ग्राहक भूमि में अहङ्कार है, चाहे वह ऐश्वरिक हो अथवा जैव। लेकिन पूर्ण अहं ग्राहक पद का वाच्य नहीं है। ग्राहक, ग्रहण तथा ग्राह्य—ये त्रिपुटी के अन्तर्गत हैं। पूर्ण अहं में त्रिपुटी नहीं है। इस अहं के सम्मुख तटस्थ रूप में दृश्य नहीं भासता है, अहं रूप में तादात्म्य युक्त दृश्य भी नहीं है। लेकिन जो ग्राहक रूपी अहं है और जो देहात्मबोध संपन्न है उसमें प्राणों की क्रिया होती है। इससे दृश्य रूप में बाह्य जगत् का आभास होता है। अगर इस आभास को किसी उपाय से हटाया जाए तो ग्राहक रूपी अहं पूर्ण अहं रूप में प्रकाशित हो जाएगा और उसे निर्वाण में ले जाएगा। निर्वाण या महानिर्वाण के पूर्णसत्य होने पर भी स्वयं बल या शक्ति का लाभ न करते हुए अहं का उसमें निवेश करना उचित नहीं है। क्योंकि ऐसा करने पर वह अहं निर्वाण-महासमुद्र में डूब जाएगा। बल या शक्ति के लाभ के अनन्तर अर्थात् माँ की स्नेहमय क्रोड़ में उपविष्ट होकर पूर्ण में प्रविष्ट होने पर आत्मलाभ की कोई आशङ्का नहीं रहती है। इसीलिए प्राचीन काल का आदर्श मातृका की उपासना थी। अर्थात् माँ का आश्रय करते हुए उन्हीं के सहारे पिता के निकट उपस्थित होना था। प्रक्रिया कोई भी क्यों न हो पहले आत्मशक्ति का जागरण अर्थात् कुण्डलिनी का चैतन्य होना विशेष आवश्यक है। आत्म-शक्ति जागृत होने पर उस शक्ति का प्रवाह महासमुद्र की ओर स्वतः ही अग्रसर होता है। तब उस शक्ति के क्रोड़ में आरूढ़ होकर शक्ति की धारा में बहते हुए महा-समुद्र में पहुँचना सुलभ होता है। शक्ति जब शिवधाम में साधक को पहुँचा देती है तब वही शक्ति जीव को शिवभाव में परिणत करती है। लेकिन इस विषय में स्मरणीय यह है कि योगी या साधक का शिवभाव लाभ करना ही परम उद्देश्य नहीं है। साधकों का काम्य है शिवभाव में उपनीत होकर अपने को शिवरूप में पहचान लेना।

लेकिन साधारण जीव जिस राज्य में विचरण करते हैं वह माया का राज्य है। माया के राज्य में एकमात्र अनुभूति है जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति। बारम्बार इसी की अनुवृत्ति होती रहती है। यही काल का आवर्त्त है। इस आवर्त्तगति के साथ प्राण तथा अपान की या श्वास प्रश्वास की सूक्ष्म गतियाँ मिली रहती हैं। मायाराज्य के भेदन के लिए चित्शक्ति की आवश्यकता होती है, जो माया के राज्य में रहकर माया के उर्ध्व में भी सञ्चरित होती है। माया का राज्य काल के अधीन है। माया के ऊर्ध्वदेश में भी काल है। पहला जो काल है वह आवर्त्त-गति सम्पन्न है। लेकिन माया के उर्ध्व का काल सरलगति सम्पन्न है यही सरल गति साधक को एक निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचा देती है। लेकिन सरल गति की प्राप्ति

जब तक गुरुकृपा से नहीं होती तबतक माया राज्य में विचरण-शील व्यक्ति के निकट निर्विकल्प सत्त्व का प्रकाश नहीं होता है। जो वास्तविक सद्‌गुरु हैं वे दीक्षा में बीजमन्त्र के अर्पण करते समय साधक के आधार के अनुसार माया को किञ्चित् तोड़ देते हैं। इसके फलस्वरूप वक्र गति का अन्त हो जाता है और सरल गति का स्फुट आभास होता है। उसके बाद सरल गति के रास्ते से क्रमशः काल-राज्य तथा मनोराज्य दोनों का ही भेद हो जाता है। दुर्गासप्तशती में जिसे अर्द्धमात्रारूप में वर्णन किया है उसे ही तन्त्रग्रन्थों में बिन्दुरूप में वर्णित किया जाता है। यह अर्द्धमात्रा काल की अर्द्धमात्रा नहीं है—यह कहना ही बहुत है। काल की अर्द्धमात्रा एकाग्रभूमि में उपस्थित होने के साथ साथ छूट जाती है। यहाँ जिस अर्द्धमात्रा की बात की जा रही है उसी का आश्रय लेकर योगियों को ऊर्ध्वगति की ओर चलना पड़ता है। जिस स्थान से अर्द्धमात्रा का प्रारम्भ होता है तान्त्रिक उसे बिन्दु के रूप में वर्णित करते हैं। अर्द्धमात्रा बिन्दु के ही वेग की मात्रा है। उस बिन्दु की स्वाभाविक मात्रा अर्द्ध है। बिन्दु से ही सरल मार्ग का प्रारम्भ हुआ है। अब इस मार्ग में प्रविष्ट होकर उर्ध्वगमन करते हुए काल के सूक्ष्मतम परमाणु या लव तक पहुँचा जा सकता है। अर्द्धमात्रा का रहस्य यह है कि बिन्दु की प्राप्ति एकाग्रता का परिणाम है। षट्चक्रों के भेद करने के बाद जो बिन्दु हम लोग पाते हैं, यह वही बिन्दु है—इसमें सन्देह नहीं। लेकिन आज्ञाचक्र तक पहुँचने पर समग्र विश्व उसी बिन्दु में आकर समाप्त हो जाता है। बिन्दु के बाद आरोहण के मार्ग में अर्द्धमात्रा का क्रम अपनाते हुए महाबिन्दु तक आरूढ़ होना आवश्यक है। बिन्दु से महाबिन्दु तक पहुँचने का यही सरल मार्ग है। जिस प्रकार काल के कुटिल मार्ग में भौतिक तथा कल्पना का राज्य विद्यमान है, उसी प्रकार काल के इस सरल मार्ग में भी विशाल विश्व विद्यमान है। सरल गति के क्रम विकास के फलस्वरूप मात्रा सूक्ष्म होने लगती है और क्रमशः काल की क्षीणमात्रा तक पहुँचना पड़ता है। इस यात्रा के मार्ग में अनन्त विश्व दृष्टि के सम्मुख उपस्थित होते हैं। यही महामाया का जगत् है। इसके बाद महामाया का भी संसार अस्तमित हो जाता है। बिन्दु प्राप्ति के साथ साथ सद्‌गुरु की कृपा से माया का संसार अस्तमित होता है। इतनी दूर तक सरलगति को प्राप्त करना जीव का पुरुषकार है। लेकिन काल की क्षीणतम मात्रा आयत्त हो जाने पर योगी का पुरुषकार भी समाप्त हो जाता हैं। यद्यपि स्थिति अत्यन्त उच्च है तथापि यह पूर्णता की द्योतक नहीं है। क्योंकि इस स्थान में अतिक्षीण होने पर भी मन की क्रिया रहती है। पश्चात् उस क्रिया का भी अर्पण हो जाता है। एवं अर्पण के साथ साथ महामाया के राज्य का भी भेद हो जाता है।

यहाँ स्मरणीय यह है कि कैवल्यप्राप्त आत्मा के तीन भागों मे विभक्त होने के कारण कैवल्य भी तीन प्रकार का मानना होगा। एक है प्रकृति-कैवल्य; दूसरा है माया-कैवल्य; और तीसरा है महामाया-कैवल्य। अचित् अथवा जड जिस समय स्थूल भावापन्न रहता है तब उसका नाम है त्रिगुणात्मिका प्रकृति, जब वही प्रकृति से भी सूक्ष्म भावापन्न हो जाता है, तब वह माया नाम से अभिहित होता है। यह प्रकृति से शुद्ध है, लेकिन बिल्कुल शुद्ध नहीं। माया-पर्यन्त का जगत् ही संसार है किन्तु यह अशुद्ध है। माया के उर्ध्व देश में भी महामाया या शुद्धमाया विद्यमान है। जड़ होने पर भी वह शुद्ध है। इसी को बिन्दु कहते हैं। शुद्धतत्त्वमय कार्यात्मक शुद्ध जगत का उपादान है बिन्दु। उसका कर्ता है शिव और शक्ति उसका कारण है। बिन्दु के क्षोभ से वह जैसे एक ओर शुद्ध देह, इन्द्रियं, भोग के विषय तथा भुवन रूप में परिणत होता है, दूसरी ओर वैसे ही वह शब्द का भी कारण बन जाता है। सिद्धान्ती शैवों के मतानुसार शिव, शक्ति तथा बिन्दु रत्नत्रय नाम से परिचित हैं। शिव चित्तस्वरूप है और शक्ति चिद्रूपिणी है लेकिन बिन्दु चित्तस्वरूप नहीं है वह शुद्ध मायारूपी है और शिव की परिग्रहशक्ति रूप अचित् तत्त्व है। शिव और शक्ति दोनों ही चित्स्वरूप है लेकिन शिव निष्क्रिय है और शक्ति क्रियात्मिका है। शिव में जब शक्ति की अभिव्यक्ति होती है, तब वह इच्छा रूप में होती है अर्थात् शिव की जो इच्छा है वही शक्ति का स्वरूप है। यह शक्ति समवायिनी शक्ति नाम से प्रसिद्ध है जो शिव के साथ अभिन्न रूप में विद्यमान है। लेकिन बिन्दु इस प्रकार का नहीं है। यद्यपि बिन्दु शिव की ही शक्ति है तो भी वह समवायिनी शक्ति नहीं, बल्कि परि-ग्रहशक्ति है। इसका नामान्तर है उपादानशक्ति। बिन्दु का उपादान जड़ है। इसलिए शिव में इच्छा के उदय होने पर इस इच्छा स्वरूप शक्ति के आघात से बिन्दु का क्षोभ होता है और क्षोभ होने के बाद वह इच्छानुरूप आकार धारण करता है। इसी का नाम महामाया की कृपा है। पहले ही बताया जा चुका है कि महामाया की क्रिया से शुद्ध जगत् उत्पन्न होता है, जिसका नामान्तर है बैन्दव जगत्। माया का जगत् महामाया के अधोदेश में विद्यमान है। महामाया के स्तर से माया का सञ्चालन होता है। और महामाया का सञ्चालन शक्ति या चित् से होता है। और चित् शक्ति का सञ्चालन परमेश्वर की इच्छा से होता है। निष्कर्ष यह है कि शिव की समवायिनी शक्ति के इच्छा रूप धारण करने पर बिन्दुरूप शुद्ध उपादान या महामाया उस शक्ति के अनुरूप आकार धारण करती है लेकिन वह आकार कितना ही शुद्ध क्यों न हो, सम्पूर्ण रूप से चिदात्मक नहीं है।

महामायाराज्य या बिन्दुराज्य तक आरूढ़ होने पर भी उसको यथार्थ कैवल्य

की प्राप्ति हुई—ऐसा नहीं कहा जा सकता है। इस स्थिति में यद्यपि शिव, शक्ति तथा बिन्दु का योग सम्पन्न हुआ—यह सत्य है, तथापि यहाँ शिव भी निष्कल नहीं है एवं शक्ति भी निष्कल नहीं है। क्योंकि शक्ति में शान्तिकला तथा शिव में शान्त्यतीत कला वर्तमान है। अतः यह योग होते हुए भी पूर्णता नहीं है। पूर्णत्व की प्राप्ति के लिए महामाया की क्लान्त सीमा में पहुँचकर योगियों को उन्मनी शक्ति का आश्रय लेने की अपेक्षा होती है। शुद्ध माया के इस राज्य को अर्द्ध-अर्द्ध क्रम से पार करते हुए उन्हें काल के सूक्ष्मतम लव तक उठना पड़ता है। इसके बाद अपनी दुर्बलता के कारण उनका और अधिक सञ्चरण संभव नहीं होता है। पश्चात् आत्म-समर्पण के साथ-साथ उन्मनी शक्ति के प्रभाव से वे परमशिवस्थान में उपनीत हो जाते है। काल वहाँ नहीं है, शुद्ध तथा अशुद्ध मन भी वहाँ नहीं है। व्यक्तिगत पुरुषकार का भी कोई स्थान वहाँ नहीं है। यही निष्कल परमस्थित है। प्रत्येक आत्मा का यही परम लक्ष्य हैं। यही परमशिव या परासंविद् है। यहाँ जो सृष्टि का प्रकाश होता है वही विश्व के रूप में परिचित है। वह साक्षात् परमशिव से प्रकटित होता है। यहीं कामकलातत्त्व का रहस्य प्रकट होता है।

अब हम कामकलातत्त्व के संबन्ध में थोड़ा प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे। शाक्तमत के अनुसार समग्र विश्वरचना के मूल में जो अखण्ड सत्ता वर्तमान है; उसे हम परिपूर्ण अहंसत्ता के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। यह पूर्ण अहंसता आत्मप्रकाशन करना चाहती हैं। तब शिवशक्ति का सामरस्य घटित होता है। यह सामरस्य निर्विकार है, इसमें न ह्रास है, न वृद्धि ही है और वह अनादि अनन्त स्व-प्रकाश तथा चिदानन्दमय है। इसी सामरस्य से पीठरचना का प्रारम्भ होता है। आचार्य योगिगणों ने कहा है कि शिवशक्ति का जो सामरस्य है वही परमबिन्दु है, इसी का पारिभाषिक नाम है सूर्य, उसी का नामान्तर है "कामाख्यरवि"। और जो दो बिन्दु शिव तथा शक्ति के रूप में आत्मप्रकाश करते हैं, उनमें से एक को अग्नि कहा जाता है और अपर चन्द्रशब्द से अभिहित होता है। पूर्णबिन्दु सूर्य रूप में उर्ध्व की ओर मध्यस्थान में रहता है। अग्नि तथा सोम रूप दो बिन्दु दो स्तनों के रूप में उसके निम्न देश मे दोनो ओर रहते हैं। यही त्रिबिन्दु का अवस्थान है। भगवान् शङ्कराचार्य ने इसी रूप की ओर लक्ष्य करते हुए अपनी सौन्दर्यलहरी में इसका उल्लेख किया है—

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो।
हरार्द्धं ध्यायेद् यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम् ॥

इस त्रिबिन्दु के नीचे हार्द्धकला के रूप में एक विचित्र शक्ति का परिचय मिलता है। यही कामकला का स्वरूप है। इसी से पूर्ण स्वरूप के अन्तर्गत भगवद्धाम रचित होता है।

शिवशक्ति के सामरस्यरूप विन्दु की प्राप्ति के विना आनन्दमय, नित्य, सिद्ध विश्व का आविर्भाव नहीं हो सकता है। अग्नि संहार का प्रतीक है तथा सोम सृष्टि का। लेकिन संहार केवल अग्नि के द्वारा नहीं होता है और सृष्टि भी केवल सोम के द्वारा नहीं होती है। सोम या चन्द्र की कला विगलित होकर सृष्टि के उपादानरूप में परिणत होती है, लेकिन इस विगलन के मूल में जो शक्ति काम कर रही है, वही है अग्नि। अतः अग्नि के सहारे चन्द्रकला से सृष्टि होती है। ठीक इसी प्रकार संहार भी अग्नि के द्वारा होता है। लेकिन संहार रूपी अग्नि को जलाने के लिए चन्द्रकला की आवश्यकता होती है। यह सत्य है कि चन्द्र से सृष्टि होती है लेकिन उसमें अग्नि की सहायता आवश्यक है। इसी प्रकार अग्नि से संहार के लिए भी चन्द्र की आवश्यकता है। लेकिन ऐसी भी स्थिति है जहाँ अग्नि तथा सोम उभय की मात्रा में किसी प्रकार की विषमता नहीं है। उस स्थिति में जैसे एक ओर सृष्टि नहीं हो सकती है, वैसे दूसरी ओर संहार भी नहीं हो सकता हैं। मध्यस्थित सृष्टि तथा संहार से शून्य अवस्था को स्थिति कहते हैं, जिसका द्योतक सूर्य है। यहाँ व्यवहार के लिए स्थिति कहने पर आपेक्षिक स्थिति का ग्रहण होता है। निरपेक्ष स्थिति की बात नहीं की जा रही है। लेकिन आपेक्षिक होने पर भी उसके पीछे निरपेक्ष सत्ता का होना आवश्यक है। यह जो निरपेक्ष अग्निकला तथा सोमकला का साम्य है—यही स्थिति का विधायक है। और यह जो स्थिति है, यही अग्नि तथा सोम का नित्य सामरस्य है। इसे सूर्य कहते हैं।

अतः समझा जा सकता है कि एक ही सविता के एक ओर सोम की क्रिया होती है और दूसरी ओर अग्नि की क्रिया। लेकिन नित्य स्थितिबिन्दु एक होकर भी एक नहीं है और एक न होते हुए भी एक है। इसी स्थितिबिन्दु को कामतत्त्व कहा जाता है। सूर्य अथवा काम एक ही वस्तु है।

कामकला का प्रधान बिन्दु है रवि या सूर्य। जिसकी भगवती सृष्टि और प्रेममय जगत के आविर्भाव के सम्बन्ध में चर्चा की जा रही है; वह इसी कामकला का कार्य है। प्राचीन आचार्य गण विश्वसृष्टि के मूल में कामकला की क्रिया की विद्यमानता का अनुभव करते रहे हैं। वे कहते हैं कि विश्व की रचना तीन स्तरों में होती है। एक है विश्व का स्थूलरूप, और दूसरा है उसका तत्त्वात्मक सूक्ष्मरूप और इसका भी जो सूक्ष्मरूप है वही तीसरा स्तर कलारूप है। यह कला चित्कला नाम

से परिचित है । शिव चित्स्वरूप है और शक्ति उसका कला स्वरूप है । और ये दोनों जहाँ समरस हैं वहीं कामरूप बिन्दु है । इस बिन्दु का एक बहिःनिःसरण है जो हार्द्धकला रूप में आत्मप्रकाश करता है । हार्द्धकला नाना प्रकारों से तरङ्गित होकर तत्त्वों की सृष्टि करती है । षट्त्रिंशत् तत्त्व हों या अन्यसंख्या विशिष्ट ही तत्त्व क्यों न हो, उनके मूल में हार्द्धकला रहती है । जो लोग मन्त्ररहस्यविद् हैं वे हार्द्धकला का महत्त्व विशेष रूप से जानते हैं । यह हार्द्धकला की सृष्टि शिवशक्तिसामरस्यमूलक है, और यह आनन्दमयी है । इसीलिए निष्कल परमशिवस्थिति प्राप्त न होने पर कामबिन्दु के अभाव के कारण हार्द्धकला की आनन्दमयी सृष्टि का अनुभव नहीं किया जा सकता है । इसलिए कामकला का यह महत्त्व तान्त्रिकसमाज में विशेष रूप से अनुभूत होता है ।

(४)

भाव तथा आचार

प्रसङ्ग क्रम से तान्त्रिकसाधना में भाव तथा आचार के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त विवरण उपस्थित किया जा रहा है । तन्त्रसाधना में तीन प्रकारों के भाव का सन्धान मिलता है । वे भाव क्रमशः पशुभाव, वीरभाव तथा दिव्यभाव नाम से प्रसिद्ध हैं । जैसे भाव के तीन प्रकार हैं उसी तरह भावानुकूल आचार भी तीन हैं । आचारों के अवान्तर विभाग रहने पर भी वे मूलतः तीन प्रकारों के भेद के अन्तर्गत ही हैं । प्रथम आचार का नाम पश्वाचार है । अन्य शास्त्र में जिसे जीवभाव कहते हैं, वही यहाँ पशुभाव कहलाता है । पशु अवस्था में आत्मा की इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया शक्ति परिच्छिन्न रहती है, इस प्रकार की आत्मा आणवमलविशिष्ट है । पशुभाव के आणव आवरण द्वारा आवृत होने से आत्मा का अहंभाव परिछिन्नरूप में प्रकाशित होता है । जब तक आत्मा पशुभाव में रहता है तब तक तन्त्रशास्त्र उसे नाना प्रकारों के विधि निषेधों से चलने का उपदेश करता है । पश्वाचार शब्द संयम आदि नाना विधि-निषेधों के अनुष्ठान मूलक धर्माचरण को समझाता है । तान्त्रिकगण पश्वाचार में वैदिक, वैष्णव तथा शैव आदि सभी साधनाओं को समझते हैं । यह सब पशु सभाव-पशु नाम से परिचित हैं । लेकिन पशु होने पर ही उसे भाव-युक्त होना होगा—ऐसी कोई बात नहीं है । क्योंकि विभाव पशु का भी विवरण मिलता है । किसी किसी के मत में सभावपशु केवल पुरुष देवता की आराधना कर सकता

है । देवी की आराधना का अधिकार उसको नहीं है । लेकिन विभावपशु दिव्य तथा वीर साधकों के सदृश शक्ति-आराधना का अधिकारी है । साधना के क्रम में जो स्तर लक्षित होता है वह निम्न प्रकार है—(१) सभावपशु (२) विभावपशु (३) सभाव वीर (४) विभाववीर । शक्ति की उपासना में जो पञ्चतत्त्व का विधान है, वह विभावपशु के लिए अनुकल्प रूप में व्यवहृत होता है । यह विभावपशु यद्यपि पशुभाव रहित है तथापि उसमें वीरभाव का लक्षण अब तक दिखाई नहीं पड़ा । विभावपशु तथा विभाववीर साधकों में भेद है । विभाववीरसाधक के लिए पञ्चतत्त्व का व्यवहार केवल मानस पूजा के अन्तर्गत है । वह अनुकल्प व्यवहार का भी अधिकारी नहीं है । लेकिन विभावपशु के लिए अनुकल्प की व्यवस्था है । वस्तुतः इन दोनों प्रकारों के साधकों में किसी को भी वास्तविक शक्ति साधना में प्रवेश का अधिकार नहीं है । एक मात्र कुमारी पूजन में ही उनका अधिकार है । जो प्रकृत वीरभाव है, वह तीन प्रकारों के आचारों में लक्षित होता है । इन तीनों का परिचय क्रमशः दक्षिणाचार, वामाचार तथा सिद्धान्ताचार नाम से मिलता है । ये तीनों आचार वीरभाव के अन्तर्गत हैं दक्षिणाचार का अर्थ है—'शिवो भूत्वा यजेत् पराम्' । साधक स्वयं शिवभाव ग्रहण कर शक्ति की उपासना करें—यही इसका अभिप्राय है। इसके बाद भाव का थोड़ा परिवर्तन होता है । तब—'वामा भूत्वा यजेत् पराम्'—इस प्रकार के नियम का अनुसरण किया जाता है । इस प्रकार उपासना की पद्धति से ही वामाचार नाम का उद्भव हुआ है । शिवरूप से शक्ति की उपासना अथवा शक्तिरूप से शक्ति की उपासना इन दोनों ही स्थलों में अनुकल्पहीन पञ्चतत्त्व द्वारा अर्थात् मुख्य पञ्चतत्त्व द्वारा प्रकृत-शक्ति की उपासना की जाती है । ये दोनों प्रकारों के आचार ही शाक्ताचार नाम से प्रसिद्ध हैं । इसके बाद साधक प्रकृतिसिद्धान्त का अनुभव कर सकता है । सिद्धान्त यह है कि साधक उस समय अपने को शिव से अभिन्न अनुभव करता है । इस प्रकार अद्वयभाव की प्राप्ति के साथ-साथ तान्त्रिक उपासना के लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है । जो शक्ति सर्वात्मना शिव के साथ अभिन्न है, वह भी अन्तर्हित हो जाती है । इसके बाद दिव्यभाव का उदय होता है । और साथ साथ दिव्याचार का भी । यह दिव्याचार या कौलाचार उभय ही भाववर्जित है । शास्त्र का विधि-निषेध यहाँ नहीं चलता है । तब ज्ञान तेजःस्वरूप हो जाता है तथा वह विश्वव्यापी रूप धारण करता है । अन्त में ज्ञान तथा ज्ञेय आदि के समाप्त होने पर अद्वैतसत्ता का आविर्भाव होता है ।

पञ्चतत्त्व का दार्शनिक रहस्य क्या है—यह भी चिन्तनीय है । विशिष्ट तान्त्रिक आचार्य गण कहते हैं कि बाह्य-शक्तिपूजा सम्पादन के पहले आन्तर-पूजा आवश्यक

है। अन्तः पूजा में कुण्डलिनी शक्ति को पञ्चतत्व का अर्पण करना पड़ता है। जिसके प्रभाव से देवता का दर्शन होता है। इस प्रकार अन्तः पूजा पूर्ण होने पर तथा देवता के दर्शन हो जाने पर बाह्यपूजा का अनुष्ठान विधेय है। साक्षात् रूप में देवता का दर्शन न होने तक बाह्यपूजा निषिद्ध है—

अन्तः पूजा तदा पूर्णा यदान्ते देवदर्शनम् ।
बाह्यार्चनं तदा कार्यमन्यथाभूद् वृथेन्द्रियम् ।।

अभिषेक रहस्य

तान्त्रिकसाधना में अभिषेक एक रहस्यमय व्यापार है। शाक्त साधना में शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक, क्रमदीक्षा, साम्राज्यदीक्षा आदि गम्भीर साधन तथा क्रिया का रहस्य वर्णित हुआ है। जैसे दीक्षा की विचित्रता हैं उसी तरह अभिषेक के भी विविध भेद मिलते हैं। शाक्ततन्त्र की एक विशेष दृष्टि से यहां अभिषेक के विषय में कुछ कहना आवश्यक है।

दीक्षा के बाद शाक्ताभिषेक तथा पूर्णाभिषेक सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसमें मन्त्र की प्रधानता है। पूर्णाभिषेक तथा क्रमदीक्षाभिषेक आदि गम्भीर रहस्यपूर्ण व्यापार हैं। शाक्ताभिषेक के बाद शक्ति का मार्ग खुल जाता है। इसके बाद पूर्णाभिषेक का अनुष्ठान प्रारम्भ होता है। प्राचीन भारतीय शाक्त साधकों में दश महाविद्याओं का क्रम अधिक प्रचलित है और इसका महत्त्व भी है। दश महाविद्याओं में प्रथम तीन विद्याएँ त्रिशक्ति नाम से परिचित हैं। इनका नाम क्रमशः काली, तारा तथा षोड़शी है। साधकों के लिए इन तीनों की उपासना परमतत्त्वभेद की दृष्टि से सर्वतः काम्य है। साधना पथ में चलने के लिए इस स्थूल देह तथा स्थूल जगत् का भेदन कर अन्तर्मुख एवं ऊर्ध्वमुख गति से साधकों को अग्रसर होना पड़ता है। इसका लक्ष्य रहता है आत्मसाक्षात्कार। लेकिन लक्ष्यप्राप्ति के पहले भावमय जगत् के ऊर्ध्व में महाशून्य का साक्षात्कार करते हुए उसका भी भेदन करना आवश्यक होता है।

प्राचीन शाक्तसाधक गणों ने महाशून्य का भेद करने के लिए सन्नद्ध होकर क्रमदीक्षा के मार्ग में विभिन्न स्तरों से जाकर पूर्णत्वलाभ का मार्ग प्रदर्शित किया था। पूर्णत्व के पथ में जाने के लिए महाशून्य का भेद करना एकान्त आवश्यक है। लेकिन इसका भेदन करना चित् शक्ति की सहायता के बिना संभव नहीं है। इसीलिए प्रतीत होता है कि पूर्णदीक्षा के बाद क्रमदीक्षा की आवश्यकता होती है। पूर्णा-

भिषेक शाक्ताभिषेक के बाद होता है । इसमें मन्त्र की प्रधानता रहती है और उपास्य होती हैं काली । महाप्रलय तथा अतिमहाप्रलय में आभासमान शक्ति स्वरूप ही काली हैं । उस समय विश्व श्मशानभूत और घोर अन्धकार से आछन्न रहता है । दक्षिणाम्नाय में इनकी उपासना होती है । इसके बाद (क्रमदीक्षाभिषेक के बाद) काली के उपरान्त तारिणी या तारा विद्या उपास्या होती है । इस प्रकार इच्छा तथा क्रिया की निष्पत्ति पूर्ण हो जाने पर दक्षिणाचार सिद्धान्ताचार में परिणत हो जाता है । योगी गण इसे त्रिपादसाधना के अन्तर्गत मानते हैं । मन्त्र की साधना अब भी है । काली तथा तारा इन दोनों शक्तियों ने अपने अपने कार्यों का सम्पादन कर लिया है । इसके बाद साम्राज्यदीक्षाभिषेक का समय आता है । इस समय उपास्य रूप में जो आविर्भूत होती है वह त्रिशक्ति के अन्तर्गत तृतीया अर्थात् त्रिपुरसुन्दरी है । यह पराप्रकृति की उपासना है । इस समय कामकला का रहस्य जानना आवश्यक होता है । इच्छा तथा क्रिया के बाद इस स्थान में ज्ञानाभास का उदय होता है । लेकिन यह कहना अधिक उपयुक्त है कि यहाँ भी साधना में मन्त्र की ही प्रधानता है । इस अवसर पर पञ्चकूट दीक्षा की आवश्यकता होती है । यह दीक्षा भी साम्राज्य-दीक्षा के स्तर की है । इसके बाद महासाम्राज्याभिषेक संपन्न होता है । इसका लक्ष्य है अर्धनारीश्वर । इस स्थिति में अर्धाम्बिकेश्वर या अर्धनारीश्वर का साक्षात्कार होता है । दार्शनिक दृष्टि से यह भेदाभेद की स्थिति है । यहाँ मन्त्र की प्रधानता नहीं है, लय ही प्रधान है । तब जीव पञ्चभूतों से मुक्त होकर परमात्मा के साथ योग को प्राप्त करता है । इसके बाद पूर्णदीक्षाभिषेक है । यहाँ योग की पूर्णता हो जाती है । सब से अन्त में महापूर्णदीक्षा होती है । इसके बाद कुछ शेष नहीं रहता है । आचार्य गण कहते हैं कि मन्त्र योग से महाभाव का उदय होता है । महाभाव के बाद महालय और अन्त में योग की प्रतिष्ठा होती है ।

(५)

वङ्गदेश, मिथिला तथा केरल में गुहयकाली, हंसकाली, श्मशानकाली, दक्षिणाकाली, कामकलाकाली तथा गुह्यश्मशानकाली आदि के उपासना-क्रम प्रचलित हैं । ठीक इसी प्रकार सृष्टिकाली, स्थितिकाली, रक्तकाली, मृत्युकाली, चण्डोग्रकाली तथा कालसङ्कर्षिणी काली आदि का वर्णन अभिनवगुप्तपाद ने तन्त्रालोक में और जयरथ ते उस ग्रन्थ की स्वकृत टीका में उन देवियों के ध्यानों का उल्लेख करके विस्तृत रूप से किया है । किन्तु तन्त्रसार के रचयिता कृष्णानन्द आगमवागीश ने और रघुनाथ तर्कवागीश (आगमतत्वविलास के लेखक) ने तन्त्रालोक में उल्लिखित काली के सम्बन्ध में कुछ भी आलोचना नहीं की है ।

कालिदास रचित चिद्गगनचन्द्रिका में अभिनवगुप्त के द्वारा आलोचित काली के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण मिलता है।

अभिनवगुप्तपाद ने तन्त्रालोक में जिन द्वादश कालियों का उल्लेख किया है, उनमें कामकलाकाली की चर्चा नहीं है। एव कामकलाखण्ड में जो नवविध कालियों का उल्लेख है इनके साथ भी कोई समानता लक्षित नहीं होती है।

तन्त्रालोक में अभिवनवगुप्त् ने काली शब्द का अर्थ निम्न प्रकार से किया है—

स्वात्मनो भेदनं क्षेपो भेदितस्याविकल्पम् ।
ज्ञानं विकल्पः संङ्ख्यानमन्यतो व्यतिभेदनात् ।।
गतिः स्वरूपारोहित्वं प्रतिविम्बवदेव यत् ।
नादः स्वात्मपरामर्शशेषता त्वद्विलोपनात् ।।

अर्थात् आत्मा के साथ अभिन्नता को अक्षुण्ण रखकर भिन्न-भिन्न वत् प्रकाश करना क्षेपशब्द का अर्थ है। इस प्रकार प्रकाशित अर्थ का निज स्वरूप के साथ अभिन्न बोध ही ज्ञान है। विकल्प शब्द का अर्थ अन्य के साथ भेदबोध अर्थात् अभेद में भेद बोध है। गति शब्द का अर्थ है प्रतिविम्ब के सदृश स्वरूप में आरोपण। और नाद शब्द का अर्थ है स्वात्मपरामर्श। अभिनवगुप्त ने तन्त्रसार में काली शब्द की व्युत्पत्ति का निर्देश करते हुए प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के पराशक्तिरूप विमर्श को ही लक्ष्य किया है। और उसी को ऊर्मि, हृदय, सार, स्पन्द विभूति तृषिका, काली, कर्षिणी, चण्डी, वाणी आदि शब्दों से अभिहित किया है। भूतिराजगुरु ने भी कहा है—

क्षेपाज् ज्ञानाच्च काली कलनवशतया।

इस प्रसङ्ग में और भी उल्लेखनीय यह है कि जो कालशक्ति निरन्तर बहिर्मुख में प्रयुक्त जीव को संसार में फँसाकर रखती है, वह परमेश्वर की तिरोधानशक्ति है। परन्तु जो शक्ति क्रमशः काल को स्वाधिकार से अपसारित करती है उसी का नाम है कालसंकर्षिणी। भगवती अनुग्रह-शक्ति का वह एक रूप है। कालसंकर्षिणी का परम लक्ष्य है क्रम का अतिक्रम करते हुए अक्रमस्वरूप में जीव को प्रतिष्ठित करना। कालसंकर्षिणी के फल से, क्रम से क्षण की प्राप्ति संभव होती है। क्षण में प्रतिष्ठित होने पर अनन्तमहाकाल का प्रकाश हो जाता है। और साथ ही महाकाल तथा महाकाली रूपिणी आद्या शक्ति का साक्षात्कार होता है। हमने कौलिकसाधना की दृष्टि का अनुसरण करके जिस महाकाल भैरव की चर्चा पहले की है उसी के साथ अभिन्न रूप में वर्तमान है—महाकाली।

कालीक्रम में कामकला का जो एक विशेष महत्त्व था वह पूर्णानन्द रचित श्यामारहस्य के निम्नोक्त पाठ से ज्ञात होता है—

'अथादौ कामकलारूपामात्मानं विभाव्य मूलाधारात् कुण्डलिनीं परमशिवान्तं ध्यात्वा चन्द्रामृतेन संप्लाव्य करकच्छपिकया पुष्पं गृहीत्वा सुषुम्णया बाह्यहृदयाष्टदल-रक्तपद्ममध्ये ध्यायेत्'।

इसी ग्रन्थ में स्वतन्त्रतन्त्र से उद्धृत कामकला का ध्यान भी लक्ष्य करने योग्य है—

मुखं बिन्दुवदाकारं तदधः कुचयुग्मकम् ।
सर्वविद्यामृतापूर्णं सर्ववाग्विभवप्रदम् ॥
सर्वार्थसाधकं देवि सर्वरञ्जनकारकम् ।
तदधः सपरार्द्धञ्च सुपरिष्कृतमण्डलम् ॥
सर्वदेवादिभूतान्तः सर्वदेवनमस्कृतम् ।
सर्वाह्लादसुसंपूर्णं सर्ववश्यप्रवश्यकम् ॥

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि श्रीक्रम नामक तन्त्रग्रन्थ से कामकला के विषय में कुछ वचन प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। वे वचन भी स्वतन्त्र तन्त्र के अनुरूप ही हैं। बङ्गदेश में कालीपूजापद्धति विशेष में मूलपूजा के पहले काम-कला का ध्यान आवश्यक कहा गया है।

श्रीविद्यासंबन्धी ग्रन्थों में। (जैसे कामकलाविलास, सौन्दर्यलहरी, नित्या-षोडशिकार्णव तथा तन्त्रराज आदि में) कामकला के विषय में विस्तृत आलोचना पाई जाती है। किन्तु कालीविषयकतन्त्रों में वैसी आलोचना उपलब्ध नहीं है। गन्धर्वतन्त्र के तीसवें पटल में कामकला के दो स्वरूपों का उल्लेख मिलता है। शक्तिसङ्गमतन्त्र में भी कामकला की गम्भीरता पर आलोचना हुई है। मेरी धारणा थी कि महाकालसंहिता के कामकलाखण्ड में प्रायः कामकला सम्बन्धी एक नवीन दिग्दर्शन होगा। लेकिन दुर्भाग्य वश उस संहिता के सम्पूर्णग्रन्थ के दुर्लभ होने के कारण इस विषय पर और अधिक प्रकाश डालना संभव नहीं है। गन्धर्व-तन्त्र में कामकला की द्विविध भावना का उल्लेख हुआ है। एक बाह्य है और दूसरी आन्तर। जो बाह्य है, उसका ध्यान सौन्दर्यलहरी के 'मुखं बिन्दुं कृत्वा' १९ वें श्लोक के अनुरूप है। और आन्तर भावना इस प्रकार है—वही देवी कुण्डलिनी

है जो जाग्रत चिन्मयी है। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक स्फुरद्विद्युल्लता के समान प्रकाशमाना है। वह षट्चक्रभेदिनी तथा बिन्दुत्रयात्मिका है। उसे हार्द्धकला के रूप में कमल के भीतर चिन्तन करना चाहिए। यह कामकला समस्त चराचर में जागृत है। वह त्रयीमयी है, साम उनका मुख है, ऋक् तथा यजुः उनका स्तनद्वय है तथा अथर्व हार्द्धकला रूप है। उनका तुरीयरूप साक्षात् ब्रह्म है। पुनश्च वही कवली निःशेषतत्त्व ग्रासस्वरूपिणी है।

संहिता की प्राचीनता

महाकालसंहिता कितनी प्राचीन है—इसका निर्णय करना सम्भव नहीं है। इस ग्रन्थ की संम्पूर्ण प्रति अभी भी उपलब्ध नहीं है। भारतवर्ष के विभिन्न हस्त-लिखित पुस्तकों के संग्रहों में इसके कुछ खण्डित अंश मिलते हैं। एशियाटिक सोसाइटी बंङ्गाल के ग्रन्थागार में भी इसका खण्डित अंश उपलब्ध है।

हम ने प्रकाशित तन्त्रसम्बन्धीग्रन्थों में महाकालसंहिता का उल्लेख पाया है। उनमें ताराभक्तिसुधार्णव तथा पुरश्चर्यार्णव में महाकालसंहिता से अनेक वचन प्रमाण रूप में व्यवहृत किए गये हैं। पुरश्चर्यार्णव में उद्धृत अंशों के साथ कामकलाखण्ड के कुछ अंश (प्रथम अंश) बहुत मिलते हैं। उस मुद्रित पुस्तक के साथ कामकलाखण्ड के वर्तमान ग्रन्थ को मिलाकर देखने से थोड़ी पाठ शुद्धि हो जाती-इस में सन्देह नहीं है। ताराभक्तिसुधार्णव के पञ्चम तथा सप्तम तरङ्ग में महाकालसंहिता के अनेक अंश उद्धृत हैं। कामकलाखण्ड का शिवाबलि अंश भी उसमें है।

महाकालसंहिता एक समय भारत के पूर्वाञ्चल में तथा नेपाल में विशेष रूप से प्रचलित थी। पुरश्चर्यार्णव में गृहीत महाकालसंहिता का वचनसमूह ही इसका प्रमाण है। पुरश्चर्यार्णव में शारददुर्गोत्सव विधि नामक एक विस्तृत अंश महाकालसंहिता से संगृहीत है। इस समय बङ्गदेश तथा मिथिला में जो दुर्गोत्सवविधि प्रचलित है, महाकालसंहिता ही एक समय उसका आदर्श था—ऐसा कहा जा सकता है। पुरश्चर्यार्णवकार ने महाकालसंहिता से कई हजार श्लोकों का संग्रह किया है।

कामकलाखण्ड नामक जो अंश अब प्रकाशित हो रहा है, उसके भिन्न-भिन्न पाठ युक्त हस्तलिखितग्रन्थों के उपलब्ध होने के कारण मूल आदर्श की यथावत्-प्रतिलिपि के रूप में इसे प्रकाशित किया जा रहा है।

(७)

महाकालसंहिता के कामकलाखण्ड की विषयसूची ।

यहाँ हम लोगों का आलोच्य ग्रन्थ, महाकालसंहिता का एक अंश मात्र है। यह अंश कामकलाखण्ड नाम से परिचित है। ग्रन्थ का प्रारम्भ २४१वें पटल से होता है तथा इसकी अन्तिम पठलसंख्या २५५ है। पन्द्रह पटलों में कामकलाखण्ड नामक सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। महाकालसंहिता एक विशाल ग्रन्थ है। इसके कितने ही खण्ड भारत के भिन्न-भिन्न पुस्तकालयों में संगृहीत हैं।

२४१वें पटल से इस संहिता का प्रारम्भ है। सर्वप्रथम गणेश तथा परदेवता को नमस्कार किया गया है। अन्य तन्त्रों के सदृश इस संहिता में भी प्रश्नकर्ता देवी हैं तथा उत्तर स्वयं महाकाल देते हैं। देवी प्रार्थना करती हैं कि (१) तारा (२) छिन्नमस्ता (३) त्रिपुरसुन्दरी (४) बाला (५) वगला (६) त्रिपुरभैरवी (७) काली (८) दक्षिणकाली (९) कुब्जिका (१०) शवरेश्वरि (११) अघोरा (१२) राजमातङ्गी (१३) सिद्धिलक्ष्मी (१४) अरुन्धती (१५) अश्वारुढ़ा (१६) भोगवती (१७) नित्यक्लिन्ना (१८) कुक्कुटी (१९) कौमारी (२०) वाराही (२१) चामुण्डा (२२) चण्डिका (२३) भुवनेशी (२४) उच्छिष्टचाण्डाली (२५) चण्डघण्टिका (२६) कालसङ्कर्षिणी तथा (२७) गुह्यकाली प्रभृति देवियों की पूजा तथा मन्त्र का रहस्य उद्घाटित हो। ये सभी उल्लिखित हुए हैं किन्तु कामकलाकाली के सम्बन्ध में पहले कुछ भी नहीं कहा गया है। इस कामकलाकाली का मन्त्र, ध्यान, रहस्य तथा कवच सुनने के लिए देवी प्रार्थना करती हैं। महाकाल प्रसन्न होकर उत्तर देते हैं कि कामकलाकाली के उपासक अधोनिर्दिष्ट व्यक्तिगण हैं—

(१) इन्द्र (२) वरुण (३) कुबेर (४) ब्रह्मा (५) महाकाल स्वयं (६) वाण (७) रावण (८) यम (९) चन्द्र (१०) विष्णु तथा (११) महर्षिगण।

उपासना का फल

कामकला की उपासना का फल विद्यालक्ष्मी, मोक्षलक्ष्मी तथा राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति है। धनलाभ, यशोलाभ, कान्तालाभ, अप्टसिद्धि, वशीकरण; स्तम्भन, आकर्षण, द्रावण, ग्रहों की गतियों का स्तम्भन, अनल एवं अनिल का स्तम्भन, धारा स्तम्भन, शत्रुओं के सैन्यों का स्तम्भन तथा वाक्स्तम्भन आदि कामकलाकाली की उपासना के फल अभिहित हैं।

बहुत भाग्योदय होने पर इस विद्या की प्राप्ति होती है। प्राणदान तथा इस विद्या के दान को तुला में रखने पर इस विद्या का ही महत्त्व अधिक होता हैं। सुतरां सर्वस्व दान करने पर भी गुरु की पादवन्दना करके इस विद्या की उपलब्धि कर लेनी चाहिए।

नवविध कालियों के नाम

(१) दक्षिणकाली, (२) भद्रकाली (३) श्मशानकाली (४) कालकाली (५) गुह्यकाली (६) कामकलाकाली (७) धनकाली (८) सिद्धिकाली तथा (९) चण्डकाली।

नवविध कालियों का वर्णन भिन्न-भिन्न तन्त्रों में तथा डामरों में किया गया है। दक्षिणकाली के संबन्ध में महाकालसहिता में ही कहा गया है एवं भद्रकाली का भी ध्यान तथा पूजन यहाँ वर्णित है। श्मशानकाली के नाना भेद डामरों में एवं कालकाली विषयक मन्त्र भीमातन्त्र में बताये गये हैं। गुह्यकाली के विषय में भी इस तन्त्र में वर्णन मिलता है।

गुह्यकाली तथा काकलाकाली अभिन्न है।

गुह्यकाली तथा कामकलाकाली अभिन्न हैं। इस संहिता में महाकाल कहते हैं—'या गुह्यकाली सैवेयं काली कामकलाभिधा।' मन्त्र, ध्यान तथा प्रयोगों के भेद से इन दोनों में भिन्नता पाई जाती है। जैसे तारा के तीन भेद, सुन्दरी के सतहत्तर भेद तथा दक्षिणा के पाँच भेद होते हैं, उसी तरह गुह्यकाली भी ध्यान तथा मन्त्र के भेद से सात प्रकार की हैं।

विभिन्न देवीमन्त्रों की मन्त्र-संख्या ।

दक्षिणाकाली का मन्त्र २२ वर्ण युक्त है। देवी एकजटा का मन्त्र ५ वर्ण युक्त है, तथा कामकलाकाली के मन्त्र में १८ वर्ण विद्यमान हैं। जिन नव कालियों की चर्चा पहले हुई है उनमें कामकला काली मुख्यतमा है। इसके समर्थन में महाकाल कहते हैं—

'षोडशार्णा यथा मुख्या सर्वश्रीचक्रमध्यगा ।
तथेयं नवकालीषु सदा मुख्यतमा स्मृता' १।५२-५३।।

२४२वें पटल में मन्त्रोद्धार वर्णित हैं। पाँच श्लोकों में देवी के मन्त्रों का उद्धार है। इस मन्त्र के आदि में काम बीज तथा अन्त में स्वाहा हैं। कामकला काली के सात मन्त्रों में १८ वर्ण युक्त मन्त्र ही मुख्य है। इस मन्त्र का ऋषि महाकाल है, छन्द बृहती है, बीज आद्यबीज है, शक्ति क्रोधवर्ण है तथा विनियोग सर्वसिद्धि है। इस मन्त्र का नाम है—त्रैलोक्याकर्षण।

ध्यान

सत्ताईस श्लोकों में देवी का ध्यान वर्णित है। देवी के शरीर का वर्ण मत्त-कोकिल की तरह आभा युक्त है तथा पक्वजम्बू फल के सदृश प्रभा युक्त हैं। प्रपदालम्बी घनकेशदाम से उनका मस्तक विभूषित है तथा केश बिखरे हैं। उनके तीन नेत्र लाल-वर्ण से युक्त हैं, जो प्रज्वलित अङ्गार के समान हैं। मुखमण्डल शरत्पूर्ण चन्द्र के समान शोभमान है। यह मुख दीर्घ दृष्ट्रा युक्त रहने से विकराल प्रतीत होता है। मुख से दूर तक जिह्वा बाहर निकली हुई है। अतएव भयानक लगती है। मुख खुला है, अतएव उनके बत्तीस दांत दीखते हैं। स्कन्ध पर नरमुण्ड लम्बित हैं तथा उन मुण्डों से रक्तधारा प्रवाहित होती है। देवी उस धारा का पान करती है, सृक्कद्वय से रक्त-धारा प्रवाहित होकर स्तन के ऊपर से जाती है। शुभ्र अस्थि-गुलिका द्वारा उनकी माला निर्मित है। शवों की लम्बी अंगुलियों से उनका वक्षोदेश आवृत है। उनका कटि देश क्षीण है तथा जघन विशाल है। उनकी सोलह भुजाएं विशाल एवं मांसल है। शवों की धमनी से उनका कङ्कण निर्मित हुआ है। शवपोत के पंक्तिबद्ध हाथों की उनकी मेखला है। उनके सोलह हाथों में दक्षिण क्रम से असि, त्रिशूल, चक्र, शर,

अंकुश, लालन, कर्त्री तथा अक्षमाला है। वामक्रम से पाश, परशु, नाग, चाप, मुद्गर, शिवापोत, खर्पर जो वशा, रक्त तथा मेद से युक्त है तथा लम्बमान केश युक्त नरमुण्ड हैं। शव पञ्जर उनका नूपुर है। श्मशान की प्रज्वलित अग्नि के बीच में वह विराजमान हैं। अधोमुख महादीर्घ प्रसुप्त शव के पृष्ठ पर उन्होंने प्रत्यालीढ़ पद की स्थापना की है। घोररूपा शिवा वाम तथा दक्षिण भाग में रहती हुई अग्नि वमन करती हैं। वह दिगम्बरा हैं, मुक्तकेशी हैं, भयानका हैं तथा योगपट्टविभूषिता हैं। वह संहारभैरव के साथ संभोग की इच्छा करती हैं। उनकी आकृति खर्व है तथा कोटिकालानल की ज्वाला भी उनके शरीर की आभा से तिरस्कृत है इत्यादि।

पूजाक्रम

हृत्पद्म में पहले देवी का ध्यान करना चाहिए, पश्चात् पीठ पर पूजा करनी चाहिए।

यन्त्र

आठ वज्रों से युक्त भूपुर में अष्टदल पद्म की कल्पना करनी होगी। उस पद्म में कर्णिका तथा केसर रहेगा। कर्णिका में क्रमशः तीन त्रिकोण कल्पित होंगे। बाह्य त्रिकोण के बीण में वीजत्रय का लिखना आवश्यक है। वाम में माया बीज, दक्षिण में क्रोध वीज़ तथा निम्न में पाशवीज लिखना होगा। कन्दर्पबीज बीच में रहेगा। सवों के बीच में देवी का स्थान होगा। भूतशुद्धि, मातृकान्यास, और पीठन्यास को गुह्यकाली अथवा दक्षिणकाली की पूजा के अनुरूप कर के सामान्य तथा विशेष अर्घ्य की स्थापना करनी चाहिए। पश्चात् गणेश, सूर्य, विष्णु तथा शिव की पूजा होगी। बाद में मानस पूजा करनी चाहिए। मूलमन्त्र के द्वारा ये सभी कार्य होंगे। यहाँ जिस विधान के लिए जो मन्त्र कहे गये हैं उस पूजाङ्ग को उसी मन्त्र से सम्पन्न करना चाहिए। देवी के विशेष प्रिय पदार्थ अनङ्गगन्ध तथा स्वयंभूकुसुम का व्यवहार इनकी पूजा में अवश्य आवश्यक है। यहाँ बलिदान का विशेष मन्त्र उल्लिखित है। बाद में सप्तावरण पूजा करनी चाहिए।

२४३ वें पटल में आवरण पूजा का वर्णन है। पहले कहा गया यन्त्र बहिः, मध्य तथा अन्तः त्रिकोण विशिष्ट है। यहाँ बहिस्त्रिकोण के कोण में छः देवियों की पूजा होती है।

प्रथम आवरण :

बहिस्त्रिकोण ।

(क) कोणग देवता—३ । (१) संहारिणी, (२) भीषणा तथा (३) मोहिनी ।
(ख) कोण मध्य देवता—३ । (१) कुरुकुल्ला, (२) कपालिनी तथा (३) विप्रचिता ।

द्वितीय आवरण :

मध्य त्रिकोण ।

(क) कोणग देवता—३ । (१) उग्रा, (२) उग्रप्रभा तथा (३) दीप्ता
(ख) कोणमध्य देवता—३ । (१) नीला, (२) घना तथा (३) वलाका

तृतीय आवरण :

अन्तस्त्रिकोण ।

वाम भाग में तीन देवियाँ होंगी—(१) ब्राह्मी, (२) नारायणी तथा (३) माहेश्वरी । दक्षिण भाग में तीन देवियाँ होंगी–(१) चामुण्डा (२) कौमारी तथा (३) अपराजिता । पश्चिम में (अधो भाग में) तीन देवियाँ होंगी—(१) वाराही, (२) नारसिंही तथा (३) इन्द्राणी । इन देवियों की आकृति श्यामवर्ण, असिकरा, मुण्डमाला विभूषिता तथा कपालधारिणी है ।

चतुर्थ आवरण :

दलों के अधिष्ठातृ देवता भैरव हैं । इनकी संख्या आठ हैं । इन सबों के नाम इस प्रकार हैं—(१) असिताङ्ग (२) रुरु (३) चण्ड (४) उन्मत्त (५) क्रोध (६) कापाली (७) भीषण तथा (८) सम्मोहन । ये सभी भैरव कर्त्रीखर्परधारी तथा द्विभुज हैं ।

पञ्चम आवरण :

क्षेत्रपाल ।

दो दलों के बीच में इनकी पूजा करनी चाहिए । ये सभी संख्या में आठ हैं—(१) एकपाद, (२) विरूपाक्ष, (३) भीम, (४) सङ्कर्षण, (५) चण्डघण्ट, (६) मेघनाद (७) वेगमाली तथा (८) प्रकम्पन ।

षष्ठ आवरण :

अष्टयोगिनी।

इन योगिनियों की पूजा कमलदलों के अग्रभाग में होती है। योगिनियों के नाम अधोनिर्दिष्ट हैं—(१) उल्कामुखी, (२) कोटराक्षी, (३) विद्युज्जिह्वा, (४) करालिनी, (५) वज्रोदरी, (६) तापिनी, (७) ज्वाला तथा (८) जालन्धरी।

सप्तम आवरण :

लोकपाल।

लोकपालों की संख्या दश हैं। इनके स्थान दश दिशाएँ हैं। नाम उल्लिखित नहीं है।

इस आवरण पूजा के बाद योगिनीचक्र सहित देवी की पूजा करनी चाहिए। पश्चात् बलिदान करके उसको नैर्ऋत दिशा में रखना चाहिए। यहाँ पुरश्चरण विधि का तथा विविध प्रयोगों का उल्लेख हुआ है। इन सभी प्रयोगों का फल वाग्मिता लाभ, स्तम्भन, अजरता, आकर्षण-शक्ति, वशीकरण, मारण तथा उच्चाटन आदि हैं। इन प्रयोगों में कुछ को दिन में तथा कुछ को रात में करने का विधान हैं। दिन का विधि द्विजातियों के लिए है किन्तु रात्रिविधि शूद्रादि के लिए है।

२४४ वें पटल में महाकाल देवी से अत्यन्त गोपनीय प्रयोगों को कहते हैं। जिसके एक बार कहने से ही सकल-सिद्धि हाथ में आ जाती है। कामकलाकाली आठ प्रकार की हैं—यह मैंने पहले ही कहा है। यही कामकलाकाली अन्य सभी कालियों की प्रकृति है, और उन्ही की विकृति अन्य सभी कालियाँ हैं। गुह्यकाली भी इस प्रयोग के समय में कामकलाकाली रूप में ही अभिहित होती है। प्रत्येक प्रयोग के पहले पुरश्चरण आवश्यक है।

शिवा प्रयोग

शिवा प्रयोग का विस्तृत विवरण यहाँ मिलता है। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि इस प्रयोग के लिए निर्वाचित है। रात में चार प्रकारों के अन्न प्रस्तुत करना

चाहिए (१) पायस (२) अपूप (३) यावश तथा (४) मोदक युक्त शष्कुली। मत्स्य एवं मांस का व्यंजन तैयार करके स्वर्ण, रजत अथवा ताम्र थाल में परिवेषण करके रखना चाहिए। उक्त थाल के अभाव में मृत्तिका के थाल में भी परिवेषण हो सकता है। अथवा महुआ के पत्ते पर भी उसका परिवेषण हो सकता है। प्रत्येक अन्न भिन्न-भिन्न पात्रों में रखना आवश्यक है। अन्यथा सुफल की प्राप्ति नही होती है। भिन्न-भिन्न पशुओं तथा पक्षियों के मांस का उल्लेख मिलता है। पश्चात् आधी रात के समय में श्मशान में अथवा निर्जन स्थान में जाकर निर्भय चित्त से उत्तराभिमुख होकर श्मशान के वस्त्र खण्ड को आसन बनाकर देवी कामकला काली की गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदि लेकर पूजा करके उनकी अनुज्ञा पाकर शिवा को बलि देने के लिए प्रस्तुत होना चाहिए। एक विशेष मन्त्र का तीन बार उच्चारण करके शिवागण के आमन्त्रण का यहाँ विधान है। यदि शिवागण आ जाता है तो शुभ फल अवश्य होगा। उसके आते ही साधक दूर होकर उसको नमस्कार करें तथा पाद्यादि द्वारा देवी काली समझ कर उसकी पूजा करें। पश्चात् उसे अन्न आदि बलि उपहृत करें। इस अवसर में साधक को लक्ष्य करना चाहिए कि शिवागण कौन सा विशेष वस्तु पहले ग्रहण करता है, कौन नहीं—इससे साधक समझ सकता है कि उसे किस तरह की सिद्धि का लाभ होने वाला है। यदि शिवागण नहीं आता है तो समझना चाहिए कि इसमें बहुत सी विघ्न बाधाएँ हैं। यदि वह कुछ भी नहीं खाता है तो साधक की मृत्यु होगी।

शिवा को बलि देने के बाद साधक भूत, भैरव तथा डाकिनी गण को भी बलि दें। यदि शिवागण सब कुछ खा लेता है, तो साधक को समझना चाहिए कि उसे अतुल वैभव का लाभ होगा।

इसके बाद कुछ श्लोकों में नाना सिद्धियों का उल्लेख हुआ है। पश्चात् आठ श्लोकों में शिवास्तोत्र कहा गया है। बलि के बाद साधक इसका पाठ करें। इसके बाद साधक गड्ढा खोदकर बलिशेष (जो शिवागण द्वारा भक्षित होने के बाद बच गया है।) उसमें डालकर मिट्टी से ढांक दें, जिससे अन्य पशु या पक्षी उसे न खा सके।

२४५ वें पटल के आरम्भ में देवी महाकाल से जिज्ञासा करती हैं कि अम्बिका किस कारण से कामकला नाम से आख्यात होती हैं। कामकला का

प्रयोग क्या है, वह भी जानना चाहती थी ? महाकाल उत्तर में कहते हैं कि प्रयोग तीन प्रकार के होते हैं—(१) राजपूर्व, (२) मध्यपूर्व तथा (३) लघुपूर्व । यहाँ उन्होंने कहा है कि प्रयोग के सम्बन्ध में किसी प्रकार की निन्दा या अवहेलना नहीं करनी चाहिए । पहले सोलह साल की रूप यौवन सम्पन्ना सुन्दरी को लाना चाहिए । यह कन्या भिन्न-भिन्न जातियों से ग्रहणीय है । इसकी संख्या चौंतीस या छत्तीस हैं । इस सुन्दरी को लाकर पहले पुष्पवासित तैल से उसके शरीर का उद्वर्तन कराकर पश्चात् सुगन्धित जल से स्नान कराना चाहिए । यहाँ स्नान का मन्त्र है । भिन्न-भिन्न मन्त्रों से वस्त्र, काजल तथा अलक्तक उसे देना चाहिए । बाद में उसे एक मन्दिर में ले जाकर विविध वर्णों से रञ्जित मण्डल में प्रवेश कराना चाहिए । यह मण्डल आठ दिशाओं से शोभित होगा । पूर्व दिशा में श्वेत वर्ण, वह्नि दिशा में अरुण वर्ण, दक्षिण दिशा में मेचक वर्ण, नैऋत दिशा में पीतवर्ण, पश्चिम दिशा में पाटल वर्ण, वायु दिशा में हरितवर्ण, उत्तर दिशा में पिङ्गलवर्ण तथा ईशान दिशा में धूमल वर्ण का होना आवश्यक है ।

इस तरह मण्डल में पूर्वोक्त यन्त्र का निर्माण करके पूजा करनी चाहिए । देवी के सान्निध्य की कल्पना करके प्रार्थना करनी चाहिए कि हे देवि ! तुम कलातीत हो, नाद बिन्दु शक्तिरूपिणी हो, चिन्मयी हो तुम पराकुण्डलिनी रूपा हो शिवशक्तिस्वरूपा हो । हे कामकला कालि ! तुम्हीं संसार की उत्पत्ति का कारण हो, स्थिति का कारण हो और कल्पान्त में तुम्ही संहार करती हो । तुम परम आनन्द के लिए परमामृतरस के आस्वाद में लोलुप हो । सदाशिवरूप महत्तत्त्व सामरस्य तुम्हारा स्वरूप हैं । तुम कामकालिक प्रयोग के लिए मुझे अनुज्ञा प्रदान करो । इस तरह अनुज्ञा पाकर पूर्व आदि क्रम से मण्डल में स्थित वराङ्गना की पूजा देवी बुद्धि से करनी चाहिए ।

उन्नीसवें मण्डल में देवी की पूजा करनी होगी । इस पूजा का क्रम निम्न निर्दिष्ट है । षडङ्गन्यास, पीठन्यास, मुद्रा प्रदर्शन तथा शङ्ख स्थापन आदि इस पूजा में करना चाहिए । इस तरह पूजा का विस्तृत क्रम उल्लिखित हुआ है । पूजा यदि सात्त्विक रूप में करना हो तो इसमें पशु की बलि नहीं देनी चाहिए । दुग्धपिण्ड अथवा शालि चूर्ण (चावल के आटे) द्वारा पशु की आकृति बनाकर बलिदान करना चाहिए । विशेष-विशेष फल भी पशु के अनुकल्प में दिया जा सकता है । इसके बाद जप करना चाहिए । किसी एक सुन्दरी का आकर्षण करके जप करना चाहिए । द्विजों के लिए यह निषिद्ध है । जप के समय में चित्त का चाञ्चल्य नहीं रहना चाहिए । पश्चात्

पुष्पाञ्जलि, प्रदक्षिणा; स्तोत्रपाठ, कवचपाठ, प्राणायाम, षडङ्गन्यास आदि के साथ अपने को देवता रूप में चिन्तन करके उस सुन्दरी को छोड़ देना चाहिये।

२४६वें पटल के आरम्भ में महाकाल देवी से सामान्य प्रयोगों का वर्णन करते हैं। इन प्रयोगों का फल राज्य तथा विद्या की प्राप्ति है। इन प्रयोगों को राजा कर सकता है, ब्राह्मण नहीं। प्रयोग दो प्रकार के हैं लघुपूर्व तथा मध्यपूर्व। इसमें मध्यपूर्व चौबीस सुन्दरियों से युक्त हैं तथा लघुपूर्व बारह सुन्दरियों से युक्त। अन्य विधियाँ पूर्वोक्त रीति से सम्पन्न होती हैं। प्रयोग से पूर्व इसका पुरश्चरण पर्वत पर, नदी तीर में, शून्य आगार अथवा शिव मन्दिर में करना चाहिये। इस प्रयोग के करने से पहले अनेक विहित विधियों का आचरण करना आवश्यक है। अन्यथा प्रयोग फलप्रद नहीं होता है। प्रयोग कर्ता को तीन बार स्नान करना चाहिए, रात में हविष्य भोजन करना चाहिए तथा अपना मन्त्र और अक्षसूत्र गुरु को भी नहीं दिखाना चाहिए। दुर्जनों का सङ्ग तथा किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। आसनों में वस्त्रासन, कुशासन, व्याघ्रचर्म तथा नरमुण्ड आदि का विधान है। इसमें उत्तरोत्तर आसन प्रशस्त माना गया है। मालाओं में फल के बीज, स्फटिक, रुद्राक्ष तथा नर-अस्थि आदि विहित हैं। इनमें उत्तरोत्तर प्रशस्त है। जप की संख्या एक लाख विहित है तथा उसका दशांश होम। इसी तरह तर्पण एवं अभिषेक वर्णित हैं। सौ बार मन्त्र का जप कर के रोचना का तिलक करने से राजा भी वश में हो सकता है। शत्रु का उच्चाटन, सर्वज्ञता की प्राप्ति तथा शत्रु-मारण आदि का उल्लेख भी इसके फल रूप में हुआ है। पश्चात् यहाँ आत्मरक्षा का विधान किया गया है। यह रक्षा यन्त्र के द्वारा होता है। इन्द्र, वायु, मान्धाता, जामदग्न्य, नहुष, शिवि, राम, पृथु, कार्तवीर्य, कुत्स, रघु, नल, भरत, शशबिन्दु, ययाति, वसुक, अर्जुन, पुरु, पुरूरवा, भीम, जरासन्ध, तथा विदूरथ आदि ने इस यन्त्र को धारण किया था—इसका उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त एक और प्रयोग का वर्णन मिलता है। इसका फल सर्वज्ञता की प्राप्ति तथा वाग्मिता लाभ हैं। बारह वर्षों तक इस प्रयोग के सम्पादन से अष्टसिद्धि तथा विद्याधरत्व एवं खेचरत्व का लाभ होता है। इसके बाद आकर्षण प्रयोगों का वर्णन है।

खेचरी प्रयोग

इसके फल स्वरूप साधक दीर्घ काल तक अदृश्य होकर आकाश पथ में भी विचरण कर सकता है। इस साधक का यातायात मेरु, मन्दर कैलास, हेमकूट आदि

पर्वतों पर तथा इसी तरह इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, यक्ष तथा राक्षस आदि की नगरी में भी सम्भव हो जाता है। इस प्रयोग के फल से साधक का शरीर वज्र के समान दृढ़ हो जाता हैं। देवगण भी उसको कुछ क्षति नही पहुँचा सकते हैं।

खड्गसिद्धि प्रयोग

कम्बोज देश से मकर सङ्क्रान्ति के दिन लोह लाकर कर्क सङ्क्रान्ति पर्यन्त उस लोह की पूजा करें। लोह का परिमाण सोलह पल रहना चाहिए। इसके बाद लोहार को बुलाकर अपने घर में असि का निर्माण करावें। आश्विन की कृष्ण पक्षीय अष्टमी से मकर संक्रान्ति तक यह काम होता रहे। पश्चात् कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को श्रीकाली के सम्मुख उसकी स्थापना कर पूजा करें। पहले यह असि देवी को समर्पित कर दें पश्चात् उनकी अनुज्ञा से इसका व्यवहार करें। इसके व्यवहार से शत्रु पर विजय होती है और इस असिधारी को देखते ही शत्रु निपतित हो जाता है। शुम्भ तथा निशुम्भ के साथ युद्ध के समय स्वयं भगवती ने इसका व्यवहार किया था।

अञ्जन प्रयोग

इस प्रयोग से कज्जल का निर्माण कर आँखों में लगाने से लगाने वालों को कोई नहीं देखता है। किन्तु वह परमाणु सदृश वस्तु को तथा भूतल में निहित धन को भी देखता है।

गुटिका सिद्धि

रेखायुक्त एक स्थूल मेढक को पकड़कर उसे मिट्टी के बर्तन में ढांककर रक्खे। पश्चात् उस पात्र में आठ तोला पारद डालकर मिट्टी के ढक्कन से उस बर्तन का मुख आच्छादित कर दें। पश्चात् इस कुम्भ को किसी स्रोतस्विनी नदी की जलधारा के नीचे मिट्टी खोदकर स्थापित कर दें। प्रत्येक चतुर्दशी को बलि प्रदान करें तथा देवीबुद्धि से उस मेढ़क की पूजा करें। छह मासों के बाद नदी से उस कुम्भ को उठाकर घर के अन्धकारमय कोने में स्थापित कर दें। उस कुम्भ में एक स्थान में छिद्र करके हिंगु मिश्रित जल उस छिद्र में देते रहें। इस तरह छह महीने तक करना चाहिए। बाद में उस पात्र में छह मास तक छह प्रकार के पत्तों का रस डालना चाहिए। इस प्रकार अठ्ठारह महीनों के

बीत जाने पर महिष की बलि प्रदान करनी चाहिए। पश्चात् हाथ में वस्त्र लगाकर कुम्भ स्थित मेढ़क को बाहर लाकर घुमाना चाहिए। घुमाने से मेढ़क जो वमन करेगा वही है गुटिका। इसके धारण करने से खेचरताप्राप्ति, भूतजय, अजरता, अमरता, तथा शापानुग्रहसामर्थ्य होता है। इस गुटिका के स्पर्श से अन्य धातु भी सुवर्ण हो जाता है।

तालवेताल सिद्धि

साधक पहले युद्धहत किसी पुरुष के शव को लावें। उस पर आरूढ़ होकर एक हजार या दो हजार जप करें। पश्चात् नरबलि प्रदान करें। यह सम्पन्न होने से ताल-वेताल उसका सेवक होता है। तथा साधक को भू, भुवः तथा स्वः—इन तीनों लोकों में उनकी इच्छानुसार वह ले जा सकता है।

२४७ वें पटल में देवी महाकाल से कहती हैं कि किस तरह वह्नि का स्थापन करना चाहिए। महाकाल इसके उत्तर में कहते हैं कि साधक की आकाङ्क्षानुसार मण्डल त्रिकोण, षट्कोण तथा नवकोण बनाना चाहिए। इच्छा के भेद से इन्धनों में भेद एवं हवनों के द्रव्य में भेद होते हैं। हवन के बाद जप अवश्य करना चाहिए।

होम विधि

पहले विविध प्रकारों के पुष्पों से होम का विधान है। पश्चात् पृथक्-पृथक् पुष्पों के होम से पृथक्-पृथक् फलों का निर्देश हैं। बाद में फल होम, अन्नहोम, दुग्धादि होम, मणिआदि होम, धातु होम तथा पाषाणादि होमों का उल्लेख है। विविध पशुओं तथा पक्षियों के मांस से होमों का उल्लेख तथा उन होमों का फल महाकाल ने स्वयं कहा है। कुण्ड आदि के उल्लेख के सम्बन्ध में वर्णन है कि चतुरस्र कुण्ड शान्ति तथा पुष्टि कर्मों में उपयोगी है। वशीकरण में त्रिकोण कुण्ड, स्तम्भन में वर्तुल कुण्ड तथा मुक्ति के लिए दीर्घ कुण्ड का विधान है।

इसके बाद योगविधि का उल्लेख आता है। योग जप से भी श्रेष्ठ है। शरीर की बहत्तर हजार नाड़ियों की चर्चा है, बत्तीस प्रकारों के कीकस तथा दश प्रकारों के वायु, जिनमें पाँच मुख्य हैं, उल्लिखित हैं। शरीर के मध्य देश में सूर्य, चन्द्र, आकाश,

भूमि, जल तथा अग्नि के स्थानों का निर्देश है। शरीर का मध्य देश नाड़ी समूहों का उद्गम स्थल है। यह शरीर का मध्य त्रिकोणाकार है। इसमें नौ अंगुलियाँ है। ऊर्ध्व में कन्द स्थान है। इसी कन्द स्थान में प्राण का सञ्चार होता रहता है। इसके ऊपर कुण्डली का स्थान है, यहीं योगविधि कर्तव्य हैं। नाड़ियों में इडा, पिङ्गला सुषुम्णा प्रधान है। सुषुम्णा मोक्षमार्ग नाम से प्रसिद्ध है। पश्चात् यहाँ पयस्विनी तथा सरस्वती आदि चौदह नाडियों का वर्णन आता है तथा उनके स्थानों का भी उल्लेख है। प्राण का स्थान कन्द का निम्न भाग है।

नाडी का शोधन

कुण्डली के नीचे वायु के द्वारा धमन होता है। इसका फल नाद ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। नाद को पिङ्गला मार्ग द्वारा हृदय में तथा हस्तिजिह्वा द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में लाकर देवी की निराकारा ज्योतिर्मयी शुक्ला तथा सर्वदा सच्चिदानन्द स्वरूपा मूर्ति का ध्यान करना चाहिए। इनकी पूजा बीज के द्वारा करनी चाहिए और यह बीज षट् चक्र का भेदन करके सदाशिव के साथ सामरस्य प्राप्त हो गया है—इस तरह की चिन्ता करके उसे कुण्डलिनी स्थान में लाना चाहिए।

ध्यान उन लोगों के लिये उपयोगी है जो योगविधि में असमर्थ हैं। अष्टदल हृदय कमल में साकार देवता का ध्यान करना चाहिए। ध्यान में समय के आधिक्य से फलों का भी आधिक्य होता हैं। योगविधि उत्तम, ध्यान मध्यम तथा पूजा अधम है। सत्य तथा त्रेता युगों में योग उत्तम विधि है। द्वापर में ध्यान का तथा कलियुग में न्यास और पूजा का विधान किया गया है।

२४८ वें पटल में षोढ़ा न्यास का उल्लेख है। कृतयुग के तीन दैत्यों का उल्लेख है। जिन्होंने तपस्या करके प्रजापति से इसे वरदान के रूप में प्राप्त किया था। उन्होंने कहा—हम लोगों के द्वारा स्थापित पुरत्रय को जो व्यक्ति एक ही शर से विदीर्ण कर देगा, उसी के हाथ हम लोगों का मरण हो। देवगण इन दैत्यों से विजित होकर रुद्र के समीप गये। रुद्र ने उन देव गणों के लिए एक रथ का निर्माण किया। चारों वेद इस रथ के अश्व हैं, पृथिवी रथ है। सूर्य, चन्द्र कूवर तथा गन्धमादन चक्र है। विन्ध्य नाभि है। मेरु ध्वज दण्ड है, मन्दर तथा विष्णु आदि धनुष एवं बाण हैं। इसके बाद जगदम्बिका ने उन लोगों को कवच दिया तथा षोढ़ा न्यास का

प्रयोग सिखाया। इस न्यास के ऋषि त्रिपुरारि महेश्वर हैं, छन्द जगती है, बीज कन्दर्प है, क्रोध कीलक है, शक्ति मायाबीज है।

षोढ़ा न्यास

(१) नृसिंह न्यास, (२) भैरव न्यास, (३) कामकला न्यास, (४) डाकिनी न्यास, (५) शक्ति न्यास तथा (६) देवी न्यास।

२४६ वें पटल में त्रैलोक्यमोहन नामक कवच बताया गया है।

२५० वें पटल में देवी का स्तोत्र उल्लिखित है, इसका छन्द भुजङ्गप्रयात है तथा यह रावण कृत है। वामकेश्वर तन्त्र से यहाँ इसका संग्रह किया गया है।

पुनश्च इस पटल के उत्तर भाग में आशु सिद्धि विधि श्रवण का देवी ने आग्रह किया है। इसके उत्तर में महाकाल कहते हैं कि सभी प्रयोगों से यह विधि उत्तम है। यह शक्ति सामरस्यकारी है। गुरु, देवता तथा मन्त्रों का जैसे यह एकत्व प्रतिपादक है, उसी तरह तीर्थ, दैवत तथा शक्ति का भी एकत्व प्रदान करता है। यह विधि क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के लिए विहित हैं तथा ब्राह्मणों के लिए निषिद्ध है अष्टमी, चतुर्दशी, संक्रान्ति, मङ्गलवार तथा व्यतिपात योग में, ग्रहण समय में, अथवा इच्छा वश जिस किसी दिन भी यथाशक्ति पूजा संभार लेकर नित्य कर्म करने के बाद भुक्त अथवा अभुक्त रूप में महानिशा में यह प्रयोग करना चाहिए। इसमें बारह प्रकारों के आसवों का विधान है। आसव क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के लिए प्रशस्त है। ब्राह्मण के लिए मधु, क्षीर तथा नारिकेलोदक ग्रहणीय है। शक्ति परकीया तथा उसके अभाव में स्वकीया लेना चाहिए। शक्ति दीक्षित होने के लिए प्रयोजनीय है। कुलमार्ग में उसकी श्रद्धा आवश्यक है। द्विज के लिए सभी जातियों कीं शक्ति ग्रहणीय है। क्षत्रिय ब्राह्मणेतर तीन जातियों से, वैश्य ब्राह्मण तथा क्षत्रिय से भिन्न दो जातियों से तथा शूद्र केवल अपनी जाति से शक्ति का ग्रहण करें—ऐसा विधान है।

पात्र निर्णय

यहाँ त्रिविध प्रकारों के पात्रों का उल्लेख आता है। पूजा सम्भार लेकर श्मशान में, शून्यागार में अथवा चतुष्पथ में जाना चाहिए। इस पूजाक्रम का दर्शन पशु जीवों को नहीं कराना चाहिए।

पूजा

आसन, भूतापसारण, दिग्बन्धन, अङ्गन्यासादि, पीठन्यास, मण्डल की रचना, शक्ति आनयन, शक्ति के साथ विविध क्रियायें, उसकी योनि में मन्त्र का न्यास, जप, अनङ्गकूला देवी की पूजा तथा कामकला काली की पूजा का विधान है। गुह्य-काली के भक्त गण इस समय गुह्यकाली की भी पूजा करें। कुल द्रव्यों के शापमोचन पहले वैदिक मन्त्र से पश्चात् आगमोक्त मन्त्रों से यहाँ विहित है। द्रव्यों में आनन्द भैरव एवं आनन्द भैरवी का ध्यान, पूजा तथा इन दोनों का सामरस्य हुआ है—ऐसी भावना करनी चाहिए। गुह्यबीज से उनकी पूजा करके वामावर्त्त में त्रिकोण लिख कर कोण के दक्षिण से ऊर्ध्व पर्यन्त एवं दक्षिण से उत्तर पर्यन्त अकारादि क्षकारान्त वर्ण तथा गुह्यबीज तीन बार लिखकर पश्चात् शाकिनी बीज का दश बार जप करें। धेनु मुद्रा के द्वारा अमृतीकरण करें। वारुण मन्त्र का आठ बार जप करें। इसके बाद अमृत न्यास करें। इस न्यास से पचीस तत्त्वों की शुद्धि होती है।

२५१ वें पटल में अमृत न्यास दिया गया है। इस न्यास के ऋषि कात्यायन हैं, छन्द विराट् है, देवता कामकला काली है, कीलक कामबीज है, शक्ति योगिनी, बीज वधूबीज है तथा विनियोग आनन्दानुभव अथवा सर्वसिद्धि हैं। पचीस पात्रों का स्थापन, पचीस तत्त्वों का उल्लेख, शरीर में इन तत्त्वों का स्थान, न्यास का मन्त्र तथा विविध विध प्रयोग यहाँ वर्णित हैं।

२५२ वें पटल में त्रिविधपापहारिणी का सहस्रनामस्तोत्र है तथा इस स्तोत्र का संक्षिप्त गद्य रूप भी दिया गया है। इसकी फलश्रुति भी विस्तार पूर्वक निर्दिष्ट हुई है।

२५३ वें पटल में कामकलाकाली के एकाक्षर से लेकर सहस्राक्षर पर्यन्त मन्त्रों का उद्धार वर्णित हैं।

२५४ वें पटल में महाकाल कहते हैं कि संसार में जितने प्रकारों के मन्त्र वर्तमान हैं, वे सौम्य तथा उग्र के भेद से दो प्रकार के हैं। चित् स्वरूप महाकाल से वे

उद्भुत हुए हैं। सौम्य मूर्तियों के समूह में त्रिपुरसुन्दरी परम अवधि है। सौम्य मूर्ति की संख्या एक कोटि है। उग्रमूर्ति की संख्या आठ कोटि है। कामकलाकाली उग्र मूर्तियों के समूह की परम अवधि है। आम्नाय संख्या में छह हैं। भक्ति तथा कार्य सिद्धि के लिए देवता, अप्सरा, किन्नर तथा राक्षस आदि इन आम्नायों का आश्रय लेते हैं। उक्त छह आम्नाय शिव के मुख से विनिर्गत हुए हैं। यामल तथा डामर प्रभृति इसके मध्य स्थित हैं। काली के प्रभाव से मनुष्य हीनवीर्य, आलसी तथा दरिद्र होगा। इन मन्त्रों का उपासक नहीं रहेगा। इन देवियों का ध्यान तथा मन्त्र भी लुप्त हो जाएंगे। विभिन्न आम्नायों से गृहीत सौम्य तथा उग्र मूर्ति समूह की आलोक एवं अन्धकार की तरह एकत्र अवस्थिति संभव नहीं है। किन्तु अयुताक्षर महामन्त्र में षडाम्नाय स्थित सभी प्रकारों की सौम्य तथा उग्र मूर्तियाँ रहती है—ऐसा कहा गया है।

२५५ वें पटल में अयुताक्षर मन्त्र का उद्धार वर्णित है।

(८)

महाकालसंहिता का यह अंश, कामकलाखण्ड, निम्ननिर्दिष्ट चार हस्तलिखित-ग्रन्थों पर आधारित है।

क—इस हस्तलिखितग्रन्थ की फोटो प्रति नेपाल के राज्यपुस्तकालय काठमाण्डू से संगृहीत है। इसमें १०७ पत्र हैं तथा साइज १५ से० मी० × ६ से० मी० है। यह ग्रन्थ देवनागरीलिपि में लिखा गया है तथा लिपिकाल १८४३ संवत् है। इसमें प्रत्येक पत्र में ११ पङ्क्तियाँ हैं तथा हर एक पङ्क्ति में ४० अक्षर हैं। यह एक ही ग्रन्थ ऐसा उपलब्ध है, जिसमें कामकलाखण्ड आद्योपान्त १५ पटलों में मिलता है।

ख—यह हस्तलेखग्रन्थ की फोटो प्रति दरभंगा के चन्द्रधारीसंग्रहालय से संगृहीत है। इसमें ४६६ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में २६ पंक्तियाँ है तथा प्रत्येक पंक्ति में ४८ अक्षर हैं। यह देवनागर अक्षर में लिखित हैं तथा इसका साइज २० से० मी० × १५ से० मी० है। इसमें १४ पटल गुह्यकालीखण्ड के मिलते हैं तथा ८ पटल आरम्भ से कामकलाखण्ड के सम्मिलित हैं। यहाँ पत्र संख्या ४१० से ४६६ पर्यन्त ५६ पत्रों में कामकलाखण्ड वर्णित हैं।

ग—यह कामेश्वरसिंहदरभङ्गासंस्कृतविश्वविद्यालय के पुस्तकालय से फोटो प्रति रूप में संगृहीत है। इसमें २६१ पत्र हैं तथा प्रत्येक पत्र में २६ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ७४ अक्षर हैं। यह देवनागर अक्षर में लिखित है तथा इसका साइज २० से० मी० × १५ से० मी० है इसमें चौदह पटल गुह्यकालीखण्ड के मिलते हैं तथा पत्र संख्या २६१ से २६१ पर्यन्त में कामकलाखण्ड के आरम्भिक आठ पटल सम्मिलित हैं।

घ—यह वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालय में सुरक्षित है, इसमें ५२१ पत्र हैं। यह देवनागर अक्षर में १६०६ संवत् में लिखा गया है। इसके प्रत्येक पत्र में ११ पंक्तियाँ तथा प्रत्येक पंक्ति में ४८ अक्षर हैं। इसका साइज १२.८ × ५ है। इसमें भी १४ पटल गुह्यकालीखण्ड के तथा आरम्भ से ८ पटल कामकलाखण्ड के उपलब्ध हैं।

इति

—(महामहोपाध्याय) गोपीनाथ कविराज

———

महाकालसंहितायां

कामकलाखण्डः

प्रथमः पटलः

देव्युवाच

परापर परेशान शशाङ्ककृतशेखर ।
योगाधियोगिन् सर्वज्ञ सर्वभूतदयापर ॥१॥

त्वत्तः श्रुता मया मन्त्राः सर्वागमसुगोपिताः ।
विधिवत्पूजनं चापि नाना[1]वरणकक्रमैः ॥२॥

तारा च छिन्नमस्ता च तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
बाला च बगला चापि त्रिपुरा भैरवी तथा ॥३॥

काली दक्षिणकाली च कुब्जिका शबरेश्वरी ।
अघोरा राजमातंगी सिद्धिलक्ष्मीररुन्धती ॥४॥

अश्वारूढा भोगवती नित्यक्लिन्ना च कुक्कुटी ।
कौमारी चापि वाराही चामुण्डा चण्डिकापि च ॥५॥

भुवनेशी तथोच्छिष्टचाण्डाली चण्डघण्टिका ।
कालसंकर्षणी चापि गुह्यकाली तथापरा ॥६॥

एतांश्चान्याश्च वै देव्यः समन्त्राः कथितास्त्वया ।
किन्तु कामकलाकालीं[2] नोक्तवानसि मे प्रभो ॥७॥

---

१. न्यासा, ब[1], ब[2]
२. काली, ने

तत्किं मय्यपि गोप्यं ते प्रायशः परमेश्वर ।
नहीदृशं त्रिलोकेषु तव किंचन विद्यते ॥८॥
यदकथ्यं मयि भवेदपि प्राणाधिकायिकम ।
तत्किं गोपयसि प्राज्ञ मयीदं दैवतं महत् ॥९॥
यद्यस्मि ते दयापात्रं मान्यास्मि स्नेहभाग्भवे[1] ।
अनुग्राह्यास्मि कान्तास्मि तदेमां वद सांप्रतम् ॥१०॥
देवीं कामकलाकालीं समन्त्रां[2] ध्यानपूर्विकाम् ।
सरहस्यां सकवचां कथयस्व मम प्रभो ॥११॥

[कामकलाकाल्याः मन्त्रस्य माहात्म्यस्य गोपनीयतायाश्चाभिधानम्]

महाकाल उवाच

धन्यास्यनुगृहीतासि तया देव्यैव सर्वथा ।
यत्ते बुद्धिः समुत्पन्ना तां देवीं प्रति भामिनि ॥१२॥
विधाय शपथं[3] देवि कथयामि तवाग्रतः ।
नहीदृशं भुक्तिमुक्तिसाधनं भुवि विद्यते ॥१३॥
यथार्थमात्थ देवि त्वं गोप्यं त्वय्यपि सर्वथा ।
किंतु भक्तिविशेषात्ते कथयामि न संशयः ॥१४॥
राज्यं दद्याद्धनं दद्यात् स्त्रियं दद्याच्छिरस्तथा ।
न तु कामकलाकालीं दद्यात्कस्मा अपि क्वचित् ॥१५॥
इन्द्रेणोपासिता पूर्वं देवराज्यमभीप्सता ।
वरुणेन कुबेरेण ब्रह्मणा च मया तथा ॥१६॥

---

१. भवेत्, द[1], द[2]
२. समन्त्र—, द[2]
३. सपथं, द[2]

बाणेन रावणेनापि यमेनापि विवस्वता ।
चन्द्रेण विष्णुना चापि तथान्यैश्च महर्षिभिः ॥१७॥
सहेलं वा सलीलं वा यस्याः स्मरणमात्रतः ।
विद्यालक्ष्मी राज्यलक्ष्मीर्मोक्षलक्ष्मीर्वशे स्थिता ॥१८॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
राज्यार्थी लभते राज्यं कान्तार्थी कामिनीं शुभाम् ॥१९॥
यशोऽर्थी कीर्तिमाप्नोति मुक्त्यर्थी मोक्षमव्ययम् ।
अणिमाद्यष्टसिद्ध्यर्थी सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात् ॥२०॥
वशीकरणमाकर्षं द्रावणं मोहनं तथा ।
स्तम्भनं च तथोच्चाटं मारणं द्वेषणं तथा ॥२१॥
शोषणं मूर्च्छनं त्रासं तथापस्मारमेव च ।
क्षोभणं च महोन्मादं कुर्य्यादितदुपासकः ॥२२॥
अञ्जनं खड्गवेतालपादुकायक्षिणीगतिम् ।
गुटिकाधातुवादादि वर्षसाहस्रजीवनम् ॥२३॥
साधयेत् खेचरत्वं च कामरूपित्वमेव च ।
नानया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये क्वापि विद्यते ॥२४॥
कुर्य्याद् ग्रहगतिस्तम्भं पिशाचोरगरक्षसाम् ।
कुर्य्यान्नद्य[1]र्णवस्तम्भमनिलानलयोरपि ॥२५॥
धारास्तम्भं शत्रुसैन्यस्तम्भं वाक्स्तम्भनं तथा ।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं कुर्य्यादेव न संशयः ॥२६॥
चतुर्वर्गश्चतुर्भद्रो लभ्यते यत्प्रसादतः[2] ।
अन्यासां क्षुद्रसिद्धीनां तत्र कैव कथा प्रिये ॥२७॥

---

१. 'गत्य—' ने
२. यत्प्रसादेन लभ्यते, द[1], द[2]

द्विसप्ततितमं यावत्पुरुषाः पूर्वजाः स्मृताः ।
तेषां भाग्योदयैः [1]पूर्णैर्विद्येयं यदि लभ्यते ॥२८॥
तदा सर्वस्वदानेन गृह्णीयादविचारयन ।
कृतकृत्यं मन्यमानो गुरोः पादावभिस्पृशन् ॥२९॥
नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नं कालनियमस्तथा ।
नैव शुक्रास्तदोषादि मलमासादिको न च ॥३०॥
एकतः प्राणदानं स्यादेकतश्चैतदर्प्पणम् ।
तुलया विधृतं चेत्स्यादेतद्दानं विशिष्यते ॥३१॥
पद्मिनीपत्रसंस्थायिजलवज्जीवनं चलम् ।
ततोऽपि चञ्चला सम्पद्वत्तयोश्चेत्तयोर्द्वयोः ॥३२॥
लभ्यतेऽसौ महाविद्या किं नु भाग्यमतः परम् ।
कोटिजन्मार्जितैः पुण्यैर्लभ्यते वा न लभ्यते ॥३३॥
शपथं कुरु देवेशि प्रकाश्येयं न कुत्रचित् ।
सत्यं सत्यं त्रिसत्यं मे ततो वक्ष्यामि ते त्विमाम् ॥३४॥
नो चेत्तेऽपि न वक्ष्यामि प्रमाणं तत्र सैव मे ।
तस्मात्कुरुष्व शपथं यदि शुश्रूषसे प्रिये ॥३५॥
देव्युवाच
शपे त्वच्चरणाब्जाभ्यां हिमाद्रिशिरसा शपे ।
शपे स्कन्दैकदन्ताभ्यां यद्येनामन्यतो ब्रुवे ॥३६॥
शपेऽथवा तया देव्या यां मे त्वं कथयिष्यसि ।
प्रकाशयामि यद्येतां सैव मे विमुखी भवेत् ॥३७॥

१. पूर्वैः ने

[सम्पूर्णग्रन्थस्य विषयाणां समष्ट्याभिधानम्]

महाकाल उवाच

साधु साधु महाभागे प्रतीतिर्मेऽधुना त्वयि ।
अकार्षीः शपथं यस्मात्तस्माद् वक्ष्याम्यसंशयम् ॥३८॥

समाहिता सावधाना भव देवि वराङ्गने ।
विधेहि चित्तमेकाग्रं बध्यतामञ्जलिस्तथा ॥३९॥

कालीं कामकलापूर्वां शृणुष्वावहिता मम ।
मन्त्रं ध्यानं तथा पूजां कवचं च निशामय ॥४०॥

सहस्रनामस्तोत्रं च प्रयोगान् विविधानपि ।
सर्वं तेऽहं प्रवक्ष्यामि यद्यज्जानामि पार्वति ॥४१॥

काली नवविधा प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
आद्या दक्षिणकाली सा भद्रकाली तथापरा ॥४२॥

अन्या श्मशानकाली च कालकाली चतुर्थिका ।
पञ्चमी गुह्यकाली च पूर्वं या कथिता मया ॥४३॥

षष्ठी कामकलाकाली सप्तमी धनकालिका ।
अष्टमी सिद्धिकाली च नवमी चण्डकालिका ॥४४॥

तत्राद्या दक्षिणा काली पुरैव कथिता त्वयि ।
भद्रकाली च कथिता समन्त्रध्यानपूजना ॥४५॥

श्मशानकाल्या भेदास्तु डामरे प्रतिपादिताः ।
भीमातन्त्रे कालकालीमनुरुक्तो मया तव ॥४६॥

शास्त्रेऽस्मिन्नेव कथितो गुह्यकालीमहामनुः ।
या गुह्यकाली सैवेयं काली कामकलाभिधा ॥४७॥

मन्त्रभेदाद् ध्यानभेदाद् भवेत् कामकलात्मिका ।
प्रयोगभेदतश्चापि पूजाया भेदतस्तथा ॥४८॥

यथा त्रिभेदा तारा स्यात्सुन्दरी सप्तसप्ततिः ।
दक्षिणा पञ्चभेदा स्यात्तथेयं गुह्यकालिका ॥४९॥

सप्तधा ध्यानमन्त्राभ्यां भिन्नाभ्यां भिन्नरूपिणी ।
यथा पञ्चाक्षरो मन्त्रो देवी चैकजटा स्मृता ॥५०॥

द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो देवी दक्षिणकालिका ।
तथान्येष्वपि भेदेषु तिष्ठत्सु बहुषु प्रिये ॥५१॥

देवी कामकलाकाली मनुरष्टादशाक्षरः ।
षोडशार्णा यथा मुख्या सर्वश्रीचक्रमध्यगा ॥५२॥

तथेयं नवकालीषु सदा मुख्यतमा स्मृता ।

[आगामिपटलस्थविषयसंसूचनम्]

त्रैलोक्याकर्षणो नाम मन्त्रोऽस्याः परिकीर्त्तितः ॥५३॥
तस्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन पार्वति ।
श्रुत्वा च धारयस्वैनं सर्वकल्याणहेतवे ॥५४॥

इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां प्रथमः पटलः ॥१॥

द्वितीयः पटलः

[कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्याकर्षणमन्त्रोद्धारः]

महाकाल उवाच

आद्यवर्गाद्यवर्णोऽक्ष्णा वामेन परिशीलितः ।
मूर्ध्नि मूर्धा यतृतीययुगाधः परिकीर्तितः ॥१॥

बिन्दुवामाक्षिसंपृक्तो वह्निसर्वाद्यमस्तकः ।
वामश्रुत्यर्द्धचन्द्रेण तृतीयं सपरो भवेत् ॥२॥

दक्षस्कन्धोद्ध्र्वदन्ताभ्यां चाधोरो[1] बिन्दुमस्तकः ।
ओष्ठवर्गद्वितीयो हपूर्वाधारोष्ठबिन्दुयुक् ॥३॥

षडक्षराणि संबोध्य यथानामस्थितिक्रमात् ।
प्रतिलोमेन चोद्धृत्य तानि बीजानि पञ्च वै ॥४॥

भूतबीजाद्यमारभ्य मारबीजान्तमेव हि ।
वैश्वानरवधूयुक्तो मन्त्रो ह्यष्टादशाक्षरः ॥५॥

[उद्धृतमन्त्रमहिम्नः कीर्तनम्]

अस्य स्मरणमात्रेण यावत्यः सन्ति सिद्धयः ।
स्वयमायान्ति पुरतो जपादीनां तु का कथा ॥६॥

सप्त कामकलाकाल्याः मनवः सन्ति गोपिताः ।
तेषु सर्वेषु मन्त्रेषु मुख्योऽयं परिनिष्ठितः ॥७॥

स्मरणादस्य मन्त्रस्य मूर्च्छिताः सर्वदेवताः ।
स्तम्भिता वेपमानाश्च उत्तिष्ठन्त्यतिविह्वलाः ॥८॥

---

१. 'चोधोरो, ने, द[1] द[2]

निदेशवर्तिनो भूत्वा वर्तन्ते चेटका इव ।
किं बहूक्तेन देवेशि सत्यपूर्वं ब्रवीम्यहम् ।।९।।
सहस्रवदनेनापि लक्षकोट्याननेन वा ।
महिमा वर्णितुं शक्यो नास्य वर्षायुतैर्मया ।।१०।।
सामान्यतो विजानीहि यद्यदिच्छति साधकः ।
तत्तत्करोति सकलं प्रजापतिरिवापरः ।।११।।
त्रैलोक्याकर्षणो नाम मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।

[मन्त्रस्यास्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अतः परं प्रवक्ष्यामि छन्दश्चर्षिं च बीजकम् ।।१२।।
अस्य कामकलाकालीमन्त्रस्याहमृषिर्मतः ।
छन्दश्च बृहती ख्यातं देवी चेयं प्रकीर्तिता ।।१३।।
आद्यं बीजं तु बीजं स्यात् क्रोधार्णं शक्तिरेव च ।
विनियोगोऽस्य सर्वत्र सर्वदा सर्वसिद्धये ।।१४।।

[अस्य मन्त्रस्य षडङ्गन्यासविधिः]

षडङ्गं पञ्चबीजैस्तैर्नाम्नाप्येकं च कारयेत् ।
नामाक्षराणि प्रत्येकं तत्र देयानि पार्वति ।।१५।।

[कामकलाकाल्याः ध्यानम्]

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि कुरु चित्तैकतानताम् ।
उद्यद्घनाघनाश्लिष्यज्जवाकुसुमसन्निभाम् ।।१६।।
मत्तकोकिलनेत्राभां पक्वजम्बूफलप्रभाम् ।
सुदीर्घप्रपदालम्बिविस्रस्तघनमूर्द्धजाम् ।।१७।।

ज्वलदङ्गारवच्छोणनेत्रत्रितयभूषिताम् ।
उद्यच्छारदसम्पूर्णचन्द्रकोकनदाननाम् ॥१८॥
दीर्घदंष्ट्रायुगोदश्चद्विकरालमुखाम्बुजाम् ।
वितस्तिमात्रनिष्क्रान्तललज्जिह्वाभयानकाम् ॥१९॥
[1]व्यात्ताननतया दृश्यद्वात्रिंशद्दन्तमण्डलाम् ।
निरन्तरं वेपमानोत्तमाङ्गां घोररूपिणीम् ॥२०॥
अंसासक्तनृमुण्डासृक् पिबन्तीं वक्रकन्धराम् ।
सृक्कद्वन्द्वस्रवद्रक्तस्नापितोरोजयुग्मकाम् ॥२१॥
उरोजाभोगसंसक्तसंपतद्रुधिरोच्चयाम् ।
सशीत्कृतिधयन्तीं तल्लेलिहानरसज्ञया ॥२२॥
ललाटे घननारासृग्विहितारुणचित्रकाम् ।
सद्यश्छिन्नगलद्रक्तनृमुण्डकृतकुण्डलाम् ॥२३॥
श्रुतिनद्धकचालम्बिवतंसलसदंसकाम् ।
स्रवदस्रौघया शश्वन्मानव्या मुण्डमालया ॥२४॥
आकण्ठगुल्फलम्बिन्यालङ्कृतां केशबद्धया ।
श्वेतास्थिगुलिकाहारग्रैवेयकमहोज्ज्वलाम् ॥२५॥
शवदीर्घाङ्गुलीपंक्तिमण्डितोरःस्थलस्थिराम् ।
कठोरपीवरोत्तुंगवक्षोजयुगलान्विताम् ॥२६॥
महामारकतग्राववेदिश्रोणिपरिष्कृताम् ।
विशालजघनाभोगामतिक्षीणकटिस्थलाम् ॥२७॥
अन्त्रनद्धार्भकशिरोवलत्किङ्किणिमण्डिताम् ।
सुपीनषोडशभुजां महाशङ्खाम्बदङ्गकाम् ॥२८॥
शवानां धमनीपुञ्जैर्वेष्टितैः कृतकङ्कणाम् ।
ग्रथितैः शवकेशस्रग्दामभिः कटिसूत्रिणीम् ॥२९॥

१. इतश्चतस्रः पंक्तयः, ब[1], ब[2], इत्यनयोर्न सन्ति ।

शवपोतकरश्रेणीग्रथनैः　कृतमेखलाम् ।
शोभमानांगुलीं मांसमेदोमज्जांगुलीयकैः ॥३०॥
असिं त्रिशूलं चक्रं च शरमंकुशमेव च ।
लालनं च तथा कर्त्रीमक्षमालां च दक्षिणे ॥३१॥
पाशं च परशुं नागं चापं मुद्गरमेव च ।
शिवापोतं खर्परं च वसासृङ्मेदसान्वितम् ॥३२॥
लम्बत्कचं नृमुण्डं च धारयन्तीं स्ववामतः ।
विलसन्नूपुरां देवीं ग्रथितैः शवपञ्जरैः ॥३३॥
श्मशानप्रज्वलद्घोरचिताग्निज्वालमध्यगाम् ।
अधोमुखमहादीर्घप्रसुप्तशवपृष्ठगाम् ॥३४॥
वमन्मुखानलज्वालाजालव्याप्तदिगन्तराम् ।
प्रोत्थायैव हि तिष्ठन्तीं प्रत्यालीढपदक्रमाम् ॥३५॥
वामदक्षिणसंस्थाभ्या नदन्तीभ्यां[1] मुहुर्मुहुः ।
शिवाभ्यां घोररूपाभ्यां वमन्तीभ्यां महानलम् ॥३६॥
विद्युदङ्गारवर्णाभ्यां वेष्टितां परमेश्वरीम् ।
सर्वदेवानुलग्नाभ्यां पश्यन्तीभ्यां महेश्वरीम् ॥३७॥
अतीव भषमाणाभ्यां शिवाभ्यां शोभितां मुहुः ।
कपालसंस्थं मस्तिष्कं ददतीं च तयोर्द्वयोः ॥३८॥
दिगम्बरां मुक्तकेशीमट्टहासां भयानकाम् ।
सप्तधा नद्धनारान्त्रयोगपट्टविभूषिताम् ॥३९॥
संहारभैरवेणैव सार्द्धं संभोगमिच्छतीम् ।
अतिकामातुरां कालीं हसन्तीं खर्वविग्रहाम् ॥४०॥
कोटिकालानलज्वालान्यक्कारोद्यत्कलेवराम् ।
महाप्रलयकोटयर्क्कविद्युदर्वुदसन्निभाम् ॥४१॥

---

१. नदतीभ्यां, द२

कल्पान्तकारिणीं कालीं महाभैरव[1]रूपिणीम् ।
महाभीमां दुर्निरीक्ष्यां सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥४२॥
शत्रुपक्षक्षयकरीं दैत्यदानवसूदनीम् ।
चिन्तयेदीदृशीं देवीं कालीं कामकलाभिधाम् ॥४३॥

[कामकलाकाल्याः सपरिवाराया अर्चाविधिः]

ततो निःसार्य्य हृत्पद्मात्पीठे श्रीकाममोहने ।
यजेतावाह्य तां देवीं परिवारायुधैः सह ॥४४॥

[कामकलाकाल्याः यन्त्रस्य स्वरूपाभिधानम्]

यन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि तत्र धेहि मनः प्रिये ।
भूपुरे वसुवज्राढ्ये पद्ममष्टदलान्वितम् ॥४५॥
केसराणि प्रकल्प्यानि तत्रान्तश्चापि कर्णिका ।
कर्णिकान्तस्त्रिकोणस्य त्रितयं पृथगेव हि ॥४६॥
बहिस्त्रिकोणकोणेषु लिखेद् बीजत्रयं शुभम् ।
मायाबीजं तु वामे स्यात् क्रोधबीजं च दक्षिणे ॥४७॥
अधः पाशं विनिर्दिश्य कन्दर्पार्णं तु मध्यतः ।
तदन्तः स्थायिनी देवी तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥४८॥
एतद् यन्त्रं महादेवि सर्वकामफलप्रदम् ।
एतस्य सर्वयन्त्राणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥४९॥

[पूजाविधिनिरूपणम्]

भूतशुद्धिं विधायादौ पूर्ववत्कथितां प्रिये ।
मातृकान्यासपीठादिन्यासं कुर्यात्पुरोक्तवत् ॥५०॥
क्वचिच्च गुह्यकालीवत् क्वचिद्दक्षिणकालिवत्
न्यासपूजादिकं सर्वं विशेषः कुत्रचित् प्रिये ॥५१॥

---

१. ०रौरव, मै०, ब१

सामान्यं च विशेषं च स्थापयेदर्ध्ययुग्मकम् ।
चतुरः पूजयेद्देवान् गणार्काच्युतशूलिनः ॥५२॥
कुर्याच्च मानसीं पूजामुपचारैश्च पार्थिवः ।
ततो मुख्यां यजेताद्यां कालीं कामकलाभिधाम् ॥५३॥

[कामकलाकाल्या आवाहनमन्त्रः]

आवाहयेदनेनैव मन्त्रेण शृणु पार्वति ।
तारं. मायां स्मरं पाशमुच्चार्यार्णचतुष्टयम् ॥५४॥
षडक्षराणि सम्बोध्य देवीनाम यथार्थवत् ।
आगच्छ द्वितयं तिष्ठ युगलं तदनु क्षिपेत् ॥५५॥
पूजां गृहाणेति युगं वह्निजायान्तमेव हि ।
आवाहयेदनेनैव मन्त्रेण परमेश्वरीम् ॥५६॥
मूलमन्त्रेण वै कार्यमन्यत्सर्वं शुचिस्मिते ।

[उपचारार्पणस्य सामान्यमन्त्रः]

ङेऽन्तं तन्नाम चोच्चार्य कामबीजाद्यमग्रतः ॥५७॥
सर्वेष्वेवोपचारेषु मन्त्रोऽसौ परिकीर्तितः ।
विशेषमन्त्रो नो यत्र तत्रासौ मनुरिष्यते ॥५८॥
यत्र यत्र विशेषोऽस्ति तत्प्रवक्ष्ये न संशयः ।

[अर्घ्यदानमन्त्रः]

अर्घ्यदाने विशेषोऽस्ति तदपि व्याहरामि ते ॥५९॥
प्रणवं पाशरोषौ च लज्जां भीतां च बीजकम् ।
श्मशानवासिनीं ङेऽन्तां ङेऽन्तं नाम तथोच्चरेत् ॥६०॥
एषोऽर्घो नम इत्युक्त्वा दद्यादर्घं सुकल्पितम् ।

[मूलमन्त्रेण षोडशोपचारार्पणविधानम्]

मूलमन्त्रेण नाम्ना च ह्युपचारांश्च षोडश ॥६१॥
निवेदयेन्महाकाल्यै यद्यदुक्तं प्रपूजने ।
न गन्धदाने मन्त्रोऽस्ति न वा पुष्पसमर्पणे ॥६२॥
तयोरेव विशेषोऽस्ति कथयिष्यामि तच्छृणु ।

[अनंगगन्धपरिचयः]

यदष्टादशवार्षिक्या न्यूनाया अपि वा भवेत् ॥६३॥
आर्त्तवं मासिकं यत्स्यादाद्याह्नोजातशोणितम् ।
अनङ्गगन्धस्तन्नाम नाधिकायाः कदाचन ॥६४॥
तद्दानफलबाहुल्यं वक्तुमेव न शक्यते ।
स्वयमागत्य देवी सा गृह्णाति शिरसार्पितम् ॥६५॥
तस्माद् घृणां न कुर्वीत तद्दाने प्रयतेत वै ।

[अनंगगन्धदानमन्त्रः]

अनङ्गगन्धदानस्य मन्त्रमाकर्णय प्रिये ॥६६॥
तारं वाग्भवबीजं च प्रासादं कमलार्णकम् ।
क्रोधमारपिशाचार्णं मायां पाशमुदीर्य च ॥६७॥
ङेन्ऽतं रतिप्रियाशब्दं प्रोच्चरेन्नवबीजतः ।
ङेऽन्तं तन्नाम चोच्चार्य एष तन्नाम चोद्धरेत् ॥६८॥
हार्दमन्त्रं समुच्चार्य गन्धं दद्याच्च साधकः ।

[स्वयम्भूकुसुमपरिचयः]

जाताद्यरजसो नार्यायदाद्यदिनसंभवम् ॥६९॥
पुष्पं स्वयंभूपुष्पं तत्तदानन्दाय कल्पते ।
न सौवर्णेन पुष्पेण न मुक्तामणिभिस्तथा ॥७०॥

न दीपैर्नापि नैवेद्यैर्नापि पूजादिसम्भरैः ।
न होमैर्न जपैर्नापि तर्पणैः प्रीयते शिवा ॥७१॥
यथा स्वयम्भूपुष्पेण प्रीयते जगदम्बिका ।
तत्रापि परयोषाया इत्यागमसुगोपितम् ॥७२॥

[स्वयम्भूकुसुमार्पणमन्त्रः]

अधुना कथ्यते तस्य दानमन्त्रो वराङ्गने ।
प्रणवादी त्रपारत्यौ ङेऽन्तं नाम ततो वदेत् ॥७३॥
क्रोधं पाशं समुच्चार्य ङेऽन्ता च भगमालिनी ।
वाग्भवं च वधूबीजं ङेऽन्ता चापि भगप्रिया ॥७४॥
पैशाचं कामलं बीजं ङेऽन्ता च मदनातुरा ।
एतत्पुष्पस्य नामापि नम इत्यक्षरद्वयम् ॥७५॥
प्रोच्चार्य दद्यात्तद्देव्यै सर्वकामार्थसिद्धये ।
परमाभीष्टमाप्नोति दत्वैतत्पुष्पमुत्तमम् ॥७६॥
धूपे दीपे च नैवेद्ये मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ।
चामरच्छत्रदाने च स एव परिकीर्तितः ॥७७॥

[पूजायां बल्यर्पणमन्त्रः]

पूजायां बलिदानस्य मन्त्रमाकर्णय प्रिये ।
एकं तारं समुद्धृत्य मारमायारुपोर्णकान् ॥७८॥
त्रिस्त्रिः प्रोच्चार्य ह्रां ह्रीं ह्रूमेतत्त्रितयमुद्धरेत् ।
भगप्रिये त्विति पदं भगमालिनि चेति च ॥७९॥
महाबलिमिति स्मृत्वा गृह्णंति च पदद्वयम् ।
भक्षयेति पदद्वन्द्वं मम शत्रूनथापि च ॥८०॥
नाशयोच्चाटय हन त्रुट छिन्धि पचापि च ।
मथ विध्वंसय तथा मारय द्रावयापि च ॥८१॥

युगं युगं दश भवेन्मायाग्निवनितायुतः ।
बलिदाने महामन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ॥८२॥

[भोजने बल्यर्पणस्य पृथङ् मन्त्रः]

भोजने बलिदानस्य मन्त्रोऽन्योऽस्ति वरानने ।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य लज्जां ह्रूं युग्मयुग्मकम् ॥८३॥
क्षौं क्षौं भूतार्णयुगलं पाशयुग्मं स्मरद्वयम् ।
नाम संबोध्य देव्यास्तु महाकामातुरेऽपि च ॥८४॥
महाकालप्रिये चापि ममानिष्टं ततो वदेत् ।
निवारय पदद्वन्द्वं शत्रूनिति पदं ततः ॥८५॥
स्तम्भयेति पदद्वन्द्वं मारयेति तथैव च ।
दम युग्मं मर्द्दययुगं शोषयेति युगं ततः ॥८६॥
इमं बलिं गृह्ण गृह्ण तत एतावदुच्चरेत् ।
खादयेति पदद्वन्द्वं क्रोधाग्निवनितायुतः ॥८७॥
भोजनादौ महामन्त्रो बलिदाने प्रकीर्तितः ।
एवं निर्वर्त्य देव्यास्तु पूजां सर्वोपचारिकाम् ॥८८॥
सप्तावरणपूजां तामारभेत ततः क्रमात् ।

इति श्रीमदादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां
द्वितीयः पटलः ।

———

तृतीयः पटलः

सप्तावरणपूजाविधिः

[यन्त्रे कोणस्थदेवीनां पूजाविधिः]

महाकाल उवाच
पूर्वं यत्कथितं यन्त्रं त्रित्रिकोणपरिष्कृतम् ।
बहिस्त्रिकाणे तस्यैव तयोर्मध्ये च षड् यजेत् ॥१॥
संहारिणी भीषणा च मोहिनी कोणगा[1] इमाः ।
कोणमध्यस्थितास्तिस्रः कुरुकुल्ला कपालिनी ॥२॥
विप्रचित्ता क्रमेणैव पूज्याः षट् प्रथमावृतौ ।
मध्यत्रिकोणेऽपि तथा कोणकोणान्तरस्थिताः ॥३॥
उग्रा चोग्रप्रभा दीप्ता त्रिकोणाग्रे व्यवस्थिताः ।
नीला घना वलाका च तयोरन्तरगोचराः ॥४॥
पूजनीयाः प्रयत्नेन द्वितीयावरणे प्रिये ।
सर्वान्तःस्थे त्रिकोणे तु त्रिस्त्रिरे[2] कत्र पूजयेत् ॥५॥
ब्राह्मी नारायणी चैव सव्ये माहेश्वरी तथा ।
चामुण्डा चापि कौमारी तथा चैवापराजिता ॥६॥
दक्षिणे पूजयेत्तिस्रस्तिस्रः पश्चिमगा अपि ।
वाराही नारसिंही च तथेन्द्राणी प्रकीर्तिता ॥७॥
सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः ।
कपालं तर्ज्जनं[3] चैव धारयन्त्यः सुसम्मदाः ॥८॥
सर्वासामपि वै देयो बलिः पूजा तथैव च ।
अनुलेपनकं चापि विभवेनोपकल्पितम् ॥९॥
त्रिस्त्रिः पूजा प्रकर्तव्या सर्वासामपि सर्वदा ।

---

१. कामगा, ब०२
२. कं प्रपूजयेत्, ब०२
३. नीं, ब२

[अष्टभैरवपूजा]

दलेषु पूजयेदष्टौ भैरवा ये प्रकीर्तिताः ।।१०।।
असिताङ्गो रुरुश्चैव चण्ड उन्मत्तसंज्ञकः ।
क्रोधस्तथैव कापाली तथा भीषणनामकः ।।११।।
संमोहनस्तथा सर्वे कर्त्तृखर्प्परधारिणः ।
कालाञ्जनचयप्रख्या द्विभुजा रौद्ररूपिणः ।।१२।।

[अष्टक्षेत्रपालानां पूजा]

एतान् संपूज्य विधिवत् क्षेत्रपालान् प्रपूजयेत् ।
एकपादो विरूपाक्षो भीमः संकर्षणस्तथा ।।१३।।
चण्डघण्टो[1] मेघनादो वेगमाली प्रकम्पनः ।
एते चाष्टौ क्षेत्रपाला दलयोरन्तरे[2] स्थिताः ।।१४।।
विकृतास्या भीमरूपा गदापरिघपाणयः ।
दलयोरन्तरे पूज्याः पञ्चमावरणे प्रिये ।।१५।।

[अष्टयोगिनीनां पूजा]

षष्ठे चावरणे देव्या योगिनीरष्ट पूजयेत् ।
उल्कामुखी कोटराक्षी विद्युज्जिह्वा करालिनी ।।१६।।
वज्रोदरी तापिनी च ज्वाला जालन्धरी तथा ।
व्यात्तानना घोररावा जिह्वाललनभीषणाः ।।१७।।
वसासृङ्मांससंपूर्णकपालासिकराः स्मृताः ।
एता दलाग्रे संपूज्याः षष्ठावरणके क्रमात् ।।१८।।

[लोकपालानां पूजा]

लोकपालाश्च सम्पूज्या बहिर्दशसु दिक्ष्वपि ।
स्वस्वायुधासक्तकराः स्वस्ववाहनसंयुताः ।।१९।।

---

१ ०घण्टा, ब²
२. ०रन्तरु, ब²

सप्तावरणमेतत्ते कथितं भक्तितत्परे ।
देव्याः कामकलाकाल्याः समन्त्रध्यानपूर्वकम् ।।२०।।
एवं पूर्वोक्तरूपां तां सम्पूज्य परमेश्वरीम् ।
योगिनीचक्रसहितां भैरवेण समन्विताम् ।।२१।।
ततश्च यत्नतः कान्ते बलिं सम्प्रतिपादयेत् ।
बलिमुत्सार्य नैवेद्यं नैर्ऋत्यां दिशि चोत्सृजेत् ।।२२।।
हृदये चैव देवीं तां संस्थाप्य विधिवत्पुनः ।
निर्माल्यं च शुचौ देशे धारणीयं शिरस्यपि ।।२३।।

[कामकलाकाल्याः पुरश्चरणविधिवर्णनम्]

अतः परं प्रवक्ष्यामि पौरश्चरणिकं विधिम् ।
एकस्मिन् यत्र विहिते सिद्धिस्तात्कालिकी भवेत् ।।२४।।
भूमिशुद्धिर्द्रव्यशुद्धिः पुरैव कथिता मया ।
यमाश्च नियमा ये स्युः[1] पुरश्चरणकर्मणि ।।२५।।
सर्वानेव प्रयुञ्जीत सततं भक्तितत्परः ।
कृतनित्यक्रियः प्रातः कृतपूजाविधिः शुचिः ।।२६।।
नारास्थि निखनेद् भूमावमुं मन्त्रमुदीरयन् ।
तारक्रोधार्णह्रीपाशस्मरभूतान् समुद्धरन् ।।२७।।
सिद्धिमुच्चार्य देहीति युग्मं बह्न्यङ्गनां वदेत् ।
तदुपर्येव चास्तीर्य स्वासनं सुष्ठु कल्पितम् ।।२८।।
नृमुण्डमग्रतः कृत्वा नरास्थिजपमालया ।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्री हविष्याशी दिवा शुचिः ।।२९।।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च ।
दशांशं होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत् ।।३०।।

१. ०श्चैव, ब[2]

होमे सन्तर्पणे चैव पूजावत्कथितो विधिः ।
पूजायां वा प्रयोगे वा होमे वा तर्पणेऽथ वा ॥३१॥
गुह्यकालीविधानेन सर्वं कार्यं शुचिस्मिते ।
अत्रानुक्तं विधानं यत्तत्रत्यं तत्प्रकल्पयेत् ॥३२॥
तत्राप्यनुक्तं यत्किञ्चित्तत्रोक्तो दक्षिणाविधिः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं समासेन वरानने ॥३३॥
देव्याः कामकलाकाल्याः पूजाविधिरनुत्तमः ।

[कामकलाकाल्याः प्रयोगविधिः]

अतः परं प्रयोगांस्तान् वक्ष्यामि प्रयता शृणु ॥३४॥
स्नातः शुक्लाम्बरधरः कृतनित्यक्रियो दिवा ।
रात्रौ नग्नः शयानश्च मैथुने च व्यवस्थितः ॥३५॥
अथवा मुक्तकेशश्च प्रजपेदयुतं नरः ।
भवन्ति तत्क्षणाद् देवि तेन सर्वार्थसिद्धयः ॥३६॥
स्तम्भनं मोहनं वापि[1] वशीकारो विशेषतः ।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं साधयेदविचारयन् ॥३७॥

[द्वितीयः प्रयोगः]

नग्नां परस्त्रियं वीक्ष्य प्रजपेदयुतं सुधीः ।
स भवेत्सर्वविद्यानां पारगः सर्वदैव हि ॥३८॥
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निःप्रभा मताः ।
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ॥३९॥

[तृतीयः प्रयोगः]

अथ वा मुक्तकेशोऽसौ हविष्यं भक्षयन्नरः ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा भगमामन्त्र्य यत्नतः ॥४०॥

---

१. चापि, द[2]

मैथुनं यः प्रकुर्वीत धनधान्यसमन्वितः ।
सर्वविद्यावतां श्रेष्ठः स भवेन्नात्र संशयः ॥४१॥

[चतुर्थः प्रयोगः]

ऋतुमत्या भगं पश्यन्प्रजपेदयुतं नरः ।
अनर्थितापि तद्वाणी गद्यपद्यमयी भवेत् ॥४२॥
छन्दोबद्धा परं तस्य वाणी वक्त्रात्प्रजायते ।

[पञ्चमः प्रयोगः]

सुरतेषु च जप्तव्यं महापातकमुक्तये ॥४३॥
धनागमाय च तथा परयोषासमागमे ।

[षष्ठः प्रयोगः]

यदि नो योषितः सङ्गस्तदा रेतः प्रयत्नतः[1] ॥४४॥
समुत्सार्य जपं कुर्यात्सर्वकामार्थसिद्धये ।
तत्रैव रतिमारभ्य यो जपेन्मन्त्रवित्तमः ॥४५॥
अयुतं मैथुनी भूत्वा[2] मन्त्रजापपरायणः ।
स याति परमां सिद्धिं देवेनापि सुदुर्लभाम् ॥४६॥
आकर्षणवशीकारौ मारणोच्चाटने तथा ।
स्तंभनं मोहनं चैव बुद्धेः सन्त्रासनं तथा ॥४७॥
करोति तत्क्षणादेव नात्र कार्य्या विचारणा ।
वाग्मित्वं च धनित्वं च बहुपुत्रत्वमेव च ॥४८॥
न जरा न च रोगो वा न च मृत्युर्न वा भयम् ।
न च त्रासो मनुष्येभ्यो न च वाक्कायपातनम् ॥४९॥
अथवा स भवेन्नित्यं चतुर्विंशतिसिद्धिभाक् ।

---

१. प्रजायते, द[1] द[2]
२. भूय, द[2] ।

[सप्तमः प्रयोगः]

स्वदेहरुधिराक्तैश्च विल्वपत्रैः सहस्रशः ॥५०॥
श्मशानेऽभ्यर्चयेद् देवीं वागीशसमतां व्रजेत् ।
रेतोयुक्तजपापुष्पैः करवीरस्य वा प्रिये ॥५१॥
श्मशानेऽभ्यर्चयेद् देवीं सर्वसिद्धिं स विन्दति ।
धनवान् बलवान् वाग्मी सर्वयोषित्प्रियो भवेत् ॥५२॥
सुखी स्यान्नात्र सन्देहो महाकालवचो यथा ।

[अष्टमः प्रयोगः]

श्मशाने योषितं बीजैर्मध्येऽभ्यर्च्य सहस्रशः ॥५३॥
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गीं रक्तपुष्पैरलङ्कृताम् ।
पूजयित्वा भगं वीक्ष्य ततो ध्यायेत कालिकाम् ॥५४॥
सद्यो हि लभते राज्यं यदि सा न भयायते ।
मेषमाहिषमांसेन वाग्मित्वं तस्य जायते ॥५५॥

[नवमः प्रयोगः]

श्मशाने शयने चैव शवासनगतः पुमान् ।
असकृच्च जपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिफलप्रदम्[1] ॥५६॥
तर्पयेत्तां श्मशाने तु रक्तमांसादिभिस्त्रिधा ।
त्रिस्त्रिर्मनुमुदीर्यैव सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥५७॥

[दशमः प्रयोगः]

रेतोभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन वरानने ।
मैथुनायितयोषाया[2] भगप्रक्षालनोदकैः ॥५८॥

---

१. ०फलं लभेत, द[2] ।
२. मैथुनार्पितयोषाया, ब[1] द[2] ।

मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि ।
उन्दुरोलूकरक्तेन वाग्मिता तस्य जायते ॥५९॥
धनित्वं जायते तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते ।
वचसा स भवेज्जीवो धनेन च धनाधिपः ॥६०॥
आज्ञया देवराजोऽसौ रूपेण च मनोभवः ।
बलेन पवनो ह्येष सर्वतश्चार्थसाधकः ॥६१॥
पक्वापक्वे हि यन्मांसे सास्थि दद्यात्सदा बलिम् ।
मूषमार्जारमांसं च मेषमाहिषसंभवम् ॥६२॥
सर्वं सास्थि प्रदातव्यं सदा लोमसमन्वितम् ।

[एकादशतमः प्रयोगः]

स्ववीर्यं स्वनखं छिन्नं केशं सम्मार्जनागतम्[1] ॥६३॥
निवेदयेत् श्मशाने तत्सर्वसिद्धिं स विन्दति ।

[द्वादशतमः प्रयोगः]

नारीरजोऽन्वितं कृत्वा पर्णानां शतमुत्तमम् ॥६४॥
प्रत्येकं प्रजपेन्मन्त्रं ततस्तद्धोमयेद् बुधः ।
युगानामयुतं तेन मान्मथी पूजिता भवेत् ॥६५॥
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य वाग्मी धीरश्च जायते ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्पृथिव्यां जातु विद्यते ॥६६॥

[त्रयोदशतमः प्रयोगः]

योनिरूपं हि कुण्डं वै कृत्वा वैतस्तिमानतः ।
हस्तविस्तारतः कृत्वा हस्तं चापि तथा अधः ॥६७॥

---

१. ०नीगतम् द[२] ।

तत्र कार्या हि मन्त्रेण वह्नि[1] स्थापनिकाः क्रियाः ।
संहारभैरवायादौ दद्यात्प्रथममाहुतिम् ॥६८॥
रुरुमांसेन साज्येन भक्तेन रुधिरेण च ।
कृष्णपुष्पेण साज्येन सरक्तेन विशेषतः ॥६९॥
आमिषादिभिरप्येव श्मशाने जुहुयात्सुधीः ।
स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः प्रयतमानसः ॥७०॥
दिवा चैव प्रकर्तव्यं सर्वकामार्थसिद्धये ।
रात्रौ नग्नो मुक्तकेशो मैथुने च व्यवस्थितः ॥७१॥
प्रकर्त्तव्यं प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये ।
किं बहूक्तेन देवेशि सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥७२॥
द्विजादीनां तु सर्वेषां दिवाविधिरिहोच्यते ।
शूद्राणां तु तथा प्रोक्तं रात्रिदृष्टं महामतम् ॥७३॥
यद्यत्कामयते चित्ते तत्तदाप्नोति नित्यशः ।

[उत्तमसिद्धिलाभाय हवनविधिवर्णनम्]

भैरवं तं यजेदादौ पश्चाद्देवीं प्रयत्नतः ॥७४॥
द्विधा विभज्य वस्तूनि यत्नात्साधकसत्तमः ।
मांसं रक्तं तिलं केशं नखं भक्तं च पायसम् ॥७५॥
आज्यं चेति प्रयत्नेन होतव्यं सर्वसिद्धये ।
एवं कृत्वा विधानं हि लभते सिद्धिमुत्तमाम् ॥७६॥
यद्यत्प्रार्थयते चित्ते तत्तदाप्नोति सर्वथा ।
देवत्वं दानवत्वं च सिद्धचारणतां तथा ॥७७॥
दत्त्वा संपूज्य चाप्नोति सर्वमेवमतन्द्रितः ।
किं बहूक्तेन देवेशि सत्यं कृत्वा त्वयि ब्रुवे ॥७८॥

---

१. वह्निः इति मातृकापाठः ।

ब्रह्माण्डगोलके सिद्धिर्या काचिज्जगतीतले ।
करामलकवत् सिद्धिस्तस्य स्यान्नात्र संशयः ।।७९।।
एते सामान्यतः प्रोक्ताः प्रयोगाः मन्त्रसिद्धये ।

[आगामिपटलविषयसंसूचनम्]

विशेषतस्तु तानेव कथयिष्याम्यतः परम् ।।८०।।

एवं देवीं कलुषदहनीं पूजयित्वा यथावद्
हुत्वा दत्वा बलिमति तथा तर्पयित्वाभिषिच्य ।
यं यं कामं रचयति मनस्याहितं संहितं वा
तं तं प्राप्य श्रयति पदवीं योगिभिः प्रार्थनीयाम् ।।८१।।

इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां
सप्तावरणसामान्यप्रयोगो नाम
तृतीयः पटलः ।

चतुर्थः पटलः

[विशेषप्रयोगवर्णनम्]

महाकाल उवाच
अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रयोगानतिगोपितान् ।
सकृद्विधानतो येषां सर्वसिद्धिः करे स्थिता ॥१॥
कामराजादयो भेदास्त्रिपुराया यथा प्रिये ।
तथा कामकलाकाल्या भेदाश्चाष्टौ पुरोदिताः ॥२॥
एषैव प्रकृतिर्ज्ञेया सर्वा विकृतयोऽपराः ।
मन्त्रे ध्याने विशेषोऽस्ति न प्रयोगे कदाचन ॥३॥
या गुह्यकाली कथिता समन्त्रध्यानपूजना ।
वक्ष्यमाणप्रयोगेण सैव कामकला भवेत् ॥४॥
पुरश्चरणमेकं हि कृत्वा देवि वरानने ।
तत एते प्रकर्त्तव्याः प्रयोगा[1] मन्त्रसिद्धये ॥५॥

[शिवाप्रयोगविधिः]

शिवाप्रयोगं वक्ष्यामि तत्राप्यादौ वरानने ।
सदा कृष्णचतुर्दश्यां कृतनित्यक्रियो दिवा ॥६॥
चतुर्विधान्नसामग्रीं रात्रौ निष्पादयेत्सुधीः ।
पायसापूपसंयावशष्कुलीमोदकान्विताम् ॥७॥
नानाविधौदनयुतां नानाव्यञ्जनपूरिताम् ।
नानाविधमहामत्स्यमांससंभारसंभृताम् ॥८॥
अन्यैश्च विविधैर्भक्ष्यैः षड्रसैः परिपूरिताम् ।
हैमे वा राजते ताम्रे मृण्मये भाजनेऽथ वा ॥९॥

---

१. प्रकारा, द[1]

पलाशपुटके वापि मधूकस्य दलेऽथ वा[1]।
एकीकुर्यात्ततः सर्वं पृथक् पृथगुदारधीः ॥१०॥
अथान्यभाजने तद्वद्भिन्नभिन्नतया प्रिये।
स्थापयेद्वक्ष्यमाणानि शुचिमांसानि भागशः ॥११॥
पुटके पुटके कुर्यादेकीभावं न कारयेत्।
एकीभावान्महान् दोषः फलसिद्धिश्च नो भवेत् ॥१२॥
आमान्यजाद्यनानीह[2] तथापर्युषितानि च।
अनुत्तप्तानि मेध्यानि पाष्ठान्द्ररहितानि च ॥१३॥
अपूतिगन्धोनि तथा क्रव्याद्भिरहतानि च।
रक्तवन्ति च रक्तानि रसवन्ति तथैव च ॥१४॥
वाराहमार्क्ष कापेयं खाड्गं माहिषमेव च।
गौधं शाल्यं तथा मार्गं कार्ष्णसारं च राङ्कवम् ॥१५॥
गावयं च तथा शाशमाजमौरणमेव च।
नाक्रं च कामठं ग्राहं वाभ्रवं सर्वकामदम् ॥१६॥
अष्टादशापि मांसानि कुर्यादेकत्र साधकः।
स्थलजान्यपि वार्जानि ग्रामजारण्यजान्यपि ॥१७॥

[षट्त्रिंशद्विधपक्षिमांसवर्णनम्]

अथापराणि खागानि षट्त्रिंशत्पललान्यपि।
कुर्यादेकत्र विधिवत्साहसी साधकोत्तमः ॥१८॥
वार्ध्रीनसं च कापोतं पारावतमथापि च।
औलूकं च तथा श्यैनं खाञ्जनं चाषमेव च ॥१९॥
काकं च कौररं पैकं कौक्कुटं चाटकं तथा।
कालिङ्गं कारटं चापि दात्यूहं चातकं तथा ॥२०॥

---

१. नास्ति पंक्तिरियम् ब[2]
२. आमान्यद्यतंनानीह इति समुचितः पाठः

गार्ध्रं चैल्लं च कैरं च क्रौञ्चं वाकं तथैव च ।
मायूरं तैत्तिरं चापि हांसं चाक्रं च सारसम् ॥२१॥
चाकोरं टैट्टिभं चापि लावं हारीतमेव च ।
कारण्डवं च वार्ताकं शातपत्रं च माद्गवम् ॥२२॥
कौथण्टिकं भरद्वाजं[1] सर्वं षट्त्रिंशदीरितम् ।
कर्त्तव्यानि तथैतानि पूर्वोक्तगुणवन्ति च ॥२३॥
एतानि मांसान्यादाय सर्वाण्येव शुचिस्मिते ।
पुटके पुटके कुर्यात्पृथक् पृथगमायया ॥२४॥
तदन्नं तानि मांसानि गृहीत्वा कुसुमादि च ।
ततोऽर्धरात्रे चोत्थाय श्मशानाभिमुखो व्रजेत् ॥२५॥
अथवा विपिनं घोरं निर्जनं भूतसंकुलम् ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा साधको वीतभीः शुचिः ॥२६॥
प्रेतचेलासनं कृत्वा कृत्वा चाम्बुजमासनम् ।
उपविश्यार्चयेद् देवीं कालीं कामकलाभिधाम् २७॥
गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च दीपैर्नैवेद्यसंचयैः ।

[शिवाबल्यर्पणार्थमनुज्ञायाचनमन्त्रः]

जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य ततोऽनुज्ञां हि याचयेत् ॥२८॥
अनेनैव तु मन्त्रेण वक्ष्यमाणेन पार्वति ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा धरातलमिलच्छिराः ॥२९॥
देवि कामकलाकालि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
अनुज्ञां देहि मे देवि करिष्येऽहं शिवाबलिम् ॥३०॥

---

१. भारद्वाजं, द[2]

इत्यनुज्ञां समादाय निर्भीः प्रयतमानसः ।

[शिवाया आवाहनविधिः]

उल्कामुखीर्घोररूपाः[1] शिवा आवाहयेच्छनैः ॥३१॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण त्रिरुच्चार्य विशेषतः ।
बद्धाञ्जलिर्मुक्तकेशो मालावान्नग्न उत्थितः ॥३२॥
तारवाग्भवह्लीरोषप्रासादानङ्गभौतकम् ।
मुखवामेक्षणौष्ठाधो रदाधोयुग्धकारकः ॥३३॥
योगश्च बलयोर्द्विर्द्विः कामलं च ततः प्रिये ।
बीजमुद्धृत्य षड्वर्णं नाम संबोधयेत्ततः ॥३४॥
घोररावे इति पदं ततोऽनन्तरमुच्चरेत्[2] ।
महाकापालि च तथा विकटदंष्ट्रे तथैव च ॥३५॥
संमोहिनी शोषिणी च संबोधनतया वदेत् ।
करालवदने चेति तत उच्चारयेत्सुधीः ॥३६॥
मदनोन्मादिनि पदं ज्वालामालिनि चेति च ।
शिवारूपिणि चोद्धृत्य ततो भगवतीति च ॥३७॥
आगच्छ द्वन्द्वमुल्लिख्य मम सिद्धिमितीति च ।
देहि युग्मं मामिति च रक्ष रक्षेति चोद्धरेत् ॥३८॥
ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लौं ततः प्रोक्त्वा क्षां क्षीं क्षूं क्षौं विनिर्दिशेत् ।
क्रोधयुग्मं चास्त्रयुगं वह्निजायान्तगो मनुः ॥३९॥
त्रिरुच्चार्य शनैरित्थं प्रतीक्षेत शिवापथम् ।

[शिवापूजाविधिः]

कालीरूपधराः सर्वा यद्यागच्छन्ति तत्क्षणात् ॥४०॥
तदा सिद्धिं विजानीयाद्विपरीते तु सान्यथा ।
शनैरुच्चारयन्मन्त्रं पूर्वोक्तं भक्तितत्परः ॥४१॥

---

१. ०घोररावाः द[1]
२. ०मुद्धरेत् द[1] द[2]

अर्द्धप्रहरपर्यन्तं पश्येत्तन्मार्गमादरात् ।
आगताभ्यो नमस्कुर्याद् दूरेणैव तु साधकः ॥४२॥
पूजयेद् दूरतः स्थित्वा भक्तिभावेन भामिनि ।
पाद्यार्घाचमनीयैश्च स्नानीयैर्गन्धपुष्पकैः ॥४३॥
धूपैर्दीपैश्च नैवद्यैरन्यद्यद्यच्च संभवेत् ।
सर्वोपचारैः संपूज्य भक्तिनम्रः प्रसन्नधीः ॥४४॥
तदन्नमग्रतः कृत्वा ततो दद्याच्छिवाबलिम् ।
वैहंगमानि मांसानि पंक्तिशः स्थापयेदपि ॥४५॥

[शिवाबलौ वैहङ्गममांसार्पणमन्त्रः]

सर्वमेकत्र संस्थाप्य गृहीत्वा पाणिना जलम् ।
उत्सृजेन्मनुनानेन गदतो मे निशामय ॥४६॥
प्रणवं च त्रपाक्रोधौ ङेऽन्तं नाम समुच्चरेत् ।
ङेऽन्तं महाघोररावा भगमालिनि चेति च ॥४७॥
तद्वच्छिवारूपिणी च ज्वालामालिनि ङेऽन्तवत् ।
इमं बलिमिति स्थाप्य प्रयच्छामि सकृद्वदेत् ॥४८॥
गृह्ण द्वन्द्वं खाद युगं मम सिद्धिमितीति च ।
कुरु युग्मं समुद्धृत्य मम शत्रूनथोच्चरेत् ॥४९॥
नाशयेति युगं प्रोच्य मारयेति तथैव च ।
स्तम्भयोच्चाटय हन विध्वंसय मथापि च ॥५०॥
विद्रावय पच च्छिन्धि शोषय त्रासय त्रुट ।
मोहयोन्मूलय तथा भस्मीकुरु तथैव च ॥५१॥
जृम्भय स्फोटय तथा मथ विद्रावयेति च ।
हर विक्षोभय तुरु दम मर्द्दय पातय ॥५२॥

चतुर्विंशतिकंस्यास्य युगं युगमुदीरयेत् ।
तत उच्चारयेदेतत्सर्वभूतभयंकरि ॥५३॥
ततः सर्वजनेत्युक्त्वा मन्नोहारिणि चोद्धरेत् ।
सर्वशत्रुक्षयं प्रोच्य करिशब्दं विनिर्दिशेत् ॥५४॥
ज्वलयुग्मं प्रज्वलयुगं शिवारूपधरेति च ॥
काली कपाली संबोध्या महाकापालि [1]चेति च ॥५५॥
ह्रीं युग्मं ह्लं च युगलं प्रासादयुगलं तथा ।
राज्यं मे समनूद्धृत्य देहि युग्ममथो वदेत् ॥५६॥
किलियुग्माच्च चामुण्डे यमघण्ट [ण्टे] हिलेर्युगात् ।
मम सर्वाभीष्टपदं ततो वै साधयद्वयम् ॥५७॥
संहारिणिपदं दत्वा संमोहिनिपदं ततः ।
कुरुकुल्लेति संबोध्य ततः किरियुगं पठेत् ॥५८॥
क्रोधयुग्मास्त्रयुग्मं च शिरोऽन्तो मनुरीरितः ।
त्रिरुच्चार्योत्सृजेदन्नं पललं शाकुनं च यत् ॥५९॥
कालीरूपास्तु ता ध्यायेदेवमेव न संशयः ।
ततोऽपसृत्य तत्स्थानात्किञ्चिद् दूरे व्रजेत वै ॥६०॥
यथागच्छन्ति ताः सर्वा न बिभ्यति तथाचरेत् ।

[शिवाबलिफलनिर्धारणम्]

दूरे स्थित्वा निरीक्षेत किमादौ भक्षयन्ति ताः ॥६१॥
सर्वा आगत्य चेत्सर्वमश्नन्ति दयिते तदा ।
सर्वसिद्धिं विजानीयाद्राज्यलाभं तथैव च ॥६२॥
यद्यच्च भक्षयन्त्येतास्तत्तत्फलमवाप्नुयात् ।
यद्यच्च नैव खादन्ति तत्तन्नैव फलं भवेत् ॥६३॥

1. चेत्यपि, द[2]

विशेषं च प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा तदवधारय ।
अन्नेन धनलाभः स्यात्पायसैर्वाग्मिता भवेत् ॥६४॥
घृतेनायुरवाप्नोति पूपैः पुण्यमवाप्नुयात् ।
शष्कुलीमोदकैः कीर्तिं वाहनं कृशरैरपि ॥६५॥
तेमनैः पुत्रलाभः स्यान्मत्स्यैराप्नोति कामिनीम् ।

[अष्टादशविधाममांसार्पणफलम्]

आममांसाच्च या सिद्धिस्तदपि व्याहरामि ते ॥६६॥
वाराहेणार्थलाभः स्याद् भाल्लूकेन गृहस्य च ।
प्लावंगमेन विद्या स्यात्खाड्गकैर्विजयं रणे ॥६७॥
माहिषेणैव मांसेन राज्यप्राप्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।
गौधेनापत्यमाप्नोति शाल्यैः सौन्दर्यमुत्तमम् ॥६८॥
आरोग्यं हारिणेनाशु कार्ष्णसारैर्बलोन्नतिम् ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं राङ्कवैश्च गावयै राजमान्यताम् ॥६९॥
शाशैर्मेधावितां गच्छेदाजैरजरतां व्रजेत् ।
आवेयेन तु मांसेन सर्वकल्याणमाप्नुयात् ॥७०॥
बह्वन्नं चापि नाक्रेण भूमिप्राप्तिस्तु कामठैः ।
ग्राहेणाभेद्यतनुतां नाकुलैर्महतीं श्रियम् ॥७१॥
अष्टादशानां मांसानां फलं ते कथितं मया ।

[पक्षिमांसार्पणस्य फलश्रुतिः]

अतः परं प्रवक्ष्यामि पक्षिमांसफलं महत् ॥७२॥
वार्ध्रीनसे राज्यफलं कापोते मोक्षमव्ययम् ।
पारावते राजकन्यामौलूके रिपुसंक्षयम् ॥७३॥
शत्रुवाक्स्तम्भनं श्यैने खाञ्जनेऽदृश्यरूपताम् ।
चाषेऽणिमपदप्राप्तिः काके खेचरतां व्रजेत् ॥७४॥

कौररे वशकारित्वं पैके चाकर्षणं भवेत् ।
कौक्कुटे द्रावणं सिद्धयेच्चाटके मोहनं तथा ।।७५।।
कालिङ्गे स्तम्भनं विन्देदुच्चाटं काकमांसके ।
दात्यूहे मारणं गच्छेच्चातके द्वेषणं तथा ।।७६।।
शोषणं जायते गार्ध्रे चैल्ले मूर्च्छनमेव च ।
शौके च क्षोभणं दिश्येत्क्रौञ्चे चोन्मादमेव च[1] ।।७७।।
वाके[2] चाञ्जनलाभः स्यात्खड्गसिद्धिश्च बार्हिणे ।
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला गुह्यकास्तथा ।।७८।।
विनायकाः क्षेत्रपाला यक्षा राक्षसजातयः ।
गन्धर्वाश्च तथा नागा डाकिन्यो घोणका अपि ।।७९।।
विद्याधराश्च सर्पाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ।
सर्वे भवन्ति वशगास्तैत्तिरे पलले प्रिये ।।८०।।
हांसे तु पादुकासिद्धिर्यक्षिण्यश्चाक्रवाकके ।
सारसे धातुवादः स्याच्चाकोरे गुटिका प्रिये ।।८१।।
टैट्टिभे चिरजीवित्वं लावेऽन्तर्द्धानमाप्नुयात् ।
हारीते कामरूपित्वं सत्यं प्राप्नोति भामिनि ।।८२।।
कारण्डवे जलस्तम्भं वह्निस्तम्भं च वर्त्तके ।
शातपत्रे स्वर्गगतिं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।।८३।।
शापानुग्रहसामर्थ्यं माद्गवेनैव विन्दति ।
भारद्वाजेन मांसेन चक्रवर्त्तित्वमाप्नुयात् ।।८४।।

[ब्राह्मणस्य कृते नरमांसार्पणनिषेधः]

नारं मांस न दातव्यं ब्राह्मणेन कदाचन ।
शूद्रेणैव प्रदातव्यं सप्तत्रिंशत्तमं हि तत् ।।८५।।

---

१. ०मुत्तमम् द[1] द[2]
२. काङ्क्षे इति मातृकापाठः

तस्य प्रदानाद्देवेशि साधकः षष्टिसिद्धिभाक् ।
तवैतत्कथितं कान्ते मांसदानफलं महत् ॥८६॥

[शिवाया देवस्वरूपताभिधानम्]

शिवास्तु नावमन्तव्या देवीरूपा हि ता यतः ।
फेरुरूपं हि धृत्वा सा स्वयमायाति कालिका ॥८७॥
कालीभावेन ता ध्येयाः सत्यं सत्यं हि भामिनि ।

[शिवाया अनागमनस्य विघ्नसूचकताभिधानम्]

यदि नायान्ति ताः सर्वास्तदा विघ्नः प्रजायते ॥८८॥
भक्षयन्ति न चेत्तास्तु तदैव मरणं भवेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूर्वमेव परीक्षयेत् ॥८९॥
आयान्ति वाथ नायान्ति श्मशाने वाथ निर्जने ।

[शिवाबल्यङ्गतया भूतादिबलिविधानाभिधानम्]

शिवासु भक्षयन्तीषु भूतेभ्यो बलिमाहरेत् ॥९०॥
संहारभैरवायापि क्षेत्रपालेभ्य एव च ।
डाकिनीभ्यश्च सर्वाभ्यो बलिं दद्याच्च साधकः ॥९१॥
महदैश्वर्यमाप्नोति निःशेषं भक्षयन्ति चेत् ।
अर्धे तु स्वल्पसिद्धिः स्यादभोज्ये तु विपद् भवेत् ॥९२॥
अनागमे तु मरणं तस्माद् यत्नेन साधयेत् ।
प्रत्यष्टम्यां चतुर्दश्यामेवं कुर्वीत साधकः ॥९३॥
सार्द्धाब्दमध्ये सिध्येत वारे षट्त्रिंशके प्रिये ।

[शिवाबलिमाहात्म्याभिधानम्]

शिवाबलिरयं प्रोक्तो महाफल[1]महोदयः ॥९४॥

---

१. गुणोदयः, ब[1]

एतस्य फलबाहुल्यं कथितुं नैव शक्यते ।
विद्यावान् बलवान् वाग्मी चिरजीवी निरामयः ॥९५॥

धार्मिको विजयी दक्षो यशस्वी भूपवल्लभः[1] ।
ज्ञातिश्रेष्ठः पुत्रवांश्च सर्वयोषित्प्रियः सुखी ॥९६॥

रूपवान् बलवान् धीरो विक्रान्तो विश्वपूजितः ।
स धन्यः सर्वविच्चैव भवत्यत्र न संशयः ॥९७॥

सौन्दर्ये मन्मथः साक्षाद् बलेऽपि स्यात्समीरणः ।
रामार्जुनसमो युद्धे विद्यायां गीष्पतिर्यथा ॥९८॥

धने कुवेरसदृशो चिरायुर्व्यासरामवत् ।
क्षमायां पृथिवीतुल्यो गाम्भीर्ये सागरो यथा ॥९९॥

मेरुकैलासवद्धैर्ये प्रभुत्वे वासवोपमः ।
लावण्ये चन्द्रतुल्योऽसौ प्रतापे भास्करोपमः ॥१००॥

तडिद्वद् दुर्निरीक्ष्योऽसौ भवेद्देव्याः प्रसादतः ।
यावत्यः सिद्धयः सन्ति समस्तजगतीतले ॥१०१॥

करामलकवत्सर्वा भवन्त्येव न संशयः ।
अन्या अपि प्रसिद्ध्यन्ति सिद्धयः साधकस्य तु ॥१०२॥

अणिमा खेचरत्वं च कामरूपित्वमिच्छया ।
शापानुग्रहसामर्थ्यं त्रैलोक्यवशता तथा ॥१०३॥

कृपाणाञ्जनसिद्धिश्च वेतालगुटिकादि च ।
यक्षिणी धातुवादश्च स्तम्भोऽनलखगाम्बुनाम् ॥१०४॥

अव्याहतगतित्वं च सर्वाकर्षणमोहनम् ।
मेरुमन्दरकैलासस्वर्गादिगमनं तथा ॥१०५॥

---

१. रूपवल्लभः, ब[1], ब[2]

सर्वं साधयति क्षिप्रं शिवाबलिविधानतः ।
आरोग्यं मनसः[1] सौख्यं विजयोऽबाधता तथा ॥१०६॥
अविघ्नता दुःखनाशः पुत्रलाभः सुखोन्नतिः ।
सर्वकल्याणवाञ्छाप्तिर्भयनाशो महोदयः ॥१०७॥
नानारोगादिनाशश्च बलिदानात्प्रजायते ।
बलिदानस्य माहात्म्यं कथयिष्ये कियत्तव ॥१०८॥
स्वल्पमेव मया प्रोक्तं बहु वक्तुं न शक्यते ।
इतोऽपि फलबाहुल्यं सत्य सत्यं हि पार्वति ॥१०९॥
दण्डवत्प्रणमेत्तास्तु ततो वै देवताधिया ।
स्तुतिं कुर्यात्स्तवैरेतैः कवचैश्च विशेषतः ॥११०॥

[शिवास्तोत्रम्]

शिवारूपधरे देवि कामकालि नमोऽस्तु ते ।
उल्कामुखि ललज्जिह्वे घोररावे शृगालिनि ॥१११॥
श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रियेऽनघे ।
अरण्यचारिणि शिवे फेरो जम्बूकरूपिणि ॥११२॥
नमोऽस्तु ते महामाये जगत्तारिणि कालिके ।
मातङ्गि कुक्कुटे रौद्रि कालकालि[2] नमोऽस्तु ते ॥११३॥
सर्वसिद्धिप्रदे देवि[3] भयंकरि भयावहे ।
प्रसन्ना भव देवेशि मम भक्तस्य कालिके ॥११४॥
संसारतारिणि जये जय सर्वशुभंकरि ।
विस्रस्तचिकुरे चण्डे चामुण्डे मुण्डमालिनि ॥११५॥

---

१. विजयं, द[1]
२. कालिकालि, द[2]
३. भीमे, द[1]

संहारकारिणि क्रुद्धे सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे ।
दुर्गे किराति शबरि प्रेतासनगतेऽभये ॥११६॥
अनुग्रहं कुरु सदा कृपया मां विलोकय ।
राज्यं प्रयच्छ विकटे वित्तमायुः सुतान् स्त्रियम् ॥११७॥
शिवाबलिविधानेन प्रसन्ना भव फेरवे ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमो नमः ॥११८॥
इत्येतैरष्टभिः श्लोकैः शिवास्तोत्रमुदीरयेत् ।

[शिवाबल्यवशिष्टान्नविनियोगविधिः]

ततस्तच्छेषमन्नं यद् भाजनं वान्यदेव वा ॥११९॥
सर्वं हि निखनेद् भूमौ प्रयत्नेनैव पार्वति ।
यदि काका मृगाः श्वानो ये चान्येऽरण्यवासिनः ॥१२०॥
भक्षयन्ति तदुच्छिष्टं तदा विघ्नः प्रजायते ।
स्वयं तदवशिष्टं यत्प्रसादमुपयोजयेत् ॥१२१॥
गन्धं माल्यं च नैवेद्यं यद्यद्देव्यै प्रकल्पितम् ।
रात्रावेव समागच्छेत् प्रयतः प्रेतमन्दिरात् ॥१२२॥

[गुह्यकालिकामकलाकाल्योस्तुलनायां कामकलाकाल्याः श्रेष्ठताभिधानम्]

एष मुख्यः प्रयोगस्तु गुह्यकाल्या वरानने ।
एतत्प्रयोगादेषैव काली कामकला भवेत् ॥१२३॥
न भेदस्त्वनयोः सत्यं प्रयोगे मन्त्रसिद्धये ।
अन्येऽपि भेदाः सन्त्यस्याः कथयिष्यामि तानहम् ॥१२४॥
[1]योऽसावुक्तो मनुर्देव्याः पूर्वमष्टादशाक्षरः ।
श्रेष्ठः स सर्वमन्त्राणां सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥१२५॥

---

१. इतः पंक्तिद्वयमधिकं द[1], द[2] इत्यनयोः

एष कामकलाकाल्या मन्त्रः प्रकृतिरुच्यते ।
विकृतिर्गुह्यकाल्यास्तु मन्त्रो यः षोडशाक्षरः ॥१२६॥
स्थितायां प्रकृतौ देवि विकृतिर्न बलीयसी ।
सप्तानामपि मन्त्राणामयमेवाग्रणीः प्रिये ॥१२७॥
त्रैलोक्याकर्षणो मन्त्रो यदि भाग्येन लभ्यते ।
तदा शिवाविधाने तु स एव परिनिष्ठितः ॥१२८॥
अभावे तस्य मन्त्रस्य[१] गुह्यकाल्या मनुर्मतः ।
विनोपदेशं यः कुर्यात् प्रयोगं कामकालिकम् ॥१२९॥
सद्यः स मृत्युमाप्नोति भक्षितो योगिनीगणैः ।
ग्राह्यस्तस्मात्प्रयत्नेन मनुरष्टादशाक्षरः ॥१३०॥
राज्यदानैः प्राणदानैरुपदेशो गुरोः प्रिये ।
आत्मनः क्षेममन्विच्छेद् यदि साधकसत्तमः ॥१३१॥
न तु वा गुह्यकाल्यास्तु मनुनैवाखिलं भवेत् ।
गुरूपदिष्टमार्गेण प्रयोगेण वरानने ॥१३२॥
इत्येष कथितो यत्नाच्छिवाबलिविधिस्तव ।
कथयस्व महागौरि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३३॥

इत्यादिनाथविरचितायां महाकालसंहितायां पञ्चशतसाहस्र्यां
शिवाबलिप्रयोगो नाम
चतुर्थः पटलः ।

---

१. देवेशि, द[१], द[२]

पञ्चमः पटलः

[कामकालिकप्रयोगस्यावतरणम्]

देव्युवाच

विश्वोपकारक विभो शंभो संसारतारक ।
त्वत्तः श्रुतमिदं सर्वं श्रुत्वा चैवावधारितम् ॥ १ ॥
केन कामकलानाम प्राप्तवत्यम्बिका परा[१] ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो योगिजनप्रिय ॥ २ ॥
प्रयोगेणार्च्चया वापि ध्यानेनाथ स्तवेन वा ।
प्रोच्यते सा परा शक्तिः काली कामकलाह्वया ॥ ३ ॥
शृण्वन्ती ते मुखाम्भोजान्न तृप्ति[२]मधियाम्यहम् ।
कथयस्व महादेव प्रयोगं कामकालिकम् ॥ ४ ॥

महाकाल उवाच

अतिगुह्यतमं देवि प्रयोगं पृष्टवत्यसि ।
नाख्यातो योऽद्यपर्यन्तं कस्मा अपि वरानने ॥ ५ ॥
तमहं कथयिष्यामि यतो भक्तासि पार्वति ।
संगोपनीयो यत्नेन न वाच्यो यस्य कस्यचित् ॥ ६ ॥
चिकीर्षयापि यस्यास्य सिद्धिं विन्दति साधकः ।
किं पुनः करणेनेह भविष्यति शुचिस्मिते ॥ ७ ॥
प्राणात्ययेनापि पुनर्न वाच्यं यत्र कुत्रचित् ।
स्मरणादस्य योगस्य प्रसन्ना कालिका भवेत् ॥ ८ ॥
किं बहूक्तेन देवेशि धन्यावावां जगत्त्रये ।
यतः पृच्छसि वक्तास्मि प्रयोगं कामकालिकम् ॥ ९ ॥

---

१. परः ने ।
२. ०मुपयाम्यहम् द१ ।

नैवास्ति त्वय्यकथ्यं मे गुह्याद् गुह्यतरं हि यत्[1] ।
शृणुष्व तं योगवरं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥१०॥
अवहेला न कर्तव्या न जुगुप्सा कदाचन ।
न निन्दा न परीवादो न द्वेषो नैव धिक्कृतिः ॥११॥
कृते तु सर्वनाशः स्यान्मरणं रोगपूर्णता ।
दारिद्र्यं पुत्रनाशश्च बन्धनं निगडादिभिः ॥१२॥
तस्मान्निन्दा न कर्तव्या यदीच्छेदात्मनः शुभम् ।
स्वभाव एव देव्यास्तु प्रीतिरेतत्प्रयोगतः ॥१३॥
राजाज्ञेवाप्रणोद्येयं सैव ब्रूते सनातनी ।
प्रयोगस्त्रिविधोऽयं च शक्याशक्यनिबन्धनः ॥१४॥
राजपूर्वो मध्यपूर्वो लघुपूर्वस्तथैव च ।

[राजपूर्वस्य कामकलाख्यप्रयोगस्याभिधानम्]

योगः कामकलाख्योऽयं तत्रादिं व्याहरामि ते ॥१५॥
रामाः षोडशवर्षीया रूपयौवनगर्विताः ।
विशाललोचनाः श्यामाः शारदेन्दुनिभाननाः ॥१६॥
घनकुन्तलभारिण्यः पीनोत्तुङ्गकुचोन्नताः ।
विशालजघनाभोगा अतिक्षीणकटिस्थलाः ॥१७॥
बृहन्नितम्बदृषदो जातरूपतनुश्रियः ।
पीनोरवः कान्तिमत्यः सर्वाभरणभूषिताः ॥१८॥
भिन्नजातीयकाः सर्वा नारीराकारयेत्सुधीः ।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा दासी नटी तथा ॥१९॥
मालाकारिणिका चापि कुम्भकारिणिका तथा ।
शौचिकी च कुविन्दी च तन्तुवाय्यसिमार्जिका ॥२०॥

---

१. तत् ब[1] ।

रजकी चर्मकारस्त्री तथायःकारिका प्रिये ।
शौण्डिकी नापिती त्वाष्ट्री कलादी काम्बरी तथा ॥२१॥
कैवर्ती सौल्विकी तैलकारिणी मागधी तथा ।
वेश्या कुमारी च तथा तथाभीरा च पुंश्चली ॥२२॥
सैरिन्ध्री दूतिका रण्डा प्रतिवेशनिकापि च ।
स्वजाया जीवनी चैव चतुस्त्रिंशच्च वारुडी ॥२३॥
चाण्डाली राजकन्या च षट्त्रिंशदिति ताः स्मृताः ।
पुष्पवासिततैलेन समभ्यक्ता वराननाः ॥२४॥
प्रसाधिताः स्नापयेत्तास्तोयैः कर्पूरवासितैः ।
उच्चरन्मन्त्रमेतं हि सकृत्सकृदुदारधीः ॥२४॥

[सुन्दरीणामिह स्नापनमन्त्रः]

प्रणवं च त्रपाकामौ ततो भगवति स्मरेत् ।
महामाये पदं प्रोच्य ततोऽनङ्गपदं वदेत् ॥२६॥
वेगसाहसिनि स्मृत्वा मनो सर्वजनात् परम् ।
हारिणीति समुद्धृत्य ततः सर्ववशंकरि ॥२७॥
मोदयेति[1] पदद्वन्द्वं प्रमोदय ततस्तथा ।
एह्यागच्छेति नामापि संबोध्य प्रवदेत् सुधीः ॥२८॥
सान्निध्यं च कुरु द्वन्द्वं युगं च कवचास्त्रयोः ।
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः प्रशस्तः स्नापने प्रिये ॥२९॥
ततः प्रदद्याद्वसनं सर्वाभ्यश्च पृथक् पृथक् ।
भिन्नो भिन्नो मनुः प्रोक्तः सर्वस्मिन्नपि कर्मणि ॥३०॥
वस्त्रदानस्य मन्त्रं च गदतो मे निशामय ।

[सुन्दरीणामिह वस्त्रार्पणमन्त्रः]

लज्जाकामवधूनां च युगं युगमनुस्मरेत् ॥३१॥

---

१. मोहयेति द[2] ने० ।

त्रैलोक्याकर्षणीत्युक्त्वा वस्त्रं गृह्ण युगं वदेत् ।
फडन्ते वह्निजायां च प्रोक्तो वस्त्रार्पणे मनुः ॥३२॥

[सुन्दर्या अर्पणीयवस्त्राभिधानम्]

साटी क्षौमदुकूलादि पट्टवस्त्रं विशेषतः ।
अन्यद् यद् यच्च भवति महामूल्यवदंशुकम् ॥३३॥

[समन्त्रः कज्जलार्पणविधिः]

ततोऽर्पयेत् कज्जलं च वक्ष्यमाणमनु बदन् ।
तारं क्रोधं समुद्धृत्य महाघोरतरे वदेत् ॥३४॥
फेत्काररराविणीत्युक्त्वा महामांसप्रियेति च ।
[1]हिलियुग्मं मिलिद्वन्द्वं ततः कज्जलमित्यपि ॥३५॥
गृह्ण गृह्णेति संभाष्य ठद्वयान्ता मनुर्मतः ।
निवेदयेच्च सर्वाभ्यः कज्जलं मन्त्रमुच्चरन् ॥३६॥

[समन्त्रः सिन्दूरार्पणविधिः]

सिन्दूरं च ततो दद्यादनेन मनुना प्रिये ।
प्रणवास्यवधूकाममायारुट्कमलार्णकान् ॥३७॥
समनूद्धृत्य संजल्पेत् सर्वभूतपदं ततः ।
पिशाचराक्षसानुक्त्वा ग्रसयुग्मं समुच्चरेत् ॥३८॥
मम जाड्यमिति प्रोच्य च्छेदय त्रितयं तथा ।
वेदसंख्यं ततो भीतं[2] प्रासादमिथुनं ततः ॥३९॥
शत्रून्पूर्वं समुद्धृत्य ममशब्दं दहद्वयम् ।
उच्छादय स्तम्भयापि विध्वंसय युगं युगम् ॥४०॥
सर्वग्रहेभ्य इत्युक्त्वा शान्तिं कुरु ततो वदेत् ।

---

१. इतश्चतस्रः पंक्तयः ब[२] इत्यत्रैव दृश्यन्ते ।
२. मौनं ब[१]

रक्षां कुरु तथा चोक्त्वा वाग्भवं त्रितयं स्मरेत् ॥४१॥
फडन्ते ठद्वयं चापि सिन्दूरार्पणको मनुः ।

[समन्त्र अलक्तकार्पणविधिः]

अलक्तकार्पणं मन्त्रं प्रयत्नेनाशु मे शृणु ॥४२॥
मारयुग्मं पुरः प्रोच्य नवकोटिपदं वदेत् ।
यीगिनीति ततः पश्चाद् ङेऽन्तं परिवृता तथा ॥४३॥
रोषद्वयान्नाम ङेऽन्तं ततोऽनङ्गपदं प्रिये ।
वेगमालाकुला ङेऽन्ता मायायुग्मं ततः परम् ॥४४॥
ङेऽन्तं ततो वदेत्कान्ते स्वयभूकुसुमप्रिया ।
इमं पूर्वमलक्तं च त्रपाप्रासादयोर्युगम् ॥४५॥
सुवासिनीति ङेऽन्तवन्निवेदगामि चेत्यपि ।
नमः शिरोऽन्तमुच्चकैरयं मनुः प्रकीर्तितः ॥४६॥

[मण्डलारचनविध्यभिधानम्]

समर्हणैकमन्दिरे विरच्य तत्र मण्डलम् ।
सितं हि पूर्वदिग्गतं तथारुणं च वह्निगम् ॥४७॥
परेतगं च मेचकं सुपीतवच्च नैर्ऋतम् ।
प्रचेतसं च पाटलं समीरगं च हारितम् ॥४८॥
कुवेरगं च पिङ्गलं गिरीशगं हि धूमलम् ।
विधाय हीदृशं प्रिये दिगष्टशोभि मण्डलम् ॥४९॥
युगाख्यनिर्गमान्वितं तदीयपालसंयुतम् ।
विभिन्नरूपमण्डले निवेशयेत्तु ताः क्रमात् ॥५०॥
ऋषित्रिसंख्यमण्डलक्रमेण दीर्घपंक्तिगम् ।
ततोऽष्टसोमसंख्यकैर्निवेश्य मण्डले स्त्रियः ॥५१॥

नवेन्दुसंख्यके प्रिये विरच्य मूलमण्डलम् ।
पुरोक्तयन्त्रमुत्तमं निवेश्य पूजनं चरेत् ॥५२॥
ततोऽनु तत्र कामिनीस्तदोपवेशयेत् क्रमात् ।

[यन्त्रोपरि सुन्दरीणामुपवेशनार्थं मन्त्रः]

संरोषह्लीरमास्मरैः सवाग्भवैश्च मण्डले ॥५३॥
उपानुगं त्रिशोच्चरेत् पुनस्तथैव चोद्धरेत् ।
सुसन्निधिं कुरु त्विदं भवेच्च वारयुग्मकम् ॥५४॥
ततोऽनलाङ्गनायुतो मनुः सदोपवेशने ।
गजेन्द्रतः परात् प्रिये स्मृतं हि काममण्डलम् ॥५५॥
तदेव कामकालिकं सदैव मुख्यमुच्यते ।

[कामकलाख्ययन्त्रे मूलदेव्याः समन्त्र आवाहनविधिः]

तत्र कामकलानाम्नि मण्डले जगदम्बिकाम् ॥५६॥
आवाहयेज्जगद्धात्रीं वक्ष्यमाणमनुं वदन् ।
प्रणवं नारसिंहस्य पञ्चकं समनूच्चरेत् ॥५७॥
एह्येहीति पदं न्यस्य परमात्तत्त्वमुच्चरेत् ।
रूपिणीत्यपि चोद्धृत्य ततो भगवति स्मरेत् ॥५८॥
सम्बोधनतया नाम ततो भूतार्णपञ्चकम् ।
सन्निधिं च कुरुद्वन्द्वं क्रोधद्वन्द्वं ततोऽप्यनु ॥५९॥
अस्त्रद्वयादनु स्वाहा प्रोक्तो ह्यावाहने मनुः ।
इत्यावाह्य महापीठे सान्निध्यं परिकल्प्य च ॥६०॥

[कामकालिकप्रयोगार्थं देव्या अनुज्ञाप्रार्थना]

ततोऽनुज्ञां प्रार्थयीत सर्वासामपि पूजने ।
कलातीते नादबिन्दुशक्तिरूपिणि चिन्मये ॥६१॥

पराकुण्डलिनीरूपे शिवशक्तिस्वरूपिणि ।
देवि कामकलाकालि जगदुत्पत्तिकारिणि ॥६२॥
स्थितिकारिणि कल्पान्ते पुनः संहारकारिणि ।
परामृतरसास्वादपरमानन्दलोलुपे ॥६३॥
सदाशिवमहत्तत्त्वसामरस्यस्वरूपिणि ।
देवि कामकलाकालि सर्वसिद्धिप्रदेऽनघे ॥६४॥
अनुज्ञां देहि मे देवि[1] प्रयोगे कामकालिके ।
इत्यनुज्ञां ततो लब्ध्वा क्रमात्पूर्वादितः सुधीः ॥६५॥

[मण्डलोपविष्टसुन्दरीणां सोपचारपूजाविधिः]

पूजयेन्मण्डलस्थास्ता उपचारैर्यथोदितैः ।
जातिहीना इति ज्ञात्वा नावमान्या कथंचन ॥६६॥
देवीधिया प्रपश्येत्ता इत्यागमविदो विदुः ।
पाद्यार्घाचमनीयाद्यैः गन्धपुष्पादिभिस्तथा ॥६७॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैरन्यद् यच्चोपकल्पितम् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन मन्त्रैरपि च तैः प्रिये ॥६८॥
कर्तव्या विधिवत्पूजा यथा तास्तोषमाप्नुयुः ।
ऊनविंशे मण्डले तु यजेद् देवीं प्रसन्नधीः ॥६९॥
नित्यपूजोक्तविधिना सर्वसम्भारसञ्चयैः ।

[पीठन्यासविधिः]

षडङ्गानि प्रविन्यस्य पीठन्यासं समाचरेत् ॥७०॥
महामण्डूककालाग्निरुद्रं च कच्छपं तथा ।
आधारे लिङ्गनाभौ च क्रमेणोपन्यसेत्सुधीः ॥७१॥

---

१. कालि ब[1], ब[2] ।

एवं विचिन्त्य विधिवद्धर्मादीन् विन्यसेत्ततः ।
अंसोरुयुग्मयोर्विद्वान् प्रादक्षिण्येन देशिकः ॥७२॥
धर्मज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्य्यं विन्यसेत्क्रमात् ।
मुखपार्श्वनाभिपार्श्वेष्वधर्मादीन्प्रकल्पयेत् ॥७३॥
अनन्तं हृदये पद्ममस्मिन् सूर्येन्दुपावकान् ।
एषु स्वस्वकला न्यसेन्नामाद्यक्षरपूर्विकाः ॥७४॥
सत्त्वादींस्त्रीन् गुणान् न्यस्येत्तथैवात्र गुरूत्तमः ।
आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमेव च ॥७५॥
ज्ञानात्मानं प्रविन्यस्य न्यसेत्पीठमनुं ततः ।

[आत्मनि इष्टदेवताध्यानविधिः]

एवं देहमये पीठे चिन्तयेदिष्टदेवताम् ॥७६॥

[इष्टदेवतायाः मानसपूजाविधिः]

पूर्वोक्तेन विधानेन मनसा परिपूजयेत् ।

[इष्टदेवतायाः बाह्यपूजोपकरणसंग्रहः]

मुद्रां प्रदर्श्य विधिना शङ्खस्थापनमाचरेत् ॥७७॥
शङ्खमस्त्रेण संप्रोक्ष्य वामतो वह्निमण्डले ।
साधारं स्थापयेद्विद्वान् व्युत्क्रमार्णैर्जलं क्षिपेत् ॥७८॥
पूजयेद्वह्नि[1] सूर्येन्दून् बीजैस्तत्तत्कलान्वितैः ।
तत्तत्कला तु संख्याता दशद्वादशषोडशैः ॥७९॥
तीर्थावाहनमन्त्रैश्च तीर्थान्यावाह्य पूजयेत् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपाद्यैरभिपूजिते ॥८०॥

---

१. ०दग्नि द१ ।

शङ्खे पाणितलं दत्वा चाष्टधा प्रजपेन्मनुम् ।
चिन्मयं चिन्तयेत्तीर्थमानीयाङ्कुशमुद्रया ॥८१॥
अस्त्रमन्त्रेण रक्षित्वा कवचेनावगुण्ठ्य च ।
धेनुमुद्रां समासाद्य बोधयेत्तत्त्वमुद्रया ॥८२॥
दक्षिणे प्रोक्षिणीपात्रमाधायाद्भिः प्रपूजयेत् ।
किञ्चिदर्घ्याम्बु संगृह्य प्रोक्षण्यंभसि योजयेत् ॥८३॥
अर्घस्योत्तरतः कार्यं पाद्यमाचमनीयकम् ।
परमीकृत्य तं शङ्खं पावनं परिचिन्तयेत् ॥८४॥
देवस्य मूर्ध्नि तत्किञ्चित् पूजाद्रव्येषु चात्मनः ।
अवेक्षणं प्रोक्षणं च वीक्षणं ताडनं तथा ॥८५॥
अर्चनं चैव सर्वेषां पावनं सम्प्रकल्पयेत् ।
अर्घपात्रे प्रदातव्या गन्धपुष्पयवाक्षताः ॥८६॥
कुशाग्रतिलदूर्वाश्च सर्षपाश्चार्थसिद्धये ।
पाद्यपात्रे प्रदातव्यं श्यामाकं कूर्चमेव च ॥८७॥
अब्जं च विष्णुक्रन्तां च पाद्यसिद्धयै प्रकल्पयेत् ।
तथाचमनपात्रे च दद्याज्जातीफलं पुनः ॥८८॥
लवङ्गमपि कक्कोलं शस्तमाचमनीयकम् ।

[मधुपर्कपरिचयः]

दध्ना च मधुसर्पिर्भ्यां मधुपर्को भविष्यति ॥८९॥

[इष्टदेवताया बाह्यपूजाविधिः]

बाह्यपूजां ततो कुर्य्यादैहिकाभ्युदयाय वै ।
पूर्वमेवोदितं देवि मण्डलस्य प्रकल्पनम् ॥९०॥
तथापि फलबाहुल्यात् प्रसङ्गादुच्यते पुनः ।
गोमयैर्लिप्तदेशे च मण्डलं तत्र कारयेत् ॥९१॥

शालितण्डुलचूर्णैश्च नीलपीतसितासितैः ।
लिखेदष्टदलं पद्मं चतुरस्रसमावृतम् ॥९२॥
नवकोणं कर्णिकायां कोणाग्रं बीजभूषितम् ।
कूर्मं च बृहदाकारं महामण्डूकमेव च ॥९३॥
कालाग्निसंज्ञकं रुद्रं तस्मिन्पीठे प्रपूजयेत् ।
तन्मध्ये साध्यमालिख्य कालीबीजानि संलिखेत् ॥९४॥
सर्वतो मण्डलं चापि गायत्र्या परिवेष्टयेत् ।
गायत्रीं च प्रवक्ष्यामि यथावदवधारय ॥९५॥
जपादस्याश्च दयिते राजसूयफलं लभेत् ।

[कामकलाकाल्यास्तान्त्रिकगायत्रीमन्त्रः]

अनङ्गाकुलायै विद्महे मदनातुरायै धीमहि ॥९६॥
तन्नः कामकलाकाली प्रचोदयात् ।

[बाह्यपूजायाः क्रमस्य विधेश्चाभिधानम्]

गुरुपक्तिं नमेद्वामे गणेशादीन् परे तथा ॥९७॥
मध्ये त्वाधारशक्तिं च पङ्कजद्वयधारिणीम् ।
कूर्मं च बृहदाकारं महामण्डूकमेव च ॥९८॥
कालाग्निसंज्ञकं रुद्रं तस्मिन् पीठे प्रपूजयेत् ।
अभ्यर्चयेद् वसुमतीं स्फुरत्सागरमेखलाम् ॥९९॥
तत्र रत्नमयं द्वीपं तस्मिंस्तु मणिमण्डपम् ।
यजेत् कल्पतरुं तस्मिन् साधकोऽभीष्टसिद्धये ॥१००॥
अधस्तात्पूजयेत्तस्य वेदिकां मण्डलोज्ज्वलाम् ।
पश्चादभ्यर्चयेत्तस्यां पीठे धर्मादिभिः पुनः ॥१०१॥

रक्तश्यामहरिच्छुक्लनीलाभां नादरूपिणीम् ।
बृषकेशरिभूतेभरूपान् धर्मादिकान् यजेत् ॥१०२॥
अग्न्यादिषु विदिक्ष्वेवं धर्मादीन् पूजयेत् सदा ।
अधर्मादीन् यजेत् पश्चात् पूर्वादिदिक्चतुष्टये ॥१०३॥
आनन्दकन्दं प्रथमं संविन्नालमनन्तरम् ।
मन्त्री प्रकृतिपत्राणि विकारमयकेशरान् ॥१०४॥
पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यां कर्णिकां पूजयेत्ततः ।
कलाभिः पूजयेत्सार्द्धं तस्मिन्सूर्येन्दुपावकान् ॥१०५॥
प्रणवस्य त्रिभिर्वर्णैरथ सत्त्वादिकान् गुणान् ।
आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमेव च ॥१०६॥
ज्ञानात्मानं च विविधं पीठशक्तिं यजेत् पुनः ।
तत्र पीठमनुं प्रोक्त्वा तत्र सिंहासनं न्यसेत् ॥१०७॥
उच्चरन्मूलमन्त्रं हि देवीं हृदि विचिन्तयन् ।
करकच्छपिकारूपमुद्रया पुष्पमुत्तमम् ॥१०८॥
गृहीत्वा चिन्तयेद्देवीं तत्तन्मन्त्रानुसारतः ।
तन्मध्ये चिन्तयेद् देव्या वाहनं शवमेव च ॥१०९॥
श्मशानं चिन्तयेत्तत्र शिवागणविराजितम् ।
मुण्डाट्टहाससंयुक्तं शिवाशतनिनादितम् ॥११०॥
शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्विताम् ।
सुरासुरमुनीन्द्रैश्च योगिबृन्दैर्निषेविताम् ॥१११॥
ध्यायेत्तत्रस्थितां देवीं कालीं कामकलाभिधाम् ।
ध्यात्वा पूर्वोक्तविधिना चित्ते चानीय सुन्दरि ॥११२॥
अञ्जल्याबाहयेत्तत्र देवीं साधकसत्तमः ।
स्वागतादि ततः प्रश्नं प्रत्युत्तरसमन्वितम् ॥११३॥

ततश्च आसनं दत्वा पाद्यमर्घ्यं प्रकल्पयेत् ।
तत आचमनीयं च स्नानोद्वर्तनमेव च ॥११४॥
स्नानीयं च जलं दद्यात् स्वाहामन्त्रैः प्रयत्नतः ।
दिव्यवस्त्रं ततो दत्वा दद्यादाभरणानि च ॥११५॥
नमः पाद्यं तथा चार्घ्यं स्वाहान्ते दीयते ततः ।
आचमनं स्वधान्ते च स्वाहान्ते च तथा मधु ॥११६॥
गन्धं नानाविधं रम्यं रक्तचन्दनमेव च ।
सिन्दूरं कुङ्कुमं चैव पुष्पदाम तथा पुनः ॥११७॥
परिवारं ततो देव्याः पूजयेत्साधकोत्तमः ।
ततो गुग्गुलजं धूपं दद्यान्मन्त्रं समुच्चरन् ॥११८॥
तद्वद् दीपः प्रदातव्यो मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ।
ततः पाद्यादिकं दत्वा नैवेद्यादीन् प्रकल्पयेत् ॥११९॥

[देव्याः प्रीतिकरनैवेद्यादिविधानम्]

अन्नं पानं च नैवेद्यं बलिदानं तथैव च ।
रक्तं मांसं मनोरम्यमामं पक्वं पृथक्पृथक् ॥१२०॥
क्रमेण संप्रवक्ष्यामि देव्याः प्रीतिकरं परम् ।
पञ्चामृतं तथा खण्डं शाल्यन्नं पिष्टकं तथा ॥१२१॥
यवगोधूमजैर्मुद्गैः पक्वान्नं परिकल्पयेत् ।
व्यञ्जनं षड्रसोपेतं घृताक्तं सुमनोहरम् ॥१२२॥
फलं नानाविधं रम्यं परमान्नं तथैव च ।

[ब्राह्मणस्य सात्त्विकद्रव्यार्पणनिर्देशः]

द्रव्येण सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम् ॥१२३॥

[क्षत्रियस्य तद्योग्यार्पणीयवस्तुनिर्देशः]

शाल्यन्नमामिषं चैव सुरां माक्षिकसंभवाम् ।
तालीं च विविधां गोडीं खार्जूरीं पुष्पसंभवाम् ॥१२४॥
एवं दद्यात् क्षत्रियोऽपि पैष्टिकीं न कदाचन ।
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे गव्यं तथा मधु ॥१२५॥
राजन्यवैश्ययोर्दानं न द्विजस्य कदाचन ।
एवं प्रदानमात्रेण हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत् ॥१२६॥

[शूद्रस्य तद्योग्यार्पणीयवस्तुनिर्देशः]

शूद्रस्य पैष्टिकीदानं नापरस्य विधीयते ।

[अर्पणीयपशुनिर्देशः]

कृष्णसारं तथा छागं मृगान् नानाविधानपि ॥१२७॥
मेषं च महिषं घृष्टिं तथा पञ्चनखानपि ।
कपोतं टिट्टिभं हंसं चक्रवाकं च लावकम् ॥१२८॥
शरालिं तित्तिरिं मत्स्यान् कलविंकं चकोरकम् ।
अनुक्तं नैव दातव्यं द्विजवर्य्यैः कदाचन ॥१२९॥

[क्षत्रियस्य विशेषार्पणीयपशुनिर्देशः]

सिंहं व्याघ्रं नरं तद्वत् क्षत्रियः परिकल्पयेत् ।
विहाय कृष्णसारं च क्षत्रियादेर्भवेद् बलिः ॥१३०॥

[साधकस्य जात्यनुरूपनिषिद्धार्पणीयपशुविवरणम्]

सिंहं व्याघ्रं नरं हत्वा ब्राह्मणो ब्रह्महा भवेत् ।
मूषं मार्जारकं चाषं शूद्रो दत्वा पतत्यधः ॥१३१॥

[बलिकृत्यसम्पादनविधिनिर्देशः]

चन्द्रहासेन खड्गेन हन्यादेकप्रहारतः ।
उत्थाय हननं कुर्यान्नोपविश्य कदाचन ॥१३२॥
स्वहस्तेन पशुं हत्वा पशुयोनिमवाप्नुयात् ।

[निषिद्धबलिनिर्देशः]

विं च त्रिपक्षतो न्यूनं महिषादींस्त्रिवर्षतः ॥१३३॥
अन्यं त्रिमासतो न्यूनं न दद्याच्च कदाचन ।
वृद्धं वा विकृताङ्गं वा न कुर्याद् बलिकर्मणि ॥१३४॥
स्वगात्ररुधिरं दातुं क्षत्रियादेर्भवेद् बलिः ।
सात्त्विको जीवहत्यां हि कदाचिदपि नो चरेत् ॥१३५॥

[अर्पणीयपश्वनुकल्पनिर्देशः]

इक्षुदण्डं च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम् ।
क्षीरपिण्डैः शालिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद् बलिम् ॥१३६॥
तत्तत्फलविशेषेण[1] तत्तत्पशुमुपानयेत् ।
कूष्माण्डं महिषत्वेन छागत्वेन च कर्क्कटीम् ॥२३७॥

[ताम्बूलार्पणमन्त्रः]

जातीकोषफलैलात्वग्लवङ्गमृगनाभियुक् ।
कर्पूरशकलोन्मिश्रं ताम्बूलं कल्पयेत्ततः ॥१३८॥
पातालतलसंभूतं सर्वोपस्करसंयुतम् ।
देवि कामकलाकालि त्वं ताम्बूलं गृहाण मे ॥१३९॥

---

१. त्रिपाकेन द[1] ।

इति मन्त्रेण सततं ताम्बूलं विनिवेदयेत् ।
ततस्तद्विधिना सम्यक् जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥१४०॥
सन्तोष्य युवतीं रम्यां प्रजपेत्साधकोत्तमः ।

[ब्राह्मणस्य कृते एतत्प्रयोगस्य निषेधः]

स्वयोषां परयोषां वा नैवाकृष्य [1]द्विजो जपेत् ॥१४१॥
लोभाद् यदि चरेदेवमधो याति द्विजस्तदा ।
इहामुत्र फलं नास्ति हीनायुरपि जायते ॥१४२॥
देवत्यागान्मद्यपानाच्छूद्रभार्याप्रयोगतः ।
तत्क्षणाज्जायते वामो ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥१४३॥
स्वकीयां परकीयां वा सामान्यवनितां तथा ।
जपेयुस्तां समाकृष्य क्षत्रविट्शूद्रजातयः ॥१४४॥

[अत्र कासांचन सुन्दरीणां निषेधः]

ऋषिकन्यां न चाकर्षेन्मद्यपानां च कन्यकाम् ।
अन्त्यजानां स्त्रियं वापि व्रतस्थानां स्त्रियं तथा ॥१४३॥
गुर्वङ्गनां गुरोः पत्नीं सगोत्रां शरणागताम् ।
शिष्ययोषां न चाकर्षेत् पापिनां वनितां तथा ॥१४६॥
नापुष्पितां गुर्विणीं वा बालापत्यां तथा पुनः ।

[कीदृशी सुन्दरी ग्राह्येति विचारः]

साधुशीलां सुभव्यां च समाकृष्यार्चनं चरेत् ॥१४७॥
पूजाकाले च देवेशि विकारं वर्जयेत् सदा ।
विकारात्सिद्धिहानिः स्यात्साधकस्य न संशयः ॥१४८॥

---

१. विनियोजयेत् द[1] ।

[प्रयोगागतसुन्दरीणां विसर्जनविधिः]

जपं समर्पयेत्तस्यै मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा प्रदाक्षिणमथो चरेत् ॥१४९॥
ततश्च स्तोत्रपाठादि [1]कुर्यात्साधकसत्तमः ।
सहस्रनामस्तोत्रं च कवचं चान्वहं पठेत् ॥१५०॥
प्राणायामं षडङ्गं च विधाय तदनन्तरम् ।
आत्मानं देवतारूपं विचिन्त्यैनां विसर्जयेत् ॥१५१॥

इत्यादिनाथविरचितायां महाकालसंहितायां कामकलाप्रयोगो नाम
पञ्चमः पटलः ।

---

१. प्रकुर्यात् साधकोत्तमः द०

षष्ठः पटलः

सामान्यप्रयोगविधेरवतरणम्

[कामकालिकप्रयोगस्य मध्यमाधमकोट्योः मध्यपूर्वलघुपूर्वाभिधानाभ्यां निर्देशः]

महाकाल उवाच
अथ देवेशि सामान्यप्रयोगान् व्याहरामि ते ।
चिकीर्षयापि येषां हि राज्यं विद्या च हस्तगा ॥१॥
चतुर्विंशतिभिश्चासां मध्यपूर्वो भवेद् विधिः ।
पूजामन्त्रप्रकारस्तु स एव परिकीर्तितः ॥ २ ॥
आसां द्वादशभिर्ज्ञेयो लघुपूर्वविधिः प्रिये ।

[कामकालिकप्रयोगेऽधिकारिनिर्देशः]

राज्ञामेतत् प्रशस्तं हि न द्विजस्य कदाचन ॥ ३ ॥

[अधिकारिणां कर्तव्यनिर्देशः]

यथोक्तविधिना चीर्णपौरश्चरणिकक्रमः ।
एतान् प्रयोगान् वीक्षेत नाजपित्वा कदाचन ॥ ४ ॥
पर्वते वा नदीकूले शून्यागारे शिवालये ।
पीठे चतुःपथे कुर्यात् पुरश्चरणमुत्तमम् ॥ ५ ॥
नियमास्तत्र भूयांसः प्रकर्तव्याः प्रयत्नतः ।
अवैधकरणात् सिद्धिहानिः स्यान्नात्र संशयः ॥ ६ ॥
त्रिकालमाचरेत् स्नानं हविष्यं भक्षयेन्निशि ।

[तत्र मन्त्रजपमालयोर्गोपनीयताभिधानम्]

स्वमन्त्रं चाक्षसूत्रं च गुरोरपि न दर्शयेत् ॥ ७ ॥

त्यजेद् दुष्टप्रवादं च परीवादं च वर्जयेत् ।
तथा दुर्जनसंसर्गं स्त्रीशूद्रालापनं तथा ॥ ८ ॥

[आसनप्रकाराः]

वस्त्रं कुशासनं व्याघ्रचर्म चापि नृमुण्डकम् ।
आसनेषु महादेवि प्रशस्तं चोत्तरोत्तरम् ॥ ९ ॥

[जपमालाप्रकारः]

फलस्फटिकरुद्राक्षमुक्तानृस्थिविनिर्मिताम् ।
जपमालां शुभां विद्धि प्रशस्तामुत्तरोत्तराम् ॥१०॥
अनेनोक्तविधानेन लक्ष्यसंख्यं जपेन् मनुम् ।
होमं दशांशतः कुर्यात् तर्पणं चाभिषेचनम् ॥११॥
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत् प्रिये ।

[प्रथमप्रयोगाभिधानम्]

शताभिजप्तमन्त्रेण रोचनातिलके कृते ॥१२॥
दासा इव महीपालाः स्वयमायान्ति सन्निधौ ।
प्रमदा अपि[1] तं दृष्टवा भवेयुर्गलिताम्बराः ॥१३॥

[द्वितीयप्रयोगाभिधानम्]

काकोलूकनरास्थीनि गृहीत्वा भौमवासरे ।
रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां संवेष्टयारक्ततन्तुना ॥१४॥
शताभिमन्त्रितं कृत्वा निक्षिपेच्छत्रुमन्दिरे ।
सप्ताहाभ्यन्तरे तेषां महदुच्चाटनं भवेत् ॥१५॥

---

१. इव ने

[तृतीयप्रयोगाभिधानम्]

उदयात् पूर्वमारभ्य जपेदस्तंगमावधि ।
एकविंशदिनं यावदर्धरात्रे बलिं क्षिपेत् ॥१६॥
नग्नो नग्नां स्त्रियं गच्छेत् मूलमन्त्रं जपन् शतम् ।
एवं कृते प्रिये सद्यः सर्वज्ञः साधको भवेत् ॥१७॥

[चतुर्थप्रयोगाभिधानम्]

नरास्थि निखनेद् भूमौ स्वमूत्रप्लावितं निशि ।
शतं च प्रजपेन्मन्त्रं रिपुर्ज्वरयुतो भवेत् ॥१८॥

[पञ्चमप्रयोगाभिधानम्]

काकपक्षैः शिवासृग्भिः नरास्थिनि लिखेदिदम् ।
तारं क्रोधत्रयं साध्यं द्वितीयान्तं बलिं वदेत् ॥१९॥
गृह्णद्वयं[1] भक्षयुगं मारय द्वितयं ततः ।
वह्निजायान्तगं मन्त्रं मूलमन्त्रस्य साधकः ॥२०॥
सहस्रं परिजप्याथ निशायां वैरिमन्दिरे ।
क्षिपेद् देवीं हृदि ध्यात्वा मृत्युस्तस्य त्रिमासतः ॥२१॥

[धारणीयाख्ययन्त्रस्य निर्देशः]

पद्ममष्टदलं भूर्जे योनियुग्मसमन्विते ।
लाक्षागोरोचनाचन्द्रकाश्मीरमृगनाभिभिः ॥२२॥
वक्ष्यमाणक्रमेणैव लिखेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
योनिमध्ये लिखेन्मूलमन्त्रमष्टादशाक्षरम् ॥२३॥
वक्ष्यमाणानि बीजानि लिखेदष्टदलेष्वपि ।
आमृतं प्रथमं बीजं गारुडं तदनन्तरम् ॥२४॥

---

१. द्वन्द्वं वं[1]

महाक्रोधं क्षेत्रपालं प्रेतबीजं च पञ्चमम् ।
प्रासादं चण्डबीजं च काली बीजमथाष्टमम् ॥२५॥
दलयोरन्तरे लेख्यं तारं वाग्भवमेव च ।
मायाबीजं वधूबीजं बीजं कामलकामथो: ॥२६॥
रतिबीजं मेघबोजं लिखित्वा तदनन्तरम् ।
पाशाङ्कुशक्रोधभूतबीजानि द्वारि संलिखेत् ॥२७॥
अकारादिक्षकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुसमन्वितैः ।
वेष्टयेद् वसुबज्राढ्यं यन्त्रं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥२८॥
वेष्टितं रक्तवस्त्रेण [1]जतुभिर्वेष्टयेत् ततः ।
बध्नीयात् पट्टवस्त्रेण बाहौ कण्ठेऽथ वा नृणाम् ॥२९॥
स्त्रीणां वामकरे बद्धमन्येषां दक्षिणे करे ।
सर्वं सम्पादयेत् सद्यो नात्र कार्या विचारणा ॥३०॥

[रक्षायन्त्रस्यास्य माहात्म्यवर्णनं फलश्रुत्यभिधानं च]

इयं रक्षा पुरा बद्धा सिद्धयर्थं साधकोत्तमैः ।
शक्रेण नमुचेर्युद्धे विष्णुना तारकामये ॥३१॥
हरेणान्धकसंग्रामे गरुडेनेन्द्रसंयुगे ।
वायुना माहिषे युद्धे कुवेरेणामृताहवे ॥३२॥
स्कन्देन तारकानीके पाशिना सुरभीरणे ।
यमेन रावणस्याजौ चन्द्रेण त्रिदशाजिरे ॥३३॥
तथा कृतयुगादौ च राजानो ये महाबलाः ।
तैश्चापि विधृतं यन्त्रं सर्वापत्तिनिवारणम् ॥३४॥
मान्धाता जामदग्न्यश्च नहुषः शिविरेव च ।
रामः पृथुः कार्तवीर्यः पुरुकुत्सो रघुर्नलः ॥३५॥

---

१. तन्तुभिर्वे० ग[1]

भरतः शशबिन्दुश्च ययातिर्वसुकोऽर्जुनः ।
पूरुः पुरूरवा भीमो जरासन्धो विदूरथः ॥३६॥
एभिश्चान्यैश्च भूपालैरेतद् यन्त्रं धृतं पुरा ।
एतस्यान्यानि यन्त्राणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३७॥
य एतं यन्त्रराजं हि धारयत्यप्रमादतः ।
स श्रिया विष्णुसदृशः प्रभया सूर्यसन्निभः ॥३८॥
कान्त्या चन्द्रमसा तुल्यो यक्षाधिपसमो धने ।
बलेन वायुना तुल्यो विद्यया गुरुणा समः ॥३९॥
सौन्दर्ये मन्मथप्रायो वैभवेनेन्द्रसन्निभः ।
तेजसा वह्निसदृशो रामार्जुनसमो रणे ॥४०॥
अथ किं बहुनोक्तेन शृणु पार्वति निश्चितम् ।
न कोऽपि भविता कश्चित् तत्तुल्यः पृथिवीतले ॥४१॥
स सर्वसिद्धिमाप्नोति सुराणामपि दुर्लभाम् ।
रिपुसैन्यं महाघोरं स्तम्भयत्यचिरात् प्रिये ॥४२॥
बन्ध्यापि लभते पुत्रं निर्धनो धनवान् भवेत् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां कन्यार्थी कन्यकामपि ॥४३॥
यं यं कामं हृदि ध्यात्वा यन्त्रमेतत् प्रधारयेत् ।
तं तं काममवाप्नोति महाकालवचो यथा ॥४४॥

[रक्षायन्त्रस्यास्य प्रकारान्तरेण प्रयोगनिर्देशः]

अपरं च प्रवक्ष्यामि प्रयोगं सिद्धिदायकम् ।
आनीय कामिनीमेकां नवयौवनशालिनीम् ॥४५॥
असतीं सुन्दरीं भीत्या[1] परिहीनां महानिशि ।
वस्त्रालंकारकनकं दत्वा तस्यै यथाविधि ॥४६॥

---

१. प्रीत्या ने

नग्नो नग्नां मुक्तकेशो मुक्तकेशीं जपन्मनुम् ।
मैथुनेनोपगच्छेत तस्याः सन्तोषपूर्वकम् ॥४७॥
योनिं स्वरेतसा लिप्त्वा तत्रेदं यन्त्रमालिखेत् ।
जिह्वया तल्लिहेत् सर्वं सत्कृत्यैवमकुत्सयन् ॥४८॥

[उक्तप्रयोगस्य फलश्रुतिः]

ततश्चराचरं सर्वं ज्ञात्वा सर्वज्ञतां लभेत् ।
मूकांश्च वादयेत् सत्सु कवित्वं चापि कारयेत् ॥४९॥
अतीतानागतं वेत्ति वर्तमानं च पश्यति ।
कुर्याच्च वादिनो मूकान् सभायां पण्डितानपि ॥५०॥
विवादे जयमाप्नोति पूजां सर्वत्र विन्दते[1] ।
किमन्येन प्रकारेण नराणां मन्त्रसिद्धये ॥५१॥
अनेन विधिना विद्यां लक्ष्मीमपि सदाप्नुयात् ।
द्वादशाब्दं चरन्नेवं सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात् ॥५२॥
विद्याधरत्वमाप्नोति खेचरत्वं तथैव च ।
पातालतलचारित्वं तथा वाक्सिद्धिमेव च ॥५३॥
तस्य दर्शनमात्रेण मार्तण्डसमतेजसः ।
पिशाचयक्षरक्षांसि पलायन्ते दिशो दश ॥५४॥

[आकर्षणप्रयोगविधिः]

ताम्बूलपत्रे मधुना साध्यनाम लिखेत् सुधीः ।
मूलमन्त्रेण संवेष्टय मुक्तवासाः दिगम्बरः ॥५५॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण भक्षयेदविचारयन् ।
प्रणवं च त्रपाबीजं कामबीजमनन्तरम् ॥५६॥

---

१. विन्दति, ने

साध्य नाम द्वितीयान्तं क्लेदय द्वितयं वदेत् ।
आकर्षय युगं चापि मथ द्वन्द्वं वदेत्ततः ॥५७॥
युगं युगं वदेद् देवि पच द्रावय शब्दयोः ।
आनय द्वितयं प्रोच्य मम सन्निधिमुच्चरेत् ॥५८॥
क्रोधवाग्भवलक्ष्मीणां युगं युगमुदीरयेत् ।
वह्निजायान्तगो मन्त्रः सर्वाकर्षणकारकः ॥५९॥
अनेन विधिनाकर्षेद् यां यामिच्छति साधकः ।
तथाप्यागच्छति क्षिप्रं यदि भूपस्य वल्लभा ॥६०॥
सहस्रजनगुप्तापि यद्यन्तःपुरवासिनी ।
यदि साक्षात् स्वयं देवी यदि वा स्यादरुन्धती ॥६१॥
तथापि तस्याः सामर्थ्यं न स्यात् स्थातुं सुरेश्वरि ।
स्वयमायान्ति निर्लज्जा इतरासां तु का कथा ॥६२॥
पत्युरङ्कं समुत्सृज्य सुतमङ्कान्निरस्य च ।
पितरं चावमन्यापि बन्धून् धिक्कृत्य सर्वतः ॥६३॥
गृहीता इव भूतेन स्वयमायान्ति योषितः ।
तस्मान्निरीक्ष्य कर्तव्यः प्रयोगोऽयं शुचिस्मिते ॥६४॥

[आकर्षणस्य प्रयोगान्तरविधिः]

प्रणवं रतिकामौ च मायाक्रोधाङ्कुशश्रियः ।
पाशं वाग्भवमुच्चार्य कालीबीजमथोच्चरेत् ॥६५॥
वदेत् कामकलाकालि सर्वाकर्षिणि चेत्यपि ।
साध्यमाकर्षयेत्युक्त्वा वह्निजायामुदीरयेत् ॥६६॥
मन्त्रेणानेनाभिमन्त्र्य तोयं वामेन पाणिना ।
पिबेत् प्रक्षालयेत्तेन मुखमात्मन एव च ॥६७॥

या याः पश्यन्ति तं नार्यो यदि साध्व्योऽपि भामिनि ।
तास्ता मुह्यन्ति निर्धूतधर्मभर्तृकुलत्रपाः ६८॥
आविष्टा इव निर्लज्जास्तिष्ठेयुः साधकाग्रतः ।
दास्यो भवाम इत्येवं वादिन्यस्ताः कुलाङ्गनाः ॥६९॥

[पादुकासिद्धिविधिः]

पलासकाष्ठसंभूतपादुकायुग्ममाहरेत् ।
श्मशानांगारमादाय तत्र मन्त्रं लिखेदमुम् ॥७०॥
तारं वाग्वादिनीबीजं कालीयं कामलार्णकम् ।
लज्जां क्रोधं समुद्धृत्य देव्याः संबोधनं लिखेत् ॥७१॥
गन्तव्यभूमिमुल्लिख्य खण्डय च्छेदय द्वयम् ।
त्रुट युग्मं छिन्धि युगं भूतपाशाङ्कुशार्णकम् ॥७२॥
सिद्धिं देहीति संप्रोच्य दापयेति पदं ततः ।
अस्त्रत्रितयमालिख्य वह्निजायायुतो मनुः ॥७३॥
लेपयित्वा स्नुहीदुग्धं पादयोः साधकोत्तमः ।
इच्छागामी भवेद् देवि नात्र कार्या विचारणा ॥७४॥
पूर्वस्यां दिशि गच्छेत् स योजनानां शतद्वयम् ।
याम्यायां त्रिशतं विद्धि वारुण्यां च चतुःशतम् ॥७५॥
उत्तरस्यां पञ्चशतं विदिक्षु शतमेव च ।
व्रजेदलक्षितो भूत्वा यथेच्छं साधकाग्रणीः ॥७६॥
परावृत्य समायाति तावदेव वरानने ।

[खेचरीसिद्धिविधिः]

अतश्च खेचरीसिद्धिं शृणु सावहिता मम ॥७७॥
स्वर्णक्षीरीलतामूलं ग्राह्यं चन्द्रग्रहे सति ।

रजःस्वलाभगे स्थाप्यं दिवसं त्रितयं प्रिये ॥७८॥
ततो धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैस्तत् प्रपूजयेत् ।
तावद् यत्नेन संस्थाप्यं यावत् सूर्यग्रहो भवेत् ॥७९॥
सूर्यग्रहे तु संप्राप्ते खञ्जरीटासृजा[1] प्रिये ।
संचूर्ण्य गुटिका कार्या यवत्रितयसंमिता ॥८०॥
भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां बलिं दत्वा च कुक्कुटम् ।

[निरुक्तलतामूलस्य शिखायां धारणस्य समन्त्रो विधिः]

धारयीत शिखामूले मनुमेनमुदीरयन् ॥८१॥
निगमादिं वाग्भवं च मायां कामार्णमुच्चरेत् ।
पाशाङ्कुशक्रोधभूतलक्ष्मीबीजानि चोच्चरेत् ॥८२॥
नाम देव्याश्च संबोध्य रतिमोहिनि चोल्लिखेत्[2] ।
वसामांसपदं चोक्त्वा रक्तप्रिय इतीरयेत् ॥८३॥
खेचरं मामिति प्रोच्य कुरु युग्मं विनिर्दिशेत् ।
रक्षोभूतपिशाचेति पदमुच्चारयेत् ततः ॥८४॥
ततश्च विन्यसेद् देवि सिद्धविद्याधरोरगान् ।
समुच्चरेत् कुरुद्वन्द्वमुक्त्वा मम वशं पदम् ॥८५॥
ह्रां ह्रीं क्षां क्षूं विनिर्दिश्य क्रां क्रीं क्लां क्लूं समालिखेत् ।
खेचरीसिद्धिशब्दाच्च दायिनीति पदं लिखेत् ॥८६॥
त्वरयुग्मं समाहृत्य कहयुग्मं ततो वदेत् ।
कालि कापालि सम्बोध्य क्रोधत्रितयमुल्लिखेत् ॥८७॥
अस्त्रत्रितयमुच्चार्य्य[3] स्वाहान्तो मनुरीरितः ।

---

१. खञ्जनीयासृणा ब[1] ।
२. चोच्चरेत् ब[1] ।
३. मुल्लिख्य ब[1] ।

[खेचरीसिद्धिफलश्रुतिः]

ततः स खेचरो भूत्वा यादृच्छिकगतिर्भवेत् ॥८८॥
सिद्धैस्साध्यैरप्सरोभिर्देवैश्च सह मोदते ।
मेरुमन्दरकैलासहेमकूटहिमालयान् ॥८९॥
अद्रीनारोहते सर्वान् प्रयोगस्यास्य शक्तितः ।
इन्द्राग्नियमयक्षेशवरुणानिलरक्षसाम् ॥९०॥
ईशस्यापि पुरं गच्छेदन्यत्रैव च का कथा ।
न गतिस्तस्य हन्येत पातालेऽपि कदाचन ॥९१॥
सर्वेषामप्यधृष्यः स्याद् भूपातालखचारिणाम् ।
सिद्धैः साध्यैश्च देवैश्च यक्षै रक्षोभिरेव च ॥९२॥
नागैश्च दानवैर्भूतैः सह संभाषणं चरेत् ।
वज्रकायः स्वयं भूत्वा विचरत्यवनीतले ॥९३॥
न तस्याभिभवं कर्तुं शक्यते त्रिदशैरपि ।

[खड्गसिद्धिविधिः]

अथापरं प्रयोगं च वदतो [1]मेऽवधारय ॥९४॥
काम्बोजदेशसंभूतं पलषोडशसंमितम् ।
लोहमानीय देवेशि संक्रान्तौ मकरस्य च ॥९५॥
तावत्संपूजयेद् यत्नाद् यावत् कर्क्कटसंक्रमः ।
ततो व्योकारमाहूय स्वगृहे कारयेदसिम् ॥९६॥
शुचिर्दिगम्बरो मुक्तचिकुरो लोहकारकः ।
कृष्णाष्टम्यामाश्विनस्य प्रारभेतासिमुत्तमम् ॥९७॥
कुर्य्याच्छनैः शनैस्तावद् यावन्मकरसंक्रमः ।
तत आनीय तं रात्रौ कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ॥९८॥

१. मे निशामय व[1] ।

पूजां विधाय विधिवत् स्थापयेत् कालिकाग्रतः ।
आर्तवेन युवत्यास्तं लेपयेदविचारयन् ॥९९॥
नैवैद्यधूपदीपाद्यैर्जवापुष्पैश्च पूजयेत् ।
स्नुहीवटार्कदुग्धेन विलिम्पेन्मुष्टिमेव च ॥१००॥

[देव्यै खड्गसमर्पणमन्त्रः]

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण देव्यै खड्गं समर्पयेत् ।
वेदादिवाग्भवक्रोधमेघविद्युद्रमार्णकान् ॥१०१॥
उच्चार्य घोरनादे च दंष्ट्राविकट इत्यपि ।
मुखमण्डन उच्चार्य महाघार इतीरयेत् ॥१०२॥
तथा घोरतरे चैव महाशब्दाद् भयंकरे ।
श्मशानवासिनीत्युक्त्वा योगिनीडाकिनीपदम् ॥१०३॥
ततः परिवृते प्रोच्य कल्पान्तेति पदं लिखेत् ।
कालानल निगद्यैव विकराल इतीरयेत् ॥१०४॥
दुर्निरीक्ष्य ततो रूपे दशानां युगकं वदेत् ।
गर्ज विध्वंसय च्छिन्धि दम मर्दय पातय ॥१०५॥
उच्छादय क्षोभय च मारय द्रावयेत्यपि ।
[1]ततो वदेदिमं खड्गं देहि मेऽन्यङ्गनायुतः ॥१०६॥

[खड्गस्य बलिदानविधिः]

ततः स्वगात्ररुधिरं देव्यै दद्यान्नृपो बलिम् ।
ततो दद्यान्नरबलिमभावे महिषायुतम् ॥१०७॥

[खड्गस्य कृते देव्या अनुज्ञाप्रार्थनम्]

देवि कामकलाकालि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
देहि खड्गं भगवति त्रिलोकीविजयाय मे ॥१०८॥

---

१. इतः पंक्तिद्वयं 'ख' इत्यत्र नास्ति ।

एवं गृहीत्वानुज्ञां वै हस्ते संलाप्य यत्नतः ।
अङ्कोलीतैलमुच्चण्डं गृह्णीयान्मन्त्रमुच्चरन् ।।१०९।।

[खड्गमुष्टौ त्सरुनिवेशनमन्त्रः]

करवाल महाराज सर्वदेवधृत प्रभो ।
कालनेमिवधे त्वं हि विष्णुना विधृतः पुरा ।।११०।।
नन्दकेति ततः संज्ञां संप्राप्तस्त्वं जगत्प्रभो ।
इन्द्रेण जम्भसंग्रामे धृतस्त्वं क्रथनो भव ।।१११।।
दुर्गया दुर्गसंग्रामे यदा त्वं विधृतो ह्यभूः ।
विद्युत्पातेति संज्ञां त्वमवाप्तस्तत्क्षणे विभो ।।११२।।
सर्वैर्देवगणैः सार्धं जायमाने महाहवे ।
रावणेन धृतः पूर्वं चन्द्रहासस्त्वमप्यभूः ।।११३।।
त्रैलोक्यविजयार्थं हि त्वमिदानीं मया धृतः ।
वज्रघात इतीयं ते संज्ञा देव मया कृता ।।११४।।
एव मन्त्रं समुच्चार्यं त्सरुं मुष्टौ निवेशयेत् ।
स नग्न एव तिष्ठेद्धि यावदिच्छं महात्मनः ।।११५।।

[अस्य खड्गस्य फलश्रुतिः]

एवं खड्गमुपादाय यत्र युद्धे व्रजत्यसौ ।
जयस्तत्र भवेदस्य नात्र कार्या विचारणा ।।११६।।
साधकेन तु कर्तव्या केवलं चालनक्रिया ।
स्वयमेव कृपाणोऽयं शातयत्याशु वैरिणः ।।११७।।
यत्र यत्रैव पतति वज्रघातोऽसिपुंगव ।
केवलं तत्र तत्रैव पतत्यशनिरेव हि ।।११८।।
एकतो वज्रघातोऽयमेकतो वीरकोटयः ।
द्रष्टुमेव न शक्तास्ते किं पुनर्योद्धुमाहवे ।।११९।।

तत्कृपाणकरं ये ये पश्यन्ति रणमध्यगाः ।
ते ते चक्षुर्मुद्रयित्वा तत्रैव निपतन्त्यधः ॥१२०॥
वज्रघातप्रभावोऽयं वर्णितुं नैव शक्यते ।
तथापि किञ्चिच्चापल्यात् कथितं देवि तेऽग्रतः ॥१२१॥
निशुम्भशुम्भसंग्रामे देव्या चायं धृतः पुरा ।
ततो देवासुरे युद्धे बलिना बलिना धृतः ॥१२२॥
रक्षोवानरसंग्रामे ततो रावणिना धृतः ।
निवातकवचाख्यानाः कालकेयाभिधास्तथा ॥१२३॥
देवानामप्यवध्या ये हिरण्यपुरवासिनः ।
नवत्यर्वुदषट्खर्वनिखर्वशतसम्मिताः ॥१२४॥
वज्रघातप्रसादेन तेऽर्जुनेन जिताः पुरा ।
वीरभद्रं समाराध्य सौप्तिकानीकचारिणा ॥१२५॥
द्रौणिना निशि धृत्वैनमवशिष्टा निपातिताः ।
यावच्छत्रुबलं सर्वं न निःशेषं भवेत् प्रिये ॥१२६॥
तावन्मुष्टिन्नं च्यवति कराग्रादिति निश्चितम् ।
खड्गसिद्धिमिमां श्रुत्वा समरे विजयो भवेत् ॥१२७॥

[अञ्जनप्रयोगविधिः]

अथाञ्जनप्रयोगं ते प्रवक्ष्यामि वरानने ।
येनाञ्जितो निधिं पश्येदेनं कश्चन नेक्षते ॥१२८॥
भौमवाराप्तपञ्चत्वसूतिकाबालखर्परम् ।
समानीय श्मशाने तु कज्जलं तत्र पातयेत् ॥१२९॥
नवनीतं भक्षयित्वा कृष्णमार्जारकं सदा ।
तद्वान्तं तत्समादाय राजीवार्कस्य तन्तुना ॥१३०॥

खञ्जरीटस्य गरुता सार्द्धं वर्त्ति प्रकल्पयेत् ।
ततस्तत्कज्जलं नीत्वा शनिवारे [1]निमन्त्रयेत् ॥१३१॥
प्रातर्देव्यै समर्प्याथ मन्त्रेणानेन चाञ्जयेत् ।

[अञ्जनसिद्ध्यर्थं मन्त्रजपविधिः]

वाग्भवं कामलं क्रोधं भूतबीजमथोच्चरेत् ॥१३२॥
निगद्य सर्वसिद्धीति दायिनीति पदं वदेत् ।
मा मां पश्यन्तु चोद्धृत्य सर्वाभूतानि चोच्चरेत् ॥१३३॥
स्वाहान्तं मन्त्रमुल्लिख्याञ्जये[2]न्नेत्रेऽविचारयन् ।

[अञ्जनसिद्धिफलश्रुतिः]

नैनं पश्यन्ति भूतानि नैनं पश्यन्ति मानुषाः १३४॥
नैनं पश्यन्ति गीर्वाणा न नागा नासुराः खगाः ।
अयं पश्यति भूतानि परमाणुसमान्यपि ॥१३५॥
निधिं भूमितलगतं सर्वं पश्यति साधकः ।
व्यवधानगतं चापि दूरदेशगतं तथा ॥१३६॥
तिरश्चां विरुतं वेत्ति वेत्ति चैषां च चेष्टितम् ।
आकाशचारिणः सर्वान् पश्यत्येव न संशयः ॥१३७॥
सुभगः सर्वनारीणां भवेत् काम इवापरः ।
सर्वत्रैवाप्रतिहतो विचरेत महीतले ॥१३८॥

[गुटिकासिद्धिविधिः]

अथ ते गुटिकासिद्धिं प्रवदामि समासतः ।
यत्सिद्धौ सर्वसिद्धिः स्यादेकसिद्ध्या न संशयः ॥१३९॥

---

१. ० ऽभि मन्त्रयेत् द[1] ।
२. नात्र विचारयेत् द[1] ।

रेखायुतं स्थूलपीतं शुचिदेशगतं प्रिये ।
पुष्करिण्युदपानस्थं भेकमेकमुपाहरेत् ।।१४०।।
एकस्मिन् मार्त्तिके कुम्भे नूतने तं निधापयेत् ।
पलमेकं शुद्धमूतं तन्मध्ये निक्षिपेत् प्रिये ।।१४१।।
मुखमाच्छादयेत्तस्य सरावेण प्रयत्नतः ।
बहुना जतुना तच्च मुद्रयेद् वारपञ्चकम् १४२।।
तथाचेरत् प्रयत्नेन विशेन्नाम्भो यथाण्वपि ।
ततो लिखेदमुं मन्त्रं कुम्भे साधकसत्तमः ।।१४३।।

[कुम्भे लेखनीयमन्त्रनिर्देशः[

तारवाग्भवकन्दर्पवधूलज्जारमारुषः ।
पाशप्रासादफेत्कारीभूतप्रेतामृतान्यपि ।।१४४।।
महाक्रोधं क्षेत्रपालं चण्डकालीयगारुडान् ।
कालविद्युन्मेघनागरतिबीजानि चालिखेत् ।।१४५।।
चतुर्विंशतिबीजानि खेचरीसहितानि च ।
उक्त्वा कामकलाकालि रक्ष रक्षेति चोच्चरेत् ।।१४६।।
आकाशबीजत्रितयं महीबीजद्वयं ततः ।
वारुणं बीजमेकं हि प्रोच्चरेत्तदनन्तरम् ।।१४७।।
अस्त्रत्रितयसंयुक्तः स्वाहान्तो मनुरीरितः ।
चलत्तोयप्रवाहायाः कुल्याया हस्तमात्रतः ।।१४८।।
भूमेः खनित्वा तत्राधो घटं संस्थापयेदमुम् ।
उपरिष्टात् प्रदेयानि शर्कराशकलानि च ।।१४९।।
यथोपरि प्रवाहस्तु गच्छेत् कुर्यात्तथाविधिम् ।
तत्र षण्मासपर्य्यन्तं स्थापयेद् यत्नतो घटम् ।।१५०।।

१. ०नाद द[१] ।

अन्वहं भक्षयेत् तत्स्थमूतं भेकः क्षुधान्वितः ।

[अत्र बलिदानविधिः]

बलिस्तत्र प्रयत्नेन देयः प्रतिचतुर्दशि ॥१५१॥
भेकरूपेण सा देवी स्वयमेवास्ति तद्यतः ।
तस्मात्तत्रार्च्चनं कार्यं देवीबुद्ध्या न संशयः ॥१५२॥
सूतस्तदुदरे बद्धो भवतीति सुनिश्चितम् ।
षण्मासानन्तरं देवि तत उत्थापयेत्सुधीः ॥१५३॥
गृहकोणे ततः स्थाप्यमन्धकारे रहस्यपि ।
एकं हि विवरं कार्यं कुम्भे तत्र शनैः शनैः ॥१५४॥
संपिष्टहिंगुलीतोयं पलमात्रं विनिःक्षिपेत् ।
तेन छिद्रपथा देवि मासि मास्येवमाचरेत् ॥१५५॥
तत्तोयं षट्पलमितं षट्सु मासेषु दापयेत् ।
ततः संवत्सरे पूर्णे बहिर्निष्कासयेच्छनैः ॥१५६॥
ततोऽन्तरीक्षे तत्स्थाप्यं प्रयत्नेन विचक्षणः ।
तत्र विघ्नकराः सर्वे देवदानवराक्षसाः ॥१५७॥
सावधानो भवेत्तस्मात् प्रति०क्षणमनन्यधीः ।

[घटरक्षामन्त्रनिर्देशः]

तत्र रक्षा प्रकर्त्तव्या मन्त्रेणानेन पार्वति ॥१५८॥
क्रोधबीजत्रयं प्रोच्य देव्याः सम्बोधनं वदेत् ।
यक्षराक्षसभूतेति पिशाचप्रेत इत्यपि ॥१५९॥
कूष्माण्डजम्भकेत्येव योगिनी डाकिनीति च ।
स्कन्दवेताल उच्चार्य क्षेत्रपाल विनायक ॥१६०॥
ततो घोणक उल्लिख्य गुह्यकेति पदं वदेत् ।
विनायकेभ्य इत्युक्त्वा इमं घटमुदीरयेत् ॥१६१॥

रक्ष रक्षेति चोद्धृत्य स्वाहान्तो मन्त्र उत्तमः ।
मन्त्रेणानेनावगुण्ठ्य कुर्यादेवं ततः परम् ॥१६२॥
कृष्णधुत्तुरवृक्षस्य पलमात्रं द्रवं शुचि ।
दद्याच्च प्रथमे मासि तेन च्छिद्रेण साधकः ॥१६३॥
द्वितीये मासि तुलसी तृतीये श्रेयसीरसम् ।
चतुर्थे मार्करीं दद्यात् पञ्चमे लक्ष्मणारसम् ॥१६४॥
षष्ठे हैमवतीपत्रद्रवदानं विधीयते ।
पूर्णे ह्यष्टादशे मासि प्रदद्यान्माहिषं बलिम् १६५॥
ततो निष्कासयेद् भेकं सिंदूरारुणसंनिभम् ।
वस्त्रैः करं वेष्टयित्वा ततस्तमवनामयेत् ॥१६६॥
शनैः शनैर्धूनयेच्च यावद्वमति दर्दुरः ।
ततः सा गुटिका देवि सिन्दूरारुणसन्निभा १६७॥
इन्द्रगोपादपि तथा माणिक्यशकलादपि ।
महाशोणा भवेद् देवि तां प्रगृह्य विचक्षणः ॥१६८॥
प्राणप्रतिष्ठामापाद्य पूजयित्वा यथाविधि ।
देव्यनुज्ञां समासाद्य मन्त्रेणानेन धारयेत् ॥१६९॥

[गुटिकाधारणमन्त्रनिर्देशः]

प्रणवं शाम्भवं बीजं मायाकामाङ्कुशामृतम् ।
सर्वसिद्धिमथोच्चार्य देहि देहीति संगृणेत् ॥१७०॥
ततः स्वाहा पदं चोक्त्वा शिखायां बन्धयेत्ततः ।

[गुटिकायाः फलश्रुतिः]

अव्याहतगतिर्भूत्वा यत्रेच्छा तत्र गच्छतु ॥१७१॥
अनेनैव शरीरेण देवत्वं प्राप्नुयान्नरः ।
खेचरो जायते देवि तथैवादृश्यतां व्रजेत् ॥१७२॥

लीयते वायुभूतोऽयं वायुमध्ये न संशयः ।
तेजो भूत्वा निविशते तेजस्येव स साधकः ॥१७३॥
जले प्रविष्टो भवति जलरूपो वरानने ।
स आकाशतनुर्भूत्वाकाश एव विलीयते ॥१७४॥
सुमेरुशतसंकाशो गरिम्णा स भवत्यपि ।
परमाणुसमो भूयादणिम्ना स क्षणान्तरम् ॥१७५॥
पिबत्यब्धिचतुष्कं स यदि देवि पिपासति ।
चन्द्रसूर्यग्रहर्क्षाणि साधकश्चेद् दिधीर्षति ॥१७६
ध्रियते तत्क्षणादेव कराभ्यां स्थित एव सः ।
शापानुग्रहसामर्थ्यं भवति क्षिप्रमेव हि ॥१७७॥
लोकपालैः समं तस्य संवादो जायते मिथः ।
तेषां पुराणि व्रजति सखा चैषां भवेदसौ ॥१७८॥
नागाङ्गना देवकन्या यक्षिण्योऽप्सरसस्तथा ।
तस्याग्रतः समायान्ति स्वयं मदनविह्वलाः ॥१७९॥
जीवेत् स साधकश्रेष्ठो यावदाचन्द्रतारकम् ।
न शक्यते समाख्यातुं महिमा मादृशा प्रिये ॥१८०॥
अथवा किं बहूक्तेन सत्यं सत्यं वचो मम ।
स साक्षाद् रुद्र एवेति मन्तव्यो नात्र संशयः ॥१८१॥
रौप्यताम्राहिवङ्गायोराशीन् पर्वतसन्निभान् ।
यद्येष स्पृशति क्षिप्रं सुवर्णं निश्चितं भवेत् ॥१८२॥
यस्मात्कामकलाकालीरूपेयं गुटिका प्रिये ।
तस्मान्नैव प्रयोक्तव्या ह्यन्यासु क्षुद्रसिद्धिषु ॥१८३॥
केवलं देवतात्वैककारिणीं गुटिकामिमाम् ।
धारयेत् कालिकारूपामप्रमत्तेन चेतसा ॥१८४॥

[तालवेतालसिद्धिविधिः]

अथापरं प्रयोगं च शृणु वक्ष्यामि कंचन ।
कोऽपि वीरो महायुद्धे संमुखे पतितो हि यः ॥१८५॥
सशिरस्कं समादाय स्थापयेत् पितृकानने ।
अथ स्वयं शुचिः स्नातः कृतनित्याह्निकक्रियः ॥१८६॥
रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यामभीतः साधकः सुधीः ।
वध्यमेकं नरं चौरं समादाय व्रजेन्नृपः ॥१८७॥
आरुह्य तं शवं तत्र जपेन्मन्त्रमभीः शुचिः ।
साहस्रे वा द्विसाहस्रे जपे पूर्णे कपालिनी[1] ॥१८८॥
प्रविश्य तत्र कुणपं आवेशं विदधीत वै ।
ततो नरबलिं दद्याद् देव्यै साधकसत्तमः ॥१८९॥

[नरबलिदानमन्त्रनिर्देशः]

तारवाग्भवकन्दर्पप्रेतभूतामृतैः सह ।
प्रासादाङ्कुशफेत्कारीगारुडक्षेत्रपालकैः ॥१९०॥
सम्बोध्य देव्या नामापि बलिं गृह्ण मुहुर्मुहुः ।
सिद्धिं मे देहि संभाष्य दापयेति ततः परम् ॥१९१॥
स्वाहान्तं मन्त्रमुल्लिख्य दद्यादेतेन साधकः ।
भवेतां तालवेतालौ नामानौ सेवकोत्तमौ ॥१९२॥

[तालवेतालसिद्धिफलश्रुतिः]

तावारुह्य व्रजेद् देवि भूर्भुवःस्वःपुरत्रयम् ।
तलं रसातलं चैव पातालसुतलातलान् ॥१९३॥
मेरुशैलादिकांश्चैव व्रजेदेवं न संशयः ।
अन्तः समुद्रे विशति जले तेजसि लीयते ॥१९४॥

---

१. कलापिनी द[1] ।

आकाशे पर्वतादींश्च भिनत्ति स्वेन तेजसा ।
त्रैलोक्यान्तरगं स्थानं तादृशं नास्ति पार्वति ॥१६५॥
यत्रायं नैव गच्छेत् स इत्येवं निश्चयो मम ।
अन्ये च बहवो देवि प्रयोगाः सन्ति भूरिशः ॥१६६॥
ते सर्वेऽन्वेषणीयाश्च ह्यन्यकालीविधिष्वपि ।
इत्येते कथिता देवि प्रयोगाः सर्वसिद्धिदाः ॥१६७॥

इत्यादिनाथविरचितायां महाकालसंहितायां सामान्यविशेषप्रयोगो नाम षष्ठः पटलः ।

———

सप्तमः पटलः

[अवतरणम्]

देव्युवाच

कर्त्तव्यं केन रूपेण स्थापनं जातवेदसः ।
देवेश तन्मे कथय महाकाल जगत्पते ॥ १ ॥

[वह्निस्थापनविधिः]

महाकाल उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि वह्नेः स्थापनमुत्तमम् ।
जायते सर्वथा येन साधकस्येप्सितं वरम् ॥ २ ॥
पूर्व्वोत्तरप्लवं रम्यमादौ मण्डलमाचरेत् ।
ततस्त्रिकोणं षट्कोणं नवकोणमथापि च ॥ ३ ॥

[कामनाभेदेनाहवनीयद्रव्यकाष्ठयोर्भेदाभिधानम्]

तत्तत्कार्यानुसारेण विदधीत विचक्षणः ।
वाञ्छाभेदाद् द्रव्यभेदाः काष्ठभेदाः भवन्ति हि ॥ ४ ॥
फलं फलानामन्यत् स्यादन्यदन्नस्य पार्वति ।
तथान्यदेव पुष्पाणामन्यदेवान्यवस्तुनः ॥ ५ ॥
अन्यामन्यां होमकर्मकामनां मन्त्रविच्चरेत् ।
ध्यायन् देवीं चरेद्धोमं समिद्भिः सर्पिषा सह ॥ ६ ॥
ततो जपं प्रकुर्वीत होमान्ते सर्वथा प्रिये ।
ततः सजपहोमाद्धि जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥ ७ ॥

[होमविध्यभिधानम्]

अथ होमविधिं वक्ष्ये ये शास्त्रे विहिताः सदा ।
यस्य सम्यग् विधानेन सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥ ८ ॥

पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा कोणं चापि यथाविधि ।
तत्राचरेच्छुचिर्भूत्वा स्थापनं जातवेदसः ॥ ९ ॥
न्यासं करांगयोः कृत्वा ध्यात्वा देवीं हृदि स्थिताम् ।
मण्डले कोण ऐशान्यां होमकर्मारभेत वै ॥१०॥
विधाय विधिवत्पूजां होमकर्मणि मण्डले ।
अग्न आयाहि मन्त्रेण वह्नेरावाहनं चरेत् ॥११॥
अग्नये रोचमानायेति मन्त्रैः स्थापनं ततः ।
होमं पश्चात् प्रकुर्वीत समिद्भिः कुसुमैरपि ॥१२॥
फलैः पत्रैर्व्रीहिभिश्च तथान्यैरपि वस्तुभिः ।
शतमष्टोत्तरं चापि सहस्रं चायुतं तथा ॥१२॥
लक्षं चापि प्रकर्त्तव्यं लक्षोपरि न विद्यते ।
कामनागौरवादेव होमो गौरवमिच्छति ॥१४॥
सर्वत्रैव तु होमान्ते जपं कुर्यादनन्यधीः ।

[होमे कथं फलवैविध्यमित्यभिधानम्]

एकेन केवलेनैव द्रव्येणान्यत् फलं भवेत् ॥१५॥
अन्यदेव विमिश्रेण फलं देवि विधीयते ।

[कुसुमाहुतिफलकथनम्]

कुसुमानां फलं सर्वमादौ [1]मत्तोऽवधारय ॥१६॥
समिद्घृतमधून्मिश्रा मालतीकुसुमाहुतिः ।
बृहस्पतेरप्यधिका वागीशत्वप्रदायिका ॥१७॥
वशगाः स्युर्महीपाला जातीपुष्पैकहोमतः ।
मेधावृद्धिर्यूथिकाभिर्नृपत्वं नागकेशरैः ॥१८॥

---

१. वक्ष्ये द[1]

माधवीभिर्महीलाभो हेमलाभश्च चम्पकैः ।
अतिमुक्तैर्बुद्धिवृद्धिर्मल्लिकाभिर्धनागमः ॥१९॥
कुन्दैः कीर्त्तिमवाप्नोति बन्धूकैर्बान्धवप्रियः ।
जवापुष्पेण रिपवः संक्षयं यान्ति तत्क्षणात् ॥२०॥
पद्मैरायुरवाप्नोति कुमुदैः कविता भवेत् ।
कदम्बैर्व्याधिनाशः स्यादम्लानैर्वृद्धिभाग्भवेत् ॥२१॥
जयप्राप्तिर्मरुवकैर्जयलाभः कुरुण्टकैः ।
झिण्टीभिर्हयलाभः स्यान्नौलाभो मुनिपुष्पकैः ॥२२॥
तथापराजितापुष्पैर्भवेत् सर्वाङ्गसुन्दरः ।
शेफालिकाप्रसूनेन सुतलाभः प्रदिश्यते ॥२३॥
शोकहानिरशोकेन वकुलैः कुलमान्यता ।
दूर्वया धनधान्यानि शाल्मल्या शात्रवक्षयः ॥२४॥
द्रोणपुष्पेणार्थलाभो वकपुष्पैर्धनागमः ।
राज्यलाभश्च पुन्नागैः कर्णिकारैर्बहून्नतिः ॥२५॥
दीर्घायुष्ट्वं पाटलेन तगरैः सर्वमान्यता ।
पलाशकुसुमैर्होमो बहुगोऽजाविकारकः ॥२६॥
शिरीषपुष्पैः प्रमदा जयन्त्या च जयश्रियः ।
विद्वेषणं चार्कपुष्पैर्धुत्तूरै रिपुमारणम् ॥२७॥
कोविदारैर्बलावाप्तिः पारिजातैर्जयोच्छ्रयः[1] ।
अन्येषामपि पुष्पाणामन्यदन्यत् फलं भवेत् ॥२८॥

[फलाहुतीनां फलाभिधानम्]

फलहोमस्यापि फलं कथयामि वरानने ।
श्रीफलैः श्रीफलावाप्तिः क्रमुकैर्भोगसञ्चयः ॥२९॥

१. जयश्रियः ब[1] ।

नागरङ्गेण सौन्दर्यं पनसैः कान्तिमान् भवेत् ।
वशित्वं नारिकेलेन जम्बीरैः शत्रुसंक्षयः ॥३०॥

आम्रेण राज्यलाभः स्यात् स्तम्भनं जाम्बवैः फलैः ।
रम्भाफलेन देवेशि सर्वसिद्धिरवाप्यते ॥३१॥

रिपूच्चाटः कपित्थेन वदर्य्या बलवान् रणे ।
क्षीरीफलेन तनयो द्राक्षाभिर्मोक्षमाप्नुयात् ॥३२॥

उदुम्बरेण धर्माप्तिर्वटेनापत्यपूर्णता ।
जातीफलस्य होमेन वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥३३॥

कूष्माण्डैर्ग्रहशान्तिः स्याद्वृद्धिर्द्धात्रीफलैस्तथा[1] ।
बीजपूरेणार्थपूरो मारणं च विभीतकैः ॥३४॥

मोक्षः स्यादेव रुद्राक्षैर्हरीतक्यामघक्षतिः ।
लकुचैर्युवतिप्राप्तिस्तालैरुन्मादयेद् रिपून् ॥३५॥

मधूकैर्महती लक्ष्मीः करमर्द्दैर्बलोन्नतिः ।
अन्येषां च फलानां हि भूयांसि हि फलानि च ॥३६॥

[अन्नाहुतिफलाभिधानम्]

महदायुर्यवैर्होमे मुद्गैरन्नप्रपूर्णता ।
शालिभिस्तण्डुलैर्वापि सम्पत्तिर्भूयसी भवेत् ॥३६॥

सर्वसिद्धिस्तिलैर्होमे माषैर्मासे रिपुक्षयः ।
श्यामाकैस्तपसो लाभो नीवारैस्तेज उत्तमम् ॥३८॥

सर्वाकृष्टिः कोद्रवेण कुल्माषैरामयक्षयः ।
सिद्धार्थकैस्सर्षपैश्च सर्वसिद्धिः करे स्थिता ॥३९॥

---

२. ० रपि ब[1] ।

[रसाहुतिफलाभिधानम्]

दुग्धेन नृपवश्यत्वं दध्ना नृपसुतास्तथा ।
इक्षुभिश्च गुडैर्वापि वशीभूताः स्त्रियोऽखिलाः ।।४०।।
सर्वानित्राज्यहोमेन वशीकुर्यान्न संशयः ।
मधुना भोगभूयस्त्वं शर्क्कराभिर्महोदयः ।।४१।।

[विविधवस्त्वाहुतिफलकथनम्]

राज्यावाप्तिः पट्टवस्त्रैः कर्प्पूरैः कीर्त्तिरुत्तमा ।
विद्याधरत्वं देवत्वं सिद्धत्वं मृगनाभिना ।।४२।।
कुङ्कुमै रूपशालित्वं चन्दनैर्वाग्मिता भवेत् ।
सिद्ध्यष्टकं चागुरुणा जयो रोचनया भवेत् ।।४३।।
मुक्तया शिवसायुज्यं माणिक्येनार्क्कपूःस्थितिः ।
वैदूर्य्यान्नागलोकाप्तिर्वज्रैर्वज्रिपुरे स्थितिः ।।४४।।
इन्द्रनीलेन मणिना गन्धर्वत्वमवाप्यते ।
गोमेदैः किन्नरत्वं च पुष्परागेण यक्षता ।।४५।।
गारुत्मतैः प्रवालैश्च तथा मरकतेन च ।
सप्तद्वीपेश्वरत्वं हि जायते नात्र संशयः ।।४६।।
कनकेन भवेत् कान्तिर्दुर्वर्णेन यशो भवेत् ।
ताम्रेण भूमिलाभः स्याद्रीत्या हि कलहे जयम् ।।४७।।
नागेन विषहानित्वं लोहैर्मारणमादिशेत् ।
लाक्षारसमयो होमः सर्वापत्तिनिवारणः ।।४८।।
कज्जलैरपधृष्यत्वं सिन्दूरैर्मोहनं भवेत् ।
बिल्वपत्रैर्न्नागवल्लीदलैर्लक्ष्मीरवाप्यते ।।४९।।
यावत्यः सिद्धयः सन्ति तावत्यः पायसैर्भवेत् ।
अपूपैः शष्कुलीभिश्च लक्ष्मीविद्याप्तिरेव च ।।५०।।

कटुत्रयेण शत्रूणामुच्चाटनमुदीर्यते ।
लवणेन भवेद् द्वेषः केशैर्मरणमादिशेत् ॥५१॥
रजस्वलानां नारीणामार्त्तवेन धनागमः ।
रेतसा स्तम्भनं देवि मोहनं स्वमलैरपि ॥५२॥
स्वीयेनोद्वर्त्तनेनैव त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
उलूककाकयोः पक्षैर्महद् विद्वेषणं भवेत् ॥५३॥
कटुतैलस्य होमेन वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ।
धाना लाजाश्च पक्वान्नमोदनं सर्वकामदम् ॥५४॥
कृशरान्नैर्मोदकैश्च सर्वसिद्धिर्भवत्यसौ ।

[होमे समिधां भेदेन फलभेदाभिधानम्]

कञ्चिद्विशेषं ते वक्ष्ये समिधां देवि तच्छृणु ॥५५॥
पालाश्याः समिधः शुद्धाः प्रशस्ताः सर्वकर्मणि ।
महद्धनाप्तिर्बिल्वेन खादिरेण नृपो वशः ॥५६॥
वार्टेन कामिनीप्राप्तिर्विद्याप्तिः पैप्पलैन च ।
औदुम्बर्या च समिधा खेचरत्वं प्रजायते ॥५७॥
सर्वज्ञत्वमपामार्गैरामलक्या महीपता ।
धुत्तूरेणारिनिधनं मुनिवृक्षैः स्थिरा मतिः ॥५८॥
शाखिभिर्यज्ञियैर्मेध्यैर्भिन्नं भिन्नं फलं भवेत् ।

[मांसाहुतिफलकथनम्]

निशामयाथ देवेशि मांसहोमफलं महत् ॥५९॥
छागमांसेनार्थलाभो विद्या मेषेण लभ्यते ।
कृष्णसारस्य मांसेन भवेयुर्वशगा नृपाः ॥६०॥
रुरुमांसेन साज्येन कृत्वा होमं वरानने ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति देवानामपि दुर्लभाम् ॥६१॥
स्तम्भयत्यरिसैन्यानि माहिषं पललं प्रिये ।

अनीतानागतज्ञानं वाराहेण च लभ्यते ॥६२॥
शत्रुवाक्स्तम्भनं कुर्यादार्क्षमांसाहुतिं चरेत् ।
कापेयपललेनैव रणेऽधृष्यः प्रजायते ॥६३॥
खाड्गेनाभेद्यकवचो भूत्वा भ्रमति मेदिनीम् ।
गोधामांसस्य होमेन निधिं पश्यति भूतले ॥६४॥
सामान्यमृगमांसेन वायुतुल्यबलो भवेत् ।
राङ्कवामिषहोमेन वशे स्युर्नृपयोषितः ॥६५॥
शल्लकीपललाहुत्या कविः कविसमो भवेत् ।
गावयामिषहोमेन दीर्घमायु[1]रवाप्यते ॥६६॥
गोमांसं मधुनालोड्य वामहस्तेन होमयेत् ।
अपि देवा वशं यान्ति किं पुनः क्षुद्रमानुषाः ॥६७॥
शाशेनादृश्यतां गच्छेत् कच्छपेनाप्नुयाद्धनम् ।
नाक्रमांसस्य होमेन विषं न लगति क्वचित् ॥६८॥
नाकुलं पललं हुत्वा वाक्सिद्धिर्भवति क्षणात् ।
मार्ज्जारमांसहोमेन कुवेरसदृशो भवेत् ॥६९॥
सिंहमांसस्य होमेन साक्षाद् विद्याधरो भवेत् ।
राज्यावाप्तिर्व्याघ्रमांसहोमेन भवति ध्रुवम् ॥७०॥
तुरगामिषहोमेन सर्वपृथ्वीपतिर्भवेत् ।
दुःस्वप्नहानिरौष्ट्रेन हस्तिमांसैर्महीपतिः ॥७१॥
गोमायुमांसहोमेन धनदेन समो भवेत् ।
विवादे जयलाभः स्याद् राज्यलाभोऽपि जायते ॥७२॥
स्तम्भयत्यरिसैन्यं च स्त्रीणां प्रियतमो भवेत् ।
अपि सर्वे महीपालास्तस्य दासा न संशयः ॥७३॥

---

१. ०रवाप्नुयात् ब.।

महामांसस्य होमेन किं तद् यन्न फलं भवेत् ।
गुरुणा सदृशी विद्या कुवेरादधिकं धनम् ॥७४॥
ब्रह्मणोऽप्यधिकं दीर्घमायुरस्य तु निश्चितम् ।
ऐश्वर्ये शक्रसदृशः कान्त्या चन्द्र इवापरः ॥७५॥
तेजसा रवितुल्योऽयं दुःस्पृश्योऽप्यग्निना सह ।
क्रोधे यमेन सदृशः सर्वसिद्ध्याकरो भवेत् ॥७६॥
वचसा बहुना किं स्यादेतदेवावधारय ।
स देवीपुत्र एव स्यात् सिद्धादीनां तु का कथा ॥७७॥

[द्विजातेर्नरमांसहोमनाधिकाराभिधानम्]

किं तु न स्याद् द्विजातीनामेष धर्मो वरानने ।
नृपस्य वाथ शूद्रस्य भवेत्तत्रापि पाक्षिकः ॥७८॥
न तद्वधाद् भवेन्मांसं वधो वै घोरपापकृत् ।
घोरपापान्न सिद्धिः स्यादिति बुद्ध्वा[1] समाचरेत् ॥७९॥

[पक्षिमांसहोमफलाभिधानम्]

इदानीं पक्षिपललहोमजन्यं फलं शृणु ।
वार्ध्रीनसामिषाहुत्या जायते धर्मभाजनम् ॥८०॥
कपोतमांसहोमेन रम्यां कन्यां लभेत वै ।
भारद्वाजेन मांसेन मृतं सञ्जीवयेदसौ ॥८१॥
पारावतक्रव्यहोमात् कामिनीनां प्रियो भवेत् ।
कौयष्टिकस्य मांसेन खेचरीसिद्धिभाग्भवेत् ॥८२॥
महद्वैरं जनयति उलूकपललाहुतिः ।
साधको मद्गुहोमेन कामरूपः क्षणाद् भवेत् ॥८३॥

---

१. बुद्ध्वा द[1] ।

जंगमाजङ्गमं सर्वमाकर्षेच्छ्येनहोमतः ।
शातपत्रामिषैर्होमो राजानं वशमानयेत् ॥८४॥
अदृश्यः स्यात् खञ्जरीटैर्देवतासुररक्षसाम् ।
धनावाप्तिः सुतावाप्तिर्वार्त्तकेन न संशयः ॥८५॥
चाषेन देवलोकादिगमनं विदधाति वै ।
कारण्डवस्य मांसेन भवेज्जातिस्मरो नरः ॥८६॥
उच्चाटनं मारणं च विद्वेषः काकमांसतः ।
हारीतमांसहोमेन पर्वतानुद्धरेदपि ॥८७॥
कुररक्रव्यहोमेन मूकानपि च वादयेत् ।
लावमांसस्य होमेन तेजस्वी चाग्निमान् भवेत् ॥८८॥
पिकक्रव्याहुतिः कुर्यात् साधकं किन्नरेश्वरम् ।
धत्ते सत्यं परपुरप्रवेशं टिट्टिभाहुतिः ॥८९॥
कुक्कुटक्रव्यहोमोऽयं सद्यो लक्ष्मीफलप्रदः ।
साधकस्याथ तनुते चकोरश्चिरजीविताम् ॥९०॥
कान्ताप्रियत्वं सौन्दर्यं क्रियते करोति चकटाहुतिः ।
सारसो योगसिद्धिं च वितनोति वरानने ॥९१॥
कालिङ्गस्तनुते होम आरोग्यमपराजयम् ।
चक्रवाकेन बन्धूनां सर्वेषामीश्वरो भवेत् ॥९२॥
कारटेन तु होमेन धनायुःकवितां लभेत् ।
हांसेन मोक्षमाप्नोति दात्यूहैरतिबुद्धिताम् ॥९३॥
तित्तिरैश्चिरजीवित्वं चातकैर्मोहनं तथा ।
मायूरमांसहोमेन विमानाधिपतिर्भवेत् ॥९४॥
गार्ध्रेण खड्गसिद्धिः स्याद् वकैः सौभाग्यसौख्यभाक् ।
चैलेन धातुसिद्धिः स्यात् क्रौञ्चैस्तरति दुर्गतिम् ॥९५॥

यावत्यः सिद्धयः सन्ति त्रिलोक्यां वरवर्णिनि ।
तावतीर्लभते सद्यो होमं कीरामिषैश्चरन् ९६॥

[आहुतिनिर्माणप्रकाराभिधानम्]

आज्येन वापि मधुना दध्ना वा पयसाथ वा ।
आमिक्षयेक्षुदण्डेन तिलैः शर्करयापि वा ॥९७॥
मिश्रितैराहुतिर्ग्राह्या केवला न कदाचन ।
प्रसृतिर्मुख्यपक्षः स्यान्मध्यमोऽर्द्धमितो भवेत् ॥९८॥
होमकर्मणि चैवात्र त्रिपर्व[1]धमितोऽधमः ।

[काम्यकर्मानुरूपकुण्डनिर्माणाभिधानम्]

चतुरस्रं भवेत् कुण्डं शान्तिपुष्टयादिकर्मणि ॥९९॥
मारणोच्चाटने द्वेषवशीकारे त्रिकोणकम् ।
स्तम्भने मोहने वापि वर्त्तुलं कुण्डमाचरेत् ॥१००॥
भुक्तिमुक्त्यैकसिद्धयर्थं दीर्घं कुण्डं समाचरेत् ।
यथा यत् समये प्रोक्तं तत्र कुर्यात्तथाविधिम् ॥१०१॥
एष ते कथितो देवि होमक्रमविधिर्मया ।

[योगविध्यभिधानम् योगमाहात्म्याभिधानं च]

अथ योगविधिं मत्तः शृणु सावहिता सती ॥१०२॥
जपहोमार्च्चनध्यानप्रयोगाश्चैकतो मताः ।
एकतो वायुरोधेन देहषट्चक्रभेदनम् ॥१०३॥
सदाशिवेन यः प्रोक्तः क्रमो योगविधेर्मम ।
तस्मिन् कृते किमेभिर्वा प्रयोगैः साधनैरपि ॥१०४॥

---

१. प्रमितो ह[2] ।

यो योगेन तनूमेतां साधयेद् विधिवर्त्मना ।
परार्द्धशतजीवी स एवमाह सदाशिवः ॥१०५॥

[योगोपकारि देहसंस्थानविवरणम्]

तत्रादौ देहसंस्थानमाकर्णय वरानने ।
द्वे सहस्रे तु नाडीनां वसतो देहपञ्जरे ॥१०६॥

कीकसानि च तिष्ठन्ति द्वात्रिंशदिति निश्चयः ।
वायवो दश तिष्ठन्ति पञ्च तेषु महत्तराः ॥१०७॥

सूर्य्याचन्द्रमसोः स्थानं देहमध्ये व्यवस्थितम् ।
आकाशभूमिसलिलवह्नीनां तत्र संस्थितिः ॥१०८॥

वायुस्तु सर्वदेहेषु चलत्येव प्रतिक्षणम् ।
यस्मात् प्रयात्यणुर्भूत्वा तस्मात् प्राण इतीर्यते ॥१०९॥

अग्निस्थानं यदेतस्मिंस्तज्जांबूनदसन्निभम् ।
त्रिकोणाकारतो ज्ञेयमितरेषां तु मण्डलम् ॥११०॥

त्रिकोणमग्निस्थानं यद् देहमध्यं तदुच्यते ।
यद्यत्र तिष्ठति तनौ त्वं तदादौ निबोध मे ॥१११॥

अधो मेढ्राद् द्व्यंगुलं तत्तावदेव गुदोपरि ।
एकांगुलप्रमाणं तद् देहमध्यं प्रकीर्तितम् ॥११२॥

देहमध्यादूर्ध्वमस्ति कन्दं देवि नवाङ्गुलम् ।
चतुरंगुलमुच्छ्रायमायामं तावदेव च ॥११३॥

आकारेणाण्डसदृशं त्वगस्थिपस्विवेष्टितम् ।
तत्र संचरति प्राणः स्वे स्थाने परमोपरि ॥११४॥

तस्योपरिष्टाद् विज्ञेयं कुण्डलीस्थानमुत्तमम् ।
कृत्स्नो योगविधिस्तत्र सिद्धिश्चापि प्रतिष्ठिता ॥११५॥

कन्दमध्ये स्थितास्तत्र मुख्या नाड्यश्चतुर्दश ।
एकैकस्यां द्विचत्वारिंशच्छतं परिनिष्ठिताः ॥११६॥
तिस्रस्तास्वपि मुख्याः स्युः सुषुम्णेडाथ पिङ्गला ।
पयस्विनीसरस्वत्यौ वारणा च कुहुस्तथा ॥११७॥
गांधारी शंखिनी पूषा हस्तिजिह्वाप्यलंबुषा ।
विश्वोदरायशस्विन्यौ मुख्या ह्येताश्चतुर्दश ॥११८॥
मोक्षमार्गे सुषुम्णा सा ब्रह्मरन्ध्रे प्रतिष्ठिता ।
तस्या वामे इडा ज्ञेया चन्द्रसंचारसंचिता ॥११९॥
दक्षिणे पिङ्गला नाडी रविसंचारशोभिता ।
सरस्वती कुहूश्चैव सुषुम्णापार्श्वयोः स्थिता ॥१२०॥
गान्धारी हस्तिजिह्वा च इडायाः पृष्ठपार्श्वयोः ।
पूषा पयस्विनी चैव पिङ्गलापृष्ठपार्श्वयोः १२१॥
कुहोश्च हस्तिजिह्वाया मध्ये विश्वोदरा स्थिता ।
पयस्विनीकुहोर्मध्ये वारणा च प्रकीर्तिता ॥१२२॥
पूषायाश्च सरस्वत्याः स्थिता मध्ये यशस्विनी ।
गान्धार्याश्च सरस्वत्याः शंखिनी मध्यसंस्थिता ॥१२३॥
अलंबुषा च देवेशि कन्दमध्यादधः स्थिता ।
पूर्वभागे सुषुम्णाया मेढ्रान्तं च कुहूः स्थिता ॥१२४॥
अधश्चोर्ध्वं च विज्ञेया वारणा सर्वगामिनी ।
पयस्विनी च याम्यस्य पादाङ्गुष्ठाङ्गमिष्यते ॥१२५॥
पिङ्गला चोर्ध्वगा याम्ये नासान्तं विद्धि पार्वति ।
याम्ये पूषा च नेत्रान्तं पिङ्गलायास्तु पृष्ठतः ॥१२६॥
यशस्विनी नाडिका च याम्यकर्णान्तमिष्यते ।
सरस्वती तथा चोर्ध्वमाजिह्वायां प्रतिष्ठिता ॥१२७॥

आसव्यकर्णाद् देवेशि शंखिनी चोर्ध्वगा मता ।
गान्धारी सव्यनेत्रान्तमिडायाः पृष्ठतः स्थिता ॥१२८॥
[1]हस्तिजिह्वा तथा सव्यं पादाङ्गुष्ठाङ्गमिष्यते ।
विश्वोदरा च या नाडी सव्ये सव्ये गता स्मृता ॥१२९॥
अलंबुषा महाभागा पादमूलादधोगता ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥१३०॥
नागः कूर्मः कृकरश्च देवदत्तो धनञ्जयः ।
एते नाडीषु सर्वासु चरन्ति दश वायवः ॥१३१॥
एतेषु वायवः पञ्च मुख्याः पूर्वोदिताः प्रिये ।
तेषु मुख्यतमः प्राणः कन्दस्याधः प्रतिष्ठितः ॥१३२॥
मुखनासिकयोर्मध्ये हृदये नाभिमण्डले ।
कन्दमध्येऽपि च प्राणः स्वयमेवावतिष्ठते ॥१३३॥
अपानो मेढ्रपाय्वोश्च ऊरुवंक्षणजानुषु ।
जंघोदरे च कट्यां च नाभिमूले च तिष्ठति ॥१३४॥
व्यानः श्रोत्राक्षिमध्ये च हृत्कट्यां गुल्फयोरपि ।
समानः सर्वदेहेषु सर्वव्यापी प्रतिष्ठितः ॥१३५॥
भुक्तं सर्वरसं गात्रे व्यापयन् वह्निना सह ।
द्विसप्ततिसहस्रेषु नाडीमध्येषु सञ्चरन् ॥१३६॥
समानो वायुरेवैकः स्थितो व्याप्य कलेवरम् ।
नागादिवायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः ॥१३७॥
निःश्वासोच्छ्वासकादिश्च प्राणकर्म इतीष्यते ।
अपानवायोः कर्मतद् विण्मूत्रादिविसर्जनम् ॥१३८॥

---

१. इतः पूर्वं पंक्तिमेकां द[1] अधिकं पठति ।
इडा च सव्यनासान्ता सव्यभागव्यवस्थिता ।

प्राणोपादानचेष्टादि व्यानकर्मेति कीर्तितम् ।
उदानकर्म तत् प्रोक्तं देहस्योन्नमनादिकम् ॥१३९॥
शोषणादि समानस्य शरीरे कर्म कीर्त्यते ।
क्षेपणादिगुणो यश्च नागकर्मेति कीर्तितम् ॥१४०॥
निमीलनादि कूर्मस्य क्षुत् तृष्णा कृकरस्य च ।
देवदत्तस्य देवेशि निद्रा तन्द्रेति कीर्तितम् ॥१४१॥
धनञ्जयस्य शोषादि सर्वकर्म प्रकीर्तितम् ।
ज्ञात्वैवं नाडिकास्थानं वायुयानं च यत्नतः ॥१४२॥
नाडीनां शोधनं कुर्याद् यथाविधि पुरःसरः ।
ततस्तपोवनं गत्वा फलमूलोदकान्वितम् ॥१४३॥
तत्र रम्ये शुचौ देशे नद्यां देवालयेऽपि वा ।
सुशोभनं स्थलं कृत्वा सर्वरक्षासमन्वितम् ॥१४४॥
त्रिकालस्नानसंयुक्तः शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
मन्त्रैर्न्यासैर्न्यस्ततनुः सितभस्मधरः सदा ॥१४५॥
समस्थलोपरि कुशान् समास्तीर्याथ वाऽजिनम् ।
विनायकं सुसंपूज्य कुशपुष्पोदकादिभिः ॥१४६॥
गुरून् देवीं नमस्कृत्य तत्र चावध्य चासनम् ।
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा पवित्रासनसंगतः ॥१४७॥
समग्रीवशिरःकायः संवृतास्यः सुनिश्चलः ।
सुषुम्णा वर्त्मना वायुं कुण्डलिन्यां धमेत् क्षणम् ॥१४८॥
गच्छत्यभिव्यक्तिमिदं नादब्रह्म सनातनम् ।
तन्नादं पिङ्गलामार्गे समानीय हृदब्जके ॥१४९॥
इडया पूरयेत् तावद् यावद् वर्णात्मकं भवेत् ।
भूमेरुपरि धातारं रत्या बिन्दुसमन्वितम् ॥१५०॥

बिम्वमध्यस्थमोंकारसंपुटाकृतमुन्नतम् ।
एकीकृत्य तु तत् सर्वमाकर्षेद् हस्तिजिह्वया ॥१५१॥
विश्वोदरालंबुषाभ्यां ब्रह्मरन्ध्रे निवेशयेत् ।

[देव्या निराकारस्वरूपध्यानम्]

निवेश्य तां तत्र देवीं निराकारां विचिन्तयेत् ॥१५२॥
एकां ज्योतिर्मयीं शुक्लां सर्वगां व्योमरूपिणीम् ।
अत्यन्तनिर्मलां शुद्धामादिमध्यान्तवर्जिताम् ॥१५३॥
अतिसूक्ष्मामनाकाशामस्पृश्यां तामचाक्षुषीम् ।
कूटस्थामप्यदृश्यां तां सच्चिदानन्दविग्रहाम् ॥१५४॥
अगन्धामरसां स्वच्छामप्रेयामनूपमाम् ।
आनन्दामजरां नित्यां सदसत्सर्वकारिणीम् ॥१५५॥
सर्वाधारां जगद्रूपाममृत्युं चाव्ययामजाम् ।
अनवस्थामप्रतर्क्यां बह्निस्थां सर्वतो मुखीम् १५६॥
सर्वदृक् सर्वतः पादां सर्वस्पृक् सर्वतःशिराम् ।
निरञ्जनीं निर्विकारां शुद्धचैतन्यरूपिणीम् ॥१५७॥
नादोपाहृतबीजेन ध्यायंस्तत्र यजेदिमाम् ।
कुलाकुलसमुद्भूताममृतानन्दसंचयाम् ॥१५८॥
सूर्यकोटिसमां शुभ्रां नादबीजतया स्थिताम् ।
षट्चक्रभेदेन यजेद्योगे कुण्डलिनीहृदोः ॥१५९॥

[षट्चक्रभेदेन कुण्डलिनीजागरणविधिः]

आधारपद्ममध्येऽन्तर्द्विपत्रे त्रिदलेऽपि च ।
स्वाधिष्ठाने षोडशारे पीठे च मणिपूरके ॥१६०॥

द्वादशे च विशुद्धेऽपि तत्राप्यष्टदले तथा ।
हृदये दशपत्रे तु द्वादशार्द्धे चतुर्दले ॥१६१॥
कण्ठे भाले यजेद् देवीं जिह्वया नादमुच्चरन् ।
गच्छन्तीं ब्रह्ममार्गेण सूक्ष्मषट्चक्रभेदिनीम् ॥१६२॥
प्रच्योतदमृतं दिव्यं क्षीरधारोपमं द्रवम् ।
पीत्वा सदाशिवेनैव सामरस्यपदं गताम् ॥१६३॥
यजेद् ध्यायेन्नमस्कुर्याद् यद् यदिच्छेदनन्यधीः ।

[एतदीयफलश्रुतिः]

सामरस्यपदं प्राप्तां यः क्षणं चिन्तयेत् सुधीः ॥१६४॥
राजसूयाश्वमेधानां तेनेष्टा यज्ञकोटयः ।
काष्ठां कलां क्षणं व्याप्य यः स्थितस्तत्र साधकः ॥१६५॥
वाजपेयः पुण्डरीको विश्वजित् तेन वै कृतः ।

[कुण्डलिन्याः स्वस्थाननिवेशः]

पुनस्तेनैव मार्गेण नयेत् कुण्डलिनीमधः ॥१६६॥
पश्यन्त्यापरया तत्र वैखर्या वर्त्मनापि च ।
संयोज्य लम्बिकामार्गात्तालुमूलादधो नयेत् ॥१६७॥
जिह्वयाकृष्य तां विद्यां हृदब्जे विनिवेशयेत् ।
आमूलाद् ब्रह्मरन्ध्रान्तमेकीभूतं विचिन्तयेत् ॥१६८॥
हृदब्जादपि निःकाश्य तथा नाडीचयादपि ।
प्रदीपकलिकाकारां कन्द एव निवेशयेत् ॥१६९॥

[योगाभ्यासस्यास्य महात्म्याभिधानम्]

एतदभ्यासयोगेन यत्फलं तच्छृणुष्व मे ।
न क्षुत् पिपासा न जरा न मृत्युर्नामयादि च ॥१७०॥

पुरीषमूत्रे नैव [1]स्यान्निद्रा तन्द्रा भवन्न च ।
यावान् दोषः शरीरस्य तेषु कोऽपि न जायते ॥१७१॥
अतीतानागतं वेत्ति वाक्सिद्धिरपि जायते ।
सरस्वती तस्य मुखे स्वयमेत्य वसेत् सदा ॥१७२॥
परार्द्धजीवी च भवेत् कामरूपी भवत्यपि ।
देवानाकर्षयच्चापि खेचरो जायते तथा ॥१७३॥
वर्णितु शक्यते नास्य महिमा वर्षकोटिभिः ।
साक्षात् स रुद्रो भवति पाञ्चभौतिकदेहभृत् ॥१७४॥
प्राप्नोति मोक्षमेवासौ षण्मासाभ्यन्तरे नरः ।

[मोक्षोत्कर्षस्य सिद्धीनां चापकर्षस्याभिधानम्]

मोक्षैकसाधकस्यास्य विधेरन्यास्तु सिद्धयः ॥१७५॥
केवलं विघ्नकारिण्य इत्येतद् विद्धि पार्वति ।
मूढास्तु केवलं सिद्धीरभिकांक्षन्ति नित्यशः ॥१७६॥
मोक्षार्थमेव यतते धीरः संसारसागरे ।
नाड्यश्चतुर्दश प्रोक्ताः पूर्वं मुख्यतमा हि याः १७७॥
तासु वायुनिरोधेन भूयस्यः स्युर्हि सिद्धयः ।
तेषां प्रकारा नाख्याता विस्तरत्वान् मया प्रिये ॥१७८॥
केवलं सिद्धिहेतुत्वं तेषां नात्रोपयोगिता ।
विधिमेनं विधातुं यो न समर्थो विमूढधीः ॥१७९॥
स चिन्तयेत्तु साकारां तां देवीं हृदयाम्बुजे ।
ध्यानं संप्रति वक्ष्यामि शृणु देवि समाहिता ॥१८०॥
ध्यानमेव हि जन्तूनां कारणं सौख्यमोक्षयोः ।

१. न स्यातामिति शुद्धः प्रतिभाति ।

[देव्याः साकारस्वरूपध्यानम्]

हृत्पद्माष्टदलोपेते कन्दमूलसमुत्थिते ॥१८१॥
द्वादशांगुलनालेऽस्मिश्चतुरंगुलमुच्छ्रिते ।
प्राणायामैर्विकसिते केशरान्वितकर्णिके ॥१८२॥
हृत्सरोरुहमध्येऽस्मिन् प्रकृत्यात्मिककर्णिके ।
अष्टैश्वर्य्यदलोपेते विद्याकेशरसंयुते ॥१८३॥
ज्ञाननाले महाकन्दे प्राणायामप्रबोधिते ।
विश्वार्च्चिषं महावह्निं वमन्तीं सर्वतो मुखीम् ॥१८४॥
भयंकरीं जगद्योनिं ललज्जिह्वाकरालिनीम् ।
भासयन्तीं स्वकं देहमापादतलमस्तकम् ॥१८५॥
प्रेतभूतपिशाचादिडाकिनीयोगिनीगणैः ।
भैरवाद्यैः परिवृतां श्मशानतलवासिनीम् ॥१८६॥
ज्वलत्करालज्वलनचितामध्यकृतस्थितिम् ।
शवोपरि समारूढां विमुक्तचिकुरोच्चयाम् ॥१८७॥
निःक्रान्तरसनाकम्पप्रकम्पितजगत्त्रयाम् ।
दन्तमण्डलनिर्गच्छच्चारुचन्द्रिकया तया ॥१८८॥
द्योतयन्तीं जगत् सर्वं चन्द्रमण्डलवत् सदा ।
तुंगपीवरवक्षोजभरनम्रकलेवराम् ॥१८९॥
प्रत्यालीढपदां देवीमट्टहासभयप्रदाम् ।
पार्श्वस्थिताभ्यां फेरुभ्यामतीव विकरालिनीम् ॥१९०॥
नृमुण्डमालासन्दोहकृतमालावगुण्ठिनीम् ।
सद्यःकृत्तनृमुण्डाभ्यां कुण्डलद्वयशोभिनीम् ॥१९१॥
कठोरपीवरानीलदोःषोडशविराजिताम् ।
नरान्त्रविहिताबद्धयोगपट्टपरिच्छदाम् ॥१९२॥

दिगम्बरां खर्वतनुं हसन्तीं कामलालसाम् ।
संवर्त्तकालज्वलनदुर्निरीक्ष्यतनुप्रभाम् ॥१९३॥
कल्पान्तघोषमार्तण्डकोटिस्तम्भनकारिणीम् ।
निर्वातदीपवत्तस्मिन् दीपितां हव्यवाहने ॥१९४॥
ततस्तस्य शिखामध्ये संस्थितां जगदम्बिकाम् ।
ध्यात्वा कामकलाकालीं सोऽहमस्मीति भावयेत् ॥१९५॥
तद्रूपतां समासाद्य मुक्तिं तेनैव गच्छति ।

[ध्यानविधिना विविधसिद्धिप्राप्त्युपायस्य वर्णनम्]

अथवा सिद्धिलिप्सा चेद् भवत्येव न संशयः ॥१९६॥
ध्यायन् वै पञ्चघटिकाः सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।
घटिकादशकध्यानात् पृथिव्या जयमाप्नुयात् ॥१९७॥
नाडीपञ्चदशध्यानाद् वह्निनासौ न दह्यते ।
घटिकाविंशतिध्यानाद्वायुवद् व्योमगो भवेत् ॥१९८॥
मूत्रं पुरीषं जयति पञ्चविंशतिनाडिभिः ।
संपूर्णदिवसेनैव सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥१९९॥
अहोरात्रेण देवेशि जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।
इति योगविधिः सर्वः कथितस्ते मया क्रमात् ॥२००॥

[पूजायाः कोटित्रयनिर्देशः]

उत्तमो मध्यमः पक्षस्तथैवाधम एव च ।
उत्तमो योगमार्गेण मध्यमो ध्यानसंश्रयात् ॥२०१॥
पूजाध्यानादिभिश्चैव योऽप्यधमाराधनक्रमः ।
कृते युगे वा त्रेतायां योग एवोत्तमो विधिः ॥२०२॥

ध्यानमेव द्वापरादौ कलौ न्यासार्चनं खलु ।
अल्पायुषोऽल्पमेधाश्च स्वल्पप्रज्ञा महालसाः ॥२०३॥
दुराचारा नास्तिकाश्च कामलोभपरायणाः ।
ईदृशाश्च नराः सर्वे भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२०४॥
नायं योगो महेशानि भविष्यति गुरुं विना ।
केवलं न्यासपूजादि करिष्यन्ति फलार्थिनः ॥२०५॥

[विश्वासस्य फलदायकत्वाभिधानम्]

तथाप्यास्थावतां देवि फलं किंचित् प्रयच्छति ।
एवं ज्ञात्वा तु यः कुर्याद् ध्यानन्यासार्चनानि हि ॥२०६॥
अवश्यं फलभाग् भूयान्नात्र कार्या विचारणा ।
ध्यानेऽर्चने जपे न्यासे होमे च बलिकर्मणि ॥२०७॥
भावना यादृशी यस्य सिद्धिः स्यादेव तादृशी ।
इति ते कथितो देवि प्रपञ्चः कामकालिकः ॥२०८॥
वद सत्यं पुनर्मत्तः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२०९॥

इत्यादिनाथविरचितायां महाकालसंहितायां सामान्यविशेषप्रयोगो नाम सप्तमः पटलः ।

अष्टमः पटलः

[षोढान्यासस्यावतरणम्]

देव्युवाच
महायोगिन् महाकाल कलानिधिविभूषित ।
सर्वज्ञ सर्वलोकेश धूर्जटे भक्तवत्सल ॥१॥
त्वत् प्रसादादिदं सर्वं प्रयोगं कामकालिकम् ।
अश्रौषं सर्वमेवाहमप्रमत्तेन चेतसा ॥२॥
अन्यद् रहस्यं यद्यत् स्यात् तच्चापि कथय प्रभो ।
आकर्णयन्त्याश्चेतो मे न तृप्तिमधिगच्छति ॥३॥
देव्या रहस्यं यत् किञ्चिदेतद् व्यावर्तते विभो ।
तत्तत् सर्वमशेषेण कथय त्वं दयानिधे ॥४॥
महाकाल उवाच
साधु देवि वरारोहे धन्यासि त्वं न संशयः ।
शृण्वन्त्या अपि ते यस्माच्छुश्रूषानुक्षणं भवेत् ॥५॥
चेतसा भक्तियुक्तेन शुश्रूषुर्योऽनसूयकः ।
तस्मै रहस्यं नाचष्टे यः स पापकृदग्रणीः ॥६॥
तस्मात् तव प्रवक्ष्यामि रहस्यं यद्धि वेद्म्यहम् ।
भक्तिश्रद्धापरायास्ते नाकथ्यं विद्यते मम ॥७॥

[वक्ष्यमाणस्य षोढान्यासस्य गोपनीयत्वस्य महत्त्वातिशयस्य चाभिधानम्]

न चाख्येयं त्वयान्यस्य प्राणेषु विगलत्स्वपि ।
रहस्यमेतद् देवानां सर्वसिद्धिमभीप्सताम् ॥८॥
न कामकालिको योगो न विधानं शिवाबलेः ।
नान्यप्रयोगो न जपो न होमो न च पूजनम् ॥९॥

वक्ष्यमाणरहस्यस्य सहस्रांशं न चार्हति ।
सिद्धिमीयुः पुरैतस्याः प्रसादात् पार्थिवर्षयः ॥१०॥

[प्रवर्तकतया षोढान्यासेन प्राप्तसिद्धीनां राज्ञामनुकीर्तनम्]

पौरवो बृहदश्वश्च सोमदत्तो बृहद्रथः ।
अजमीढः कार्तवीर्यो भद्रश्रेण्यः पुरूरवाः ॥११॥
पृथुर्गयो रन्तिदेवो मान्धाता नहुषो रघुः ।
विदूरथश्च भरतो दिवोदासः प्रतर्दनः ॥१२॥
कुशाश्वो यमदग्निश्च जैगीषव्यश्च देवलः ।
पैठीनसिर्वीतहव्यः कश्यपो भृगुरङ्गिराः ॥१३॥
संवर्तश्च वशिष्ठोऽत्रिर्व्यासः शातातपस्तथा ।
उद्दालको भरद्वाजो जाबालो जैमिनिस्तथा ॥१४॥
सप्तद्वीपेश्वरत्वं हि चक्रवर्तित्वमेव च ।
प्रापुः पूर्वे महीपालाश्चिरजीवित्वमप्यलम् ॥१५॥
योगसिद्धिं तथाप्यन्ये तपस्यां सर्वसाधिकाम् ।
शापानुग्रहसामर्थ्यं प्राप्तवन्तो महर्षयः ॥१६॥
कथयामि तमेवाहं षोढान्यासं शुचिस्मिते ।
त्रैलोक्याधिपतित्वं हि यत् प्रसादात् करे स्थितम् ॥१७॥

[षोढान्यासोद्भवमूलतया त्रिपुरासुरकथाभिधानम्]

ताराक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली तथैव च ।
एते ह्यासन् कृतयुगे दैतेया भ्रातरस्त्रयः ॥१८॥
तेऽतप्यन्त तपो घोरं दिव्यं वर्षायुतं प्रिये ।
ततः प्रजापतिस्तेभ्यो वरं संप्रार्थितो ददौ ॥१९॥
वव्रुर्वरद्वयं दैत्यास्ते शौर्यमदगर्विताः ।
एकं त्वेषामवध्यत्वं सर्वभूतेभ्य उत्थितम् ॥२०॥

द्वितीयं योजनानां त्रित्रिलक्षान्तरसंस्थितम् ।
त्रयाणां त्रिपुरं भूयाद् दुर्लङ्घ्यं [1]त्रिदशैरपि ॥२१॥
वरं दत्वावदद् धाता सर्वे श्रृणुत पुत्रकाः ।
सर्वप्रकारैः कस्यापि नावध्यत्वं जगत्त्रये ॥२२॥
एकेनापि प्रकारेण घटमानेन सर्वथा[2] ।
सर्वे स्वकीयं निधनमङ्गीकुरुत दानवाः ॥२३॥
ते विचार्यावदन् सर्वे शरेणैकेन यः क्षणात् ।
दहेत् त्रयाणां त्रिपुरं सनो मृत्युर्भविष्यति ॥२४॥
तथेत्युक्त्वा ययौ वेधा ब्रह्मलोकं सुरैर्वृतः ।
तेऽपि सर्वे तथा चक्रुर्यथा पूर्वं विचारितम् ॥२५॥
ताराक्षस्य तु सौवर्णं पुरं सर्वोपरि स्थितम् ।
योजनायुतविस्तीर्णं तावदेवायतं प्रिये ॥२६॥
राजतं कमलाक्षस्य योजनायुतविस्तृतम् ।
दिक्षु तादृश[3]विस्तीर्णं विद्युन्मालिन आयसम् ॥२७॥
त्रित्रिलक्षान्तरं तेषां पुरं गगनसीमनि ।
प्राकारपरिखोपेतं चयाट्टालकशोभितम् ॥२८॥
ध्वजगोपुरनिःश्रेणीपताकायन्त्रशोभितम् ।
खड्गप्रासाङ्कुशार्ष्टिकगदाकार्मुकधारिभिः ॥२९॥
पाशशूलभुशुण्ड्यर्ष्टिचक्रमुद्गरपाणिभिः ।
त्रिंशन्निखर्वषड्वृन्दनवत्यर्वुदकोटिभिः ॥३०॥
एकैकं पुरमाक्रान्तं दानवैर्युद्धदुर्मदैः ।

---

१. देवतैरपि ब[1] । २. सर्वदा ब[1] । ३. दक्ष सादृश ब[1] ।

[देवानां त्रिपुरासुरभीत्यभिधानम्]

दृष्ट्वा तु तादृशीमृद्धिं देवाः सर्वे सवासवाः ॥३१॥
पलायां चक्रिरे केचित केचिच्चापि तमभ्ययुः ।
केचिंच्च युयुधुर्देवास्तत्यजुस्त्रिदिवं परे ॥३२॥
केचित् समुद्रं विविशुः केचिच्च गिरिगह्वरम् ।
जहुः केचिद् भिया प्राणानगुः केचिच्चतुर्दिशम् ॥३३॥

[त्रिपुरासुरसंहारायेन्द्रस्य रुद्रशरणत्वाभिधानम्]

दृष्ट्वा सुराणामधिपो देवानामीदृशीं दशाम् ।
रुद्रं जगाम शरणं पुरोधाय प्रजापतिम् ॥३४॥
दण्डवत् प्रणता भूत्वा ते देवाः सपितामहाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा पिनाकिनमुमापतिम् ॥३५॥
तपस्यया वरं धातुः संप्राप्य त्रिपुरासुराः ।
बाधन्तेऽस्मान् महेशानान् शैलगह्वरगानपि ॥३६॥
त्वत्तः शरण्यो नास्माकं विद्यते देव कश्चन ।
अतो निवेदयामस्ते प्रमथाधिपते प्रभो ॥३७॥
देवाङ्गनाः समाकृष्य नयन्ति स्वपुरं प्रति ।
निरध्वरं जगज्जातं निःकल्पतरुनन्दनम् ॥३८॥
निर्मनुष्या मही सर्वा निर्देवाप्यमरावती ।
निस्तोया निम्नगा जाता नीरत्ना सागरा अपि ॥३९॥
पादपानां कोटरेषु कन्दरेषु महीभृताम् ।
लीना भूत्वा वयं सर्वे तिष्ठामस्तद्भयार्दिताः ॥४०॥
तेषां हि शास्ता त्रैलोक्ये त्वदन्यो नास्ति कश्चन ।
तान् निहत्यासुरान् स्वर्गे पुनरस्मान् निवेशय ॥४१॥

इत्युक्तः प्रणतैः सर्वैर्विहस्य वृषभध्वजः ।
प्रत्युवाच सुरान् सर्वान् रथो मे कल्प्यतामिति ॥४२॥
ततो ब्रह्माब्रवीत्तत्र स्मितं कुर्वन् महेश्वरम् ।
निर्मातव्यो रथो देव कैस्त्वदारोहणक्षमः ॥४३॥
त्वद्वोढृरथनिर्माणे सामर्थ्यं कस्य विद्यते ।
स्वयोग्यं स्यन्दनं चास्त्रं स्वयमेवोपकल्पय ॥४४॥
इत्युक्तो ब्रह्मणा शंभुरवदद्धर्षयन् सुरान् ।

[त्रिपुरासुरसंहाराय रुद्रार्थं तद्युद्धानुरूपरथस्य निर्माणाभिधानम्]

चत्वारो वाजिनो वेदाः संपूर्णा मेदिनी रथः ॥४५॥
सूर्याचन्द्रमसौ चक्रे कूबरो गन्धमादनः ।
विन्ध्यो गिरिर्नाभिरस्तु कैलासोऽक्षस्त्वमेव तु ॥४६॥
मेरुर्मे ध्वजदण्डः स्यात् सारथिर्भगवान् विधिः ।
प्रणवस्तु प्रतोदः स्यात् प्रकाशानि च रश्मयः ॥४७॥
धनुर्मे मन्दरो भूयात् शिञ्जिनी बासुकिर्भवेत् ।
विष्णुः शरो मे भवतु वाजे वायुर्विशत्वपि ॥४८॥
यमो मृत्युश्च कालश्च फली मध्ये विशन्तु च ।
वासवः शरपृष्ठे स्यात् कुवेरवरुणावुभौ ॥४९॥
भवतः पुंखसंस्थानौ लस्तके सर्वदेवताः ।
नासत्यावटनीसंस्थौ यज्ञाः सर्वे रदातयः ॥५०॥
स्वेच्छयान्यच्च सकलं कल्पयामास शङ्करः ।
स्वयोग्यं कवचं शम्भुरलब्ध्वा चिन्तितोऽभवत् ॥५१॥
निमील्य त्रीणि नेत्राणि चिरं तस्थौ जगत्पतिः ।
अथ ध्यानगतो भूत्वा तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥५२॥
स्तुत्वा संप्रार्थयामासाभेद्यं कवचमात्मनः ।

[शिवं प्रति षोढान्यासस्य देव्योपदेशः]

ततः सोपदिदेशास्मै षोढान्यासं महात्मने ॥५३॥
स्वीयं च कवचं देवी कवचत्वेन तं ददौ ।
तेनामुक्तो हरो भूत्वा जगाम त्रिपुरं प्रति ॥५४॥
अस्त्रं पाशुपतं चापि सन्धाय वृषभध्वजः ।
पुराणि त्रीणि दैत्यानां विभेदैकेन पत्त्रिणा ॥५५॥
क्षणेन भस्मसाद् भूता जग्मुर्दैत्या यमालयम् ।
तमेव षोढान्यासं ते प्रवदामि वरानने ॥५६॥
यदेकवारं कृत्वैव भवेत् त्रिजगतीपतिः ।
प्राणव्ययेऽपि नान्येषां कथनीयं कदाचन ॥५७॥

[षोढान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

षोढान्यासस्यास्य ऋषिस्त्रिपुरारिर्महेश्वरः ।
छन्दश्च जगती प्रोक्तं देवतेयं प्रकीर्तिता ॥५८॥
कान्दर्पार्णं तु बीजं स्यात् क्रोधः कीलकमुच्यते ।
मायाबीजं च शक्तिः स्यात् कामना यद्यदिष्यते ॥५९॥

[षण्णां न्यासानां नामनिर्देशः]

आदौ नृसिंहन्यासः स्याद् द्वितीये भैरवस्य च ।
तृतीयेऽपि च विज्ञेयो न्यासः कामकलाभिधः ॥६०॥
चतुर्थे डाकिनीन्यासः शक्तिन्यासश्च पञ्चमे ।
षष्ठेऽपि देवीन्यासः स्यादथैतस्य विधिं शृणु ॥६१॥

[षोढान्यासस्य विध्यभिधानम्]

वर्गाः कचटताः[1] पञ्च षष्ठो यरलवस्तथा ।
सप्तमः शषसाश्चापि हलक्षाश्चाष्टमः प्रिये ॥६२॥

---

१. कचटतपाः इति समुचितः पाठः ।

[षोढान्यासान्तर्गतस्य प्रथमस्य नृसिंहन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशो विध्यभिधानं च]

ऋषिर्नृसिंहन्यासस्य हयग्रीवः प्रकीर्तितः ।
गायत्रीच्छन्द इत्युक्तं नरसिंहोऽस्य देवता ॥६३॥
बीजानि वर्णा विज्ञेयाः स्वराः षोडश शक्तयः ।
विनियोगो नृसिंहस्य न्यास एवेति सम्मतः ॥६४॥
षड्भिर्दीर्घैः क्षबीजस्य कराङ्गन्यासमाचरेत् ।
पुनस्तद्वद् वरारोहे तैरेव च षडङ्गकम् ॥६५॥
सबिन्दुर्वर्गमध्यस्थः कवर्गो बिन्दुसंयुतः ।
क्रमेणानेन देवेशि वर्गाः [वर्णाः] कचवर्गयोः ॥६६॥
अष्टावृत्त्या भवेन् न्यासस्ततश्चापि निबोध मे ।
सबिन्दवो हलः सर्वे सृष्टिमार्गेण चैककम् ॥६७॥
त एव तादृशा ज्ञेयाः पुनः संहारवर्त्मना ।
सृष्टिस्थितिभ्यामन्तेऽपि न्यासः संपूर्ण उच्यते ॥६८॥

[एकपञ्चाशन्नरसिंहनामानि]

ज्वालामाली करालश्च भीमश्चैवापराजितः ।
क्षोभणश्च तथा सृष्टिः स्थितिः कल्पान्त इत्यपि ॥६९॥
अनन्तश्च विरूपश्च वस्त्रायुधपरापरौ ।
प्रध्वंसनश्च विज्ञेयो विश्वमर्दन इत्यपि ॥७०॥
उग्रो भद्रश्च मृत्युश्च सहस्रभुज इत्यपि ।
विद्युज्जिह्वा घोरदंष्ट्रा महाकालाग्निरेव च ॥७१॥
मेघनादश्च विकटस्तथा पिङ्गजटोऽपि च ।
प्रदीपो विश्वरूपश्च विद्युद्दशन एव च ॥७२॥
विदारो विक्रमश्चापि प्रचण्डः सर्वतोमुखः ।
वज्रो दिव्यश्च भोगश्च मोक्षो लक्ष्मीरपि क्रमात् ॥७३॥

विद्रावणः कालचक्रः कृतान्तस्तप्तहाटकः ।
भ्रामकश्च महारौद्रो विश्वान्तकभयङ्करौ ॥७४॥
प्रतप्तो विजयश्चापि सर्वतेजोमयस्तथा ।
ज्वालाजटालश्च खरनखरो नाददारुणः ॥७५॥
निर्वाणनरसिंहश्चेत्येकपञ्चाशदीरिताः ।

[नरसिंहध्यानम्]

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि यत् कृत्वा न्यासमाचरेत् ॥७६॥
उद्यन्मार्त्तण्डकोट्यंशुसमारुणतनुप्रभाः ।
उलूकाकारपृथुलनेत्रत्रितयभूषिताः ॥७७॥
विदारिसृक्कनिर्गच्छद्दंष्ट्राचन्द्रकलान्विताः ।
विदीर्णविकरालास्यनिर्यज्जिह्वाविराजिताः ॥७८॥
विमुक्तचामराकारसटाकेशरमण्डिताः ।
आबद्धयोगपट्टान्ता जानुन्यस्तकराम्बुजाः ॥७९॥
कोटिकल्पान्तार्कसमा भीमदंष्ट्राट्टहासिनः ।
कौस्तुभोद्भासिहृदयाः श्वेतपद्मोपरि स्थिताः ॥८०॥
किरीटहारकेयूरकिंकिण्यंगदशोभिताः ।
मुखैः कल्पान्तकालाग्निं वमन्तः सर्वतोमुखाः ॥८१॥
करालभृकुटीदृष्टिसंत्रासितजगत्त्रयाः ।
नखनिर्भिन्नदैत्येन्द्ररुधिरोक्षितबाहवः ॥८२॥
विपाटितान्त्रनिर्गच्छद्वसालिप्ताङ्ककुक्षयः ।
अस्त्रैर्विभूषितान् दीर्घान् भुजान् षोडश बिभ्रतः ॥८३॥
शरं चक्रं गदां खड्गं पाशमंकुशमेव च ।
वज्रं विदारणं चापि दक्षिणेन क्रमादपि ॥८४॥

धनुः शंखं च पद्मं च खेटकं मुशलं तथा ।
परशुं पट्टिशं चापिं विदारणमतः परम् ॥८५॥
वामेन धारयन्तस्ते रत्नाकल्पविराजिताः ।
वामजंघासन्निविष्टलक्ष्मीकाः सिद्धिदायिनः ॥८६॥
स्थिता देव्याश्चतुर्दिक्षु नरसिंहा वरानने ।
मातृकान्याससंस्थाने न्यसेत् साधकसत्तमः ॥८७॥
एष ते कथितो देवि नृसिंहन्यास उत्तमः ।

[षोढान्यासान्तर्गतस्य द्वितीयस्य भैरवन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अथातो भैरवन्यासं प्रवदामि निबोध तम् ॥८८॥
अस्य भैरवन्यासस्य ऋषिस्तावत् प्रकीर्तितः ।
कालाग्निरुद्रश्छन्दश्च जगती संप्रकीर्तिता ॥८९॥
भैरवो देवता प्रोक्ता क्रोधबीजं च बीजकम् ।
शक्तिरङ्कुशबीजं च देवि ते परिकीर्तितम् ॥९०॥
विनियोगोऽस्य विज्ञेयो भैरवन्यास एव हि ।
करांगन्यासमेतस्य षडंगन्यासमेव च ॥९१॥
चण्डबीजेन कर्तव्यं दीर्घैः षड्भिः समन्वितम् ।
आदौ तारं समुल्लिख्य द्वितीयं वाग्भवं वदेत् ॥९२॥
तृतीया तु तृतीयं स्याद्रमाबीजं चतुर्थकम् ।
पञ्चमं शृणिमुद्दिष्टं प्रासादं षष्ठमुच्यते ॥९३॥
सप्तमं क्रोधबीजं स्यान्महाक्रोधं तथाष्टमम् ।
तत्तद् भैरवनामापि ङेऽन्तमुच्चारयेत्ततः ॥९४॥
पुनरप्यष्टबीजानि प्रतिलोमेन चोद्धरेत् ।
हार्देन मनुना युक्तो मनुः सर्वार्थसाधकः ॥९५॥
पूर्ववन्मातृकास्थानं सर्वत्रैव वरानने ।

[एकपञ्चाशद्भैरवनामनिर्देशः]

भैरवाणामथो नाम गदतो मेऽवधारय ॥९६॥
क्रोधः श्मशानः कापाली कालः कालान्तको रुरुः ।
महाघोरो घोरतरः संहारश्चण्ड इत्यपि ॥९७॥
हूंकारोऽनादिरुन्मत्त आनन्दस्तदनन्तरम् ।
भूताधिपः कृतान्तोऽसिताङ्गः कालाग्निरित्यपि ॥९८॥
उग्रायुधश्च वज्राङ्गः करालस्तदनन्तरम् ।
विकरालो महाकालः कल्पान्तोऽपि ततः परम् ॥९९॥
विश्वान्तकः प्रचण्डश्च भगमाल्युग्र एव च ।
भूतनाथश्च भद्रश्च तथा संपत्प्रदोऽपि च ॥१००॥
मृत्युर्यमोऽन्तकश्चापि ततश्चोल्कामुखः स्मृतः ।
एकपादस्तथा प्रेतो मुण्डमाली ततः परम् ॥१०१॥
वटुकः क्षेत्रपालश्च ततोऽपि च दिगम्बरः ।
वज्रमुष्टिर्घोरनादश्चण्डोग्रोऽपि प्रकीर्तितः ॥१०२॥
संतापनः क्षोभणश्च ज्वालासम्वर्त्त एव च ।
वीरभद्रस्त्रिकालाग्निः शोषणस्त्रिपुरान्तकः ॥१०३॥
भैरवा एकपञ्चाशदेते देवि प्रकीर्तिताः ।

[भैरवध्यानम्]

ध्यानमेषां भैरवाणां कथ्यमानं मया शृणु ॥१०४॥
ज्वलद्धुतवहज्वालाश्मशानस्थलचारिणः ।
पादालम्बिजटाभारा मसीपुञ्जसमप्रभाः ॥१०५॥
ज्वलच्चिताकुण्डनिभलोचनत्रयभूषिताः ।
लम्बोदराः पिंगजटाः स्थूलाः खर्वकलेवराः ॥१०६॥

नृमुण्डमालाघटितहारग्रैवेयकोज्ज्वलाः ।
मज्जासृङ्मांसमेदोऽस्थिवसासम्पूरिताननाः ॥१०७॥
घोरदंष्ट्रा ललज्जिह्वाः करालमुखमण्डलाः ।
शवोपरि कृतावासा अट्टहासभयानकाः ॥१०८॥
द्विशीर्षाश्च त्रिशीर्षाश्च तथा विंशतिमौलयः ।
शतशीर्षास्त्रिपादाश्च बहुपादा अपादकाः ॥१०९॥
त्रिशूलचक्रपरिघगदामुसलतोमरान् ।
भुशुण्डीचापविशिखपाशपट्टिशमुद्गरान् ॥११०॥
परश्वङ्कुशखट्वांगभिन्दिपालर्ष्टययोगुडान् ।
कुन्तप्रासद्रुघणयष्टिशक्तिच्छुरिककर्त्तृकान् ॥१११॥
मुष्टिनीचर्म्मकुणपनागपाशाक्षछुच्छुकाः ।
घण्टाखर्प्परपाषाणांस्तथा तर्ज्जनमेव च ॥११२॥
धारयन्तः करैः सर्वे व्याघ्रचर्माविगुण्ठिताः ।
एवं ध्यात्वा न्यसेद् देवि मातृकान्यासवर्णवत् ॥११३॥
एष द्वितीयस्ते प्रोक्तो भैरवन्यास उत्तमः ।

[षोढान्यासान्तर्गतस्य तृतीयस्य कामकलान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः विध्यभिधानं च]

अतः कामकलान्यासं समाकर्णय भामिनि ॥११४॥
चिकीर्षयापि यस्य स्याद् देवी प्रत्यक्षरूपिणी ।
अस्य कामकलाख्यस्य न्यासस्य जगदम्बिके ॥११५॥
ऋषिश्च दक्षिणामूर्त्तिर्महादेवः प्रकीर्तितः ।
छन्दश्च बृहती ख्यातं देवता सा प्रकीर्तिता ॥११६॥
येयं कामकलाकाली कामार्णं बीजमुच्यते ।
रतिबीजं हि शक्तिः स्याद् विनियोगं च मे श्रृणु ॥११७॥
देवि कामकलान्यासे एवमेव प्रकीर्तयेत् ।
कराङ्गन्यासमादध्यात् षडङ्गन्यासमेव च ॥११८॥

धरारूढेण　विधिना　षड्दीर्घेनाचरेदिमम् ।
अथ मन्त्रं निबोधास्य न्यासस्य जगदम्बिके ॥११९॥
पाशं भूतं समुद्धृत्य फेत्कारीं प्रेतमुद्धरेत् ।
कालीं च गारुडं कालं विद्युन्मेघौ समाहरेत् ॥१२०॥
अमृतं नागबीजं च खेचरीं च ततो वदेत् ।
रतित्रयं कामयुगं ङेऽन्ता कामाभिधा ततः ॥१२१॥
ततश्च मूलमन्त्रः स्यात् त्रिरतिः कामयुक् ततः ।
हार्देन मनुना युक्तस्त्रैलोक्यैश्वर्य्यसाधकः ॥१२२॥

[एकपञ्चाशत्कामनामाभिधानम्]

आद्योऽनङ्गः समाख्यातस्ततः कन्दर्प उच्यते ।
रतिप्रियः पञ्चशरः सुरतातुर इत्यपि ॥१२३॥
मनोभवस्ततो ज्ञेयः कुसुमायुध इत्यपि ।
चित्ततर्ज्जन इत्येवं मन्मथस्तदनन्तरम् ॥१२४॥
[1]संमोहनो यौवनेशो मदनस्तदनन्तरम् ।
हृत्क्षोभकश्चाकर्षकः केलिवल्लभ एव च ॥१२५॥
चित्तविद्रावणश्चापि दर्पको भ्रामकस्तथा ।
त्रिलोकीवशकारी च मकरध्वज इत्यपि ॥१२६॥
उन्मादकोऽन्धकारी च चण्डवेगस्ततो वदेत् ।
मार उच्चाटनश्चापि तथा व्यामोहदाय्यपि ॥१२७॥
[2]पुष्पधन्वा स्मरश्चापि ततः सन्तापनः स्मृतः ।
मनःप्रमाथी भगदो मीनकेतुरितः परम् ॥१२८॥
उपस्थगो योनिवासी तथा मनसिजोऽपि च ।
पुष्पचापो यौवतेशस्तथा विश्वोपताप्यपि ॥१२९॥

---

१. पंक्तिरियं ब[२] इत्यत्र नास्ति ।
२. इतश्चत्वस्रः पंक्तयः ब[१] इत्यत्र न सन्ति ।

वसन्तमित्रो मलयकेतुश्चेतःप्रमोदनः ।
क्षमश्चण्डस्तेजाश्च धर्माधर्मप्रवर्त्तकः ।।१३०।।
कोमलायुध इत्येवं प्रमर्दन इतः परम् ।
त्रिलोकीसुखदः पश्चात् पिकदुन्दुभिरेव च ।।१३१।।
अलिमाली जगज्जेता कामोऽन्ते च प्रकीर्तितः ।
कामा इत्येकपञ्चाशद् देव्याः पारिषदाः स्मृताः ।।१३२।।

[कामदेवध्यानम्]

शृणु देवि ध्यानमेषां यद्ध्यात्वा न्यासमाचरेत् ।
रत्नसन्दोहसंशोभिकिरीटोज्ज्वलमौलयः ।।१३३।।
माणिक्यशकलोद्भासिकुण्डलद्वयशोभिताः ।
शरत्पार्वणशीतांशुसमानमुखदीप्तयः ।।१३४।।
माणिक्यखण्डभ्रमकृद्दन्तमण्डलमण्डिताः ।
विशाललोचनयुगाः श्यामकुञ्चितमूर्द्धजाः ।।१३५।।
कङ्कणाङ्गदकेयूरमुक्ताहारविराजिताः ।
[1]वलत्कुण्डलसंशोभिकपोलद्वयराजिताः ।।१३६।।
गौरा हसन्तश्चपलाः सर्वे सर्वाङ्गसुन्दराः ।
पौष्पं चापं करे वामे दक्षिणे पंचसायकान् ।।१३७।।
दधतश्चित्रवसना मञ्जीररणिताङ्घ्रयः ।
पिककोकिलझंकारवसन्तमलयानिलैः ।।१३८।।
सेव्यमाना मुदा स्वस्वशक्त्यालिङ्गितमूर्त्तयः ।
सर्वे देव्याश्च पुरतो नृत्यन्तः सस्मिताननाः ।।१३९।।
तत्तत्कलाभिः सहिता ध्यातव्याः सिद्धिदायिनः ।

[षोडशमातृकान्तस्य चतुर्थस्य डाकिनी न्यासस्य मन्त्रादिनिर्देशो विन्यासविधानं च]

अथ प्रवक्ष्ये ते देवि डाकिनीन्यासमुत्तमम् ।।१४०।।

---

१. पंक्तिरियं ब[2] इत्यत्र नास्ति ।

यदाचरन् नरो याति समग्रैश्वर्य्यपात्रताम् ।
न्यासस्य डाकिनीनाम्नो विरूपाक्ष ऋषिर्मतः ।।१४१।।
पंक्तिश्छन्दः समाख्यातं डाकिन्यो देवता अपि ।
बीजं तु डाकिनीबीजं खेचरी शक्तिरुच्यते ।।१४२।।
डाकिनीन्यास एवास्य विनियोगः प्रकीर्तितः ।
षड्दीर्घैर्डाकिनीबीजैः षडङ्गन्यासमाचरेत् ।।१४३।।
वाग्भवं च पराकूटं मायां लक्ष्मीं ततः परम् ।
क्रोधबीजं वधूबीजं योगिनीबीजमेव च ।।१४४।।
शाकिनीकामबीजे च धनदाबीजमेव च ।
काली चण्डाङ्कुशार्णं च बीजानीह त्रयोदश ।।१४५।।
सनाम डाकिनी ङेऽन्तं सर्वशेषे नमः पदम् ।
मातृकान्यासवत्स्थानमासां देवि प्रकीर्तितम् ।।१४६।।

[एकपञ्चाशड् डाकिनीनामाभिधानम्]

डाकिनीनां च नामापि गदतो मेऽवधारय ।
महारात्रिः कालरात्रिर्विरूपा च कपालिनी ।।१४७।।
महोत्सवा गुह्यनिद्रा ततो दोर्दण्डखण्डिनी ।
वज्रिणी शूलिनी चापि विमला च महोदरी ।।१४८।।
कुरुकुल्ला कौमुदी च कौलिनी कालसुन्दरी ।
बलाकिनी फेरवी च ज्ञेया डमरुका ʼतथा ।।१४९।।
घटोदरी भीमदंष्ट्रा ततश्च भगमालिनी ।
मेना तारावती भानुमती तदनु कीर्तिता ।।१५०।।
एकानंगा केकराक्षीन्द्राक्षी संहारिणी तथा ।
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डाक्ष्यपराजिता ।।१५१।।

ऽपि च द[1] ।

विद्युत्केशी महामारी शोषिणी वज्रनख्यपि ।
सूची तुण्डी जृम्भका च तीव्रा प्रस्वापनी ततः ॥१५२॥
ज्वालिनी चण्डघण्टा च लम्बोदर्य्यग्निमर्द्दिनी ।
एकदन्तोल्कामुखी च सूर्पजिह्वा च घोणकी ॥१५३॥
पूतना वेगमाला च ततो जालन्धरी मता ।
एकपञ्चाशदित्येता डाकिन्यः परिकीर्तिताः ॥१५४॥
नमस्कृताः स्तुता ध्याता प्रयच्छन्त्युत्तमां श्रियम् ।
विपरीतेन विधिना साधकं भक्षयन्ति तम् ॥१५५॥

[डाकिनीध्यानम्]

ध्यानं ब्रवीम्यहं तासां यत्कृत्वा न्यासमाचरेत् ।
काश्चिद् बन्धूकसदृशाः काश्चिन्नीलघनप्रभाः ॥१५६॥
काश्चिन्मार्त्तण्डबिम्बाभदेहद्युतय ईरिताः ।
काश्चित्स्फटिकखण्डाभाः काश्चित्स्वर्णसमप्रभाः ॥१५७॥
दीर्घकर्णचलद्घोरनृमुण्डाङ्कितकुण्डलाः ।
शुष्कस्तनकपोलोरोजङ्घाग्रीवामुखोदराः ॥१५८॥
नरास्थिकृतसर्वाङ्गभूषणा घोरदर्शनाः ।
ज्वलच्चित्ताग्निजिह्वाभजटामण्डलमण्डिताः ॥१५९॥
अर्धचन्द्रसमुद्भासिललाटतटपट्टिकाः ।
विदीर्णमुखनिर्गच्छज्जिह्वादंष्ट्राविराजिताः ॥१६०॥
पादालम्बिजटाभारा श्मशानस्था दिगम्बराः ।
भूतप्रेतपिशाचाद्यैः सज्जन्त्यः कामलालसाः ॥१६१॥
दोर्भ्यामादाय कुणपान् गिलन्त्यः पितृकानने ।
त्रासयन्त्यस्तर्जयन्त्यो जगदेतच्चराचरम् ॥१६२॥
दीर्घैर्भुजैर्धारयन्त्यः शस्त्रास्त्राणि च भूरिशः ।
बाणान् धनूंषि परिघान् कृपाणांस्तोमरान् गदाः ॥१६३॥

खट्वाङ्गानि त्रिशूलानि कुठारान् मुद्गरानपि ।
भिन्दिपालान् भुशुण्डीश्च शक्तीश्चक्राणि पट्टिशान् ॥१६४॥
हुनाः प्राशांश्च कुणपान् मुशलानङ्कुशान् गुडान् ।
चर्माणि घण्टा डमरून् भेरीझर्झरमर्द्दलान् ॥१६५॥
सवसासृक्पलास्थीनि खर्पराणि बहूनि च ।
नृत्यन्तश्चर्चरीशब्दैः प्रकम्पितजगत्त्रयाः ॥१६६॥
कोटिविद्युद्दुर्निरीक्ष्यज्वलच्चपलतारकाः ।
दीर्घातिशुष्ककठिनगर्ताभुग्नकलेवराः ॥१६७॥
देव्याः पारिषदीभूताः बद्धाञ्जलिपुटद्वयाः ।
किङ्कर्य आज्ञाकारिण्यः सर्वा देव्याः पुरः स्थिताः ॥१६८॥
एवंरूपाः प्रध्यातव्या डाकिनीन्यासकारिणा ।

[षोढान्यासान्तर्गतस्य पञ्चमस्य शक्तिन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः विध्यभिधानं च]

अतः शृणु वरारोहे शक्तिन्यासमनुत्तमम् ॥१६९॥
यदाचरन् सिद्धिमिष्टामाप्नोति शतवासरैः ।
शक्तिन्यासस्य देवेशि ऋषिः कपिल उच्यते ॥१७०॥
छन्दोऽनुष्टुप् समाख्यातं देवता शक्तयस्त्विमाः ।
लज्जाबीजं तु बीजं स्याच्छक्तिश्च कमलार्णकम् ॥१७१॥
न्यासस्य विनियोगोऽस्य शक्तिन्यासे प्रकीर्तितः ।
अग्न्यारूढाकाशबीजैः षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥१७२॥
षड्भिर्दीर्घैः समेतैश्च कराङ्गन्यासमेव च ।
तारमायारमाक्रोधकालीकामाङ्कुशामृतैः ॥१७३॥
शक्तिनाम चतुर्थ्यन्तं दत्वा तदनु कीर्तयेत् ।
कवर्गाद्यार्णयुगलमवर्गेणान्वितं प्रिये ॥१७४॥

ततः प्रासादमुद्धृत्य महाक्रोधं च गारुडम् ।
अस्त्रत्रितयमुद्धृत्य स्वाहान्तो मनुराडसौ ॥१७५॥
च[1]वर्गवर्णयोरेव टवर्गवर्णयोरपि ।
तवर्गवर्णयोरेव पवर्गवर्णयोरपि ॥१७६॥
यवर्गवर्णयोः पश्चाच्छवर्गवर्णयोरपि ।
स्वरान्त्यवर्णसंयुक्तो हवर्णस्तदनन्तरम् ॥१७७॥
पुनः स्वरात् समुच्चार्य वर्गान्तत्र्यक्षरं वदेत् ।
आवृत्तयश्चतस्रः स्युः सर्वशेषविवर्जितम् ॥१७८॥
उक्ता मयैते शक्तीनां मन्त्राः सर्वार्थसाधकाः ।

[एकपञ्चाशच्छक्तिनामानि]

नामानि तासामधुना समाकर्णय पार्वति ॥१७९॥
सूक्ष्मा जया तथा माया प्रभा च विजया पुनः ।
सुप्रभा नन्दिनी पश्चाद् विशुद्धिः कान्तिरुन्नतिः ॥१८०॥
कीर्तिर्विभूतिर्हृष्टिश्च व्युष्टिः सन्नतिरुन्नतिः ।
ऋद्धिरुत्कृष्टिरजिता तथा चैवापराजिता ॥१८१॥
नित्या सरस्वती श्रीश्च स्मृतिर्लक्ष्मीरुषा धृतिः ।
बुद्धिः श्रद्धा मतिर्मेधा विद्या प्रज्ञा प्रकीर्तिता ॥१८२॥
इच्छा क्रिया तथा माया दीप्ता प्रीतिस्ततः परम् ।
नीतिः सृष्टिः स्थितिर्ज्ञेया संहृतिश्चेतनापि च ॥१८३॥
सत्या शान्तीरतिर्भद्रा रौद्री ज्येष्ठा च विद्युता ।
एकपञ्चाशत्तमा च ज्ञेया शक्तिः परापरा ॥१८४॥

---

१. १७५-१७६ श्लोकयोः यत्र वर्णपाठो दृश्यते सर्वत्र मातृकासु वर्गे इति पाठं आसीत् । अर्थानुरोधादेवं पाठो विहितः ।

इत्येताः शक्तयः[1] सर्वा देव्याः पारिषदा[2] मताः
देव्यास्तनौ च संविष्टा ध्यानमासां निशामय ॥१८५॥

[शक्तीनां ध्यानम्]

निरङ्कपूर्णिमापूर्णचन्द्रविम्बसमानना: ।
विशालफुल्लराजीवदलशोणायतेक्षणाः ॥१८६॥
विलसद्रत्नताटङ्कश्रवणाभरणोज्ज्वलाः ।
मन्दारमालासन्नद्धधम्मिल्लभरगर्विताः ॥१८७॥
विशालजघनाभोगा अतिक्षीणकटिस्थलाः ।
कठोरपीवरोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताः ॥१८८॥
रत्नमञ्जीरकेयूरकङ्कणाङ्गदशोभिताः ।
किङ्किणीहारमुकुटमुद्रिकावलयान्विताः ॥१८९॥
त्रैलोक्यसारसौन्दर्ययौवनोन्मादगर्विताः ।
सिंहासनसमारूढा विचित्रविविधाम्बराः ॥१९०॥
स्वच्छशीतांशुशकलविराजितललाटिकाः ।
सुशुक्लमाल्यललिताः स्वस्वचेटीगणैर्वृताः ॥१९१॥
गौराङ्गदेहसंशोभिचन्दनागुरुचित्रकाः ।
सुस्मितोद्भासिवदनचञ्चद्दशनपंक्तयः ॥१९२॥
[3]कराभ्यां धारयन्त्यस्ता वराभयमनुत्तमम् ।
न्यसनीयं स्थानगता देव्यास्तु तत्तनौ प्रिये ॥१९३॥
एवं ध्यात्वा चरेन्न्यासं सर्वकामार्थसिद्धये ।

[षोढान्यासान्तर्गतस्य षष्ठस्य देवीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशस्तद्विध्यभिधानं च]

अथ षष्ठो वरारोहे देवीन्यासः प्रकीर्त्यते ॥१९४॥

---

१. ०यो ज्ञेया द१। २. ० दाः सदा द१। ३. भुजाभ्यां द१ द२।

षोढा न्यासः समग्रोऽपि यत्र देवि प्रतिष्ठतः।
वक्तुं न शक्यो महिमा यस्य वर्षायुतैरपि ॥१९५॥
या यामले कृतोद्धारा डामरे याः प्रकीर्तिताः।
भीमातन्त्रे च याः प्रोक्ता या प्रोक्ताः कौलिकार्णवे ॥१९६॥
देव्यस्ता एकपञ्चाशत् समन्त्रध्यानपूर्विकाः।
न्यसनीयास्तनौ देवि तासां मन्त्रं समुच्चरेत् ॥१९७॥
देवीन्यासस्यास्य ऋषिः सदाशिव इतीरितः।
जगत्यनुष्टुब्बृहतीगायत्रीपंक्तयोऽपि च ॥१९८॥
[1]छन्दांसि कथितानीह देवता परिकीर्तिता।
देवी कामकलाकाली बीजं कामस्य वर्जिता ॥१९९॥
क्रोधबीजं तु शक्तिः स्याद् विनियोगः प्रकीर्तितः।
देवीन्यासे कामबीजैः षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥२००॥
कराङ्गन्यासमेतैश्च षड्दीर्घैराचरेद् बुधः।

[एकपञ्चाशद् देवीनां नामानि]

आदौ नाम वदाम्यासां[2] मन्त्रध्याने ततः परम् ॥२०१॥
कथयिष्यामि विधिवत् सावधानं मनः कुरु।
आदौ ज्ञेया महालक्ष्मीस्ततो वागीश्वरी मता ॥२०२॥
अश्वारूढा च मातङ्गी नित्यक्लिन्ना ततः परम्।
भुवनेशी तथोच्छिष्टचाण्डाली भैरवी ततः ॥२०३॥
शूलिनी वनदुर्गा च त्रिपुटा त्वरिता ततः।
अघोरा जयलक्ष्मीश्च वज्रप्रस्तारिणी ततः ॥२०४॥
पद्मावत्यन्नपूर्णा च कालसंकर्षणी ततः।
धनदा कुक्कुटी भोगवती च शवरेश्वरी ॥२०५॥

१. इतः पंक्तिद्वयं ब[1] इत्यत्र नास्ति। २. ब्रवीम्यासां ब[2]।

कुब्जिका सिद्धिलक्ष्मीश्च बाला च त्रिपुरा ततः ।
तारा दक्षिणकाली च छिन्नमस्ता त्रिकण्टकी ॥२०६॥
ततो नीलपताका च चण्डघण्टा ततः परम् ।
[1]चण्डेश्वरी भद्रकाली गुह्यकाली ततः परम् ॥२०७॥
अनङ्गमाला चामुण्डा वाराही वगलापि च ।
जयदुर्गा नारसिंही ब्रह्माणी वैष्णवी ततः ॥२०८॥
माहेश्वरी तथेन्द्राणी हरसिद्धा ततोऽपि च ।
फेत्कारी लवणेशी च नाकुली मृत्युहारिणी ॥२०९॥
ततः कामकलाकालीत्येकपञ्चाशदीरिताः ।
एकैकस्या महादेव्या मूलमन्त्रेण साधकः ॥२१०॥
अकारादिक्षकारान्तस्थानेषु न्यसनं चरेत् ।

[एकपञ्चाशद्देवीनां मन्त्रध्यानयोर्निर्देशः । तत्र प्रथमं महालक्ष्म्या मन्त्रध्याने]

अथासां मूलमन्त्रांस्तान् क्रमादुद्धारयाम्यहम् ॥२११॥
ध्यानं च मन्त्रानुपदं यथा[2]म्नायेषु कीर्तितम् ।
वाग्भवं कामलं मायां कामबीजं ततः परम् ॥२१२॥
चतुरक्षरमन्त्रोऽयं महालक्ष्म्याः प्रकीर्तितः ।
पूर्णचन्द्राननां लक्ष्मीमरविन्दोपरि स्थिताम् ॥२१३॥
गौराङ्गीं विविधाकल्परत्नाभरणमण्डिताम् ।
क्षौमाबद्धनितम्बां तां वराभयकरद्वयाम् ॥२१४॥
श्वेतैश्चतुर्भिर्द्विरदैः शुण्डदण्डनिवेशितैः ।
हिरण्मयामृतघटैः सिच्यमानां विभावयेत् ॥२१५॥

---

१. पंक्ति रियं ब[2]इत्यत्र नास्ति । २. यदा नै ।

[वागीश्वर्या मन्त्रध्याने]

अथ वागीश्वरीमन्त्रस्तारं माया च वाग्भवः ।
पुनर्माया पुनस्तारो ङेऽन्तापि च सरस्वती ॥२१६॥
अन्ते हृन्मनुना ज्ञेयो मन्त्रो ह्येकादशाक्षरः ।
ध्यायेद् वागीश्वरीं देवीं हंसारूढां हसन्मुखीम् ॥२१७॥
पूर्णेन्दुवदनां कुन्दकर्पूरसितविग्रहाम् ।
अर्धेन्दुविलसद्भालां दिव्याभरणभूषिताम् ॥२१८॥
विशाललोचनां तुङ्गस्तनीं स्मितमनोहराम् ।
पीयूषकुम्भं विद्यां च वामे संविभ्रतीं शिवाम् ॥२१९॥
वीणामक्षगुणान् दक्षे धारयन्तीं चतुर्भुजाम् ।
ध्यात्वा तु मूलमन्त्रेण साधको न्यासमाचरेत् ॥२२०॥

[अश्वारूढाया मन्त्रध्याने]

अश्वारूढा तृतीया स्यादस्या मन्त्रं निबोध मे ।
तारं लज्जां रमां क्रोधं कामं पाशं ततः परम् ॥२२१॥
अश्वारूढा चतुर्थ्यन्ता ततोऽस्त्रद्वितयं वदेत् ।
वह्निजायान्तगो मन्त्रो ज्ञेयः पञ्चदशाक्षरः ॥२२२॥
ध्यानं चास्याः कथ्यमानं निबोध वरवर्णिनि ।
पूर्णशारदशीतांशुसमानवदनां शिवाम् ॥२२३॥
संतप्तकाञ्चनाभासां विशालाम्बुजलोचनाम् ।
व्यालम्बमानवेणीकां स्थितां ज[य]वनवाजिनि ॥२२४॥
करे च दक्षिणे वाणं वामे रश्मिं च वाजिनः ।
चन्द्रखण्डलसद्भालां वेत्रं पद्मं च बिभ्रतीम् ॥२२५॥

[मातङ्गीदेव्या मन्त्रध्याने]

निशामयाथ मातङ्गीमन्त्रं सर्वार्थसाधकम् ।
वाग्भवं च त्रपा लक्ष्मीस्ततः प्रणव एव च ॥२२६॥
नमो भगवतीत्युक्त्वा मातङ्गेश्वरि चोद्धरेत् ।
ततः सर्वजनेत्येवं[1] मनोहरि पदं ततः ॥२२७॥
पुनः सर्वमुखेत्युक्त्वा रञ्जिनीति समुद्धरेत् ।
तत उच्चारयेदेवं सर्वराजवशंकरि ॥२२८॥
सर्वस्त्रीपुरुषेत्युक्त्वा वशंकरि ततो वदेत् ।
सर्वदुष्टमृगाभाष्य ततश्चापि वशंकरि ॥२२९॥
ततोऽपि चोद्धरेदेवं सर्वसत्त्ववशंकरि ।
सर्वलोकममुं मे च वशमानय चेत्यपि ॥२३०॥
शिरोऽन्तो मनुरुद्दिष्टो वश्यकर्मफलप्रदः ।
रत्नपीठोपरि गतां सान्द्रनीरदसच्छविम् ॥२३१॥
शृण्वन्तीं कीरपोतस्य कलभाषितमुत्तमम् ।
न्यस्तैकपादां कमले बालेन्दुकृतशेखराम् ॥२३२॥
करपल्लवयुग्मेन वीणावादनतत्पराम् ।
आपादपद्मलम्बिन्या रम्यां कल्हारमालया ॥२३३॥
तिलकोद्भासिवदनां वारुणीपानविह्वलाम् ।

[नित्यक्लिन्नाया मन्त्रध्याने]

अथ धारय चेतस्त्वं नित्यक्लिन्नामनो मनः ॥२३४॥
प्रणवं वाग्भवं बीजं मायिकं तदनन्तरम् ।
नित्यक्लिन्ने समुद्धृत्य ततोऽपि च मदद्रवे ॥२३५॥
सवाग्भवत्रपास्वाहा मनुः पञ्चदशाक्षरः ।

---

१. ०जनन्येवं ब[1] ।

रक्ताङ्गीं यौवनोद्भिन्नपीनवक्षोरुहद्वयाम् ।।२३६।।
त्रिनेत्रां मदिरापानविह्वलाङ्गीं शिवप्रियाम् ।
रक्ताङ्गरागवसनाभरणां सस्मिताननाम् ।।२३७।।
बालेन्दुमौलिमरुणसरोरुहकृतस्थितिम् ।
कल्पवल्लीं कपालं च वामतो बिभ्रतीं शिवाम् ।।२३८।।
पाशाङ्कुशौ दक्षिणे च धारयन्तीं विचिन्तयेत् ।

[भुवनेश्वर्या मन्त्रध्याने]

शृणु षष्ठीं महादेवीमतस्त्वं भुवनेश्वरीम् ।।२३९।।
पाशलज्जाङ्कुशैरेव मन्त्रस्त्र्यक्षर एव च ।
महिमा वर्णितुं देवि न शक्यस्त्रिदशैरपि ।।२४०।।
भुवनेशीमथ ध्यायेत् सिन्दूरारुणविग्रहाम् ।
त्रिलोचनां स्मेरमुखीं चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।।२४१।।
पीनवक्षोरुहद्वन्द्वां सर्वाभरणशोभिताम् ।
माणिक्यरत्नकुम्भस्थसव्यपादां करद्वये ।।२४२।।
बिभ्रतीं रत्नचषकं रक्तोत्पलमथापि च ।

[उच्छिष्टचाण्डाल्या मन्त्रध्याने]

अथ वक्ष्येऽहमुच्छिष्टचाण्डालीमन्त्रमादृतम् ।।२४३।।
आदौ संबोधनं देव्याः सुमुखी तद्वदेव च ।
ततो देवि महाप्रोच्य वदेत् पश्चात् पिशाचिनी ।।२४४।।
मायाबीजं विसर्गेण सहितं ठ[1]त्रयं ततः ।
[2]द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिविधायकः ।।२४५।।

---

१. तत् ब[1] । २. द्वात्रिंशदक्षरो [?] ब[1] ब[2]।

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि यथावज्जगदीश्वरि ।
शवोपरि समासीनां रक्ताम्बरपरिच्छदाम् ॥२४६॥
रक्तालङ्कारसंयुक्तां नीलमेघसमप्रभाम् ।
ईषद्धास्यसमायुक्तां गुञ्जाहारविराजिताम् ॥२४७॥
षोडशाब्दां च युवतीं पीनोन्नतपयोधराम् ।
कपालकर्तृकाहस्तां सर्वाभरणभूषिताम् ॥२४८॥

[भैरव्या मन्त्रध्याने]

अथ ब्रवीमि भैरव्या मन्त्रमागमगोपितम् ।
यन्न [1]कस्यचिदाख्यातं न कस्मा अपि केन च ॥२४९॥
न कीलितं न शप्तं च स्तम्भितं न च कैरपि ।
पञ्चकूटात्मिकां विद्यामुद्धरामि शृणुष्व ताम् ॥२५०॥
खं खपूर्वो विधिर्भूमिस्तार्तीयकविराजितः ।
नभो वह्निविधिक्षोणीसवह्निधनदार्णकम् ॥२५१॥
तृतीयं कूटं फेत्कारी चतुर्थी शाङ्करी भवेत् ।
पञ्चमी व्योमकूटाख्या सर्वकामफलप्रदा ॥२५२॥
कथयामि ध्यानमस्या यद्विधाय न्यसेत्तनुम् ।
उद्यत्सहस्रमार्तण्डकान्तिमिन्दुकलोज्ज्वलाम् ॥२५३॥
त्रिनेत्रां पीनवक्षोजां पद्मासनपरिस्थिताम् ।
सर्वाभरणसम्पूर्णां पूर्णयौवनशालिनीम् ॥२५४॥
चतुर्भुजां जपवटीं दक्षिणे बिभ्रतीं वरम् ।
वामे विद्यामभीतिं च धारयन्तीं विचिन्तयेत् ॥२५५॥

---

१. कुत ब[1] ब[2]।

[शूलिन्या मन्त्रध्याने]

अथाकिर्णय शूलिन्या मन्त्रं ध्यानं च पार्वति ।
ज्वलयुग्मं समुद्धृत्य वदेत्तदनु शूलिनी ॥२५६॥
दुष्टग्रहं समाभाष्य क्रोधबीजमथोद्धरेत् ।
अस्त्रं शिरस्ततः पश्चान्मनुः पञ्चदशाक्षरः ॥२५७॥
ध्यायेन्मृगेन्द्रमारूढां सतोयजलदच्छविम् ।
त्रिनेत्रां विभ्रतीं भालं चन्द्रखण्डावतंसितम् ॥२५८॥
ददतीं द्विषतां भीतिं युद्धोद्यतकलेवराम् ।
देवीमष्टभुजां घोरभ्रूकुटीभीषणाकृतिम् ॥२५९॥
पद्मं गदां धनुर्मुण्डं वामे संविभ्रतीं क्रमात् ।
त्रिशूलं करवालं च विशिखं पाशमेव च ॥२६०॥
धारयन्तीं दक्षिणेन सर्वालङ्कारमण्डिताम् ।
कृपाणखेटकौ दोर्भ्यां विभ्रतीभिरहर्निशम् ॥२६१॥
कन्यकाभिश्चतसृभिः सेव्यमानां विचिन्तयेत् ।

[वनदुर्गाया मन्त्रध्याने]

अथातो वनदुर्गायाः प्रवक्ष्ये [1]मनुमुत्तमम् ॥२६२॥
तारं वाग्भवमुद्धृत्य लक्ष्मीं लज्जां च योगिनीम् ।
क्रोधमङ्कुशमुल्लिख्य शिरोऽन्तोऽयं नवाक्षरः ॥२६३॥
कालाभ्रसमदेहाभां सिंहस्कन्धोपरि स्थिताम् ।
मौलिबद्धेन्दुशकलां कटाक्षैः शत्रुभीतिदाम् ॥२६४॥
त्रिनेत्रां पीवरोरोजां स्मेरवक्त्रां चतुर्भुजाम् ।
शङ्खं चक्रं गदां खड्गमुद्वहन्तीं हरप्रियाम् ॥२६५॥
पूजयन्तीं जगत्सर्वं स्वतेजोभिर्विचिन्तयेत् ।

१. मन्त्र ख[1] ।

[त्रिपुटाया मन्त्रध्याने]

त्रिपुटाया मनुर्बीजैस्त्रिभिर्लक्ष्मीत्रपास्मरैः ॥२६६॥
ध्यानं वदाम्यथैतस्याः सर्वसिद्धिविधायकम् ।
गौरांगीं रत्नमञ्जीरकाञ्चीग्रैवेयकोज्ज्वलाम् ॥२६७॥
रत्नमौलिं त्रिनयनामर्द्धेन्दुकृतशेखराम् ।
चतुर्भुजां रक्तवस्त्रगन्धमाल्यानुलेपनाम् ॥२६८॥
रक्तोत्पलं चापपाशौ वामतो दधतीं शिवाम् ।
दक्षिणेऽप्यङ्कुशं पुष्पं वाणान् संविभ्रतीं तथा ॥२६९॥

[त्वरिताया मन्त्रध्याने]

प्रवदामि मनूद्धारं त्वरिताया अतः परम् ।
प्रणवं मायिकं बीजं क्रोधबीजमतः परम् ॥२७०॥
पाशमंकुशबीजं च वधूबीजमतः परम् ।
पुनः क्रोधं ततोऽन्त्यार्णे युञ्जीताधोदतं स्वरम् ॥२७१॥
पुनर्मायां तदन्तेऽस्त्रं मन्त्रः प्रोक्तो दशाक्षरः ।
कथ्यमानमथ ध्यानं समाकर्णय पार्वति ॥२७२॥
इन्द्रनीलशिलाखण्डतुल्यावयवरोचिषम् ।
पत्राच्छादितवक्षोजनितम्बजघनस्फिचम् ॥२७३॥
गुञ्जाहारसमुल्लासिपीवरोरोजयुग्मकाम् ।
अलंकारतया बद्धान् भुजगानष्ट विभ्रतीम् ॥२७४॥
ताटंकांगदमञ्जीरहारकुण्डलतामितान् ।
मयूरपिच्छसम्बद्धकपालकृतशेखराम् ॥२७५॥
किरातवेषं दधतीं त्रिनेत्रां जगदम्बिकाम् ।
वराभयोद्यतकरां कृपास्मेरमुखाम्बुजाम् ॥२७६॥

[अघोराया मन्त्रध्याने]

अथाघोरामनुं वक्ष्ये येन सिद्ध्यन्ति साधकाः ।
करामलकवद् विश्वं यस्य संस्मरणादपि ॥२७७॥
मायारमांकुशानङ्गवधूवाग्भवगारुडैः ।
योगिनीशाकिनीकालीफेत्कारीक्रोधबीजकैः ॥२७८॥
संबोधनमघोरायाः सिद्धिं मे देहि चोद्धरेत् ।
ततश्च दापयेत्युक्त्वा स्वाहान्तो मनुरिष्यते ॥२७९॥
पञ्चविंशत्यक्षरोऽयं मन्त्रो वाञ्छितसिद्धिकृत् ।
अथ ध्यानं व्याहरामि येन मन्त्रः प्रसिद्ध्यति ॥२८०॥
सुस्निग्धकज्जलग्रावतुल्यावयवरोचिषम् ।
विशालवर्तुलारक्तनयनत्रितयान्विताम् ॥२८१॥
श्वेतनरास्थिकृताकल्पसमुज्ज्वलतनुच्छविम् ।
दिगम्बरां मुक्तकेशीं नृमुण्डकृतकुण्डलाम् ॥२८२॥
सर्वोपरि समारूढां दंष्ट्राविकटदर्शनाम् ।
द्विभुजां मार्जनीसूर्पहस्तां पितृवनस्थिताम् ॥२८३॥

[जयलक्ष्म्या मन्त्रध्याने]

जयलक्ष्मीमन्त्रमतो ब्रवीमि परमेश्वरि ।
वाग्भवं भुवनेशी च लक्ष्मीकामसदाशिवाः ॥२८४॥
जयलक्ष्मि ततो ब्रूयाद् युद्धे मे विजयं वदेत् ।
देहि प्रासादपाशौ च शृणिबीजमतः परम् २८५॥
अस्त्रत्रितयसंयुक्तं शिरस्तदनु कीर्तयेत् ।
जयलक्ष्मीमथो ध्यायेदासीनां कमलोपरि ॥२८६॥
विद्युत्कनकवर्णाभां मुक्तादामविराजिताम् ।
पृथुलोत्तुंगवक्षोजां लोचनत्रितयान्विताम् ॥२८७॥

चतुर्भुजां पद्मयुगं वराभयमथापि च ।
दधतीं कौस्तुभोद्भासिहृदयां चिन्तयेत् पराम् ॥२८८॥

[वज्रप्रस्तारिण्या मन्त्रध्याने]

व्याहराम्यथ देवेशि वज्रप्रस्तारिणीमनुम् ।
तारत्रपारमाकामप्रासादांकुशबीजकैः ॥२८९॥
सम्बोधनं ततो देव्याः स्वाहान्तो मनुरीरितः ।
रत्नसिन्धौ रत्नपोतोपरि देवीं निषेदुषीम् ॥२९०॥
कमले द्वादशदले सन्निविष्टां हसन्मुखीम् ।
[1]रत्नाङ्गीं रत्नमुकुटां चन्द्रखण्डविराजिताम् ॥२९१॥
स्तनभारावनम्राङ्गीं विशालनयनत्रयाम् ।
षड्भुजां रत्नखचितरक्ताम्बरविराजिताम् ॥२९२॥
बीजपूरधनुःपाशान् दक्षिणे दधतीं शिवाम् ।
अङ्कुशस्मरकोदण्डकपालानि च वामतः ॥२९३॥
विचिन्त्यैवं जगद्धात्रीं न्यासङ्कुर्यादतन्द्रितः ।

[पद्मावत्या मन्त्रध्याने]

मायामादौ समुद्धृत्य पद्मावतिपदं ततः ॥२९४॥
शिरोमन्त्रान्वितो ज्ञेयो मन्त्रः सप्ताक्षरो महान् ।
अरुणामरविन्दस्थां फुल्लपद्मसमाननाम् ॥२९५॥
कराभ्यां दधतीं रक्तोत्पलद्वन्द्वं त्रिलोचनाम् ।

[अन्नपूर्णाया मन्त्रध्याने]

अथ वक्ष्येऽन्नपूर्णाया मन्त्रं सप्तदशाक्षरम् ॥२९६॥

---

१. रक्ताङ्गीं रक्तमुकुटां ख[2] ।

मायाबीजं समुद्धृत्य नमो भग इतीरयेत् ।
वति माहेश्वरि ततोऽप्यन्नपूर्णे समाहरेत् ॥२६७॥
वह्निजायायुतो मन्त्रो महदन्नसमृद्धिकृत् ।
विचित्रवसनां देवीमरुणामम्बुजासनाम् ॥२६८॥
स्तनभारावनम्राङ्गीं नवचन्द्रार्द्धशेखराम् ।
प्रमथाधिपमालोक्य प्रहृष्टवदनाम्बुजाम् ॥२६९॥
हेमभाण्डं रत्नदर्वीं दधतीं करयोर्द्वयोः ।

[कालसंकर्षण्या मन्त्रध्याने]

अथ प्रवक्ष्ये देवेशि कालसंकर्षणीमनुम् ॥३००॥
यन्न ज्ञातं न चाख्यातं कस्मैचिदपि केन च ।
तारत्रपारमाकामवाग्भवांकुशकालिकाः ॥३०१॥
पाशक्रोधमहाक्रोधप्रासादामृतगारुडाः ।
फेत्कारीधनदाचण्डयोगिनीशाकिनीघनैः ॥३०२॥
विद्युद्रतिप्रेतभूतखेचरीकालपन्नगाः ।
कालसंकर्षणि प्रोच्य क्रोधयुग्मं ततः परम् ॥३०३॥
स्वाहान्तो मन्त्रराजोऽयं मन्त्रः षट्त्रिंशदक्षरः ।
ध्यानं वदामि ते देवि तत्र चेतो निवेशय ॥३०४॥
घनाघनप्रभां देवीं पितृकाननचारिणीम् ।
प्रज्वलत्पावकचिताशवमध्यनिषेदुषीम् ॥३०५॥
अग्निकीलालसमया जटया गुल्फसंस्पृशा ।
विमुक्तया शोभमानां शोणनेत्रत्रयान्विताम् ॥३०६॥
अतिघोरतरन्रस्थिभूषणोज्ज्वलविग्रहाम् ।
पीवरापघनां खर्वां लम्बमानमहोदरीम् ॥३०७॥

छिन्नचन्द्रकलातुल्यदंष्ट्राकोटिभयंकराम् ।
लेलिहानमहाशोणप्रकम्पिरसनां शिवाम् ॥३०८॥

विस्रस्तकेशमनुजकपालकृतकुण्डलाम् ।
शुष्कैर्न्नरास्थिभिः शुभ्रैर्विहिताशेषभूषणाम् ॥३०९॥

मयूरपिच्छनिचयच्छादितोरुकटिस्थलाम् ।
मृतब्रह्मादिगीर्वाणकपालरचितस्रजम् ॥३१०॥

कृत्वाट्टहासं धावन्तीं पीनोन्नतपयोधराम् ।
विदीर्णसृक्कयुगलां व्यात्तघोराननां सदा ॥३११॥

सर्वशस्त्रास्त्रसम्पूर्णषट्त्रिंशद्दोर्विराजिताम् ।
पद्मचर्म्मधनुःपाशाङ्कुशानपि वरानने ॥३१२॥

भिन्दिपालं तथा प्रासं घण्टां कुणपमेव च ।
शंखमृष्टिं च डमरूमक्षमालां क्रमेण च ॥३१३॥

रक्तकुम्भं नृमुण्डं च शत्रुजिह्वां ततः परम् ।
खर्परं चाभयं वामे दधतीं भीषणाकृतिम् ३१४॥

त्रिशूलखड्गविशिखचक्रशक्तिगदा अपि ।
मुद्गरं परिघं कुन्तं तथा मुशलतोमरौ ॥३१५॥

परश्वधं नागपाशं भुशुण्डीं पट्टिशं तथा ।
खट्वांगं कर्त्तृकां दक्षे वहन्तीं च तथा वरम् ॥३१६॥

करालाभिः परिवृतां डाकिनोनवकोटिभिः ।
कालसंकर्षणीनाम्नीं कल्पान्ते क्षयकारिणीम् ॥३१७॥

कोटिविद्युद्दुर्निरीक्ष्यां देवैर्हरिहरादिभिः ।
एवं ध्यात्वा न्यसेद् देवीं चतुर्वर्गफलप्रदाम् ॥३१८॥

[धनदाया मन्त्रध्याने]

अथातो धनदामन्त्रं व्याहरामि तवाग्रतः ।
महाकालसमारूढः क्षेत्रपालो वरानने ।।३१९।।
वामकर्णान्वितं बीजं सद्य एव [1]वसुप्रदम् ।
देवीं कोकनदारूढां विकचाब्जसमाननाम् ।।३२०।।
कृतपद्ममहापद्मनिधिकुण्डलयुग्मिकाम् ।
मञ्जीरतापन्नशंखमकराख्यनिधिद्वयाम् ।।३२१।।
रत्नकङ्कणतापन्नमुकुन्दनिधिकच्छपाम् ।
ललाटबिन्दुतापन्नविराजत्कुन्दशेवधिम् ।।३२२।।
त्रिलोचनां . नीलनिधिकृतहारां हसन्मुखीम् ।
अञ्जलिद्वितयेनापि ददतीं सर्वतो धनम् ।।३२३।।
सर्वालङ्कारसंयुक्तां[3] विचित्रवसनां पराम् ।
चिन्तयेद् धनदां देवीं वाञ्छितार्थफलप्रदाम् ।।३२४।।

[कुक्कुट्या मन्त्रध्याने]

प्रवक्ष्ये कुक्कुटीमन्त्रं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
वाग्भवं मायिकं बीजं लक्ष्मीं काममनूच्चरेत् ।।३२५।।
फेत्कारीं क्रोधमुल्लिख्य कुक्कुटीति ततो वदेत् ।
कालीपाशाङ्कुशानुक्त्वा शाकिनीं चण्डमुच्चरेत् ।।३२६।।
सास्त्रद्वयं शिरः पश्चाद्विज्ञेयोऽष्टादशाक्षरः ।
इयं वै कुक्कुटीविद्या गुप्ता सर्वागमेष्वपि ।।३२७।।
स्कन्देनोपासिता पूर्वं तारकस्य जयेप्सुना ।
अब्धौ रत्नमये पोते रत्नसिंहासनस्थिताम् ।।३२८।।

---

१. सुखप्रदं ड[1] । २. गौरीं ड[2] ।
३. ०संपन्नां ड[2] ।

श्यामां त्रिनेत्रां कुटिलकुन्तलभ्रू विराजिताम् ।
माणिक्यशकलद्योतिदन्तमण्डलमण्डिताम् ॥३२९॥

रत्नाभरणनद्धाङ्गीं चतुर्दोर्वल्लिशोभिताम् ।
कुक्कुटीं खर्प्परं वामे बिभ्रतीं शशिशेखराम् ॥३३०॥
खड्गं च कर्त्तृकां दक्षे धारयन्तीं शुचिस्मिताम् ।

[भोगवत्या मन्त्रध्याने]

चिन्तयित्वा चरेन्न्यासं शृणु भोगवतीमथ ॥३३१॥
पाशाङ्कुशौ समुद्धृत्य प्रासादोऽन्तो मनुर्मतः ।
त्र्यक्षरो जगतीमध्ये सर्वसौख्यप्रदायकः ॥३३२॥
अरुणामरविन्दास्यामतिपीनपयोधराम् ।
शेखरीकृतशीतांशुं रत्नमौलिं त्रिलोचनाम् ॥३३३॥
वराभयकरां शान्तां सितपद्मोपरि स्थिताम् ।

[शबरेश्वर्या मन्त्रध्याने]

कथयाम्यथ देवेशि विद्यां तां शबरेश्वरीम् ॥३३४॥
तारं त्रपां तथा पाशं ङेन्ता च शबरेश्वरी ।
युक्तो हृन्मनुनाप्यन्ते महामन्त्रो दशाक्षरः ॥३३५॥
श्यामा पर्णावृततनुर्गुञ्जाहारविराजिता ।
स्मेरा षोडशवर्षीयावतंसितलतादला ॥३३६॥
वैणवं भाजनं वामे कटेरुपरि बिभ्रतीम् ।
फलानि चिन्वती दक्षकरेण विपिनावनौ ॥३३७॥
वराटककृताकल्पा गायन्ती खर्वविग्रहा ।
भक्तिभावतया देवी ध्यातव्या शबरेश्वरी ॥३३८॥

[कुब्जिकाया मन्त्रध्याने]

अथातः कुब्जिकामन्त्रमाकर्णय वरानने ।
नवकूटात्मिका चिन्ता [विद्या] चिन्तामणिरितीरिता ॥३
आदौ वैहायसं कूटं वायवीयं द्वितीयकम् ।
आग्नेयकूटं तार्तीयं फेत्कारी तुर्यमुच्यते ॥३४०॥
पञ्चमं वारुणं कूटं शांकरं षष्ठमुच्यते ।
सप्तमं हंसकूटं स्यात् पराकूटमथाष्टमम् ॥३४१॥
नवमं डाकिनीकूटं गुप्तं सर्वागमेष्वपि ।
पूर्वमेव विशेषोऽस्याः कथितस्त्वयि पार्वति ॥३४२॥
अतो विशिष्य नो वच्मि तथाप्युक्तं समासतः ।
ध्यानं पूर्वोदितं कुर्याद् यथा देवि मयोदितम् ॥३४३॥

[सिद्धिलक्ष्म्या मन्त्रध्याने]

त्वं चतुर्विंशतितमां सिद्धिलक्ष्मीमथो शृणु ।
लज्जां क्रोधं शाकिनीं च योगिनीं प्रेतमेव च ॥३४४॥
कालीमथांकुशं वीजं शाकिनीं कामिनीमपि ।
लक्ष्मीं चण्डं च कालं च वैद्युतं भुजगार्णकम् ॥३४५॥
स्वाहान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रोऽमृतफलप्रदः ।
श्वेतां श्वेतशवारुढ़ां नृमुण्डकृतकुण्डलाम् ॥३४६॥
पञ्चवक्त्रां महारौद्रीं प्रतिवक्त्रत्रिलोचनाम् ।
व्याघ्रचर्मावृतकटिं शुष्कावयवभूषिताम् ॥३४७॥
[1]आवद्धयोगपट्टाश्च नरास्थिकृतभूषणाम् ।
हस्तैः षोडशभिर्युक्तां[2] विस्रस्तघनकुन्तलाम् ॥३४८॥

---

२. ०दीप्तां व[1] ब[2] । १. पङ्क्तिरियं ब[2] इत्यत्र नास्ति

खड्गं बाणं तथा शूलं चक्रं शक्तिं गदामपि ।
जपमालां कर्त्तृकां च बिभ्रतीं दक्षिणे भुजे ॥३४९॥
फलकं कार्मुकं नागपाशं परशुमेव च ।
डमरुं फेरुपोतं च नरमुण्डं कपालकम् ॥३५०॥
उद्वहन्तीं करे वामे दीर्घसर्वाङ्गभीषणाम् ।

[बालाया मन्त्रध्याने]

कृत्वा ध्यानं न्यसेदङ्गे बालामाकलयाधुना ॥३५१॥
आदौ वाग्भवमुद्धृत्य कामबीजं ततः परम् ।
सकारोऽधोदन्तयुतो महासेनविराजितः ॥३५२॥
त्र्यक्षरः परमो मन्त्रो विद्यैश्वर्य्यप्रदायकः ।
समुद्यद्रविबिंबाभामरुणक्षौमधारिणीम् ॥३५३॥
फुल्लराजीववदनां पीनोत्तुंगपयोधराम् ।
रत्नकेयूरताटंकमुक्ताहारविराजिताम् ॥३५४॥
त्रिनेत्रां बालशीतांशुखण्डशोभिललाटिकाम् ।
पद्मोपरि समासीनां बालां देवीं चतुर्भुजाम् ॥३५५॥
विद्यामभीतिं वामेन दक्षे जपवटीं वरम् ।
धारयन्तीं जगद्धात्रीं सर्वदैव हसन्मुखीम् ॥३५६॥
संचिन्त्य न्यसनं कुर्यादप्रमत्तेन चेतसा ।

[त्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रध्याने]

अथाकर्णय देवेशि विद्यां त्रिपुरसुन्दरीम् ॥३५७॥
यत्र प्रतिष्ठिताः सर्वे तन्त्रडामरयामलाः ।
यतः परतरा विद्या न भूता न भविष्यति ॥३५८॥
केनापि नैव शप्तेयं नैव केन च कीलिता ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथावदुपधारय ॥३५९॥

सव्योमसब्रह्मभूमित्रपार्णैराद्यकूटकम् ।
व्योमसबह्मगगनमेदिनी भुवनेश्वरी ॥३६०॥
द्वितीयकूटमुद्दिष्टं विद्याराज्यफलप्रदम् ।
सक्रोधोशपिनाकोशलज्जाबीजान्त्यसंयुतम् ॥३६१॥
तृतीयकूटमुद्दिष्टं सर्वसिद्धिविधायकम् ।
एषा प्रकाशिता विद्या लोपामुद्राविधायिनी ॥३६२॥
यस्याः संस्मरणेनापि किं कार्यं नैव सिद्ध्यति ।
कथ्यमानं मया देवि ध्यानमस्या निशामय[1] ॥३६३॥
उद्यच्चन्द्रोदयक्षुब्धरक्तपीयूषवारिधः ।
मध्ये हेममयी भूमी रत्नमाणिक्यमण्डिता ॥३६४॥
तन्मध्ये नन्दनोद्यानं मदनोन्मादनं महत् ।
नित्याभ्युदितपूर्णेन्दुज्योत्स्नाजालविराजितम् ॥३६५॥
सदा सह वसन्तेन कामदेवेन रक्षितम् ।
कदम्बचूतपुन्नागनागकेशरचंपकैः ॥३६६॥
वकुलैः पारिजातैश्च सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ।
झंकारमुखरैर्भृङ्गैः कूजद्भिः कोकिलैः शुकैः ॥३६७॥
नानावर्णैरथान्यैश्च द्विजसंघैर्निषेवितम् ।
शिखिकारण्डहंसाद्यैर्नानापक्षिभिरावृतम् ॥३६८॥
नानापुष्पलताकीर्णैः शोभितं वृक्षखण्डकैः ।
पर्यन्तदीर्घिकोत्फुल्लकमलोत्पलसंभवैः ॥३६९॥
रजोभिर्धूसरैः सम्यक्सेवितं मलयानिलैः ।
ध्यात्वैतन्नन्दनोद्यानं तदन्तः प्रांगणं स्मरेत् ॥३७०॥

---

१. निबोध मे ब[1] ।

शुद्धकाञ्चनसंकाशवसुधाभिरलंकृतम् ।
प्रांगणं चिन्तयित्वेत्थं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥३७१॥
तन्मध्ये मण्डपं ध्यायेद् व्याप्तब्रह्माण्डमण्डलम् ।
सहस्रादित्यसंकाशं चतुरस्रसुशोभितम्[1] ॥३७२॥
रत्नतेजःप्रभापुञ्जपिञ्जरीकृतदिङ्मुखम् ।
मध्यस्तम्भविनिर्मुक्तं कोणस्तम्भसमन्वितम् ॥३७३॥
महामाणिक्यवैदूर्य्यरत्नकाञ्चनभूषितम् ।
मुक्तादामवितानाढ्यं रत्नसोपानमण्डितम् ॥३७४॥
मन्दवायुसमाक्रान्तं गन्धधूपतरङ्गितम् ।
रत्नचामरघण्टादिवितानैरुपशोभितम् ॥३७५॥
जातीचम्पकपुन्नागकेतकोमल्लिकादिभिः ।
रक्तोत्पलसिताम्भोजमाधवोभिः सुपुष्पकैः ॥३७६॥
वद्धाभिश्चित्रमालाभिः सर्वत्र समलंकृतम् ।
तिर्यगूर्ध्वलसद्रत्नं पुत्तलीकोटिमण्डितम् ॥३७७॥
नानारत्नादिभिर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्मणा ।
तन्मध्ये भावयेन्मन्त्री पारिजातं मनोहरम् ॥३७८॥
स्वर्णादिरत्नभूमिं च बालुकां काञ्चनप्रभाम् ।
उद्यदादित्यसंकाशं व्याप्तब्रह्माण्डमण्डपम् ॥३७९॥
शतयोजनविस्तीर्णं ज्योतिर्मन्दिरमुत्तमम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारमण्डितम् ॥३८०॥
रत्नोपक्लृप्तसंशोभिकपाटाष्टकसंयुतम् ।
नवरत्नसमाक्लृप्ततुंगगोपुरतोरणम् ॥३८१॥
हेमदण्डशिखालंबिध्वजावलिपरिष्कृतम् ।
मध्यकोणस्थितस्तम्भनवरत्नसमन्वितम् ॥३८२॥

---

१. सुशोभनम् ब[2] ।

महामाणिक्यवैदूर्य्यरत्नचामरशोभितम् ।
मन्दवायुसमाक्रान्तं गंधधूपैरलंकृतम् ॥३८३॥
बहुचामरघण्टादिवितानैरुपशोभितम् ।
कल्पवृक्षे गिरेः पार्श्वे छत्र तन्मण्डपोपरि ॥३८४॥
सुवर्णसूत्रै रचितं तन्मध्ये रत्नमण्डपम् ।
तन्मध्ये स्फुरितं ध्यायेत् त्रिशृंगज्योतिरुत्तमम् ॥३८५॥
तस्य मध्ये महाचक्रं पीयूषपरिपूरितम् ।
रत्नसिंहासनं तस्या वेद्या मध्ये स्मरेच्छुभम् ॥३८६॥
विरिञ्चिविष्णुरुद्रेशरूपपादचतुष्टयम् ।
सदाशिवमयं साक्षात्तस्मिन् परशिवात्मकम् ॥३८७॥
पुष्पपर्य्यंकमाश्चर्य्य.............................. ।
तन्मध्ये योनिमध्यस्थे श्रीमदोडचानपीठके ॥३८८॥
पर्यङ्कवद्धविलसत्स्वस्तिकासनशालिनीम् ।
ध्यायेत् परशिव कस्थां पद्ममध्योज्ज्वलाकृतिम् ॥३८९॥
त्रिपुरासुन्दरीं देवीं बालार्ककिरणारुणाम् ।
जवाकुसुमसंकाशां दाडिमीकुसुमोपमाम् ॥३९०॥
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमोदकसन्निभाम् ।
स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिंकिणीजालमण्डिताम् ॥३९१॥
कालालिकुलसंकाशकुटिलालकपल्लवाम् ।
प्रत्यग्रारुणसंकाशवदनाम्भोजमण्डलाम् ॥३९२॥
किंचिदर्द्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ।
पिनाकधनुराकारसुभ्रुवं परमेश्वरीम् ॥३९३॥
आनन्दमुदितोल्लोललीलान्दोलितलोचनाम् ।
स्फुरन्मयूख[1]संघातविलसद्धेमकुण्डलाम् ॥३९४॥

---

१. ०मयूरसं० द[1] ।

स्वगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्वमृतमण्डलाम् ।
विश्वकर्मादिनिर्माणसूत्रसुस्पष्टनासिकाम् ॥३९५॥
ताम्रविद्रुमबिम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम् ।
दाडिमीबीजपंक्त्याभदन्तपंक्तिविराजिताम् ॥३९६॥
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ।
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ॥३९७॥
कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणालललितैर्भुजैः ।
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् ॥३९८॥
कराम्बुजनखज्योतिर्विद्योतितनभस्थलाम् ।
मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् ॥३९९॥
त्रिबलीवलिनायुक्तमध्यदेशोपशोभिताम् ।
लावण्यसरिदावर्त्ताकारनाभिविभूषिताम् ॥४००॥
अनर्ध्यरत्नघटितकाञ्चीयुक्तनितम्बिनीम् ।
नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजिवरांकुशाम् ॥४०१॥
कदलीललितस्तंभसुकुमारोरुमीश्वरीम् ।
लावण्यकदलीतुल्यजंघायुगलमण्डिताम् ॥४०२॥
गूढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम् ।
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजाम् ॥४०३॥
[1]तनुदीर्घांगुलीभास्वन्नखचन्द्रविराजिताम् ।
शीतांशुशतसंकाशकान्तिसन्तानहासिनीम् ॥४०४॥
लौहित्यजितसिन्दूरजवादाडिमरागिणीम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाङ्कुशकरोद्यताम् ॥४०५॥
रक्तपुष्पनिविष्टां च रक्ताभरणमण्डिताम् ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च पंचबाणधनुर्द्धराम् ॥४०६॥

१. इतः पंक्तित्रयं द[1] इत्यत्र नास्ति ।

कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलापूरिताननाम् ।
महामृगमदोद्दामकुंकुमारुणविग्रहाम् ॥४०७॥
[1]सर्वश्रृंगारवेषाढ्यां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ॥४०८॥
जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् ।
सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ॥४०९॥
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां परमानन्दनन्दिताम् ।
प्रदीपैः पूर्णकुम्भैश्च सर्वतः समलंकृताम् ॥४१०॥
हैमीभिः पालिकाभिश्च साङ्कुराभिरलंकृताम् ।
रत्नपीठस्थितैर्दिव्यैरागमैः परिशोभिताम् ॥४११॥
तदन्तरान्तराप्रोद्यन्मणिदर्पणमङ्गलाम् ।
मधुरोदारविविधगान्धर्वस्तोत्रबृंहिताम् ॥४१२॥
श्रृंगाररससन्नद्धैर्नवयौवनलंपटैः ।
अमरीनिकरैर्नानामणिभूषणभूषितैः ॥४१३॥
वोणावेणुमृदंगादिवादनेन च नृत्यकैः ।
प्रीणयद्भिर्महादेवीं परीतां परितः सदा ॥४१४॥
देवीं ध्यात्वा न्यसेदेवं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

[ताराया मन्त्रध्याने]

अथ वक्ष्ये महादेव्यास्ताराया मन्त्रमुत्तमम् ॥४१५॥
मायाबीजं निःसकारं वधूबीजं ततः परम् ।
क्रोधबीजमथोच्चार्य शेषेऽस्त्रं प्रतिपादयेत् ॥४१६॥
ध्यानमस्याः समासेन कथ्यमानं निबोध मे ।
प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥४१७॥

१. इतः पंक्तित्रयं द[1] इत्यत्र नास्ति ।

खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतोरुकाम् ।
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम् ॥४१८॥
चतुर्भुजां महादेवीं ललज्जिह्वां वरप्रदाम् ।
खड्गकर्तृधरां दक्षे तथोत्पलकपालके ॥४१९॥
वामतो बिभ्रतीं देवीं दंष्ट्राघोरतराननाम् ।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ॥४२०॥
कुणप वामपादेन चाक्रम्य परिनिष्ठिताम् ।
नीलेन्दीवरमालाभिः संशोभिचिकुरोच्चयाम् ॥४२१॥
नीलमेघाभभुजगपरिनद्धजटाभराम् ।
जवाकुसुमसंकाशभुजङ्गकृतकुण्डलाम् ॥४२२॥
धूमप्रभमहानागकृतकेयूरमण्डलाम् ।
तप्तकाञ्चनरुग्भोगिविहितोज्ज्वलकंकणाम् ॥४२३॥
दूर्वादलश्यामनागकृतयज्ञोपवीतिनीम् ।
हिमकुन्दाभभोगीन्द्रविराजिकटिसूत्रिणीम् ॥४२४॥
पाटलीकुसुमाभां हि कृतमञ्जीरशोभिताम् ।
प्रज्वालपितृभूमध्यगतां दंष्ट्राकरालिनीम् ॥४२५॥
सावेशस्मेरवदनां स्त्र्यलंकारविभूषिताम् ।
सद्यः कवित्वफलदां सद्यो राज्यफलप्रदाम् ॥४२६॥
भवाब्धितारिणीं तारां चिन्तयित्वा न्यसेन्मनुम् ।

[दक्षिणकाल्या मन्त्रध्याने]

अथ दक्षिणकाल्यास्तु मन्त्रमुद्धारयाम्यहम् ॥४२७॥
यदेकवारस्मरणात् किं तद् यन्न करे स्थितम् ।
आदौ बीजत्रयं काल्यास्ततः क्रोधयुगं वदेत् ॥४२८॥
लज्जा बीजद्वयं प्रोच्य वदेद् दक्षिणकालिके ।
पुनर्बीजत्रयं काल्याः क्रोधबीजद्वयं पुनः ॥४२९॥

लज्जायुगं वह्निजाया द्वाविंशत्यक्षरो मनुः ।
धन्यः सोऽपि नरो लोके यः सकृत् प्रोच्चरेदमुम् ॥४३०॥
महिमा वर्णितुं देवि न शक्योऽस्य कथंचन ।
विस्तारोऽस्याः पूर्वमेव देवि ते वर्णितो मया ॥४३१॥
ध्यानं पूजादिकं सर्वं कथितं तत्प्रसंगतः ।
किञ्चिद् ध्यानं प्रवक्ष्यामि तस्या ध्यानक्रमागतम् ॥४३२॥
ज्वलत्पावककीलालश्मशानचितिमध्यगाम् ।
करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् ॥४३३॥
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
नागयज्ञोपवीतां च चन्दार्द्धकृतशेखराम् ॥४३४॥
जटायुक्तां घोररूपां महाकालसमीपगाम् ।
सद्यश्छिन्नशिरः खड्गवामोर्ध्वाधःकराम्बुजाम् ॥४३५॥
अभयं वरदं चापि दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम् ।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम् ॥४३६॥
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ।
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम् ॥४३७॥
घोरदंष्ट्राकरालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ।
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ४३८॥
सृक्कद्वन्द्वस्रवद्रक्तधाराविच्छुरिताननाम् ।
घोराकारां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ॥४३९॥
भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीगणमध्यगाम् ।
दैत्यदानवकोटिघ्नीं ललज्जिह्वाभयानकाम् ॥४४०॥
दक्षिणां कालिकां ध्यायेदित्थं सिद्धिविधायिनीम् ।

[छिन्नमस्ताया मन्त्रध्याने]

अथातश्छिन्नमस्ताया मन्त्रं ते व्याहराम्यहम् ॥४४१॥

जिघृक्षयापि यस्य स्युः साधकस्याष्टसिद्धयः ।
नातः परतरा काचिदुग्रा देवी भविष्यति ॥४४२॥
तस्मादशक्तैर्मनुजैर्न ग्राह्योऽयं कथञ्चन ।
सिद्धिर्वा मृत्युरपि वा द्वयोरेकतरं भवेत् ॥४४३॥
प्रणवं च रमाबीजं लज्जां वाग्भवमेव च ।
बज्रवैरोचनीये च इत्येवं तत उद्धरेत् ॥४४४॥
क्रोधद्वय ततश्चास्त्रं स्वाहान्तः षोडशाक्षरः ।
ध्यानं चास्याः प्रवक्ष्यामि तत्र चेतो निवेशय ॥४४५॥
स्वनाभौ नीरजं ध्यायेच्छुद्धं विकसितं सितम् ।
तत्पद्मकोषमध्ये तु मण्डलं चण्डरोचिषः ॥४४६॥
जवाकुसुमसंकाशं रक्तबन्धूकसन्निभम् ।
रजःसत्त्वतमोरेखायोनिमण्डलसन्निभम् ॥४४७॥
मध्ये तस्या महादेवीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
छिन्नमस्तां करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम् ॥४४८॥
प्रसारितमुखं भीमं लेलिहानोग्रजिह्वकम् ।
प्रपिबद्रौधिरीं धारां निजकण्ठसमुद्भवाम् ॥४४९॥
विकीर्णकेशपाशं च नानापुष्पविराजितम् ।
दिगम्बरां महारूपां प्रत्यालीढपदस्थिताम् ॥४५०॥
अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
विपरीतरतासक्तरतिकामोपरिस्थिताम् ॥४५१॥
वर्णिनीडाकिनीयुक्तां वामदक्षिणपार्श्वतः ।
दक्षिणे वर्णिनीं ध्यायेद्वामपार्श्वे च डाकिनीम् ॥४५२॥
वर्णिनीं लोहितश्यामां मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ।
कपालकर्तृकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ॥४५३॥

देवीकण्ठोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।
अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥४५४॥
डाकिनीं वामपार्श्वे च कल्पान्तजलदोपमाम् ।
विद्युच्छटाभनयनां दन्तपंक्तिवलाकिनीम् ॥४५५॥
दंष्ट्राकरालवदनां पीनोत्तुंगकुचद्वयाम् ।
महोदरीं मुक्तकेशीं महाघोरां दिगम्बराम् ॥४५६॥
लेलिहानचलज्जिह्वां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
कपालकर्त्तृकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ॥४५७॥
देवीं गलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।
करस्थितकपालेन भीषणेनातिभीषणाम् ॥४५८॥
दुर्निरीक्ष्यां चेतसापि सर्वकामफलप्रदाम् ।
ध्यात्वेत्थं मनुनानेन न्यसेत् [1]साधकसत्तमः ॥४५९॥

[त्रिकण्टक्या मन्त्रध्याने]

अथ त्रिकण्टकीमन्त्रं समाकर्णय भामिनि ।
क्रोधमादौ समुद्धृत्य माक्रूरौ चण्डघण्टिकौ ॥४६०॥
सविसर्गं क्षबीजं च तृतीयं परिकीर्तितम् ।
अथ ध्यानं शृणु त्वं मे यथावद्वरवर्णिनि ॥४६१॥
पादादानाभिपर्यन्तं घनाघनतनुच्छविः ।
नाभेराकण्ठपर्य्यन्तं सिन्दूरारूणविग्रहा ॥४६२॥
चतुर्भिर्वदनैर्युक्ता दंष्ट्रापटलभीषणैः ।
दुर्निरीक्ष्यैर्महाघोरैः पतितैरुदरोपरि ॥४६३॥
त्रिनेत्रा चन्द्रशकलद्योतिभालस्थला शिवा ।
हस्ताभ्यां दधती शंखं चक्रमद्भुतविक्रमम् ॥४६४॥
सर्वालंकारशोभाढ्या सर्वकामफलप्रदा ।
ध्येया त्रिकण्टकी देवी न्यासकर्मणि साधकैः ॥४६५॥

---

१ वपुषि साधकः ब[2] ।

[नीलपताकाया मन्त्रध्याने]

अतो नीलपताकाख्यां विद्यामाकर्णयाम्बिके ।
तारं हृत्पदमाभाष्य कामेश्वरि पदं ततः ॥४६६॥
कामाङ्कुशे पदं चोक्त्वा ततः कामप्रदायिके ।
भगवत्यथ नीलान्ते पताके च भगान्तिके ॥४६७॥
रतिहृन्मन्त्रमालिख्य ततोऽस्त्वर्ति च ते वदेत् ।
परमान्ते तथा गुह्य हूंकारत्रिकमालिखेत् ॥४६८॥
मदने मदनान्तेऽथ देहं त्रैलोक्यमावदेत् ।
आवेशय तथा लेख्यं कवचास्त्राग्निवल्लभा ॥४६९॥
षट्षष्ठचर्णा महेशानी[1] देवी नीलपताकिका[2] ।
निगद्यमानं ध्यानं च समाकर्णय पार्वति ॥४७०॥
इन्द्रनीलशिलाखण्डसमानतनुरोचिषम् ।
प्रफुल्लपुण्डरीकाभवदनां स्मितशालिनीम् ॥४७१॥
कबरीबन्धशोभाढ्यां पीवरोराजसंयुताम् ।
रम्याभिः सर्वतो नीलपताकाभिरलंकृताम् ॥४७२॥
वराभयकरद्वन्द्वं धारयन्तीं शुचिस्मिताम् ।
ध्यायेद् यतमनाः सुस्थः साधको विजितेन्द्रियः ॥४७३॥

[चण्डघण्टाया मन्त्रध्याने]

द्वात्रिंशत्तमिकां देवीं चण्डघण्टामथो शृणु ।
युद्धे जयेप्सुभिर्दैत्यैः पूर्वमाराधितापरा ॥४७४॥
द्विकाली च चतुःक्रोधमङ्कुशत्रितयं ततः ।
द्विरमा च द्विमाया च योगिनीशाकिनीवधूः ॥४७५॥
चण्डघण्टे ततो वाच्यं शत्रूंश्च तदनन्तरम् ।
स्तम्भय द्वितयं प्रोच्य मारय द्वितयं ततः ॥४७६॥

१. परेशानी ब[1] । २. पताकिनी ब[1] ।

कवचास्त्राग्निजायान्तो ह्यष्टत्रिंशाक्षरो मनुः ।
ध्यायेद् दूर्वादलश्यामां पूर्णचन्द्राननत्रयाम् ॥४७७॥
एकैकवक्त्रनयनत्रितयोज्ज्वलविग्रहाम् ।
पीताम्बरपरीधानां पीतस्रगनुलेपनाम् ॥४७८॥
सर्वाभरणनद्धाङ्गीं रत्नाकल्पपरिष्कृताम् ।
चण्डघण्टामष्टभुजां स्थितां मत्तगजोपरि ॥४७९॥
खड्गं त्रिशूलं त्रिशिखं कर्तृकां दक्षिणे करे ।
चर्मपाशधनुर्दण्डखर्पराणि च वामतः ॥४८०॥
धारयन्तीं क्रूरदृष्टिं चण्डघण्टां विचिन्तयेत् ।

[चण्डेश्वर्या मन्त्रध्याने]

अतश्चण्डेश्वरीमन्त्रं शृणु सावहिता सती ॥४८१॥
तारलज्जारमाक्रोधांकुशकालोवधूस्मराः ।
अष्टबीजं समुद्धृत्य शांभवं कूटमुद्धरेत् ॥४८२॥
ततश्च भैरवीकूटं कूटं माहेश्वरं[1] ततः ।
ततः परापरं कूटं व्योमकूटं च पञ्चमम् ॥४८३॥
उक्त्वा चण्डेश्वरि ततः खेचरीं योगिनीं लिखेत् ।
शाकिनीं गारुडं बीजं युगं क्रोधास्त्रयोस्ततः ॥४८४॥
वह्निजायान्वितो मन्त्रो जगतीतलदुर्लभः ।
नातः परतरो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति ॥४८५॥
शृणु ध्यानममुष्यास्त्वमतिनिर्मलचेतसा ।
इन्द्रगोपनिभां देवीं प्रौढास्त्रीरूपधारिणीम् ॥४८६॥
पञ्चवक्त्रां महाभीमां दंष्ट्राभिर्विकरालिनीम् ।
प्रविस्रस्तजटाभारां नरास्थिकृतभूषणाम् ॥४८७॥

---

१. माहेश्वरीं ख[1] ।

केयूरांगदकोटीरहारनूपुरशालिनीम् ।
किंकिणीकुण्डलापीडधारिणीं नरास्थिनिर्मिताम्[1] ॥४८८॥
रांकवत्वक्परीधानां शुष्कलंबस्तनद्वयाम् ।
शवद्वयोपरिगतां दक्षवामांघ्रियोगतः ॥४८९॥
सकेशनरमुण्डाभ्यां बद्धाभ्यां पादयोर्द्वयोः ।
त्रित्रिलोचनसंयुक्तवदनां घोररूपिणीम् ॥४९०॥
चण्डेश्वरीं दशभुजामट्टहासं वितन्वतीम् ।
वक्त्रं मुखद्वयं वामे दक्षिणे वदनद्वयम् ॥४९१॥
संमुखे वदनं चैकं धारयन्तीं प्रकल्पितम् ।
हस्तमात्रविनिष्क्रान्तलेलिहानं[2] भयानकम् ॥४९२॥
जिह्वायुगं दक्षिणयोः करयोर्बिभ्रतीं सदा ।
तथैव रसनायुग्मं दधतीं वामहस्तयोः ॥ ४९३॥
संमुखास्यगतां जिह्वां नभःस्थलप्रसारिताम् ।
दधतीं घोरनादाट्टहासत्रस्तजगत्त्रयाम् ॥४९४॥
सद्यःकृत्तस्रवद्रक्तधारं मुण्डं कचान्वितम् ।
कराभ्यां वामदक्षाभ्यां वहन्तीं सकलोपरि ॥४९५॥
ततो हस्तद्वये जिह्वां विस्फुरन्तीं च बिभ्रतीम् ।
मुण्डवृतासृजां धारां पतन्तीं रसनोपरि ॥४९६॥
पिबन्तीं शीत्कृतिं कृत्वा हूँ हूंकारविनादिनीम् ।
तथा नृमुण्डयुगलं पुनर्दक्षिणवामयोः ॥४९७॥
पुनर्जिह्वायुगं तद्वद्वामदक्षिणहस्तयोः ।
धयन्तीं पूर्ववद्रक्तं सशब्दपरिघोषितम् ॥४९८॥

---

१. मालिनीम् द[1] ।
२. भयंकरम् द[1] ।

पुरः स्थिताभ्यां घोराभ्यां करालाभ्यामतीव हि ।
योगिनीडाकिनीभ्यां च रक्तपूर्णं घटद्वयम् ॥४९९॥
सर्वदा पातयन्तीभ्यां स्थिताभ्यां पुरतः सदा ।
संमुखस्थितजिह्वायां मांसखण्डास्थिपूरितम् ॥५००॥
पिबन्तीमीदृशाकारां दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः ।
कपालं खर्प्परं शेषभुजाभ्यां विभ्रतीं पराम् ॥५०१॥
चिन्तयेन्मन्त्रविन्न्यासे देवीं चण्डेश्वरीं हृदि ।

[भद्रकाल्या मन्त्रध्याने]

इदानीं भद्रकाल्यास्त्वं शृणु मन्त्रमनुत्तमम् ॥५०२॥
येन सिद्धिमवाप्नोति परत्रामुत्र मानवः ।
प्रणवं शाकिनीबीजं वधूं कवचमेव च ॥५०३॥
योगिनीमंकुशं पाशं फेत्कारीस्मरमायिकम् ।
नवाक्षरो महामन्त्रो भद्रकाल्याः प्रकीर्त्यते ॥५०४॥
ध्यानं चास्याः कथ्यमानमवधारय पार्वति ।
सिंहोपरि समासीनां मसीपुञ्जसमप्रभाम् ॥५०५॥
भ्रुकुट्यरालवदनां त्रीक्षणां घोरदर्शनाम् ।
शार्दूलत्वक्परीधानां विष्वग्विस्तारिताननाम् ॥५०६॥
अत्यन्तशुष्कसर्वाङ्गीं ललज्जिह्वाकरालिनीम् ।
त्रेतागर्त्तस्थितत्र्यग्निसमाननयनां शिवाम् ॥५०७॥
नरमुण्डावलीहारां नादापूरितपुष्कराम् ।
ज्वलद्धुतवहाकारविस्रस्तकचसंचयाम् ॥५०८॥
नरास्थिकृतसर्वाङ्गभूषणां जगदम्बिकाम् ।
कोटिकोटिमहाघोरयोगिनीगणमध्यगाम् ॥५०९॥
कालीं दशभुजां सृक्कगलद्रुधिरचर्चिताम् ।
खड्गं त्रिशूलं विशिखं शक्तिं दक्षिणतः स्मरेत् ॥५१०॥

फलकं डमरुं चापं कपालं वामतोऽपि च ।
व्यादाय वदनं घोरं दंष्ट्राभिः पूरितान्तरम् ॥५११॥
लेलिहानचलद्विद्युत्समानरसनं महत् ।
दानवासुरदैत्यानां कोटिमर्बुदमेव च ॥५१२॥
धारयित्वा च धृत्वा च सार्द्धं कटकटारवैः ।
प्रक्षिप्य तत्र बाहुभ्यां चर्वयन्तीं हसन्मुखीम् ॥५१३॥
गिलन्तीं पूरयन्तीं च पातालतुलितोदरम् ।
ध्यात्वा चैवंविधां कालीं ततोऽङ्गेषु न्यसेदमुम् ॥५१४॥

[गुह्यकाल्या मन्त्रध्याने]

गुह्यकालीमन्त्रमतः समाकर्णय भामिनि ।
यत्तवैवोच्यते देवि नैवान्यत्र कदाचन ॥५१५॥
त्रपानंगं शाकिनीं च क्रोधमंकुशमेव च ।
गुह्यशब्दादपि वदेत् कालिशब्दं वरानने ॥५१६॥
कालीं च योगिनीबीजं फेत्कारीं चण्डमेव च ।
योगिनीकामिनीबीजं स्वाहान्ते विनिवेशयेत् ॥५१७॥
सुदुर्लभो मन्त्रराजो ज्ञेयः सप्तदशाक्षरः ।
न तीर्य्यतेऽस्य महिमा वर्णितुं वरवर्णिनि ॥५१८॥
ध्यानं निशामयाथास्याः प्रोच्यमानं मया स्वयम् ।
आपादपद्मादारभ्य कण्ठं पाटलसन्निभा ॥५१९॥
मुखे दूर्वादलश्यामा जटाभारविराजिता ।
शवोपरि समासीना किञ्चिद्विस्तारिताननना ॥५२०॥
दशभिर्वदनैर्युक्ता त्रित्रिचक्षुर्विराजितैः ।
मुण्डकुण्डलसंवीता सर्वेषु वदनेष्वपि ॥५२१॥
नरास्थिविहिताकल्पा कल्पकल्प[1]क्षयंकरा ।

---
१. भयंकरा द[1] द[2] ।

सर्वत्र लंबितजटा सर्वत्रापदि तारिणी ॥५२२॥
किंचिच्छुष्कगलोद्देशा किंचिदाकुंचितानना ।
पिचिण्डिला निम्ननाभिर्नातिपीनपयोधरा ॥५२३॥
स्थूलोरुजंघाविकटा सर्वाभरणभूषिता ।
अदीर्घषोडशापीनदोर्मण्डलविराजिता ॥५२४॥
नीलाम्बरपरीधाना नीलस्रग्गन्धलेपना ।
शिवापोतं च खट्वांगं गदामंकुशमेव च ॥५२५॥
घण्टां नृमुण्डं वामेन दधती खर्पराभये ।
खड्गं त्रिशूलं चक्रं च नागपाशं ततः परम् ॥५२६॥
जपमालां च डमरुं कर्त्तृकां वरमेव च ।
धारयन्तो दक्षिणेनोपविष्टा कुणपोपरि ॥५२७॥
योगपट्टसमुन्नद्धजानुमध्यकरम्बुजा ।
समस्तविग्रहव्यापि मुण्डमालाविराजिता ॥५२८॥
सर्वकामप्रदा देवी सर्वसिद्धिविधायिनी ।
ध्यातव्या भक्तिभावेन परमैश्वर्यदायिनी ॥५२९॥
नातः परतरा क्वापि त्रैलोक्यैश्वर्य्यसाधिका ।
विद्यते दयिते देवी सद्यः प्रत्ययकारिणी ॥५३०॥
लोकपालशिरोरत्ननिघृष्टचरणद्वयः ।
त्रैलोक्यविजयी यत्र प्रमाणं दशकन्धरः ॥५३१॥
दिव्यं वर्षायुतं देवि ध्यायता येन तां पराम् ।
पेशष्कारीयता कालात् प्राप्ता सत्यं दशास्यता ॥५३२॥
यमेन्द्रचन्द्रवरुणकुबेरानिलनैर्ऋताः ।
मित्राग्निरविनासत्यरुद्रब्रह्मादिदेवताः ॥५३३॥
यक्षराक्षसगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगाः ।
उपासते सभायां यं नित्यमेव समाहिताः ॥५३४॥

मन्वन्तरद्वयं पूर्णं किञ्चिदप्यधिकं प्रिये ।
यः शशासाखण्डिताज्ञो भुवनानि चतुर्दश ॥५३५॥
नास्तेऽमरत्वमेतस्मात्कालेनासौ निपातितः ।

[अनङ्गमालाया मन्त्रध्याने]

अथातोऽनंगमालाया व्याहरामि मनुं शुभम् ॥५३६॥
प्रणवं वाग्भवं पाशं त्रपाक्रोधाङ्कुशान्यपि ।
क्षेत्रपालं च कालीं च गारुडं शाकिनीमपि ॥५३७॥
अनंगमाले उल्लिख्य स्त्रियमित्युच्चरेदथ ।
आकर्षयद्वयं चोक्त्वा त्रुटछेदययोर्युगम् ॥५३८॥
कवचद्वितयं चास्त्रद्वयं स्वाहान्तगो मनुः ।
स्वर्णसिंहासनगतां तप्तकांचनसन्निभाम् ॥५३९॥
विशालमुकुराकारवदनां स्मितशालिनीम् ।
चलत्खंजनलीलानुकारित्रिनयनां सदा ॥५४०॥
अर्द्धेन्दुशेखरां देवीं किञ्चिदाकुंचितभ्रुवम् ।
कर्णान्दोलस्फुरद्रत्नकुण्डलोद्यत्कपोलकाम् ॥५४१॥
पीवरोत्तुंगवक्षोजां वक्षोजोद्योतिगोस्तनाम् ।
गोस्तनोद्योतिशशभृच्छेखरां जगदम्बिकाम् ॥५४२॥
बृहन्नितम्बवेदीकां तनुमध्यां वरोरुकाम् ।
मञ्जीरकिङ्किणीहारकङ्कणाङ्गदराजिताम् ॥५४३॥
वराभयकरां देवीं द्विभुजां सिद्धिदायिनीम् ।
ध्यात्वा चित्ते न्यसेद् देवीं सर्वकामार्थसिद्धये ॥५४४॥

[चामुण्डाया मन्त्रध्याने]

कथयाम्यथ चामुण्डामन्त्रमुन्नतिकारकम् ।
यज्ज्ञात्वा मर्त्यः कुत्रापि संकटे नावसीदति ॥५४५॥

संयुगे निर्भयो भूयादधिगच्छेच्च संपदम् ।
प्रणवाङ्कुशकालीयशाकिनीचण्डयोगिनीः ॥५४६॥
खेचरीक्रोधफेत्कारीविद्युत्कालरतित्रपाः ।
भौजंगममहाक्रोधसौपर्णान् षोडशोच्चरेत् ॥५४७॥
चामुण्डे इति संकीर्त्य युग्मं ज्वल हिलेः किलेः ।
मम शत्रूनिति प्रोच्य युगं त्रासय मारय ॥५४८॥
हन युग्मं पदयुगं भक्षय द्वितयं ततः ।
कालात्रिपाहुश्रां युग्मं फट् द्वयं स्वाहया युतम् ॥५४९॥
एकसप्तत्यक्षरोऽसौ मन्त्रः परमशोभनः ।
धरालग्नशिरोजानुप्रसुप्तकुणपोपरि ॥५५०॥
निषेदुषीं निःपललसर्वावयवभीषणाम् ।
त्वगस्थिमात्रघटितामत्युग्राकारदर्शनाम् ॥५५१॥
कपालाकारशिरसं विलुण्ठितशिरोरुहाम् ।
स्कन्धावसक्तयुगलकुण्डलीकृतखर्पराम् ॥५५२॥
नारास्थिनिर्मितानेकभूषणां भोषणाकृतिम् ।
मुण्डमालापरिक्षिप्तां ललज्जिह्वाभयानकाम् ॥५५३॥
विकरालमहादंष्ट्रां रौद्रीं रुद्रपरिग्रहाम् ।
अतिशुष्कोदरश्रोणिनितम्बोरुपयोधराम् ॥५५४॥
गणेयोभयपार्श्वस्थपञ्जरास्थिकरालिनीम् ।
दीर्घतालद्रुमाकारकरपादां हसन्मुखीम् ॥५५५॥
खर्ज्जूरकण्टकाकाररोमराजिविराजिताम् ।
लौहसूर्पाकृतिनखां समुत्कम्पिशिरोधराम् ॥५५६॥
कूपाकारत्रिनयनां विद्युच्चपलतारकाम् ।
लम्बमानौष्ठाधरां तां वलीलग्नपयोधराम् ॥५५७॥

विदीर्णसृक्कयुगलां नारान्त्रकटिसूत्रिणीम् ।
दिगम्बरां चर्वयन्तीं शवं कटकटारवैः ॥५५८॥
अष्टादशभुजां भीमां चरन्तीं पितृकानने ।
वामे करे चर्मचापखट्वांगडमरून् क्रमात् ॥५५९॥
अंकुशं च तथा पाशं भिन्दिपालं शवं तथा ।
रक्तपूर्णं कपालं च धारयन्तीं महोदरीम् ॥५६०॥
दक्षिणे बिभ्रतीं खड्गं विशिखं च त्रिशूलकम् ।
चक्रं शक्ति गदां पर्शुमस्थिमालां च कर्त्तृकाम् ॥५६१॥
दिवाकालाभ्रसदृशां जवापुष्पारुणां निशि ।
वलाकासमदन्तालीं भुजङ्गकुटिलभ्रुवम् ॥५६२॥
अतिक्रूराकृतिधरां दृष्ट्यैव मरणप्रदाम् ।
घोराट्टहासां गगने प्लवन्तीं सर्वतो मुखीम् ॥५६३॥
चिन्तयित्वा तु चामुण्डामित्थमङ्गे न्यसेन्मनुम् ।

[वाराह्या मन्त्रध्याने]

धरित्रीधरणे धीरामाकर्णय इतः परम् ॥५६४॥
तारं नमः समाभाष्य भगवत्यै ततो वदेत् ।
वाराह इति चाद्धृत्य रूपिण्यै तदनन्तरम् ॥५६५॥
ततश्चतुर्दश प्रोच्य कीर्तयेद् भुवना ततः ।
धिपायै समनूद्धृत्य वाराह्यै तदनन्तरम् ॥५६६॥
भूपतित्वं ततः प्रोच्य मे देहि तदनन्तरम् ।
दापयानन्तरं वह्निजायान्तो मनुरीरितः ॥५६७॥
घननीलघनाकारां खर्वस्थूलकलेवराम् ।
हस्तमात्रविनिष्क्रान्तप्रचलत्पोत्ररन्ध्रवत् ॥५६८॥
वामभागेऽक्षिवदनं धारयन्तीं द्विलोचनाम् ।
अष्टमीचन्द्रखण्डाभदंष्ट्रायुगविराजिताम् ॥५६९॥

कोपादालोलरसना विस्तारविवृताननाम् ।
कल्पान्तरावसंकाशां पूरयन्तीं जगत् त्विषा ।।५७०।।
भीमदंष्ट्राट्टहासां च रक्ताक्षीं रक्तवाससम् ।
कृपाणाकाररोमालीपरिपूर्णकलेवराम् ।।५७१।।
भूदाररूपधात्रीं च सञ्चरन्तीं विहायसि ।
सटाधूननवित्रस्तप्रपलायितखेचराम् ।।५७२।।
सर्वालङ्कारसंयुक्तां घुर्घुरारावकारिणीम् ।
अब्जचापाङ्कुशान् पाशं वामगे बिभ्रतीं करे ।।५७३।।
चक्रं वाणं गदां शङ्खं दधतीं दक्षिणे करे ।
दूर्वादलश्यामलया धरण्या सेवितां सदा ।।५७४।।
वाराहीं चिन्तयेदित्थं सर्वकामफलप्रदाम् ।

[वगलाया मन्त्रध्याने]

शृण्वतो वगलामन्त्रं येन संवदनं भवेत् ।।५७५।।
प्रणवान्ते नमो दत्वा भगवत्यै ततोऽपि च ।
पीताम्बरायै चोद्धृत्य त्रपायुग्मं ततः परम् ।।५७६।।
ततश्च सुमुखि प्रोच्य वगले तदनन्तरम् ।
विश्वमेतं वशं प्रोच्य कुरुयुग्मं शिरोऽपि च ।।५७७।।
एकत्रिंशाक्षरो मन्त्रो जगद्वश्यकरः प्रिये ।
निगद्यमानमस्यास्त्वं ध्यानमप्यवधारय ।।५७८।।
गौरी पीताम्बरधरा पीतस्रगनुलेपना ।
रत्नसिंहासनगता रत्नालङ्कारभूषिता ।।५७९।।
त्रिनेत्रा चन्द्रशकलविराजितललाटिका ।
सौन्दर्य्यसारविजितजगल्लावण्यपुञ्जिका ।।५८०।।
चतुर्भुजाङ्कुशवरे दक्षिणे बिभ्रती करे ।
तथैव धारयन्ती च वामे दीपाभये करे ।।५८१।।

ध्यातव्या भक्तिभावेन वश्यकर्म चिकीर्षता ।

[जयदुर्गाया मन्त्रध्याने]

अथातो जयदुर्गाया रम्यं मनुमुदीरये ॥५८२॥
ताराङ्कुशस्मररमामायापाशवधूरुषः ।
जय दुर्गे ततश्चोक्त्वा रक्ष रक्ष ततो वदेत् ॥५८३॥
स्वाहान्त एष कथितो मनुरष्टादशाक्षरः ।
यथैतां चिन्तयेद् देवीं तथा त्वमवधारय ॥५८४॥
अतिकालघनाकारा चन्द्रार्द्धकृतशेखरा ।
कटाक्षैः शत्रुसंघातान् निर्दहन्ती परात्परा ॥५८५॥
त्रिनेत्रा भृकुटीभङ्गा वित्रासितजगत्त्रया ।
सिंहधोरणधौरीणा चलच्चिकुरपल्लवा ॥५८६॥
अष्टवाहा जगद्धात्री विकरालतरानना ।
शङ्खं तथाङ्कुशं चापं जीवतो वैरिणः शिरः ॥५८७॥
सकचं वामपार्श्वस्थकरेण दधती शिवा ।
करवालं तथा चक्रं विशिखं च गदामपि ॥५८८॥
दक्षिणेन करेणैव धारयन्तो भयप्रदा ।
जयदुर्गा सदा ध्येया घोरे समरमूर्द्धनि ॥५८९॥

[नारसिंहीदेव्या मन्त्रध्याने]

धारय त्वं कथ्यमानं नारसिंहीमनुं मया ।
तारपाशाङ्कुशक्रोधकालमायास्मरस्त्रियः ॥५९०॥
महाक्रोधक्षेत्रपालचण्डनाकालशाकिनोः ।
उल्काजिह्वा सटाशब्द घोररूप ततो वदेत् ॥५९१॥
दंष्ट्राकराल आभाष्य नारसिंहि समुद्धरेत् ।
प्रासादत्रितय चोक्त्वा हूंकारत्रिकमालिखेत् ॥५९२॥

अस्त्रद्वयं ततः स्वाहा चत्वारिंशाक्षरो मनुः ।
यादृशी ध्यानचर्चा[1] स्यात्तामप्याकर्णय प्रिये ॥५९३॥
हिमानीकुन्दकैलासरजताचलसन्निभा ।
वितस्तकेशरभरा विकीर्णवदनाकृतिः ॥५९४॥
सृक्कक्षरद्रक्तधारा लम्बमानाधरागलम् ।
द्विगुणीकृतशीतांशुकलातुल्यरदावलिः ॥५९५॥
अवभ्रटा क्षीणमध्यालातसंकाशदृग्द्वया ।
कृशदीर्घसमस्ताङ्गी सर्वालङ्कारमण्डिता ॥५९६॥
प्रोद्यन्मार्तण्डविम्बाभकौस्तुभोद्भासिनी हृदि ।
मुखावटविनिर्गच्छज्जिह्वाकोटिशतह्रदा ॥५९७॥
केशराधूननत्रस्तखचरा खचरास्पदा ।
वज्राधिकनखस्पर्शा लोचनाभ्यां मुखादपि ॥५९८॥
वमन्ती कल्पकालाग्निं चर्वयन्ती दितेः सुतान् ।
हसन्ती चाट्टहासेन नृत्यन्ती व्योममण्डले ॥५९९॥
गच्छन्ती वातवेगेन चरन्ती पितृकानने ।
दैत्यवक्षःपातनोत्थरुधिरोक्षितविग्रहा ॥६००॥
सुदीर्घषोडशभुजाशीतिदम्भोलिधारिणी ।
चापकं वज्रचर्माणि मुशलं परशुं तथा ॥६०१॥
धारयन्ती करे वामे पट्टिशं च विदारणम् ।
वाणचक्रगदाखड्गपाशाङ्कुशपवीनपि ॥६०२॥
विदारणं दक्षिणन करेण दधती तथा ।
प्रतप्तहेमपिङ्गाग्रसटाभारावगुण्ठिता ॥६०३॥
प्रकम्पिततनूयष्टिः पारिप्लवकनीनिका ।
प्रसुप्तभुजगाकारलूमखण्डविराजिता ॥६०४॥

१. चर्या द[2] ।

नक्षत्रमालायितया रम्या नक्षत्रमालया ।
संवर्त्तकालकोट्यर्कदुर्निरीक्ष्यभयङ्करा ॥६०५॥
कोटिप्रलयकालाग्निप्रत्यनीकतनुप्रभा ।
इत्थं ध्येया नारसिंही न्यासकर्मणि पार्वति ॥६०६॥

[ब्रह्माण्या मन्त्रध्याने]

ब्रह्माणीमन्त्रमधुना संदिशामि तवेश्वरि ।
प्रणवादिं लिखेत् पाशं प्रासादं तदनन्तरम् ॥६०७॥
पीयूषमङ्कुशं नागमस्त्रं सप्ताक्षरो मनुः ।
ध्येयेयं येन विधिना वदामि तदपि प्रिये ॥६०८॥
हंसासनसमारूढा रक्तवर्णा चतुर्मुखा ।
पिचिण्डिला निम्ननाभिः शुक्लयज्ञोपवीतिनी ॥६०९॥
स्थूलगण्डाधरौष्ठभ्रूकपोलवदनात्मिका ।
बद्धपद्मासना स्थूला घनपिङ्गशिखाजटा ॥६१०॥
सप्तर्षिभिर्नारदाद्यैः स्तूयमाना परेश्वरी ।
बाहुभ्यां दक्षवामाभ्यामक्षसूत्रं कमण्डलुम् ॥६११॥
धारयन्ती मुखैर्वेदान् पठन्ती खर्वविग्रहा ।
चिन्तनीयेदृशी देवी ब्रह्माणी सर्वकामदा ॥६१२॥

[वैष्णव्या मन्त्रध्याने]

वदामि वैष्णवीमन्त्रमाकर्णय वरानने ।
तारं नमः समुद्धृत्य नारायण्यै ततो वदेत् ॥६१३॥
जगस्थिति ततश्चोक्त्वा कारिण्यै तदनन्तरम् ।
कामबीजत्रयं चोक्त्वा[1] लक्ष्मीबीजत्रयं ततः ॥६१४॥
पाशबीजं कालबीजं ततश्च विनिवेशयेत् ।

---

१. प्रोच्य द[1] ।

स्वाहान्तो मनुरुद्दिष्टश्चतुर्विंशाक्षरात्मकः ॥६१५॥
इन्द्रनीलमणिश्यामां फुल्लराजीवलोचनाम् ।
कोटिशारदपूर्णेन्दुसमानमुखरोचिषम् ॥६१६॥
अत्यच्छदर्पणीभूतकपोलद्वयराजिताम् ।
शोणविम्बाधरां रत्नस्फुरन्मकरकुण्डलाम् ॥६१७॥
कम्बुग्रीवां महोदारां तुङ्गवक्षोजनम्रिताम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासिवक्षःस्थलविराजिताम् ॥६१८॥
शंखचक्रगदापद्मधारिभिर्दीर्घपीवरैः ।
चतुर्भिः पल्लवाकारैर्बाहुभिः परिराजिताम् ॥६१९॥
आपादपद्मलविन्यालङ्कृतां वनमालया ।
किरीटरत्नकेयूरमञ्जीरादिभिरुज्ज्वलाम् ॥६२०॥
पीताम्बरधरां देवीं भक्तानामभयप्रदाम् ।
गरुडासनमारूढां मन्दमन्दस्मिताधराम् ॥६२१॥
पक्षाभ्यां दीर्घपीनाभ्यां पृथुचञ्च्वावृताननाम् ।
हेमाभं गरुडं ध्यायेद्यमारूढा हि वैष्णवी ॥६२२॥

[माहेश्वर्या मन्त्रध्याने]

अथ माहेश्वरीमन्त्रं समासात् प्रब्रवीमि ते ।
यस्यैकवारस्मरणान्निर्वाणमपि लभ्यते ॥६२३॥
तारप्रासादपीयूषपाशलज्जारमारुषः ।
माहेश्वरीपदं देवि प्रोच्चरेत्तदनन्तरम् ॥६२४॥
शाङ्करं शाम्भवं व्योम कूटत्रयमुदाहरेत् ।
भुजङ्गमतडिन्मेघशाकिनीरतिकालिका: ॥६२५॥
चण्डकालागृतप्रेतान् युगलं कवचास्त्रयोः ।
त्रिंशदर्णात्मको मन्त्रः स्वाहासंवलितो भवेत् ॥६२६॥

इदानीं व्याहराम्यस्या ध्यानं सत्त्वगुणोज्ज्वलम् ।
हिमानीशैलसंकाशामतिपीतजटाभराम् ॥६२७॥
घनाघनाभनागेन्द्रपरिबद्धजटाचयाम् ।
जटाजूटोच्छलद्ङ्गाजलकल्लोलमालिताम् ॥६२८॥
पञ्चवक्त्रां गलच्छायाजितकज्जलरोचिषम् ।
हिमांशुशकलोद्दीप्तपञ्चभालां हसन्मुखीम् ॥६२९॥
प्रतिभालप्रविद्योतित्रिलोचनसंगताम् ।
भालतृतीयनेत्रोद्यद्वह्निज्वालासमाकुलाम् ॥६३०॥
कपोलमण्डलोद्योतिशुद्धस्फटिककुण्डलाम् ।
शुभ्रवासुकिनागेन्द्रलसद्यज्ञोपवीतिनीम् ॥६३१॥
शातकुम्भाभनागेन्द्ररुचिराङ्गदशोभिताम् ।
अतिशोणभुजङ्गेन्द्रविलसद्रत्नकङ्कणाम् ॥६३२॥
वसानां चर्म वैयाघ्रं रत्नाकल्पोल्लसत्तनुम् ।
माहेश्वरीं समारूढामतिश्वेतवृषोपरि ॥६३३॥
दशवाहां वीरभद्रनन्दिभृङ्गिपुरःसराम् ।
विष्णुरूपं शवं घोरं त्रिशूलं पर्शुमेव च ॥६३४॥
अक्षमालां वरं दक्षे करे संविभ्रतीं पराम् ।
पिनाकं नागपाशं च मृगं डमरुमेव च ॥६३५॥
अभयं दधतीं वामे प्रमथादिगणैर्वृताम् ।
इत्थं विचिन्त्य मनसा न्यसेदङ्गेषु साधकः ॥६३६॥

[इन्द्राण्या मन्त्रध्याने]

अथेन्द्राणीमनुं वक्ष्ये मातृमण्डलमध्यगाम् ।
यदाराधनतो लोकः सद्यः प्राप्नोति[1] देवताम् ॥६३७॥
प्रणवं समनूद्धृत्य वदेल्लज्जारमारुषः ।

---

१. सत्यमाप्नोति ब[1] ।

इन्द्राणि तदनूद्धृत्य मायायुग्मं ततो वदेत् ।।६३८।।
हं, हं, ततः समुच्चार्य्य क्षेत्रपालद्वयं ततः ।
अस्त्रत्रयान्तसंयुक्तः शिरोमन्त्रेण पार्वति ।।६३९।।
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
ध्यानं निरुच्यमानं त्वं समाकर्णय पार्वति ।।६४०।।
कैलासाचलसंकाशतुङ्गैरावतसंस्थिता ।
नीलोत्पलदलश्यामा कवचावृतविग्रहा ।।६४१।।
रक्ताम्बरपरीधाना पीवरा खर्वविग्रहा ।
अनर्घ्यरत्नघटितचलच्छ्रवणकुण्डला ।।६४२।।
सर्वाङ्गव्याप्तशोणाब्जसहस्रनयनोज्ज्वला ।
चतुर्भुजा महापीनोत्तुङ्गवक्षोजमण्डिता ।।६४३।।
बाहुभ्यां दक्षवामाभ्यां स्थिताभ्यामुपरि क्रमात् ।
कुलिशं खेटकं चापि बिभ्रती समरोत्सुका ।।६४४।।
वामेनास्फालयन्ती च गण्डं करिपतेर्महत् ।
दक्षेण बाहुना कुम्भं दधती ददती श्रृणिम् ।।६४५।।
चतुर्दन्तो मदोन्मत्तस्तुषाराचलसन्निभः ।
ऐरावतोऽपि ध्यातव्यो यमिन्द्राणी समाश्रिता ।।६४६।।

[हरसिद्धाया मन्त्रध्याने]

अथातो हरसिद्धाया मन्त्रं ते व्याहराम्यहम् ।
सर्वं मयाराधितेयं बहुसिद्धिमभीप्सता ।।६४७।।
अतः प्रसिद्धिं संप्राप्तां मन्नाम्नैव वरानने ।
प्रणवं वाग्भवं बीजं मायाबीजं ततः परम् ।।६४८।।
कमलां मान्मथं बीजं कालीपाशाङ्कुशा अपि ।
चण्डक्रोधमहाक्रोधफेत्कारी शाकिनी अपि ।।६४९।।

हरसिद्धि ततः प्रोच्य सर्वसिद्धिमितीरयेत् ।
कुरुयुग्मं देहि युगं दापय द्वितयं पुनः ॥६५०॥
क्रोधत्रयं समुद्धृत्य द्विफडन्तेऽग्निवल्लभा ।
द्विचत्वारिंशवर्णाढ्यो मन्त्रः सर्वोत्तमोत्तमः ॥६५१॥
ध्यानं चास्याः प्रवक्ष्यामि यत् कृत्वा न्यासमाचरेत् ।
हरितालसमाभासलोचनत्रयभूषिताम् ॥६५२॥
पादालम्बिजटाभारां नरमुण्डकृतस्रजम् ।
बर्हिपिच्छकृतोदग्रकाञ्चीकिङ्किणिमण्डिताम् ॥६५३॥
शार्दूलचर्मारचितकञ्चुक्यावृतवक्षसम् ।
शवोपरि समारूढामीषत्कम्पितमस्तकाम् ॥६५४॥
चलदोष्ठपुटां बाहुचतुष्केन विराजिताम् ।
बर्हिणं वृक्षपालं च वामतो बिभ्रतीं शुभाम् ॥६५५॥
खड्गं च कर्त्तृकां दक्षे योगपट्टकृतस्रजम् ।

[फेत्कारिण्या मन्त्रध्याने]

अथ फेत्कारिणीमन्त्रं व्याहरामि तव प्रिये ॥६५६॥
सद्यः कविर्यद्ग्रहणाद् राजा वापि प्रजायते ।
प्रणवाङ्कुशसौपर्णफेत्कारीक्रोधयोगिनीः ॥६५७॥
बीजान्युद्धृत्य फेत्कारिपदं प्रोक्त्वा वदेत्ततः ।
दद युग्मं देहि ततो दापयेति पदं वदेत् ॥६५८॥
स्वाहान्तो मनुराजोऽयं विंशत्यक्षरिकः प्रिये ।
ध्यानमस्या ब्रुवे नाभेरधो मनुजसंनिभाम् ॥६५९॥
ऊर्ध्वं गोमायुसदृशीं तदाकारां मुखेऽपि [illegible] ।
अधोजाम्बूनद[illegible]मूर्ध्वं रक्तासितप्रभाम् ॥[illegible]॥

पृष्ठे लूमयुतां नग्नां कुर्वन्तीं फैरवं रवम् ।
शिवाकारं बाहुयुगं बिभ्रतीं पितृतान्विताम् ॥६६१॥
प्रसुप्तशवपृष्ठस्थां योगपट्टे निषेदुषीम् ।
शिवाभिर्घोररूपाभिर्वामदक्षिणतो[1] वृताम् ॥६६२॥

[लवणेश्वर्या मन्त्रध्याने]

अथ ब्रवीमि लवणेश्वर्य्या मन्त्रं कलार्णिकम् ।
आदौ चैतन्यकमले पाशप्रासादकौ ततः ॥६६३॥
[2]रुग्भूतप्रेतडाकिन्यो[3] योगिनी वनिता तथा ।
मानसं वज्रभारुण्डे कपालं च कुलाङ्गना ॥६६४॥
त्रैवर्णिकः सर्वशेषे महामन्त्रोऽयमीरितः ।
सांप्रतं ध्यानमाख्यास्ये यत् कृत्वा न्यासमाचरेत् ॥६६५॥
रत्नसिंहासनारूढां दूर्वादलसमद्युतिम् ।
बद्धाञ्जलिपुटैः सप्तसागरै रत्नपाणिभिः ॥६६६॥
विहाय संमुखं दिक्षु विदिक्षु परिवेष्टिताम् ।
नेत्रदासक्तहस्तेन धनदेन पुरोजुषा ॥६६७॥
सेवितां प्रज्वलन्मौलिमर्णिभिर्नागनायकैः ।
अष्टभिर्निधिभिश्चापि महापद्मादिभिर्वृताम् ॥६६८॥
चतुर्भुजां रत्नकुम्भाभये सव्यभुजद्वये ।
अक्षमालावरे दक्षे भुजयुग्मेषु बिभ्रतीम् ॥६६९॥
मुक्ताहारपरिक्षिप्तां द्रव्यसिद्धिविधायिनीम् ।
न्यासं समाचरेद् देवि ध्यात्वेत्थं लवणेश्वरीम् ॥६७०॥

१. ०ण वेष्टिताम् ब[1] ।
२. उद्भूत ब[1] । ३. शाकिन्या ब[1] ।

[नाकुलीदेव्या मन्त्रध्याने]

अथातो नाकुलीं वक्ष्ये महाविद्यां जयप्रदाम् ।
सर्वादिप्रकृतेरादौ सप्तान्ते चतुरस्तथा ॥६७१॥
त्यक्त्वा माध्यमिकैर्भूतमितैर्मन्त्रो महाफलः ।
कपोतगलदेहाभा पीनोरोजा दिगम्बरा ॥६७२॥
मुक्तपादालम्बिजटाजूटभारा भयङ्करा ।
बभ्रौ निषेदुषी शूच्याकारतुण्डी खरस्वरा ॥६७३॥
सितलूताजालजाला च्छादितोर्ध्वशिरोरुहा ।
कपालमालाभरणा न्रस्थिकाञ्चीगुणोज्ज्वला ॥६७४॥
लम्बमानशिवापोतकुण्डलद्वयशोभिता ।
अर्द्धचन्द्रसमुद्भासिभ्रमरीकललाटिका ॥६७५॥
दण्डाकारितयोर्दक्षवामयोर्भुजयुग्मयोः ।
बिभ्रती कालभुजगौ दीर्घदंष्ट्रा करालिनी ॥६७६॥
परस्परं त्यक्तवैरैरुरगैर्नकुलैरपि ।
संवेष्टिता चतुर्दिक्षु महारण्यकृतालया ॥६७७॥

[मृत्युहरिण्या मन्त्रध्याने]

सांप्रतं मृत्युहारिण्या मन्त्रध्याने ब्रवीमि ते ।
मृत्युञ्जयप्राणमन्त्र उद्धृता या नवाक्षरी ॥६७८॥
नास्या न्यासं तया कुर्य्यादन्येन प्रब्रवीमि ते ।
तारमाये रमाकालौ रावास्ता चतुरक्षरी ॥६७९॥
प्रासादप्रेतभैरव्यः कूटं शाम्भवमेव च ।
कूटं च परमात्मीयं विहायैतच्छुचिस्मिते ॥६८०॥
विलोमरीत्या प्रवदेत्तान्येव द्वादशानि हि ।
पञ्चविंशाक्षरो मन्त्रो मृत्योर्मृत्युकरः स्मृतः ॥६८१॥

आचरेदमुना न्यासमिदानीं ध्यानमीरये ।
हिमानीकूटसदृशीमीश्वरीं देहरोचिषा ॥६८२॥
उत्तानकुणपाकारकालमृत्त्यूपरि स्थिताम् ।
चतुर्वेदाकारयोगपट्टजानुद्वयाङ्किताम् ॥६८३॥
सितसूक्ष्माम्बरधरां स्मेराननसरोरुहाम् ।
ज्ञानरश्मिच्छटाटोपविद्योतितनुमण्डलाम् ॥६८४॥
प्रौढाङ्गनारूपधरामुत्तुङ्गस्तनमण्डलाम्[१] ।
विभूषितां यावदेकयोषिद्भूषणसञ्चयैः ॥६८५॥
विद्याभिरष्टादशभिर्निबद्धाञ्जलिभिः सदा ।
सेव्यमानां चतुर्दिक्षु हसन्तीं तां निरीक्ष्य च ॥६८६॥
चतुर्भुजां सुधाकुम्भपुस्तके वामहस्तयोः ।
दक्षयोरक्षमालां च मुद्रां व्याख्यानशालिनीम् ॥६८७॥
दधतीं सर्वदा ध्यायेद् देवीं तां मृत्त्युहारिणीम् ।

[कामकलाकाल्या मन्त्रध्याने]

अथात एकपञ्चाशत्तमा वै कामकालिका ॥६८८॥
न्यसनीया सर्वदोषव्यापकत्वेन पार्वति ।
ध्यानं पूर्वोक्तमेवात्र कर्त्तव्यं प्रथमं बुधैः ॥६८९॥
ततस्तत्त्वमिता मन्त्रा न्यसनीया क्रमेण हि ।
सर्वाम्नायाः सप्तदश्याः प्रथमं समुदीरयेत् ॥६९०॥
व्यापकं मातृकावर्णं सहाम्नायनिकस्य च ।
जघन्ये हृन्मनुर्देवि मध्ये तु मनवोऽखिलाः ॥६९१॥
एकैकेनैकवारं हि विदध्याद् व्यापकं बुधः ।
पञ्चविंशतिभिश्चैवं मनुभिः पृथगीरितैः ॥६९२॥
व्यापकं तावतो वारान्निरालस्यः समाचरेत् ।
अथवा निखिलान्मन्त्रानुच्चार्य्य क्रमतः प्रिये ॥६९३॥

---

१. इयं पंक्तिः भे इत्यत्र नास्ति ।

नमोऽन्ते व्यापकं कुर्यात् पूर्वस्मिन् फलभूमता ।
इतरत्र ततः किंचित्तारतम्यं प्रचक्षते ॥६९४॥
नरीप्युपासिता विद्या पुरः सप्तदशी मता ।
ततो नु कपिलोपास्या षोडशार्णा निगद्यते ॥६९५॥
नवाक्षरी हिरण्याक्षोपासिता तदनन्तरम् ।
ततो दशार्णा विज्ञेया लवणोपासिता हि या ॥६९६॥
वैवस्वतमनूपास्या ज्ञेया पञ्चदशी ततः ।
नवबीजात्मिका दत्तात्रेयोपास्या नवाक्षरी ॥६९७॥
दूर्वासोपासिता चापि ततः पञ्चाक्षरी मता ।
अष्टादशाक्षरं ज्ञेयं त्रैलोक्याकर्षणं ततः ॥६९८॥
मन्वक्षरो मनुः पश्चादुत्तङ्कोपासितः प्रिये ।
ततः परा सप्तदशी विश्वामित्रेण सेविता ॥६९९॥
तत ऊनत्रिंशदर्णा विद्यौर्वोपासिता स्मृता ।
पराशरोपासितश्च षष्ठांशकाक्षरस्ततः ॥७००॥
विद्या त्रिकूटा तदनु भगीरथनिषेविता ।
वैरोचनिसमाराध्या तदनु स्यात् षडक्षरी ॥७०१॥
ख्याता महाषोडशीया संवर्तोपासिता ततः ।
नारदोपासिता पश्चाज् ज्ञेया पञ्चदशाक्षरी ॥७०२॥
या बीजान्तरिता शाम्भवादिकूटपुरःसरा ।
सप्तकूटात्मिका पञ्च बीजेन घटिता तथा ॥७०३॥
ख्याता महासप्तदशी गरुडोपासिता तथा ।
वक्ष्यमाणक्रमेणापि या तु सप्तदशी ततः ॥७०४॥
कामदुग्धोपासिता च ततः सप्ताक्षरी मता ।
नृपूपास्यतथा ख्यातस्ततः सप्तदशाक्षरी ॥७०५॥

चतुर्दशार्णस्तदनु कार्त्तवीर्येण सेवितः ।
पञ्चाक्षरी पृथूपास्या तत्पश्चादनु कीर्त्यते ॥७०६॥
द्वाविंशाक्षरिकः पश्चाद् हनूमत्समुपासितः ।
शताक्षरसहस्राणौ सर्वोपास्यौ ततः परम् ॥७०७॥
चतुर्विंशमिता एवं मन्त्राः व्यापककर्मणि ।
ध्यानं चैषामेकमेव यत्पूर्वं गदितं तत्र ॥७०८॥

[षोढान्यासस्य समर्पणविधिः]

प्राणायामं ततः कृत्वा षडङ्गमपि चाचरेत् ।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा न्यासं देव्यै समर्पयेत् ॥७०९॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण गृहीतकरपुष्करः ।

[न्याससमर्पणमन्त्रः]

ऊं सर्वं निविष्टं त्रैलोक्ये त्रैलोक्यं त्वयि विष्टितम् ॥७१०॥
त्वमप्यमुष्मिन् न्यासेऽम्ब सन्निविष्टाणुरूपिणी ।
त्रैलोक्यविजयत्वेन ख्यातोऽयमत एव हि ॥७११॥
निविष्टोऽयं मयि न्यासस्त्रिपुरा विश्वरूपिणि ।
न्यासस्तवार्पितो देवि त्रैलोक्यविजयो मया ॥७१२॥
एतेनैव सह त्वं च मय्येव प्रविशाम्बिके ।
त्रैलोक्यमखिलं तस्मान् मद्रूपत्वे वितुष्टितम् ॥७१३॥
अहं त्रैलोक्यरूपश्च तस्मादैक्यं वभूव तु ।

[समन्त्रो बलिसमर्पणविधिः]

कृतं न्यासं समर्प्यैवं बलिं देव्यै निवदयेत् ॥७१४॥
स्वस्वानुक्रमतो मन्त्रपूर्वं संभक्तिभावितः ।
तारत्रपाकामवध्वः शाकिनी डाकिनी तथा ॥७१५॥
फेत्कारीप्रेतभैरव्यः कूटं शाम्भवमेव च ।
एह्येहि भगवत्युक्त्वा कालि कामकलार्णतः ॥७१६॥

इमं बलिं गच्छ युगं तावद् गृह्णापयेति च ।
खादय द्वयमाभाष्य भक्षयद्वितयं ततः ॥७१७॥
सर्वसिद्धिं प्रयच्छैकं वमदग्निमुखीरयेत् ।
फेरुकोटि समाभाष्य ततः परिवृते वदेत् ॥७१८॥
हस ज्वल प्रज्वल च द्वयं द्वयमुदीरयेत् ।
क्रोधास्त्रयोश्च त्रितयं नमः स्वाहा जघन्यतः ॥७१९॥
यथेष्टं विहरेद् धीमान् पठित्वा मनुना बलिम् ।
संहारमुद्रया देवीं हृदये विनिधाय च ॥७२०॥
इति कामकलाकाल्याः षोढान्यासो मयेरितः ।
किन्त्वस्य महिमा [वक्तुं] मयापि नहि शक्यते ॥७२१॥
पर्वण्यमुं विधायेशि वाञ्छितार्थं प्रसाधयेत् ।
षण्मासेन विदधत् कदाप्यपतितं प्रिये ॥७२२॥
साक्षाद् देवीपुत्र एव भवेद् भैरव एव वा ।
अमुं न्यासं प्रकुर्वाणः पर्वण्यथ सदापि वा ॥७२३॥
कस्मैचिदपि न कुध्यान्नमेन्न शपेदपि ।
न निष्ठुरं च भाषेत न चापत्यमृतिं स्मरेत् ॥७२४॥
यस्मै कुध्यात् स म्रियते षण्मासाभ्यन्तरे नरः ।

इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां
षोढान्यासोद्धारो नामाष्टमः पटलः ।

नवम पटलः

[त्रैलोक्यमोहनकवचस्यवतरणम्]

देव्युवाच
महायोगिन्महाकाल करुणाम्बुनिधे शिव ।
षोढान्यासः श्रुतस्त्वत्तो महासिद्धिर्महाफलः ॥ १ ॥
यत्नेन विधृतश्चापि मया भक्तिप्रवीणया ।
त्रैलोक्यमोहनं नाम कवचं मेऽधुना वद ॥ २ ॥
कवचत्वेन यद् देवी शिवायादात् स्वयं मुदा ।
तत् कीदृशं हि भविता तत्र कौतूहलं मम ॥ ३ ॥
यदि प्रसन्नोऽसि मयि तदेदं वद सुव्रत ।
सर्वस्मादधिकं ह्येतत् त्वयैव समुदीरितम् ॥ ४ ॥
नित्यमामुश्वसि त्वं च जातो मम तदाग्रहः ।
महाकाल उवाच
ममैव दोषो देवेशि महांस्ते नाणुरप्यहो ॥ ५ ॥
यत्पूर्वमेव पुरतस्तव तस्या भिदा कृता ।
नो चेत् किमर्थमप्राक्षीरतो निन्दे स्वमात्मना ॥ ६ ॥
मम चेतस्यभूदित्थं त्वयेदं विस्मृतं भवेत् ।
न विस्मरन्त्युक्तगुप्तं स्त्रियो हीति श्रुतिप्रथाः ॥ ७ ॥
त्वं हि सर्वोत्तमा स्त्रीणां कथं नैव स्मरिष्यसि ।
अतः परमिदं गोप्यं मया त्वत्तः कथं भवेत् ॥ ८ ॥
शरीरार्द्धं च भवसि कथमात्मनि गोपनम् ।
तस्मात् तव प्रवक्ष्यामि नो चेत् दृक्षसि[1] मां कथम् ॥ ९ ॥
श्रद्धां भक्तिं तव प्रेक्ष्य विवक्षा मम जायते ।

[त्रैलोक्यमोहनकवचस्य फलाभिधानम्]

देवि नैतादृशाः काश्चित् सिद्धयः सन्ति भूतले ॥१०॥

---

१. द्रक्ष्यसि इति समुचितः प्रतिभाति ।

त्रैलोक्यमोहनेऽधीते या नैव स्युः करस्थिताः ।
पुनरेकं मया प्रोच्यमानं देवि निशामय ॥११॥
कर्मानुरूपं जन्म स्याद् देहो जन्मनि जन्मनि ।
देहे देहे तथा प्राणास्तथा सर्वेन्द्रियाणि च ॥१२॥
तेषु तेषु धनं राज्यं भोगा रत्नं स्त्रियो गृहम् ।
सर्वं नरस्य सुलभं न तु त्रैलोक्यमोहनम् ॥१३॥
चिच्छेदिषूणां मूर्द्धानं सर्वस्वं ददतामपि ।
राज्यं धनं स्त्रियः प्राणानुपढौकयतामपि ॥१४॥
सर्वथा देवि नाख्येयं त्रिसत्यं ते ब्रवीम्यहम् ।
शिष्यस्य सिद्धिः कथिते गुरोस्तु मरणं भवेत् ॥१५॥
समासादुपदेशोऽयं मया ते समुदीरितः ।
मृत्युर्न मम तस्मात्तु उपदेक्ष्यामि सुव्रते ॥१६॥
लोभादन्ये ये प्रदद्युर्मृत्युवक्त्रं विशन्ति ते ।
उपदेशं विना ये वै त्रैलोक्याकर्षणस्य हि ॥१७॥
त्रैलोक्यमोहनं नाम पठन्ति कवचं त्विदम् ।
सद्यस्ते मरणं यान्ति भक्षिता योगिनीगणैः ॥१८॥

[त्रैलोक्यमोहनकवचोपदेशः]

उपदेक्ष्यामि तस्मात्त्वां बध्यतामञ्जलिः प्रिये ।
सावधाना स्थिरा भूत्वा गदतोऽनुगदस्व मे ॥१९॥
त्रैलोक्यमोहनस्यास्य कवचस्य महेश्वरि ।
त्रिपुरारिःऋषिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदीरितम् ॥२०॥
देवी [भगवती] कामकलाकाली प्रकीर्तिता ।
फ्रें बीजं बीजमुद्दिष्टं कामार्णं कीलकं मतम् ॥२१॥

योगिनी शक्तिरुद्दिष्टा डाकिनी तत्त्वमुच्यते ।
विनियोगोऽस्य कथितः पुरुषार्थचतुष्टये ।।२२।।
देवीकामकलाकालीप्रीत्यर्थे च विशेषतः ।
शत्रुक्षयार्थे राज्याप्त्यै प्रयोगोऽस्य वरानने ।।२३।।
ओं ऐं श्रीं क्लीं शिरः पातु फ्रें ह्रीं छ्रीं मदनातुरा ।
स्त्रीं ह्रूं क्षौं ह्रीं लं ललाटं पातु ख्फ्रें क्रौं करालिनं ।।२४।।
आं ह्रौं फ्रों क्षूँ मुखं पातु क्लूं ड्रूं थ्रौं चण्डनायिका ।
हूं त्रैं च्लूं मौः पातु दृशौ प्रीं ध्रीं क्ष्रीं जगदम्बिका ।।२५।।
क्रूं खूं घ्रीं च्लीं पातु कर्णौ ज्रं प्लैं रुः सौं सुरेश्वरी ।
गं प्रां ध्रीं थ्रीं हनू पातु अं आं इं ईं श्मशानिनी ।।२६।।
जूं डुं ऐं औं भ्रुवौ पातु कं खं गं घं प्रमाथिनी ।
चं छं जं झं पातु नासां टं ठं डं ढं भगाकुला ।।२७।।
तं थं दं धं पात्वधरमोष्ठं पं फं रतिप्रिया ।
बं भं यं रं पातु दन्तान् लं वं शं सं च कालिका ।।२८।।
हं क्षं क्षं हं पातु जिह्वां सं शं वं लं रताकुला ।
वं यं भं वं च चिबुकं पातु फं पं महेश्वरी ।।२९।।
धं दं थं तं पातु कण्ठं ढं डं ठं टं भगप्रिया ।
झं जं छं चं पातु कुक्षौ घं गं खं कं महाजटा ।।३०।।
ह्सौः ह्स्ख्फ्रें पातु भुजौ क्ष्मूं म्रैं मदनमालिनी ।
ङां ञीं णूं रक्षताज्जत्रू नैं मौं रक्तासवोन्मदा ।।३१।।
ह्लां ह्लीं ह्लूं पातु कक्षौ मे ह्लैं ह्लौं निधुवनप्रिया ।
क्लां क्लीं क्लूं पातु हृदयं क्लैं क्लौं मुण्डावतंसिका ।।३२।।
श्रां श्रीं श्रूं रक्षतु करौ श्रैं श्रौं फेत्काररराविणी ।
क्लां क्लीं क्लूं अंगुलीः पातु क्लैं क्लौं च नारवाहिनी ।।३३।।

च्रां च्रीं च्रूं पातु जठरं च्रैं च्रौं संहाररूपिणी ।
छ्रां छ्रीं छ्रूं रक्षतान्नाभिं छ्रैं छ्रौं सिद्धिकरालिनी ॥३४॥
स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं रक्षतात् पार्श्वौ स्त्रैं स्त्रौं निर्वाणदायिनी ।
फ्रां फ्रीं फ्रूं रक्षतात् पृष्ठं फ्रैं फ्रौं ज्ञानप्रकाशिनी ॥३५॥
क्षां क्षीं क्षूं रक्षतु कटिं क्षैं क्षौं नृमुण्डमालिनी ।
ग्लां ग्लीं ग्लूं रक्षतादूरू ग्लैं ग्लौं विजयदायिनी ॥३६॥
ब्लां ब्लीं ब्लूं जानुनी पातु ब्लैं ब्लौं महिषमर्दिनी ।
प्रां प्रीं प्रूं रक्षताज्जंघे प्रैं प्रौं मृत्त्युविनाशिनी ॥३७॥
थ्रां थ्रीं थ्रूं चरणौ पातु थ्रैं थ्रौं संसारतारिणी ।
ॐ फ्रें सिद्धिकरालि ह्रीं छ्रीं ह्रं स्त्रीं फ्रें नमः ॥३८॥
सर्वसन्धिषु सर्वाङ्गं गुह्यकाली सदावतु ।
ॐ फ्रें सिद्धि ह्स्ख्फ्रें ह्सफ्रें ख्फ्रें करालि ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें
ह्स्फ्रें फ्रें ॐस्वाहा ॥३९॥
रक्षताद्घोरचामुण्डा तु कलेवरं वहक्षमलवरयूं ।
अव्यात् सदा भद्रकाली प्राणानेकादशेन्द्रियान् ॥४०॥
ह्रीं श्रीं ॐ ख्फ्रें हस्ख्फ्रें हक्षम्लब्रयूं न्क्ष्रीं नज्च्रीं स्त्रीं छ्रीं
ख्फ्रें ठ्रीं ध्रीं नमः ।
यत्रानुक्तस्थलं देहे यावत्तत्र च तिष्ठति ॥४१॥
उक्तं वाऽप्यथवानुक्तं करालदशनावतु ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं स्त्रीं ध्रीं फ्रें क्षूं क्शौं क्रौं ग्लूं
ख्फ्रें प्रीं ठ्रीं थ्रीं ट्रैं ब्लौं फट् नमः स्वाहा ॥४२॥
सर्वमापादकेशाग्रं काली कामकलावतु ॥४३॥

[त्रैलोक्यमोहनकवचस्य फलश्रुतिः]

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
एतेन कवचेनैव यदा भवति गुण्ठितः ॥४४॥

वज्रात् सारतरं तस्य शरीरं जायते तदा ।
शोकदुःखामयैर्मुक्तः सद्यो ह्यमरतां व्रजेत् ।।४५।।
आमुच्यानेन देहं स्वं यत्र कुत्रापि गच्छतु ।
युद्धे दावाग्निमध्ये च सरित्पर्वतसिन्धुषु ।।४६।।
राजद्वारे च कान्तारे चौरव्याघ्राकुले पथि ।
विवादे मरणे त्रासे महामारीगदादिषु ।।४७।।
दुःस्वप्ने बन्धने घोरे भूतावेशग्रहोद्गतौ ।
विचर त्वं हि रात्रौ च निर्भयेनान्तरात्मना ।।४८।।
एकावृत्त्याघनाशः स्यात् त्रिवृत्त्या चायुराप्नुयात् ।
शतावृत्त्या सर्वसिद्धिः सहस्रैः खेचरो भवेत् ।।४९।।
वल्लभेऽयुतपाठेन शिव एव न संशयः ।
किं वा देवि०० जानेः सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते ।।५०।।
चतुस्त्रैलोक्यलाभेन त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
त्रैलोक्याकर्षणो मन्त्रस्त्रैलोक्यविजयस्तदा ।।५१।।
त्रैलोक्यमोहनं चैतत् त्रैलोक्यवशकृन्मनुः ।
एतच्चतुष्टयं देवि संसारेष्वतिदुर्लभम् ।।५२।।
प्रसादात्कवचस्यास्य के सिद्धि नैव लेभिरे ।
संवर्ताद्याश्च ऋषयो मारुत्ताद्या महीभुजः ।।५३।।
विशेषतस्तु भरतो लब्धवांन् यच्छृणुष्व तत् ।
जाह्नवीयमुनारेवाकावेरीगोमतीष्वयम् ।।५४।।
सहस्रमश्वमेधानामेकैकत्राजहार हि ।
याजयित्रे मातृपित्रे त्वेकैकस्मिन् महाक्रतौ ।।५५।।
सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वायादात् सवर्म्मणाम् ।
सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं जिगाय त्रिदिनेन यः ।।५६।।

नवायुतं च वर्षाणां योऽजीवत् पृथिवीपतिः ।
अव्याहतरथाध्वा यः स्वर्गपातालमीयिवान् ॥५७॥
एवमन्योऽपि फलवानेतस्यैव प्रसादतः ।
भक्तिश्रद्धापरायास्ते मयोक्तं परमेश्वरि ॥५८॥

[कवचस्यास्य गोपनीयताभिधानम्]

प्राणात्यये [ऽपि] नो वाच्यं त्वयान्यस्मै कदाचन ।
देव्यदात् त्रिपुरघ्नाय स मां प्रादादहं तथा ॥५९॥
तुभ्यं संवर्त्तऋषये प्रादां सत्यं ब्रवीमि ते ।
सवर्त्तो दास्यति प्रीतो देवि दुर्वाससे त्विमम् ॥६०॥
दत्तात्रेयाय स पुनरेवं लोके प्रतिष्ठितम् ।
वक्त्राणां कोटिभिर्देवि वर्षाणामपि कोटिभिः ॥६१॥
महिमा वर्णितुं शक्यः कवचस्यास्य नो मया ।
पुनर्ब्रवीमि ते सत्यं मनो दत्वा निशामय ॥६२॥
इदं न सिद्धयते देवि त्रैलोक्याकर्षणं विना ।
ग्रहीत्रे तुष्यते देवी दात्रे कुप्यति तत्क्षणात् ॥६३॥
एतज् ज्ञात्वा यथाकर्तुमुचितं तत् करिष्यसि ।

इत्यादिनाथविरचितायां महाकालसंहितायां त्रैलोक्यविजयं नाम कवचम्
नवमः पटलः ।

दशमः पटलः

[कामकलाकाल्याः रावणकृतं भुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्]

महाकाल उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि देव्याः स्तोत्रमनुत्तमम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण विघ्ना यान्ति पराङ्मुखाः ।। १ ।।

विजेतुं प्रतस्थे यदा कालकस्या-
सुरान् रावणो मुञ्जमालिप्रवर्हान् ।
तदा कामकालीं स तुष्टाव वाग्भि-
र्जिगीषुर्मृधे बाहुवीर्य्येण सर्वान् ।। २ ।।

महावर्त्तभीमासृगब्ध्युत्थवीची-
परिक्षालिता श्रान्तकंथश्मशाने ।
चितिप्रज्वलद्वह्निकीलाजटाले-
शिवाकारशावासने सन्निषण्णाम् ।। ३ ।।

महाभैरवीयोगिनीडाकिनीभिः
करालाभिरापादलम्बत्कचाभिः ।
भ्रमन्तीभिरापीय मद्यामिषास्रा-
न्यजस्रं समं सञ्चरन्तीं हसन्तीम् ।।४।।

महाकल्पकालान्तकादम्बिनीत्विट्-
परिस्पर्द्धिदेहद्युतिं घोरनादाम् ।
स्फुरद्द्वादशादित्यकालाग्निरुद्र-
ज्वलद्विद्युदोघप्रभादुर्निरीक्ष्याम् ।।५।।

लसन्नीलपाषाणनिर्माणवेदि-
प्रभश्रोणिविम्बां चलत्पीवरोरुम् ।
समुत्तुङ्गपीनायतोरोजकुम्भां
कटिग्रन्थितद्वीपिकृत्त्युत्तरीयाम् ।।६।।

स्रवद्रक्तवल्गन्नृमुण्डावनद्धा-
सृगावद्धनक्षत्रमालैकहाराम् ।
मृतब्रह्मकुल्योपक्लृप्ताङ्गभूषां
महाट्टाट्टहासैर्जगत्त्रासयन्तीम् ॥७॥

निपीताननान्तामितोद्वृत्तरक्तो-
च्छलद्धारया स्नापितोरोजयुग्माम् ।
महादीर्घदंष्ट्रायुगन्यञ्चदञ्च
ल्ललल्लेलिहानोग्रजिह्वाग्रभागाम् ॥८॥

चलत्पादपद्मद्वयालम्बिमुक्त-
प्रकम्पालिसुस्निग्धसंभुग्नकेशाम् ।
पदन्याससम्भारभीताहिराजा-
ननोद्गच्छदात्मस्तुतिव्यस्तकर्णाम् ॥९॥

महाभीषणां घोरविंशार्द्धवक्त्रै-
स्तथासप्तविंशान्वितैर्लोचनैश्च ।
पुरोदक्षवामे द्विनेत्रोज्ज्वलाभ्यां
तथान्यानने त्रित्रिनेत्राभिरामाम् ॥१०॥

लसद्द्वीपिहर्य्यक्षफेरुप्लवंग-
क्रमेलर्क्षतार्क्षद्विपग्राहवाहैः ।
मुखैरीदृशाकारितैर्भ्राजिमानां
महापिङ्गलोद्यज्जटाजूटभाराम् ॥११॥

भुजैः सप्तविंशाङ्कितैर्वामभागे
युतां दक्षिणे चापि तावद्भिरेव ।
क्रमाद्रत्नमालां कपालं च शुष्कं
ततश्चर्मपाशं सुदीर्घं दधानाम् ॥१२॥

ततः शक्तिखट्वाङ्गमुण्डं भुशुण्डीं
धनुश्चक्रघण्टाशिशुप्रेतशैलान् ।
ततो नारकङ्कालबभ्रूरगोन्माद-
वंशीं तथा मुद्गरं वह्निकुण्डम् ॥१३॥

अधो डम्मरुं पारिघं भिन्दिपालं
तथा मौशलं पट्टिशं प्राशमेवम् ।
शतघ्नीं शिवापोतकं चाथ दक्षे
महारत्नमालां तथा कर्त्तृखड्गौ ॥१४

चलत्तर्ज्जनीमङ्कुशं दण्डमुग्रं
लसद्रत्नकुम्भं त्रिशूलं तथैव ।
शरान् पाशुपत्यांस्तथा पञ्च कुन्तं
पुनः पारिजातं छुरीं तोमरं च ॥१५॥

प्रसूनस्रजं डिण्डिमं गृध्रराजं
ततः कोरकं मांसखण्डं श्रुवं च ।
फलं बीजपूराह्वयं चैव सूचीं
तथा पर्शुमेवं गदां यष्टिमुग्राम् ॥१६॥

ततो वज्रमुष्टिं कुणप्पं सुघोरं
तथा लालनं धारयन्तीं भुजैस्तैः ।
जवापुष्परोचिष्फणीन्द्रोपक्लृप्त
क्वणन्नूपुरद्वन्द्वसक्ताङ्घ्रिपद्माम् ॥१७॥

महापीतकुम्भीनसावद्धनद्ध
स्फुरत्सर्वहस्तोज्ज्वलत्कंकणां च ।
महापाटलद्योतिदर्वीकरेन्द्रा-
वसक्ताङ्गदव्यूहसंशोभमानाम् ॥१८॥

महाधूम्ररत्त्विड्भुजङ्गेन्द्रक्लृप्त-
स्फुरच्चारुकाटेयसूत्राभिरामाम् ।
चलत्पाण्डुराहीन्द्रयज्ञोपवीत-
त्विडुद्भासिवक्षःस्थलोद्यत्कपाटाम् ॥१९॥
पिषङ्गोरगेन्द्रावनद्धावशोभा-
महामोहबीजाङ्गसंशोभिदेहाम् ।
महाचित्रिताशीविषेन्द्रोपक्लृप्त-
स्फुरच्चारुताटङ्कविद्योतिकर्णाम् ॥२०॥
वलक्षाहिराजावनद्धोर्ध्वभासि-
स्फुरत्पिङ्गलोद्यज्जटाजूटभाराम् ।
महाशोणभोगीन्द्रनिस्यूतमुण्डो-
ल्लसत्किङ्किणीजालसंशोभिमध्याम् ॥२१॥
सदा संस्मरामीदृशीं कामकालीं
जयेयं सुराणां हिरण्योद्भवानाम् ।
स्मरेयुर्हि येऽन्येऽपि ते वै जयेयु-
र्विपक्षान्मृधे नात्र सन्देहलेशः ॥२२॥
पठिष्यन्ति ये मत्कृतं स्तोत्रराजं
मुदा पूजयित्वा सदा कामकालीम् ।
न शोको न पापं न वा दुःखदैन्यं
न मृत्युर्न रोगो न भीतिर्न चापत् ॥२३॥
धनं दीर्घमायुः सुखं बुद्धिरोजो
यशःशर्मभोगाः स्त्रियः सूनवश्च ।
श्रियो मङ्गलं बुद्धिरुत्साह आज्ञा
लयः शर्म [सर्वं] विद्या भवेन्मुक्तिरन्ते ॥२४॥

इति महावामकेश्वरतन्त्रेकालकेयहिरण्यपुरविजये रावणकृतं
कामकालीभुजङ्गप्रयातस्तोत्रराजं समाप्तम् ।

[प्रसन्नाकलशस्य शक्तिसामरस्यस्य च विध्योरभिधानम्]

देव्युवाच

महायोगिन् महाकाल करुणाम्बुनिधे शिव ।
अत्यद्भुतमिदं त्वत्तः श्रुतं कवचमुत्तमम् ॥१॥
विशेषेण श्रुतं सर्वं मया चैतन्महेश्वर ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मम प्रीतिकरं प्रिय ॥२॥
कीदृशेन विधानेन आशु सा च प्रसीदति ।
तत् कथयस्व देवेश यदि स्नेहोऽस्ति ते मयि ॥३॥

महाकाल उवाच

अथ सर्वप्रयोगाणां राजानं व्याहरामि ते ।
यदेकवारकरणात् कृतकृत्योऽभिजायते ॥४॥
महागोप्यतमं देवि प्रसन्नाकलशं विधिम् ।
विशेषतस्तथा शक्तिसामरस्यकरं विधिम् ॥५॥
गुरुदैवतमन्त्राणां यथैकत्वं फलप्रदम ।
तीर्थदैवतशक्तीनां तथैकत्वं महाफलम् ॥६॥
क्षत्रविट्शूद्रजातीनामेष एव विधिर्मतः ।
देवस्य मध्यतोल्लेखादुभयत्र समा क्रिया ॥७॥

[उपर्युक्तविध्योरधिकारिणो निर्देशः]

द्विजातेः केवलं तीर्थे नाधिकारः प्रशस्यते ।
निन्दा तु प्राणनाशाय त्यागात् सिद्धिक्रियाऽफला ॥८॥
निन्दात्यागौ न कर्त्तव्यौ देवि सिद्धिमभीप्सता ।

[उपर्युक्तविध्योः कालाभिधानम्]

प्रत्यष्टम्यां चतुर्दश्यां संक्रान्तौ मंगलेऽहनि ॥९॥

व्यतीपातोपरागे च स्वेच्छा यस्मिन् दिनेऽपि वा ।
कल्पितार्चादिसम्भारः कृतनित्यक्रियो दिवा ॥१०॥
भुक्तान्नो वाप्यभुक्तान्नो विधिं कुर्य्यान्महानिशि ।

[तीर्थस्य द्वादशप्रकाराभिधानम्]

तीर्थशक्त्योर्भिदां वच्मि तत्र चेतो निवेशय ॥११॥
माध्वीका पानसी चैव खार्ज्जूरी च मधूकिका ।
गौडी ताली चतुर्जाता तण्डुली पुष्पसंभवा ॥१२॥
माधवीका च गौधूमी तथौषधिशिफात्मिका ।
क्षत्रविट्शूद्रजातीनां प्रशस्ता द्वादशैव हि ॥१३॥
मधु क्षीरं तथाज्यं च नारिकेलोदकं प्रिये ।
ब्राह्मणानामिदं शस्तं फलानां च रसास्तथा ॥१४॥

[शक्तेः प्रकाराभिधानम्]

शक्तिश्च द्विविधा प्रोक्ता स्वकीया परकीयका ।
अभावे परकीयायाः स्वीयां शक्तिं प्रकल्पयेत् ॥१५॥
न व्यङ्गीं नाधिकाङ्गीं च न रूक्षां न शिरालिनीम् ।
न पिङ्गां नाधिकां श्यामां जरन्तीं न करालिनीम् ॥१६॥
नादृष्टरजसं कन्यां नार्त्तवं समुपागताम् ।
नान्तर्वत्नीं न वा बालां नापत्यां न गलत्कुचाम् ॥१७॥
गौरांगीं युवतीं रम्यां पीनोन्नतपयोधराम् ।
विशालजघनां चारुदन्तपंक्तिविराजिताम् ॥१८॥
दीक्षितां कुलमार्गेषु भक्तिश्रद्धापरायणाम् ।
सदा वचस्कारिणीं च भयहीनां हसन्मुखीम् ॥१९॥
सर्वजातीर्द्विजः कुर्याद् विप्रां त्यक्त्वा तु भूमिपः ।
उभे विहाय वैश्यश्च तिस्रः शूद्रश्च वर्जयेत् ॥२०॥

भक्तौ दृढायां जातायां सर्वा सर्वेषु शस्यते ।

[तीर्थपात्राभिधानम्]

तीर्थामत्रमथो वच्मि हैमं वा राजतं तथा ॥२१॥
पार्थिवं नारिकेलं वा रात्नीयं सर्वसिद्धिदम् ।
तीर्थप्राप्तेषु पूजायामुभयत्रापि युज्यते ॥२२॥

[उक्तविध्योः देशाभिधानम्]

अथ कल्पितपूजादिसम्भारो भक्तितत्परः ।
शून्यागारे निर्जने च श्मशाने च चतुष्पथे ॥२३॥
गृहे वा निःशलाके स्याद् यत्र वा मनसो रुचिः ।
कुर्याद् गोप्यतमं सर्वं पशुर्नैवेक्ष्यते यथा ॥२४॥

[उक्तविध्योः स्वरूपाभिधानम्]

प्रक्षालिताङ्घ्रिराचान्त उत्तराभिमुखो विभीः ।
दृढं पद्मासनं कृत्वा व्याघ्रचर्म्मोपरि स्थितः ॥२५॥
भूतापसारणं कृत्वा तालैर्दिग्बन्धनं तथा ।
अङ्गन्यासं ततः कृत्वा कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥२६॥
मातृकान्यासपीठादिन्यासं कुर्यात् पुरोक्तवत् ।
अर्घ्यस्थापनपर्यन्तं सर्वं कुर्यादतन्द्रितः ॥२७॥

[समन्त्रः पीठस्थापनविधिः]

ततो गोमयलिप्तायां भूमौ स्वस्तिकताजुषि ।
स्थापयेत् क्षालितं पीठं दारवं धातुमत्तथा ॥२८॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण गोमयालिप्तभूपरि ।
आदौ तारत्रयं प्रोच्य मायायाः पञ्चकं ततः ॥२९॥

फूर्चाङ्कुशमहाक्रोधामृतगुह्यारतिप्रिया: ।
कापालभैरवी नीलचामुण्डाशक्तिमानसा: ॥३०॥
योगिनी…? काली कामगारुडविघ्नत: ।
भारुण्डा खेचरी कामलक्ष्मीमेते[एता] त्रिशक्तय: ॥३१॥
सद्योजातादिका: पञ्च कूटाश्च तदनन्तरम् ।
दानवाधारधनदाकूर्मानन्तविषामरा: ॥३२॥
एह्येहि भगवत्येवं तत: पदमुदीरयेत् ।
तत: कामकलाकालि सर्वशक्तिपदं तत: ॥३३॥
समन्विते इति प्रोच्य प्रसन्नापदमुच्चरेत् ।
शक्तिभ्यां सामरस्यं च तत उद्गारयेत्सुधी: ॥३४॥
कुरुद्वन्द्वं मम तत: पूजां गृह्ण युगं वदेत् ।
शत्रून् हन युगं प्रोच्य युगं मर्दय पातय ॥३५॥
राज्यं मे [च] समुद्धृत्य देहि दापय युग्मकम् ।
शाकिनीयोगिनीकूर्चस्त्रीह्रियां नवकं वदेत् ॥३६॥
पञ्चचत्वारिंशबीजमेवं भवति भाविनि ।
फट्त्रयान्ते हृच्छिरोभ्यां मन्त्र: सर्वशुभावह: ॥३७॥
उच्चार्य्यामुं मनुं पीठं स्थापयेत् स्थण्डिलोपरि ।

[समन्त्रमण्डलारचनविध्यभिधानम्]

पुनर्गृहीत्वा सिन्दूरं प्रशस्तं प्रसृतित्रयम् ॥३८॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण पीठं मण्डलमाचरेत् ।
प्रणवं शाकिनोबीजं फेत्कारीं योगिनीमपि ॥३९॥
चण्डं भूतं परां नादं रौद्रमानन्दमङ्कुशम् ।
फट्पञ्चकं कामकलाकालीसंबोधनं तत: ॥४०॥
घोररावे इति ततो विकटदंष्ट्र इत्यपि ।
कालि कापालि इति च……………………॥४१॥

नररुधिर इत्युक्त्वा वसामांस इतीति च ।
भोजनप्रिय इत्युक्त्वा भगप्रिय इतीरयेत् ॥४२॥
भगाङ्कुश इति प्रोच्य भगमालिनि चोद्धरेत् ।
भगोन्मादिनि इत्युक्त्वा भगात्तव [?] इतीरयेत् ॥४३॥
इहागच्छ युगात्तिष्ठ सन्निधिं कुरु च द्वयम् ।
ततश्च भरतोपास्यागुह्यकाल्याश्च षोडशी ॥४४॥
तता कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्याकर्षणो मनुः ।
शाकिनी डाकिनीबीजात्फेत्कारीबीजमुद्धरेत् ॥४५॥
कूर्चं वधूं योगिनीं च प्रणवस्य च पञ्चकम् ।
फडन्ते हृच्छिरश्चापि महामन्त्रोऽयमीरितः ॥४६॥
अनेन पीठोपरि हि सिन्दूरैर्मण्डलं चरेत् ।

[समन्त्रं शक्तेः वस्त्रविमोचनविध्यभिधानम्]

ततः स्नातां शुचिं शक्तिं सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥४७॥
आनीयानेन मन्त्रेण तस्या वस्त्रं विमोचयेत् ।
तारप्रासादवेतालरुद्रद्रावणभैरवीः ॥४८॥
शाङ्करब्रह्मभारुण्डाचामुण्डाकालगारुडाः ।
पराकालीरतिक्षेत्रपालकामरमाह्रियः ॥४९॥
फेत्कारीं विंशतितमां नमः स्वाहान्तगो मनुः ।
चतुर्विंशत्यक्षरेण तां नग्नां कारयेत्सुधीः ॥५०॥

[शक्त्यङ्के कलशस्थापनविधेः समन्त्रमभिधानम्]

सिन्दूरमण्डलस्योद्ध्र्वं कृतपद्मासनां स्त्रियम् ।
उपवेश्य तदङ्के तु पूर्वोक्तं कलशं क्षिपेत् ॥५१॥
वक्ष्यमाणेन मनुना योनिमण्डलमध्यगम् ।
तारं षड्दीर्घको ह्रस्वः प्रासादाङ्कुशपाशकाः ॥५२॥

कूर्चं भूतश्च धनदा हयग्रीवकुमारकौ ।
त्रिशक्तिस्तापिनीतत्त्वं कूर्मद्रावणदानवाः ॥५३॥
ततो जय जयेत्युक्त्वा भगवत्यपि संवदेत् ।
ततः कामकलाकालि सर्वेश्वरि पदं ततः ॥५४॥
इहागत्य चिरं तिष्ठ तिष्ठेति तदनन्तरम् ।
ततश्च प्रोद्धरेद् देवि यावत्पूजां करोम्यहम् ॥५५॥
ततस्त्रयं हि बीजानां पञ्चानां समनूद्धरेत् ।
शाकिनीयोगिनीक्रोधह्लीवधूनां पृथक् पृथक् ॥५६॥
अन्ते फट् पञ्च च स्वाहा कलशस्थापने मनुः ।
इमं मन्त्रं गृणन् जुष्टं तस्या योन्युपरि न्यसेत् ॥५७॥

[अन्येषामिह कर्तव्याणामभिधानम्]

ततः पूर्वोदितं तीर्थं भिन्नपात्रस्थितं पुरः ।
आनीयाच्छाद्य हस्ताभ्यां त्रैलोक्याकर्षणं जपेत् ॥५८॥
दशकृत्वस्ततो धेनुमुद्रया चावगुण्ठनम् ।
दिग्बन्धनं छोटिकया कुर्य्याच्च तदनन्तरम् ॥५९॥
तस्योपरिष्टात् क्रमशो नवमुद्राः प्रदर्शयेत् ।
शक्तिं कपालं योनिं च सामरस्यं ततः परम्[1] ॥६०॥
मुद्रास्वदर्शितास्वेवं सर्वं तद्विफलं भवेत् ।

[अष्टशक्तीनां पूजाविध्यभिधानम्]

तत्र दिक्षु विदिक्ष्वेवं शक्तीरष्ट प्रपूजयेत् ॥६१॥
इच्छा क्रिया सिद्धिर्ऋद्धिः स्वाहा भीमा करालिनी ।
चण्डसङ्कर्षणी चेति दिक्ष्वष्टसु पृथक् स्थितम् ॥६२॥

१. ग्रन्थत्रुटिः प्रतिभाति ।

मध्येऽनङ्गकुलां देवीं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ।
त्रैलोक्याकर्षणेनैव मध्ये कामकलामपि ॥६३॥
तद्भक्ता गुह्यकालीं वा पूजयेयुर्हि तत्स्थले ।

[समन्त्रं कुलद्रव्यस्य शापमोक्षविध्यभिधानम्]

कुर्यात्ततः शापमोक्षं कुलद्रव्यस्य भाविनि ॥६४॥
वैदिकागममन्त्राभ्यां द्रव्यशापविमोक्षणम् ।
तत्रादौ वैदिकं वच्मि कथयिष्ये ततः परम् ॥६५॥
एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥६६॥
सूर्यमण्डलसंभूते वरुणालयसंभवे ।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ६७॥
वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्माहत्यां व्यपोहतु ॥६८॥
इमं मन्त्रत्रयं देवि वैदिकं परिकीर्त्तितम् ।
आगमोक्तं मन्त्रमपि मयोक्तमवधारय ॥६९॥
तारं कूर्च्चं डाकिनीं च फेत्कारीं योगिनीमपि ।
लक्ष्मीमन्मथचामुण्डाभारुण्डाभैरवीतडित् ॥७०॥
वामदेवं ततः कूटमीशानं च ततः परम् ।
ततः प्रसन्ने इति च प्रसन्ना तदनन्तरम् ॥७१॥
रूपिण्यतो भगवति कालि कामकलाक्षरात् ।
शुक्रदत्तं शापमिति मुञ्च मुञ्चापय द्वयम् ॥७२॥
परमानन्दात्सामरस्यकारिणीति समुद्धरेत् ।
इदं ब्रह्मभूयादहं ब्रह्मभूयासमित्यपि ॥७३॥
पठेद् वारत्रयमिदं बीजानीह त्रयोदश ।
व्युत्क्रमात् पठनीयानि फट् नमो वह्निकामिनी ॥७४॥

एतन्मन्त्रेणाभिमन्त्र्य षड्दीर्घैरमृतं स्मरेत् ।
ब्रह्मशापमोचितायै सुधादेव्यै नमो वदेत् ॥७५॥
दशवारान् जपित्वैवं कामषड्दीर्घमुच्चरेत् ।
कुलकृत्स्नमिति प्रोच्य शापं मोचय युग्मकम् ॥७६॥
अमृतं स्रवय द्वन्द्वं वह्निजायान्तगो मनुः ।
दशवारानिदं जप्त्वा त्रैलोक्याकर्षणं जपेत् ॥७७॥

[आनन्दभैरवभैरव्योर्ध्यानम्]

ततो द्रव्यस्य मध्ये तु ध्यायेदानन्दभैरवम् ।
आनन्दभैरवीं चापि सामरस्यपदं गतौ ॥७८॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ॥७९॥
कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुशलधारिणम् ॥८०॥
खड्गखेटकचक्रर्ष्टिपर्शुमुद्गरशूलिनम् ।
भुशुण्डीधारिणं घोरं वरदाभयपाणिकम् ॥८१॥
लोहितं देवदेवेशं भावयेद् भैरवीयुतम् ।
एवं ध्यात्वा गुह्यबीजैर्वषट् तं पूजयेत् त्रिधा ॥८२॥

[सुधादेव्याः ध्यानम्]

ततो ध्यायेत्सुधादेवीं चन्द्रकोट्यमृतप्रभाम् ।
हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् ॥८३॥
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम् ।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य संमुखे ॥८४॥
गुह्यबीजैः सुधादेव्यै वौषट् संपूज्य पार्वति ।

[त्रिकोणचक्रलेखनविध्यभिधानम्]

त्रिकोणचक्रं संलिख्य वामावर्त्तेन वै द[illegible] ॥८५॥
कोणाच्च दक्षिणादूर्ध्वं दक्षिणादुत्तरावधि ।
अकारादिक्षकारान्तं गुह्यबीजं त्रिवारकः ॥८६॥
विलिख्य शाकिनीबीजं दशकृत्वो जपेत्त् तम् ।

[अन्यकरणीयविध्यभिधानम्]

ध्यात्वामृतत्वं द्रव्येऽस्मिन् शिवशक्तिसमागमा[illegible] ॥८७॥
अमृतीकृत्य धेन्वा तद् वारुणं चाष्टधा जपे[illegible] ।
कुर्यात्ततोऽमृतन्यासं न्यासराजं महोदयम् ॥८८॥
न्यासमेनं विना देवि द्रव्यशुद्धिर्न जाय[illegible] ।
पञ्चविंशतितत्त्वानि तावन्त्येव स्थलानि च ॥८९॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तेषु स्थानेषु विन्यसे[illegible] ।
विधाय पुरतो वस्तु वामहस्तकनि[illegible]या ॥९०॥
तृतीयपर्वाङ्गुष्ठस्य योगान्मुद्राभिजा[illegible]ते ।
परमी नामतां स्पृष्ट्वा तया तत् तत् स्थलं न्यसेत् ॥९१॥
आदावि[illegible]रां ततः स्वाङ्गं ततः शक्ति [illegible]तो घटम् ।
मन्त्रपाठेन[illegible] चैकेन न्यसेद् देवि चतुर्ष्वपि ॥९२॥
अयमेव विधिर्ज्ञेयो न्यासे निर्वाणना[illegible]नि ।
न्यासे तथा सामरस्ये किन्तु भिन्नं स्थलं भवेत् ॥९३॥

इति श्रीमदादिनाथविरचितायां महाकालसंहितायां पूजाविधिर्नाम
दशमः पटलः

एकादशशततमः पटलः

महाकाल उवाच

ततः परं प्रकुर्वीत न्यासं देव्यमृताख्यम् ।
दोषन गुणाधिक्ये जायेते तेन निश्चितम् ॥१॥
न्यास स्यामृताख्यस्य कात्यायन ऋषिर्मतः ।
छन्दो राडिति ख्यातं काली कामकला सुरी ॥२॥
कामत्वं कीलकं स्याद् योगिनी शक्तिरुच्यते ।
वधूबी मह प्रोक्तं विनियोगः प्रकीर्तितः ॥३॥
आनन्द भवायोच्चैरथवा सर्वसिद्धये ।
पञ्चविंशतिपात्राणि पूर्वोक्तानि प्रकल्पयेत् ॥४॥
साधारणा क्रमाद् देवि व्यत्यासं नैव कल्पयेत् ।
एतन्न्यासे प्रात्यहिके प्रोक्तं मुक्त्वा समाचरेत् ॥५॥
ज्ञानेच्छाकृतिधर्माश्च वैराग्यैश्वर्य्यमित्यपि ।
शक्तिः वल्यमुत्साह धैर्य्यं गुह्यविवेकको ॥६॥
विकारः सुखमानन्दः संज्ञा पुण्यं क्रिया तथा ।
विकृतिः प्रकृतिश्चैवाहङ्कारो महदादिकः ॥७॥
तन्मात्रं लिङ्गपरमात्मानौ चेति प्रकीर्तितौ ।
पुनस्तत्त्वान्तरं पञ्चविंशं देवि निशामय ॥८॥
शिवेश्वरौ शुद्धविद्ये लिङ्गजीवात्मसूक्ष्मकाः ।
अविद्या नियतिः कालः कला रागः कुलामृतम् ॥९॥
बुद्धिर्माया मनः कामो रजः सत्त्वं तमस्तथा ।
मुक्तिः सिद्धिः सामरस्यं पञ्चविंशमिदं क्रमात् ॥१०॥
शिरो ललाट स्यकण्ठाः स्कन्धौ चापि कफोणिकौ ।
मणिबन्धाङ्गुलीनां मूलाग्रौ प्रकीर्तितौ ॥११॥

वंक्षणौ जानुनी गुल्फौ पादङ्गुल्यङ्घ्रिकाग्रका
व्यापकं सर्वशारीरं पंचविंशतमं प्रिं ॥१२॥
तारवाग्भवह्लीकूर्चवधूलक्ष्मीमनोभुवाम् ।
पाशाङ्कुशमहाक्रोधभूतप्रासादविद्युताम् ॥१३॥
पराचण्डामृतप्रेताः फेत्कारी शाकिनी रतिः।
पञ्चकूटास्तात्पुरुषाश्चामुण्डाभैरवीविषाः ॥१४॥
ब्रह्मवेतालभारुण्डा नीलद्रावणमानसाः ।
वज्रशाङ्करकापालरौद्रानन्दगरुत्मताम् ॥१५॥
चत्वारिंशच्च बीजानामुद्धरेत् प्रथमं सुधी।
इदममृतीकृत्येति पदं दद्यात् ततः परम् ॥१६॥
परमात्मनीति संलिख्य [पश्चवा] रमितीरयेत् ।
जुषस्व वह्निजायान्त एकषष्टचक्षरो मनुः ॥१७॥
प्रतिवारं मन्त्रपाठं सकृद्वापि प्रयोजयेत् ।
ज्ञानात्मने शिवायेति प्रोक्त्वा शीर्षं न्यसेत् प्रिये ॥१८॥
एवं पूर्वोक्तविधिना त्रितयं त्रितयं वदेत् ।
प्रोक्षण्यादाय पीयूषं तत्तत्पात्रे निवेशयेत् ॥१९॥
तेनैव मन्त्रेण सकृत्प्रतिवारमथापि वा ।
पुनरादाय षट्पात्राण्यन्यानि परिकल्पयेत् ॥२०॥
वीरो भोगः शक्तिकुलं गुरुदैवतमेव च ।
तत्रैकषष्टयक्षरिणा प्रत्येकं मनुनार्च्चयेत् ॥२१॥
सामरस्यं च निर्वाणमत्रैव समये चरेत् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तद्वस्तु स्थापयेद् घटे ॥२२॥
प्रणवः शाकिनी कूर्चं फेत्कारीभोगमन्मथाः ।
लज्जाप्रेतरमामेघसुधाकालीरतिक्रमाः ॥२३॥

संहारानाख्यभासाज्ञाविशुद्ध्यनाहतप्रभाः ।
बृहद्रथन्तरज्येष्ठपुण्डरीकमहाव्रतान् ॥२४॥
सौत्रामण्यश्वमेधैडाविश्वजित्सिद्धवारुणान् ।
कूटानष्टादशैतांस्तु प्रोच्चरेत्तदनन्तरम् ॥२५॥
पञ्चामृतं समुद्धृत्य सुधारूपेण चोद्धरेत् ।
कुम्भेऽस्मिन् संविश द्वन्द्वं तिष्ठापि सन्निधिं कुरु ॥२६॥
सप्तविंशत्सुधादीनि प्रतिलोमं ततो वदेत् ।
अन्तेऽस्त्रत्रितयं हार्दवह्निजायान्तगो मनुः ॥२७॥
इति संस्थाप्य पीयूषं कुम्भे आवाह्य कालिकाम् ।
पुष्पस्रजाच्छाद्य घटमृत्विङ्नागाङ्कमण्डितम् ॥२८॥
दशोपचारैः संपूज्य स्तुत्वा नत्वा विधूप्य च ।
पञ्चविंशतिपात्राणां देव्या मध्ये च सस्मितम् ॥२९॥
पात्रं संस्थाप्य साधारं योनिमुद्रां प्रदर्श्य च ।
भूमौ त्रिकोणमालिख्य तद्बहिश्चतुरस्रकम् ॥३०॥
आधारशक्तिं संपूज्य पात्रं तस्योपरि न्यसेत् ।
मूलेन पात्रं संवीक्ष्य शाकिन्यस्त्रेण क्षालनम् ॥३१॥
तेनैव ताडनं कृत्वा कवचेनावगुण्ठयेत् ।
पुनरन्यघटस्थायिद्रव्यं दक्षिणतो न्यसेत् ॥३२॥
पात्रं वामकरे कृत्वा मनुनानेन पूजयेत् ।
ऊहः सर्वत्र कर्त्तव्यः स्वेष्टदेव्यास्तु नामनि ॥३३॥
तारं त्रपां तथा कूर्चं योगिनीं शाकिनीमपि ।
काकिनीं खेचरीं नागं भारुण्डां त्रिशिखामपि ॥३४॥
प्रोच्चार्य वामहस्ते तु देव्याः पात्रं निधापयेत् ।
ततस्तारं च मायां च शाकिनीं त्रिपुटां स्मरम् ॥३५॥

मोहाद्ध्युपान्नाशनाय नम उच्चारयेत्सुधीः ।
डाकिनीह्लीरमाकालवेदिसानुबलिस्त्रियः ॥३६॥
उच्चार्य्य सोऽहं देव्यर्घ्यपात्राधारमितीरयेत् ।
साधयामि नमः प्रोच्य धूपयेत्संविदापुरैः ॥३७॥
संपूज्य पात्राधारं हि पात्रं संपूजयेत्ततः ।
डाकिनीं च त्रपां लक्ष्मीं तारकं कोणखेदकौ ॥३८॥
आग्नेयास्त्रं सवामश्रुक् कूटं बर्हिरथं तथा ।
धर्म्याग्निसोमसूर्यांश्च सकलान्नम ईरयेत् ॥३९॥
त्रपां रमां समुच्चार्य्याक्षरं य श ह वर्गकम् ।
धूम्रार्चिर्नीलरक्ता च कपिला विस्फुलिङ्गिनी ॥४०॥
ज्वालिन्यर्चिष्मती हव्यवाहिनो कव्यवाहिनी ।
रौद्री संहारिणी चेति कलां श्रीपादुकां नमः ॥४१॥
इत्याधारं पुनश्चार्घ्यपात्रगर्भं विधूपयेत् ।
वक्ष्यमाणेन विधिना सुगन्धिद्रव्यविस्तरैः ॥४२॥
तारं लज्जां च लक्ष्मीं च कामं मुक्तां नृसिंहकम् ।
सन्धूप्य विन्यसेत्पात्रं त्रिपाद्यां साधकोत्तमः ॥४३॥
लज्जां लक्ष्मीं स्मरं कूर्चं डाकिनीं शाकिनीं बलिम् ।
सोऽहमम्बार्घ्यपात्रमुक्त्वा स्थापयामि नमो वदेत् ॥४४॥
अथ साधारमर्घ्यं तं पूजयेत् परमेश्वरि ।
लज्जां लक्ष्मीं रुषं कामं योगिनीं शाकिनीं सुधाम् ॥४५॥
क्षेत्रपालं गारुडञ्च कूटं च द्वादशाहकम् ।
सिद्धिप्रदद्वादशकलात्मने सूर्येति कीर्तयेत् ॥४६॥
मण्डलायार्घ्यपात्राय नम उच्चारयेत्ततः ।
त्रपां लक्ष्मीं स्मरं कूर्चं वक्ष्यमाणकलादिभिः ॥४७॥

श्रीपादुकां नम इति पूजयेत्तदनन्तरम् ।
तपिनी तापिनी चैव भ्रामरी क्लेदिनी तथा ॥४८॥
शोधिनी रोधिनी चैव वारुण्याकर्षिणी तथा ।
सुषुम्णा वृष्टिवाहा च ज्येष्ठा चैव हिरण्यका ॥४९॥
पूजयित्वा वामभागे सिन्दूरैर्मण्डलं चरेत् ।
उत्थाप्य दक्षिणाद्भागाद्वक्ष्यमाणमनुं वदन् ॥५०॥
स्थापयेत् पूर्णकुम्भं तं वामभागस्थ मण्डले ।
प्रणवं वाग्भवं लज्जां लक्ष्मीं कामं च शाकिनीम् ॥५१॥
योगिनीं त्रिशिखां कूर्चं फेत्कारीजम्भपङ्क्तयः ।
सिन्दूरगन्धपुष्पाद्यैः कुलकुम्भं प्रपूजयेत् ॥५२॥
सृष्टया स्थित्या च संहारानाख्याभासाख्यकूटकैः ।
ततो लज्जां रमां कूर्चं कूटं संहारमेव च ॥५३॥
हिरण्यगर्भकूटं च आनन्दभैरवाय च ।
वौषट् त्रिवारमुच्चार्य्य कराभ्यां कुम्भमुद्धरेत् ॥५४॥
तीर्थसंस्थापने कुम्भे पूर्वोक्तं मन्त्रमुच्चरन् ।
शतार्णं मन्त्रमथवा सहस्रार्णमथापि वा ॥५५॥
जम्भपात्रं पूरयीत निःशब्दं सूक्ष्मधारया ।
तारं मैधं त्रपां लक्ष्मीं स्मरकूर्चौ च शाकिनीम् ॥५६॥
उच्चार्य वक्ष्यमाणेन श्लोकेन पिहितं चरेत् ।
ब्रह्माण्डखण्डसंभूतपीयूषसमतावह ॥५७॥
आपूरितमहापात्र त्वमशेषरसं वहेः ।
अमृतं नाभसं कूटं सिद्धकूटं समुच्चरन् ॥५८॥
संवेष्टयेत् ततः पात्रं मुद्रया लेलिहाम्यया ।
पञ्चमुद्रां ततः पश्चाद्दर्शये··· त्तथा ॥५९॥
स्तम्भनं चतुरस्रञ्च मत्स्यं गोक्षुरमेव च ।
योनिमुद्रा च विज्ञेया पञ्च मुद्रा महाफलाः ॥६०॥

अस्मिन्नेव क्षणे देवि पञ्चविद्यां समुच्चरेत् ।
मैधत्रपारमामैधा अमृते अमृतोद्भवे ॥६१॥
अमृतवर्षिण्युच्चार्य्य कामार्णादमृतं वदेत् ।
ततश्च स्रावयद्वन्द्वं भैरवीबीजमुच्चरेत् ॥६२॥
ततः सुधे शुक्रशापं मोचयेति प्रकीर्त्तयेत् ।
चतुरन्वयिनां सिद्धिसामर्थ्यं दह्युग्मकम् ॥६३॥
उक्त्वा महाखेचरीति मुद्रां प्रकटय द्वयम् ।
कूर्चस्वाहान्तगो मन्त्रः प्रथमः परिकीर्त्तितः ॥६४॥
मैधत्रयं ह्लषड्दीर्घसुधाकृत्स्नं ततः परम् ।
शापं नाशय इत्युक्त्वा अमृतं स्रावयद्वयम् ॥६५॥
मन्त्रो द्वितीयः स्वाहान्तस्तृतीयमवधारय ।
मैधत्रयमुषस्तृष्णापराधान् परिकीर्त्तयेत् ॥६६॥
विकारशोधिनि प्रोच्य कुलद्रव्यस्य चेत्यपि ।
विकारान् हर युग्माग्निवल्लभायं तृतीयकः ॥६७॥
चतुष्टयं वाग्भवस्य अमृते अमृतोद्भवे ।
इत्युच्चार्य वदेदमृतवर्षिणीति ततः परम् ॥६८॥
महाप्रकाशयुक्ते च स्वाहान्तोऽयं चतुर्थकः ।
चतुः सारस्वतं सोमं त्रपाकूर्च्चंस्मरस्त्रियः ॥६९॥
तिरस्करिणि संबोध्य सकलेति जयेत्रि च ।
वाग्वादिनीति सकलात्ततः पशुजनेति च ॥७०॥
आभिस्तु पञ्चविद्याभिः सर्वदोषविघातिभिः ।
इति ते कथितो व्यासान्मन्त्रध्यानार्चनक्रियाः ॥७१॥
वैशेषिकाः क्रियायोगाः प्रयोगा औपचारिकाः ।
सांप्रतं ब्रूहि मे किन्त्वमाकर्णयितुमिच्छसि ॥७२॥

इति श्रीमहादिनाथविरचितायां महाकालसंहितायां, नानाप्रयोगकथनं नामैकादशशततमः पटलः

द्वादशतमः पटलः

देव्युवाच

त्वत्तः श्रुतं मया नाथ देव देव जगत्पते ।
देव्याः कामकलाकाल्या विधानं सिद्धिदायकम् ॥१॥
त्रैलोक्यविजयस्यापि विशेषेण श्रुतो मया ।
तत्प्रसंगेन चान्यासां मन्त्रध्याने तथा श्रुते ॥२॥
इदानीं जायते नाथ शुश्रूषा मम भूयसी ।
नाम्नां सहस्रे त्रिविधमहापापौघहारिणि ॥३॥
श्रुतेन येन देवेश धन्या स्यां भाग्यवत्यपि ।

महाकाल उवाच

भाग्यवत्यसि धन्यासि सन्देहो नात्र भाविनि ॥४॥
सहस्रनामश्रवणे यस्मात्ते निश्चितं मनः ।
तस्या नाम्नां तु लक्षाणि विद्यन्ते चाथ कोटयः ॥५॥
तान्यल्पायुर्मतित्वेन नृभिर्द्धारयितुं सदा ।
अशक्यानि वरारोहे पठितुं च दिने दिने ॥६॥
तेभ्यो नामसहस्राणि साराण्युद्धृत्य शम्भुना ।
अमृतानीव दुग्धाब्धेर्भूदेवेभ्यः समर्पितम् ॥७॥
कानिचित्तत्र गौणानि गदितानि शुचिस्मिते ।
रूढाण्याकारहीनत्वाद् गौणानि गुणयोगतः ॥८॥
राहित्याद्रूढिगुणयोस्तानि सांकेतिकान्यपि ।
त्रिविधान्यपि नामानि पठितानि दिने दिने ॥९॥

राधयन्तीप्सितानर्थान्ददत्यमृतमव्ययम् ।
क्षपयन्त्यपमृत्युं च मारयन्ति द्विषोऽखिलान् ॥१०॥
घ्नन्ति रोगानथोत्पातान्मङ्गलं कुर्वतेऽन्वहम् ।
किमुतान्यत् सदा सन्निधापयत्यर्थिकामपि ॥११॥
त्रिपुरघ्नोऽप्यदो नामसहस्रं पठति प्रिये ।
तदाज्ञयाप्यहमपि कीर्त्तयामि दिने दिने ॥१२॥
भवत्यपीदमस्मत्तः शिक्षित्वा तु पठिष्यति ।
भविष्यति च निर्णीतं चतुर्वर्गस्य भाजनम् ॥१३॥
मनोऽन्यतो निराकृत्य सावधाना निशामय ।
नाम्नां कामकलाकाल्याः सहस्रं मुक्तिदायकम् ॥१४॥

ॐ अस्य कामकलाकालीसहस्रनामस्तोत्रस्य श्री त्रिपुरघ्नऋषिरनुष्टुप् छन्दस्त्रिजगन्मयरूपिणी भगवती श्री कामकलाकाली देवता क्लीं बीजं स्फ्रों शक्तिः हूं कीलकं क्ष्रौं तत्त्वं श्री कामकलाकाली-सहस्रनामस्तोत्रपाठे जपे विनियोगः ॐ तत्सत् ।

ॐ क्लीं कामकलाकाली कालरात्रिः कपालिनी ।
कात्यायनी च कल्याणी कालाकारा करालिनी ॥१५॥
उग्रमूर्तिर्महाभीमा घोररावा भयङ्करा ।
भूतिदा भयहन्त्री च भवबन्धविमोचिनी ॥१६॥
भव्या भवानी भोगाढ्या भुजङ्गपतिभूषणा ।
महामाया जगद्धात्री पावनी परमेश्वरी ॥१७॥
योगमाता योगगम्या योगिनी योगिपूजिता ।
गौरी दुर्गा कालिका च महाकल्पान्तनर्त्तकी ॥१८॥

अव्यया जगदादिश्च विधात्री कालमर्दिनी ।
नित्या वरेण्या विमला देवाराध्यामितप्रभा ॥१९॥
भारुण्डा कोटरी शुद्धा चञ्चला चारुहासिनी ।
अग्राह्यातीन्द्रियाऽगोत्रा चर्च्चरोर्ध्वशिरोरुहा ॥२०॥
कामुकी कमनीया च श्रीकण्ठमहिषी शिवा ।
मनोहरा माननीया मतिदा मणिभूषणा ॥२१॥
श्मशाननिलया रौद्रा मुक्तकेश्यट्टहासिनी ।
चामुण्डा चण्डिका चण्डी चार्वङ्गी चरितोज्ज्वला ॥२२॥
घोरानना धूम्रशिखा कम्पना कम्पितानना ।
वेपमानतनुर्भीदा निर्भया बाहुशालिनी ॥२३॥
उल्मुकाक्षी सर्प्पकर्णी विशोका गिरिनन्दिनी ।
ज्योत्स्नामुखी हास्यपरा लिङ्गा लिङ्गधरा सती ॥२४॥
अविकारा महाचित्रा चन्द्रवक्त्रा मनोजवा ।
अदर्शना पापहरा श्यामला मुण्डमेखला ॥२५॥
मुण्डावतंसिनी नीला प्रपन्नानन्ददायिनी ।
लघुस्तनी लम्बकुचा घूर्णमाना हराङ्गना ॥२६॥
विश्वावासा शान्तिकरी दीर्घकेश्यरिखण्डिनी ।
रुचिरा सुन्दरी कम्रा मदोन्मत्ता मदोत्कटा ॥२७॥
अयोमुखी वह्निमुखी क्रोधनाऽभयदेश्वरी ।
कुडम्बिका साहसिनी खड्गकी रक्तलेहिनी ॥२८॥
विदारिणी पानरता रुद्राणी मुण्डमालिनी ।
अनादिनिधना देवी दुर्निरीक्ष्या दिगम्बरा ॥२९॥
विद्युज्जिह्वा महादंष्ट्रा वज्रतीक्ष्णा महास्वना ।
उदयार्क्कसमानाक्षी विन्ध्यशैलसमाकृतिः ॥३०॥

नीलोत्पलदलश्यामा नागेन्द्राष्टकभूषिता ।
अग्निज्वालकृतावासा फेत्कारिण्यहिकुण्डला ॥३१॥
पापघ्नी पालिनी पद्मा पुण्या पुण्यप्रदा परा ।
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोषा सहस्रार्क्कसमप्रभा ॥३२॥
सहस्रप्रेतराट्क्रोधा सहस्रेशपराक्रमा ।
सहस्रधनदैश्वर्य्या सहस्रांध्रिकराम्बिका ॥३३॥
सहस्रकालदुष्प्रेक्ष्या सहस्रेन्द्रियसञ्चया ।
सहस्रभूमिसदना सहस्राकाशविग्रहा ॥३४॥
सहस्रचन्द्रप्रतिमा सहस्रग्रहचारिणी ।
सहस्ररुद्रतेजस्का सहस्रब्रह्मसृष्टिकृत् ॥३५॥
सहस्रवायुवेगा च सहस्रफणकुण्डला ।
सहस्रयन्त्रमथिनी सहस्रोदधिसुस्थिरा ॥३६॥
सहस्रबुद्धकरुणा महाभागा तपस्विनी ।
त्रैलोक्यमोहिनी सर्वभूतदेववशङ्करी ॥३७॥
सुस्निग्धहृदया घण्टाकर्णा च व्योमचारिणी ।
शंखिनी चित्रिणीशानी कालसंकर्षिणी जया ॥३८॥
अपराजिता च विजया कमला कमलाप्रदा ।
जनयित्री जगद्योनिर्हेतुरूपा चिदात्मिका ॥३९॥
अप्रमेया दुराधर्षा ध्येया स्वच्छन्दचारिणी ।
शातोदरी शाम्भविनी पूज्या मानोन्नताऽमला ॥४०॥
ॐ काररूपिणी ताम्रा बालार्क्कसमतारका ।
चलज्जिह्वा च भीमाक्षी महाभैरवनादिनी ॥४१॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी घर्घराऽचला ।
माहेश्वरी तथा ब्राह्मी कौमारी मानिनीश्वरा ॥४२॥

सौपर्णी वायवी चैन्द्री सावित्री नैर्ऋती कला ।
वारुणी शिवदूती च सौरी सौम्या प्रभावती ।।४३।।
वाराही नारसिंही च वैष्णवी ललिता स्वरा ।
मैत्र्यार्य्यम्णी च पौष्णी च त्वाष्ट्री वासव्युमारतिः ।।४४।।
राक्षसो पावनी रौद्री दास्री रोदस्युदुम्बरी ।
सुभगा दुर्भगा दीना चञ्चुरीका यशस्विनी ।।४५।।
महानन्दा भगानन्दा पिच्छिला भगमालिनी ।
अरुणा रेवती रक्ता शकुनी श्येनतुण्डिका ।।४६।।
सुरभी नन्दिनी भद्रा बला चातिबलामला ।
उलूपी लम्बिका खेटा लेंलिहानान्त्रमालिनी ।।४७।।
वैनायिकी च वेताली त्रिजटा भृकुटी सती ।
कुमारी युवती प्रौढा विदग्धा घस्मरा तथा ।।४८।।
जरती रोचना भीमा दोलमाला पिचिण्डिला ।
अलम्बाक्षी कुम्भकर्णी कालकर्णी महासुरी ।।४९।।
घण्टारवाथ गोकर्णी काकजङ्घा च मूषिका ।
महाहनुर्महाग्रीवा लोहिता लोहिताशनी ।।५०।।
कोर्त्तिः सरस्वती लक्ष्मीः श्रद्धा बुद्धिः क्रिया स्थितिः ।
चेतना विष्णुमाया च गुणातीता निरञ्जना ।।५१।।
निद्रा तन्द्रा स्मिता छाया जृम्भा क्षुदशनायिता ।
तृष्णा क्षुधा पिपासा च लालसा क्षान्तिरेव च ।।५२।।
विद्या प्रज्ञा स्मृतिः कान्तिरिच्छा मेधा प्रभा चितिः ।
धरित्री धरणी धन्या धोरणी धर्मसन्ततिः ।।५३।।
हालाप्रिया हाररतिर्हारिणी हरिणेक्षणा ।
चण्डयोगेश्वरी सिद्धिकराली परिडामरी ।।५४।।

जगदान्या जनानन्दा नित्यानन्दमयी स्थिरा ।
हिरण्यगर्भा कुण्डलिनी ज्ञानं धैर्य्यं च खेचरी ॥५५॥
नगात्मजा नागहारा जटाभारा प्रर्तार्द्दनी ।
खड्गिनी शूलिनी चक्रवती वाणवती क्षितिः ॥५६॥
घृणिधर्त्री नालिका च कर्त्री मत्यक्षमालिनी ।
पाशिनी पर्शुहस्ता च नागहस्ता धनुर्धरा ॥५७॥
महामुद्गरहस्ता च शिवापोतधरापि च ।
नारखर्प्परिणी लम्बत्कचमुण्डप्रधारिणी ॥५८॥
पद्मावत्यन्नपूर्णा च महालक्ष्मीः सरस्वती ।
दुर्ग्गा च विजया घोरा तथा महिषमर्द्दिनी ॥५९॥
धनलक्ष्मी……श्चाश्वारूढा जयभैरवी ।
शूलिनी राजमातङ्गी राजराजेश्वरी तथा ॥६०॥
त्रिपुटोच्छिष्टचाण्डाली अघोरा त्वरितापि च ।
राज्यलक्ष्मीर्जयमहाचण्डयोगेश्वरी तथा ॥६१॥
गुह्या महाभैरवी च विश्वलक्ष्मीररुन्धती ।
यन्त्रप्रमथिनी चण्डयोगेश्वर्य्यप्यलम्वुषा ॥६२॥
किराती महाचण्डभैरवी कल्पवल्लरी ।
त्रैलोक्यविजया सम्पत्प्रदा मन्थानभैरवी ६३॥
महामन्त्रेश्वरी वज्रप्रस्तारिण्यङ्गचर्पटा ।
जयलक्ष्मीश्चण्डरूपा जलेश्वरी कामदायिनी ॥६४॥
स्वर्णकूटेश्वरी रुण्डा मर्म्मरी बुद्धिवर्द्धिनी ।
वार्त्ताली चण्डवार्त्ताली जयवार्त्तालिका तथा ॥६५॥
उग्रचण्डा श्मशानोग्रा चण्डा वै रुद्रचण्डिका ।
अतिचण्डा चण्डवतो प्रचण्डा चण्डनायिका ॥६६॥

चैतन्यभैरवी कृष्णा मण्डली तुम्बुरेश्वरी ।
वाग्वादिनी मुण्डमधुमत्यनर्घ्या पिशाचिनी ॥६७॥
मञ्जीरा रोहिणी कुल्या तुङ्गा पूर्णेश्वरी वरा ।
विशाला रक्तचामुण्डा अघोरा चण्डवारुणी ॥६८॥
धनदा त्रिपुरा वागीश्वरी च जयमङ्गला ।
दैगम्बरी कुब्जिका च कुडुक्का कालभैरवी ॥६९॥
कुक्कुटी संकटा वीरा कर्पटा भ्रमराम्बिका ।
महार्णवेश्वरी भोगवती लङ्केश्वरी तथा ॥७०॥
पुलिन्दी शवरी म्लेच्छी पिङ्गला शवरेश्वरी ।
मोहिनी सिद्धिलक्ष्मीश्च बाला त्रिपुरसुन्दरी ॥७१॥
उग्रतारा चैकजटा महानीलसरस्वती ।
त्रिकण्टकी छिन्नमस्ता महिषघ्नी जयावहा ॥७२॥
हरसिद्धानङ्गमाला फेत्कारी लवणेश्वरी ।
चण्डेश्वरी नाकुली च हयग्रीवेश्वरी तथा ॥७३॥
कालिन्दी वज्रवाराही महानीलपताकिका ।
हंसेश्वरी मोक्षलक्ष्मीर्भूतिनी जातरेतसा ॥७४॥
शातकर्णा महानीला वामा गुह्येश्वरी भ्रमिः ।
एकानंशाऽभया तार्क्षी बाभ्रवी डामरी तथा ॥७५॥
कोरङ्गी चर्च्चिका विन्ना संशिका ब्रह्मवादिनी ।
त्रिकालवेदिनी नीललोहिता रक्तदन्तिका ॥७६॥
क्षेमङ्करी विश्वरूपा कामाख्या कुलकुट्टनी ।
कामाङ्कुशा वेशिनी च मायूरी च कुलेश्वरी ॥७७॥
इभाक्षी घोणकी शार्ङ्गी भीमा देवी वरप्रदा ।
धूमावती महामारी मङ्गला हाटकेश्वरी ॥७८॥

किराती शक्तिसौपर्णी बान्धवी चण्डखेचरी ।
निस्तन्द्रा भवभूतिश्च ज्वालाघण्टाग्निमर्द्दिनी ॥७९॥
सुरङ्गा कौलिनी रम्या नटी नारायणी धृतिः ।
अनन्ता पुञ्जिका जिह्वा धर्माधर्मप्रवर्त्तिका ॥८०॥
बन्दिनी बन्दनीया च बेलाऽहस्करिणी सुधा ।
अरणी माधवी गोत्रा पताका वाङ्मयी श्रुतिः ॥८१॥
गूढा त्रिगूढा विस्पष्टा मृगाङ्का च निरिन्द्रिया ।
मेनानन्दकरी वोध्री त्रिनेत्रा वेदवाहना ॥८२॥
कलस्वना तारिणी च सत्यासत्यप्रियाऽजडा ।
एकवक्त्रा महावक्त्रा बहुवक्त्रा घनानना ॥८३॥
इन्दिरा काश्यपी ज्योत्स्ना शवारूढा तनूदरी ।
महाशंखधरा नागोपवीतिन्यक्षताशया ॥८४॥
निरिन्धना धराधारा व्याधिघ्नी कल्पकारिणी ।
विश्वेश्वरी विश्वधात्री विश्वेशी विश्ववन्दिता ॥८५॥
विश्वा विश्वात्मिका विश्वव्यापिका विश्वतारिणी ।
विश्वसंहारिणी विश्वहस्ता विश्वोपकारिका ॥८६॥
विश्वमाता विश्वगता विश्वातीता विरोधिता ।
त्रैलोक्यत्राणकर्त्री च कूटाकारा कटङ्कटा ॥८७॥
क्षामोदरी च क्षेत्रज्ञा क्षयहीना क्षरवर्ज्जिता ।
क्षपा क्षोभकरी क्षेम्याऽक्षोभ्या क्षेमदुघा क्षिया ॥८८॥
सुखदा सुमुखी सौम्या स्वङ्गा सुरपरा सुधीः ।
सर्वान्तर्यामिनी सर्वा सर्वाराध्या समाहिता ॥८९॥
तपिनी तापिनी तीव्रा तपनीया तु नाभिगा ।
हैमी हैमवती ऋद्धिर्वृद्धिर्ज्ञानप्रदा नरा ॥९०॥

महाजटा महापादा महाहस्ता महाहनुः ।
महाबला महारोषा महाधैर्य्या महाघृणा ॥९१॥
महाक्षमा पुण्यपापध्वजिनी घुर्घुरारवा ।
डाकिनी शाकिनी रम्या शक्तिः शक्तिस्वरूपिणी ॥९२॥
तमिस्रा गन्धरा शान्ता दान्ता क्षान्ता जितेन्द्रिया ।
महोदया ज्ञानिनोच्छा विरागा सुखिताकृतिः ॥९३॥
वासना वासनाहीना निवृत्तिर्निर्वृतिः कृतिः ।
अचला हेतुरुन्मुक्ता जयिनी संस्मृतिः च्युता ॥९४॥
कपर्द्दिनी मुकुटिनी मत्ता प्रकृतिरूर्जिता ।
सदसत्साक्षिणी स्फीता मुदिता करुणामयी ॥९५॥
पूर्वोत्तरा पश्चिमा च दक्षिणाविदिगुद्गता ।
आत्मारामा शिवारामा रमणी शङ्करप्रिया ॥९६॥
वरेण्या वरदा वेणी स्तम्भिन्यार्कर्षिणी तथा ।
उच्चाटनी मारणी च द्वेषिणी वशिनी मही ॥९७॥
भ्रमणी भारती भामा विशोका शोकहारिणी ।
सिनीवाली कुहू राकानुमतिः पद्मिनीतिहृत् ॥९८॥
सावित्री वेदजननी गायत्र्याहुतिसाधिका ।
चण्डाट्टहासा तरुणी भूर्भुवःस्वःकलेवरा ॥९९॥
अतनुरतनुप्राणदात्री मातङ्गगामिनी ।
निगमाब्धिमणिः पृथ्वी जन्ममृत्युजरौषधी ॥१००॥
प्रतारिणी कलालापा वेद्या च्छेद्या वसुन्धरा ।
[अ] प्रक्षुण्णा वासिता कामधेनुर्वाञ्छितदायिनी ॥१०१॥
सौदामिनी मेघमाला शर्वरी सर्वगोचरा ।
डमरुर्डमरुका च निःस्वरा परिनादिनी ॥१०२॥

आहतात्मा हता चापि नादातीता विलेशया ।
पराऽपरा च पश्यन्ती मध्यमा वैखरी तथा ॥१०३॥
प्रथमा च जघन्या च मध्यस्थान्तविकाशिनी ।
पृष्ठस्था च पुरःस्था च पार्श्वस्थोर्ध्वतलस्थिता ॥१०४॥
नेदिष्ठा च दविष्ठा च बर्हिष्ठा च गुहाशया ।
अप्राप्या बृंहिता पूर्णा पुण्यैर्वेद्या ह्यनामया ॥१०५॥
सुदर्शना च त्रिशिखा बृहती सन्ततिर्विभा ।
फेत्कारिणी दीर्घस्रुक्का भावना भववल्लभा ॥१०६॥
भागीरथी जाह्नवी च कावेरी यमुनाह्वया ।
सिप्रा गोदावरी वेल्ला विपाशा नर्मदा धुनी ॥१०७॥
त्रेता स्वाहा सामिधेनी स्रुक्स्रुवा च ध्रुवावसुः ।
गर्विता मानिनी मेना नन्दिता नन्दनन्दिनी ॥१०८॥
नारायणी नारकघ्नी रुचिरा रणशालिनी ।
आधारणाधारतमा धर्माध्वन्या धनप्रदा ॥१०९॥
अभिज्ञा पण्डिता मूका बालिशा वागवादिनी ।
ब्रह्मवल्ली मुक्तिवल्ली सिद्धिवल्ली विपह्नवी ॥११०॥
आह्लादिनी जितामित्रा साक्षिणी पुनराकृतिः ।
किर्म्मरी सर्वतोभद्रा स्ववेंदी मुक्तिपद्धतिः ॥१११॥
सुषमा चन्द्रिका वन्या कौमुदी कुमुदाकरा ।
त्रिसन्ध्याम्नायसेतुश्च चर्च्चाऽर्छापारिनैष्ठिकी ॥११२॥
कला काष्ठा तिथिस्तारा संक्रान्तिर्विषुवत्तथा ।
मञ्जुनादा महावल्गु भग्नभेरीस्वनाऽरटा ॥११३॥
चिन्ता सुप्तिः सुषुप्तिश्च तुरीया तत्त्वधारणा ।
मृत्युञ्जया मृत्युहरी मृत्युमृत्युविधायिनी ॥११४॥

हंसी परमहंसी च बिन्दुनादान्तवासिनी ।
वैहायसी त्रैदशी च भैमी वासातनी तथा ॥११५॥
दीक्षा शिक्षा अनूढा च कङ्काली तैजसी तथा ।
सुरी-दैत्या दानवी च नरी नाथा सुरीत्वरी ॥११६॥
माध्वा स्वना स्वरा रेखा निष्कला निर्ममा मृतिः ।
महती विपुला स्वल्पा क्रूरा क्रूराशयापि च ॥११७॥
उन्माथिनी धृतिमती वामनी कल्पचारिणी ।
वाडवी वडवाश्वोढा कोला पितृवनालया ॥११८॥
प्रसारिणी विशारा च दर्प्पिता दर्प्पणप्रिया ।
उत्तानाधोमुखी सुप्ता वञ्चन्याकुञ्चनी त्रुटिः ॥११९॥
क्रादिनी यातनादात्री दुर्ग्गा दुर्गतिनाशिनी ।
धराधरसुता धीरा धराधरकृतालया ॥१२०॥
सु [च]रित्री तथात्री॰ च पूतना प्रेतमालिनी ।
रम्भोर्वशी मेनका च कलिहृत्कालकृत्कशा ॥१२१॥
हरीष्टदेवी हेरम्बमाता हर्य्यक्षवाहना ।
शिखण्डिनी कोण्डपिनी वेतुण्डी मन्त्रमय्यपि ॥१२२॥
वज्रेश्वरी लोहदण्डा दुर्विज्ञेया दुरासदा ।
जालिनी जालपा याज्या भगिनी भगवत्यपि ॥१२३॥
भौजङ्गी तुर्वरा बभ्रु महनीया च मानवी ।
श्रीमती श्रीकरी गार्द्धी सदानन्दा गणेश्वरी ॥१२४॥
असन्दिग्धा शाश्वता च सिद्धा सिद्धेश्वरीडिता ।
ज्येष्ठा श्रेष्ठा वरिष्ठा च कौशाम्बी भक्तवत्सला ॥१२५॥
इन्द्रनीलनिभा नेत्री नायिका च त्रिलोचना ।
वार्हस्पत्या भार्गवी च आत्रेय्याङ्गिरसी तथा ॥१२६॥

धुर्य्याधिहर्त्री धारित्री विकटा जन्ममोचिनी ।
आपदुत्तारिणी दृप्ता प्रमिता मितिवर्जिता ॥१२७॥
चित्ररेखा चिदाकारा चञ्चलाक्षी चलत्पदा ।
बलाहकी पिङ्गसटा मूलभूता वनेचरी ॥१२८॥
खगी करन्धमा ध्माक्ष्यी [क्षी] संहिता केररीन्धना ।
अपुनर्भविनी वान्तरिणी[च] यमगञ्जिनी ॥१२९॥
वर्णातीताश्रमातीता मृडानी मृडवल्लभा ।
दयाकरी दमपरा दंभहीनादृतिप्रिया ॥१३०॥
निर्वाणदा च निर्बन्धा भावाभावविधायिनी ।
नैःश्रेयसी निर्विकल्पा निर्बीजा सर्वबीजिका ॥१३१॥
अनाद्यन्ता भेदहीना बन्धोन्मूलिन्यबाधिता ।
निराभासा मनोगम्या सायुज्यामृतदायिनी ॥१३२॥
इतीदं नाम साहस्रं नामकोटिशताधिकम् ।
देव्याः कामकलाकाल्या मया ते प्रतिपादितम् ॥१३३॥
नानेन सदृशं स्तोत्रं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
यद्यप्यमुष्य महिमा वर्णितुं नैव शक्यते ॥१३४॥
प्ररोचनातया कश्चित्तथापि विनिगद्यते ।
प्रत्यहं य इदं देवि कीर्त्तयेद्वा शृणोति वा ॥१३५॥
गुणाधिक्यमृते कोऽपि दोषो नैवोपजायते ।
अशुभानि क्षयं यान्ति जायन्ते मङ्गलान्यथ ॥१३६॥
पारत्रिकामुष्मिकौ द्वौ लोकौ तेन प्रसाधितौ ।
ब्राह्मणो जायते वाग्मी वेदवेदाङ्गपारगः ॥१३७॥
ख्यातः सर्वासु विद्यासु धनवान् कविपण्डितः ।
युद्धे जयी क्षत्रियः स्याद् दाता भोक्ता रिपुञ्जयः ॥१३८॥

आहर्ता त्वश्वमेधस्य भाजनं परमायुषाम् ।
समृद्धो धनधान्येन वैश्यो भवति तत्क्षणात् ॥१३९॥
नानाविधपशूनां हि समृद्ध्या स समृद्धते ।
शूद्रः समस्तकल्याणमाप्नोति श्रुतिकीर्तनात् ॥१४०॥
भुङ्क्ते सुखानि सुचिरं रोगशोकौ परित्यजन् ।
एवं नार्य्यपि सौभाग्यं भर्तृहार्दं सुतानपि ॥१४१॥
प्राप्नोति श्रवणादस्य कीर्तनादपि पार्वति ।
स्वस्वाभीष्टमथान्येऽपि लभन्तेऽस्य प्रसादतः ॥१४२॥
आप्नोति धार्मिको धर्मानर्थानाप्नोति दुर्गतः ।
मोक्षार्थिनस्तथा मोक्षं कामुकाः कामिनीं वराम् ॥१४३॥
युद्धे जयं नृपाः क्षीणाः कुमार्य्यः सत्पतिं तथा ।
आरोग्यं रोगिणश्चापि तथा वंशार्थिनः सुतान् ॥१४४॥
जयं विवादे कलिकृत्सिद्धीः सिद्धीच्छुरुत्तमाः ।
वियुक्ता बन्धुभिः सङ्गं गतायुश्चायुषाञ्चयम् ॥१४५॥
सदा य एतत्पठति निशीथे भक्तिभावितः ।
तस्यासाध्यमथाप्राप्यं त्रैलोक्ये नैव विद्यते ॥१४६॥
कीर्त्तिं भोगान् स्त्रियः पुत्रान् धनं धान्यं हयान् गजान् ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं पशून् भूमिं राजवश्यं च मान्यताम् ॥१४७॥
लभते प्रेयसि क्षुद्रजातिरप्यस्य कीर्त्तनात् ।
नास्य भीतिर्न दौर्भाग्यं नाल्पायुष्यं न रोगिता ॥१४८॥
न प्रेतभूताभिभवो न दोषो ग्रहजस्तथा ।
जायते पतितो नैव क्वचिदप्येष सङ्कटे ॥१४९॥
यदीच्छसि परं श्रेयस्तर्त्तुं सङ्कटमेव च ।
पठान्वहमिदं स्तोत्रं सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥१५०॥

न सास्ति भूतले सिद्धिः कीर्त्तनाद् या न जायते ।
शृणु चान्यद्वरारोहे कीर्त्यमानं वचो मम ॥१५१॥
महाभूतानि पञ्चापि खान्येकादश यानि च ।
तन्मात्राणि च जीवात्मा परमात्मा तथैव च ॥१५२॥
सप्तार्णवाः सप्तलोका भुवनानि चतुर्दश ।
नक्षत्राणि दिशः सर्वाः ग्रहाः पातालसप्तकम् ॥१५३॥
सप्तद्वीपवती पृथ्वी जङ्गमाजङ्गमं जगत् ।
चराचरं त्रिभुवनं विद्याश्चापि चतुर्दश ॥१५४॥
सांख्यं योगस्तथा ज्ञानं चेतना कर्मवासना ।
भगवत्यां स्थितं सर्वं सूक्ष्मरूपेण बीजवत् ॥१५५॥
सा चास्मिन् नामसाहस्रे स्तोत्रे तिष्ठति बद्धवत् ।
पठनीयं विदित्वैवं स्तोत्रमेतत् सुदुर्लभम् ॥१५६॥
देवीं कामकलाकालीं भजन्तः सिद्धिदायिनीम् ।
स्तोत्रं चादः पठन्तो हि साधयन्तीप्सितान् स्वकान् ॥१५७॥

इति महाकालसहितायां कामकलाकालीसहस्रनामस्तोत्रं संपूर्णम् ।

महाकाल उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि महापातकनाशनम् ।
गद्यं सहस्रनाम्नस्तु संजीवनतया स्थितम् ॥१॥
पठन् यत्सफलं कुर्य्यात्प्राक्तनं सकलं प्रिये ।
अपठन् विफलं तत्तत्तद्वस्तु कथयामि ते ॥२॥

ॐ फ्रें जय जय कामकलाकालि कपालिनि सिद्धिकरालि सिद्धिविकरालि महाबलिनि त्रिशूलिनि नरमुण्डमालिनि शववाहिनि कात्यायनि महाट्टहासिनि सृष्टिस्थितिप्रलय-

कारिणि दितिदनुजमारिणि श्मशानचारिणि । महाघोररावे अध्यासितदावे अपरिमितबलप्रभावे । भैरवीयोगिनीडाकिनी-सहवासिनि जगद्भासिनि स्वपदप्रकाशिनि । पापौघहारिणि आपदुद्धारिणि अपमृत्युवारिणि । बृहन्मद्यमानोदरि सकल-सिद्धिकरि चतुर्दशभुवनेश्वरि । गुणातीतपरमसदाशिव-मोहिनि अपवर्गरसदोहिनि रक्तार्णवलोहिनि । अष्टनागराज-भूषितभुजदण्डे आकृष्टकोदण्डे परमप्रचण्डे । मनोवागगोचरे मखकोटिमन्त्रमयकलेवरे महाभीषणतरे प्रचलजटाभारभास्वरे सजलजलदमेदुरे जन्ममृत्युपाशभिदुरे । सकलदैवतमयसिंहा-सनाधिरूढे गुह्यातिगुह्यपरापरशक्तितत्त्वरूढे वाङ्मयीकृत-मूढे । प्रकृत्यपरशिवनिर्वाणसाक्षिणि त्रिलोकीरक्षणि दैत्यदान-वभक्षिणि । विकटदीर्घदंष्ट्रसञ्चूर्णितकोटिब्रह्मकपाले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले देहप्रभाजितमेघजाले । नवपञ्चचक्रनयिनि महाभीमषोडशशयिनि सकलकुलाकुलचक्रप्रवर्त्तिनि निखिल-रिपुदलकर्त्तिनि महामारीभयनिवर्त्तिनि लेलिहानरसना-करालिनि त्रिलोकीपालिनि त्रयस्त्रिंशत्कोटिशस्त्रास्त्र-शालिनि । प्रज्वलप्रज्वलनलोचने भवभयमोचने निखिलागमा-देशितष्ठु[सु]रोचने । प्रपञ्चातीतनिष्कलतुरीयाकारे अखण्डानन्दाधारे निगमागमसारे । महाखेचरीसिद्धिविधायिनि निजपदप्रदायिनि महामायिनि घोराट्टहाससंत्रासितत्रिभुवने चरणकमलद्वयविन्यासखर्व्वीकृतावने विहितभक्तावने ।

ॐ क्लीं क्रों स्फ्रों हूँ ह्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें भगवति प्रसीद प्रसीद जय जय जीव जीव ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हस हस नृत्य नृत्य क छ भगमालिनि भगप्रिये भगातुरे भगाङ्किते

भगरूपिणि भगप्रदे भगलिङ्गद्राविणि । संहारभैरवसुरतरस-लोलुपे व्योमकेशि पिंगकेशि महाशंखसमाकुले खर्प्परविहस्त-हस्ते रक्तार्णवद्वीपप्रिये मदनोन्मादिनि । शुष्कनरकपाल-मालाभरणे विद्युत्कोटिसमप्रभे नरमांसखण्डकवलिनि । वम-दग्निमुखि फेरुकोटिपरिवृते करतालिकात्रासितत्रिविष्टपे । नृत्यप्रसारितपादाघातपरिवर्तितभूवलये । पदभारावनम्री-कृतकमठशेषाभोगे । कुरुकुल्ले कुञ्चतुण्डि रक्तमुखि यमघण्टे चर्च्चिके दैत्यासुरदैत्यराक्षसदानवकुष्माण्डप्रेतभूतडाकिनी वि-नायकस्कन्दघोणकक्षेत्रपालपिशाचब्रह्मराक्षसवेतालगुह्य -कसर्प्पनागग्रहनक्षत्रोत्पातचौराग्निस्वापदयुद्धवज्रोपलाशनि वर्षविद्युन्मेघविषोपविषकपटकृत्याभिचारद्वेषवशीकरणोच्चाट-नोन्मादापस्मारभूतप्रेतपिशाचावेश नदनदीसमुद्रावर्त्तकान्ता-रघोरान्धकारमहामारीबालग्रहहिंस्रसर्वस्वापहारिमायावि -द्युद्दस्युवंचकदिवाचररात्रिचरसंध्याचरशृंगिनखिदंष्ट्रिविद्यु -दुल्कारण्यदरप्रान्तरादिनानाविधमहोपद्रवभञ्जनि सर्वमन्त्र-तन्त्रयन्त्र कुप्रयोगप्रमर्द्दिनि षडाम्नायसमयविद्याप्रकाशिनि श्मशानाध्यासिनि । निजबलप्रभावपराक्रमगुणवशीकृतको-टिब्रह्माण्डवर्तिभूतसङ्घे । विराड्रूपिणि सर्वदेवमहेश्वरि सर्वजनमनोरञ्जनि सर्वपापप्रणाशिनि अध्यात्मिकाधिदैवि -काधिभौतिकादिविविधहृदयाधिनिर्द्दलिनि कैवल्यनिर्वाणब -लिनि दक्षिणकालि भद्रकालि चण्डकालि कामकलाकालि कौलाचारव्रतिनि कौलाचारकूजिनि कुलधर्मसाधनि जगत्कारणकारिणि महारौद्रि रौद्रावतारे अबीजे नानाबीजे जगद्बीजे कालेश्वरि कालातीते त्रिकालस्थायिनि महाभैरवे भैरवगृहिणि जननि जनजननिवर्तिनि प्रलया-

नलज्वालाजालजिह्वे विखर्वोरु फेरुपोतलालिनि मृत्युञ्जयहृदयानन्द-करि विलोलव्यालकुण्डलउलूकपक्षच्छत्रमहाडामरि नियुतवक्त्रबाहुचरणे सर्वभूतदमनि नीलाञ्जनसमप्रभे योगीन्द्रहृदयाम्बुजासन-स्थितनीलकण्ठदेहार्द्धहारिणि षोडशकलान्तवासिनि हकारार्द्ध-चारिणि कालसङ्कर्षिणि कपालहस्ते मदघूर्णितलोचने निर्वाण-दीक्षाप्रसादप्रदे निन्दानन्दाधिकारिणि मातृगणमध्यचारिणि त्रयस्त्रिंशत्कोटित्रिदशतेजोमयविग्रहे प्रलयाग्निरोचिनि विश्वकर्त्रि विश्वाराध्ये विश्वजननि विश्वसंहारिणि विश्वव्यापिके विश्वेश्वरि निरुपमे निर्विकारे निरञ्जने निरीहे निस्तरङ्गे निराकारे परमे-श्वरि परमानन्दे परापरे प्रकृतिपुरुषात्मिके प्रत्ययगोचरे प्रमाणभूते प्रणवस्वरूपे संसारसारे सच्चिदानन्दे सनातनि सकले सकलकला-तीते सामरस्यसमयिनि केवले कैवल्यरूपे कल्पनातिगे काललोपिनि कामरहिते कामकलाकालि भगवति ॐ ख्फ्रें ह्सौः सौः श्रीं ऐं ह्लौं क्रों स्फ्रों सर्वसिद्धिं देहि देहि मनोरथान् पूरय पूरय मुक्तिं नियोजय नियोजय भवपाशं समुन्मूलय समुन्मूलय जन्ममृत्यू तारय तारय परविद्यां प्रकाशय प्रकाशय अपवर्गं निर्मोहि निर्मोहि संसारदुःखं यातनां विच्छेदय विच्छेदय पापानि संशमय संशमय चतुर्वर्गं साधय साधय ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं यान् वयं द्विष्मो ये चास्मान् विद्विषन्ति तान् सर्वान् विनाशय विनाशय मारय मारय शोषय शोषय क्षोभय क्षोभय मयि कृपां निवेशय निवेशय फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें हसख्फ्रें हूं स्फ्रों क्लीं ह्लीं जय जय चराचरात्मकब्रह्माण्डोदरवर्त्तिभूतसंघाराधिते प्रसीद प्रसीद तुभ्यं देवि नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।

इतीदं गद्यमुदितं मन्त्ररूपं वरानने ।
सहस्रनामस्तोत्रस्य आद्यावन्ते च योजयेत् ।।३।।
अशक्नुवानो द्वौ वारौ पठेच्छेष इमं स्तवम् ।
सहस्रनामस्तोत्रस्य तदैव प्राप्यते फलम् ।।४।।
अपठन् गद्यमेतत्तु तत्फलं न समाप्नुयात् ।
यत्फलं स्तोत्रराजस्य पाठेनाप्नोति साधकः ।।५।।
तत्फलं गद्यपाठेन लभते नात्र संशयः ।।

इति महाकालसंहितायां गद्यगानं नाम द्वादशतमः पटलः ।।

त्रयोदशतमः पटलः

[कामकलाकाल्या विविधमन्त्राणामवतरणम्]

देव्युवाच

भगवन् देव देवेश भक्तानां वाञ्छितप्रद ।
त्वत्प्रसादात् श्रुतं सर्वं कामकाल्या विधानकम् ॥१॥
सहस्रनामस्तोत्रं च तस्य गद्यमनुत्तमम् ।
त्रैलोक्यविजयं चापि कवचं परमाद्भुतम् ॥२॥
स्तोत्राणां स्तोत्रराजं च भुजङ्गप्रयातमद्भुतम् ।
एकाक्षरं समारभ्य यावन्तो मनवः पुनः ॥३॥
कामकलामहादेव्यास्तान्मनून् श्रोतुमुत्सहे ।
कथ्यतां मयि ते [हे] नाथ यदि तेऽस्ति स्नेहो मम ॥४॥

महाकाल उवाच

[मरीचिसमुपासिताया मन्त्रः]

साधु धन्ये महाभागे श्रूयतां वाञ्छितं तव ।
तारमैधत्रपालक्ष्मीकालीकामरुषः क्रमात् ॥५॥
योगिनीं प्रमदां चैव शाकिनीमङ्कुशं तथा
प्रासादक्षेत्रपालौ च पाशभूतौ समुद्धरेत् ॥६॥
ततोऽग्निस्त्री सप्तदशी मरीचिसमुपासिता ।
कर्दमोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहतीछन्द उच्यते ॥७॥

देवी कामकलाकाली ह्रीं शक्तिः हूं च कीलकम् ।

[कपिलोपासितायां मन्त्रः]

ह्रींशाकिन्यङ्कुशसुधायोगिनीप्रमदाक्रुधः ।।८।।
भूतडाकिनीकल्पान्तफेत्कारीनरसिंहका ।
प्रेतास्त्रशिरसः प्रोक्ताः कपिलोपास्यषोडशी ।।९।।
सनकोऽस्य ऋषिर्ज्ञेयः प्रतिष्ठा छन्द ईरितम् ।
देवता कामकाली च ह्यमृते शक्तिकीलके ।।१०।।

[हिरण्याक्षोपासितायां मन्त्रः]

डाकिनीसानुतुङ्गा हि सचूडामणिमेखलाः ।
बलिजम्भौ सभोगास्त्रौ हिरण्याक्षनवाक्षरी ।।११।।
ऋषीरुचिश्छन्द उष्णिग् देवता कामकालिका ।
डाकिनीमेखले शक्तिकीलके परिकीर्तिते ।।१२।।

[लवणोपासितायां मन्त्रः]

त्रपाद्या डाकिनी कूर्चभूतमन्मथयोगिनीः ।
वधूश्च शाकिनी स्वाहा लवणस्य दशाक्षरी ।।१३।।
छन्दः पंक्तिरथर्वऋषिर्देवी कामकलापि च ।
शाकिन्यनंगौ विज्ञेयौ मनोर्वै शक्तिकीलके ।।१४।।

[वैवस्वतोपासितायां मन्त्रः]

कूर्चास्त्रशाकिनी प्रोच्य ततः कामकला इति ।
कालिकायै ततः प्रोच्य हार्दमन्त्रोऽग्निवल्लभा ।।१५।।
वैवस्वतस्य हि मनोर्मनुः पञ्चदशाक्षरी ।
ऋषिरत्रिः समुद्दिष्टो छन्दो मध्या प्रकीर्तिता ।।१६।।

देवीयं शाकिनी कूर्चौ कीर्त्तिते शक्तिकीलके ।

[दत्तात्रेयोपासिताया मन्त्रः]

वेदाद्रिमैध्रयोगिन्यः शाकिनीकामयोषितः ॥१७॥
भूतक्रोधत्रपाज्ञेया दत्तात्रेयेण राधिता ।
ऋषिर्वसन्तवटुकोऽनुष्टुप् छन्द उदीरितम् ॥१८॥
एषैव देवता ज्ञेया ह्रीमैं धे शक्तिकीलके ।

[दुर्वासस उपासिताया मन्त्रः]

शृणिर्भूतः शाकिनी च डाकिनी भूतपञ्चमा ॥१९॥
दुर्वासः साधिता ज्ञेया महापञ्चाक्षरी प्रिये ।
गोतमोऽस्य ऋषिर्ज्ञेयश्छन्दस्त्रिष्टुबुदीरितम् ॥२०॥
देवतैषा भूतशृणी शक्तिकीलकनामकौ ।

[उत्तङ्कोपासितायामन्त्रः]

मैधप्रणवशाकिन्यो डाकिनी प्रलयान्विता ॥२१॥
फंत्कारोह्रीरमानङ्गयोगिनीस्त्रीरुषश्च हृत् ।
चतुर्दशाक्षरो मन्त्र उत्तङ्कसमुपासितः ॥२२॥
अस्य ऋषिर्दक्षिणामूर्त्तिः सुतलं छन्द उच्यते ।
देवी देवी कामकला रुग्रमे शक्तिकीलके ॥२३॥

[कौशिकोपासिताया मन्त्रः]

रुग्व्रीडाशाकिनी हार्दा विकराला पदं सङः ।
कामडाकिनीभूतान्ते हृच्छीर्षौ कौशिकेश्वरी ॥२४॥
ऋषिर्नारद एतस्य शक्वरी छन्द ईरितम् ।
देव्येषैव स्मरो भूतः शक्तिः कीलकमिष्यते ॥२५॥

[औवोंपासितताया मन्त्रः]

व्रीडायोगिनिकूर्चस्त्रीशाकिनीः पञ्च चोद्धरेत् ।
भगवत्यै इति प्रोच्य ततः कामकला इति ॥२६॥
कालिकायै तारमेधाङ्कुशकालीरमास्मराः ।
भूतास्त्रयोर्युगं वह्निस्त्रीत्यूनर्त्रिशौर्वराधिता ॥२७॥
ऋषिर्वत्सस्त्रिवृच्छन्दो देवीयं शक्तिरङ्कुशः ।
शाकिनी कीलकं ज्ञेयं योगिनीतत्त्वमित्यपि ॥२८॥

[पराशरोपासितताया मन्त्रः]

योगिनीभूतरुट्कामा अस्त्रपाराशरी मता ।
अङ्गिराश्चापि गायत्री ऋषिश्छन्दश्च कीर्त्यते ॥२९॥
देवीयं डाकिनोभूतौ विज्ञेयौ शक्तिकीलकौ ।

[भगीरथोपासितताया मन्त्रः]

आदौ परापरं कूटं बृहत्कूटं द्वितीयकम् ॥३०॥
कूटं राथन्तरं पश्चात् ज्ञेया भागीरथी प्रिये ।
छन्दस्त्रिष्टुवृषिर्व्यासो देव्येषा शक्तिकीलकौ ॥३१॥
फेत्कारीप्रलयौ ज्ञेयौ डाकिनीतत्त्वमित्यपि ।

[बल्युपासितताया मन्त्रः]

ह्लीभूतक्रोधडाकिन्यः कामफेत्कारिसंयुताः ॥३२॥
षडक्षरा बल्युपास्या देवी कामकला प्रिये ।
ऋषिः कात्यायनो ह्यस्य छन्दः ख्यातं बृहत्यपि ॥३३॥

अधिष्ठात्री त्वियं देवी स्त्रीकामौ शक्तिकीलकौ ।

[संवर्तोपासिताया मन्त्रः]

काममलक्ष्मीत्रपाकूर्चयोगिनीभिस्तु शाकिनी ॥३४॥
डाकिनीमहदामर्षामृतप्रासाददक्षिणाः ।
सृणिकालीतारमैधाः संवर्त्तोपास्यषोडशी ॥३५॥
छन्दः पंक्तिर्ऋषिश्चात्रिर्देवी कामकलापि च ।
शक्तिर्हारावलिः कीलः कर्णिकातत्त्वमीरितम् ॥३६॥

[नारदोपासिताया मन्त्रः]

वेदादिसारस्वतकामभूताः
लज्जा ततो डाकिनी योगिनी च ।
कल्पान्तरामे तदनु प्रकीर्त्त्यें
फेत्कारिकूर्चौ तदनु प्रदेयौ ॥३७॥
वेतालमस्त्रमथ वह्निनितम्बिनी च
प्रोक्तं प्रिये नारदपञ्चदश्याम् ।
विरूपाक्ष ऋषिः प्रोक्तो जगतीच्छन्द इत्यपि ।
अधिष्ठात्री कामकाली बीजशक्ती त्रपारुषौ ॥३८॥
शक्तितत्त्वे रमानङ्गौ प्रयोगः सर्वसिद्धये ।

[गरुडोपासिताया मन्त्रः]

आदौ च शांभवं कूटं लज्जाबीजं द्वितीयकम् ॥३९॥
ततः पाशुपतं कूटं योगिनी तदनन्तरम् ।
ततो माहेश्वरं कूटं कूर्मशांकरकूटकौ ॥४०॥
वधू श्रीकण्ठकूटौ च शाकिनी स्यात्ततः परम् ।
पुण्डरीकाश्वमेधौ च ततोऽस्त्रं हृच्छिरोऽपि च ॥४१॥

गरुडोपासिता. ज्ञेया महासप्तदशी त्वियम् ।
प्रचेता ऋषिरस्य स्यात् सुतलं छन्द ईरितम् ।।४२।।
देवी कामकला काली फेत्कारी बीजमुच्यते ।
शक्तिकीलकतत्त्वानि त्रपाकूर्चस्मराः क्रमात् ।।४३।।

[परशुरामोपासितायाः मन्त्रः]

लक्ष्मीर्लज्जाकामबीजं योगिनीभीरुकालिकाः ।
फडन्ता पर्शुरामेण साधिता परमेश्वरि ।।४४।।
तस्यर्षिः कश्यपो ज्ञेयः प्रतिष्ठाच्छन्द उच्यते ।
प्रोक्ता देवी कामकाली शाकिनीबीजमुच्यते ।।४५।।
रमाकाल्यौ शक्तिकीलौ ज्ञेयौ सप्ताक्षरीमनौ ।

[भार्गवोपासितायाः मन्त्रः]

तारपाशाङ्कुशान् दत्वा प्रासादं महतीं ध्रुवम् ।।४६।।
अमृतं शाकिनीं रामायोगिनीवह्निवल्लभाः ।
उद्धरेद्भार्गवीं कामकालीमेकादशाक्षरीम् ।।४७।।
ब्रह्मर्षिः शक्वरीछन्दो देव्येषा वीजमङ्कुशम् ।
शक्तिकीलौ सुधापाशौ षडङ्गो मनुरोरितः ।।४८।।

[सहस्रबाहूपासितायाः मन्त्रः]

मेधाङ्कुशौ तथा भूतं शाकिनी डाकिनी तथा ।
प्रलयश्चापि फ़ेत्कारो फट्त्रयं हृदयं शिरः ।।४९।।
द्वाभ्यां सहस्रबाहुभ्यां साधितेयं चतुर्दशी ।
प्रोक्तः संमोहनोऽस्यर्षिर्गायत्रं छन्द उच्यते ।।५०।।

मनोर्देवी कामकला चक्रास्त्रं बीजमुच्यते ।
[illegible] दक्षिणाजृम्भौ शक्तिकीलौ मनोः स्मृते ॥५१॥

[पृथूपासिताया मन्त्रः]

कामभूतौ भूतकामौ फडन्तौ पृथुराधितः ।
पञ्चाक्षरी परिज्ञेया कामकाल्या वरानने ॥५२॥
ऋषिर्मनोर्वीतहव्यो जागतं छन्द इत्यपि ।
देवता कामकाली च नाराचो बीजमुच्यते ॥५३॥
कुन्तसृष्टी शक्तिकीलौ मन्त्रस्य परिकीर्तितौ ।

[हनूमदुपासिताया मन्त्रः]

तारयोर्मध्यगौ पाशमैधावादौ प्रयोजयेत् ॥५४॥
कलातारत्रपाकूर्चलक्ष्मीकामांस्ततः परम् ।
काल्याः कराल्याः संबुद्धि विकराल्यास्ततः परम् ॥५५॥
द्वाविंशत्यक्षरीं विद्यां त्रिफडन्तां समुद्धरेत् ।
एषैव हि परिज्ञेया हनूमत्समुपासिता ॥५६॥
ऋषिः सनातनश्चोक्तश्छन्दो ज्ञेयश्च बार्हतम् ।
देवता कामकाली च काकिनीबीजमिष्यते ॥५७॥
नागः शक्तिः क्षमा कीलं नासत्यौ तत्त्वमिष्यते ।

[कामकलाकाल्याः शताक्षरमन्त्रः]

महाकाल उवाच

शताक्षरसमुद्धारमथाकर्णय भामिनि ॥५८॥

येन विज्ञातमात्रेण सर्वसिद्धिः करे स्थिता ।
आदौ त्रपाकामकूर्चान्हृन्मन्त्रान्तान्समुद्धरेत् ॥५९॥
ततः कामकलेत्युक्त्वा कालिकायै समुद्धरेत् ।
मैधाङ्कुशरमाकालीयोगिनीभीरुशाकिनीः ॥६०॥
डाकिन्यन्ताः समुद्धृत्य सकचेति पदं ततः ।
नरमुण्ड इति प्रोच्य कुण्डलायै इतीरयेत् ॥६१॥
भोगं सृष्टिं च फेत्कारीं त्रेतां कृत्यां तथोद्धरेत् ।
महेति विकरालेति वदनायै इतीरयेत् ॥६२॥
महाप्रलय इत्युक्त्वा समयेत्युद्धरेत् प्रिये ।
ब्रह्माण्डनिष्पेषणतः करायै इत्यपीरयेत् ॥६३॥
सान्विष्टिदक्षिणाध्यानचञ्चून् कूर्चास्त्रयोस्त्रयम् ।
भयङ्करेति संलिख्य रूपायै तदनन्तरम् ॥६४॥
हारं वैधं कर्णिकां च नालीकं हाकिनीमपि ।
कौरजानुत्तमाङ्गास्थिभेदिनोस्त्रितयं पुनः ॥६५॥
संविद्द्वयं हृच्छिरसी [वि]निर्ज्ञेयं शताक्षरी ॥६६॥
अस्या ऋषिः समुद्दिष्टो लोमपादो वरानने ।
छन्दो विराट् क्रमो बीजं देवता कामकालिका ॥६७॥
शक्तिः सौत्रामणीकूटं नागास्त्रं कीलकं भवेत् ।

[कामकलाकाल्याः सहस्राक्षरमन्त्रः]

देव्युवाच

मन्त्रोद्धाराः सकलाः कामकलाया निशामितास्त्वत्तः ।
अधुना वद शशिशेखर दयित सहस्राक्षरोद्धारम् ॥६८॥

महाकाल उवाच

प्रणव नमो भगवत्यै कामकलाकालिकायै च ।
तारत्रपारमास्मररुड्योगिनि योषितां पञ्च ॥६९॥
प्रत्येकं संलेख्यं ततश्च संहारभैरवेत्यपि च ।
सुरतरसलोलुपायै चतुर्दशान्तां च पञ्चकम् ॥७०॥
आदौ शार्णं बीजं प्रासादं शाकिनीं तदनु ।
डाकिनिमहारुषावपि भूतप्रेतामृतान्यपि च ॥७१॥
क्षेत्रप्रचण्डौ कालीं गारुडकालौ रतिं चापि ।
प्रकटविकटानुदशनविकरालवदना ङेऽन्तैव ॥७२॥
घनविद्युद्धनदानां मानसभारुण्डयोश्चापि ।
द्रावणतत्त्वपवीनां प्रत्येकं पञ्च चोद्धृत्य ॥७३॥
सृष्टिस्थितिसंहारकारिण्यै इत्यपि ब्रूयात् ।
तदनु मदनातुरायै चामुण्डां चापि कापालम् ॥७४॥
उग्रं ब्रह्म च शक्तिं चानन्दं रौद्रकं पञ्च ।
प्रत्येकं संलेख्यं भयङ्करेति प्रयोज्यमस्यानु ॥७५॥
दंष्ट्रायुगलान्मुखरं रसनायै तदनु च ब्रूयात् ।
कूर्मानन्तहयग्रीवदानवक्ष्वेडसुरतपिनीः ॥७६॥
तस्य त्रिशक्तिगणपतिकुमारकान् पञ्चशो विलिखेत् ।
सकचनरमुण्डशब्दा ङेऽन्ता कृतकुला चापि ॥७७॥
त्रिकूटा सिंहसमाधीन् यक्षविरिञ्ची सुदर्शनं चापि ।
गान्धर्वं च निञ्जनमेषां वै वारपञ्चकं लेख्यम् ॥७८॥
तदनु महाकल्पान्तकान्ब्रह्माण्डचर्वणेत्यपि च ।
विलिखेत्ततः करायै समाधिनादौ च दक्षिणं चक्षुः ॥७९॥

स्थाणुं तत्त्वं तारकगणपाप्सरसां च पञ्चशो विलिखेत् ।
युगभेदभिन्नगुह्यकाल्येकान्मूर्त्तितोऽपि च धरायै ॥८०॥
शाकिनिडाकिनिप्रलयाः फेत्कारीकर्णिकाहाराः ।
सानुः समेखलोऽपि च जम्भो भासाख्यकूटश्च ॥८१॥
एते च पञ्चकृत्वः क्रमशो लेख्यास्ततो दयिते ।
शतवदनान्तरितैकाद् वदनायै फट्त्रयं प्रणवः ॥८२॥
तुरु तारं मुरु च तारं हिलि तारं किलि ततो विलिखेत् ।
ह्लः सर्वदीर्घयुक्तस्ततो महाघोररावे च कालि च ॥८३॥
कापालि ततो महा च कापालि विकटदंष्ट्रे च ।
शोषिणि संमोहिनितः करालवदने ततो वाच्यम् ॥८४॥
मदनोन्मादिनिशब्दाज्ज्वालामालिन्यपि ब्रूयात् ।
तदनु शिवारूपि वैं भगमालिनितो भगप्रिये चापि ॥८५॥
उद्धृत्य भैरवीति चामुण्डाशब्दतो विलिखेत् ।
योगिन्यादिशतादनु कोटिगणात् परिवृते चापि ॥८६॥
प्रत्यक्षं च परोक्षं मां द्विषतो भवति तस्यान्ते ।
युगलं सप्तविंशत्या वदेत्तदनु देवेशि ॥८७॥
जहि नाशयानु त्रासय मारय उच्चाटयेत्यपि च ।
स्तम्भय विध्वंसय हन त्रुटतो विद्रावय छिन्धि ॥८८॥
पच शोषय मोहय चोन्मूलय भस्मीकुरु दहेति ।
क्षोभय हरतः प्रहरात्पातयतो मर्दय दमेति ॥८९॥
मथतः स्फोटय जम्भय तस्यान्ते भ्रामयेत्यपि च ।
उद्धृत्य सर्वभूताद् भयङ्करि स्याच्च सर्वजनशब्दः ॥९०॥
तदनु वशङ्करि सर्वं वदेच्छत्रुक्षयङ्करीत्यपि च ।
प्रणवो व्रीडा तारः कामो वेदादिकूर्चौ च ॥९१॥

गायत्रीमुखभूतावागमशीर्षाङ्कुशौ तदनु ज्वलयुग्मम् ।
प्रज्वलयुक्कह हसयुग्मं ततो विलिखेत् ॥९२॥
राज्यधनायुः प्रोक्त्वा तदनु सुखैश्वर्यमित्यपि च ।
देहिद्वितयं दापययुगलं पश्चात् कृपाकटाक्षं च ॥९३॥
मयि च वितरयुगलं योगिन्यबला च शाकिन्यः ।
द्रावणमानसवक्त्रं कापालं चापि भारुण्डा ॥९४॥
कालीस्मराध्वमनसः कूर्चं मुण्डे सुमुण्डे च ।
चामुण्डे इत्युक्त्वा प्रवदेद्वै मुण्डमालिनि पदं च ॥९५॥
मुण्डावतंसिकेऽपि च ततश्च मुण्डासनेऽमृतं बीजम् ।
शक्तिः निर्मलबीजं तदनु शवारूढ इत्यपि च ॥९६॥
षोडशभुजे सोद्यते पाशपदात्परशुनागेति ।
चापानु मुद्गरशिवापोतानु च खर्प्परानु च नरेति ॥९७॥
मुण्डाक्षादपि माला कर्त्रीतो नानाङ्कुशशवेति ।
चक्रत्रिशूलकरवालधारिणि प्रोच्चरेत्पश्चात् ॥९८॥
स्फुरयुगलं तदनु वदेत् प्रस्फुरयुग्मं मम हृदि प्रोच्य ।
तिष्ठद्वितयं निगदेत् स्थिराभव त्वं तममरेशि ॥९९॥
सारस्वतागमशिरः कुलिकस्मरभूतबीजानि ।
त्रितयं कौरजपदवीमनोरुषां जययुग्मं पश्चात् ॥१००॥
विजयद्वितयादस्त्रत्रितयं हृदयं च शीर्षञ्च ।
इत्येषा कथिता तव देवि सहस्राक्षरी शुभदा ॥१०१॥
कालाग्निरुद्रऋषिरिह महापरो जागतं छन्दः ।
देवी कामकलापि च कूर्चो बीजं स्मरः कीलः ॥१०२॥
शक्तिर्भूतः शृणिरपि तत्त्वं सप्ताङ्गको मन्त्रः ।

इति महाकालसंहितायां पञ्चशतसाहस्र्यां त्रयोदशतमः पटलः ।

चतुर्दशतमः पटलः

[कामकलाकाल्या अयुतार्क्षरमन्त्रोत्पत्तिकथा]

महाकाल उवाच

मनोमन्त्रं कामकलाकाल्यास्त्वमयुताक्षरम् ।
पृष्टवत्यसि मां देवि तं चाहं नारदं त्वयि ॥१॥
किञ्चित्कारणमस्त्यत्र तन्निशामय सादरम् ।
नातः परतरः कोऽपि मन्त्र उग्रोऽस्ति भूतले ॥२॥
न चास्य वेत्ता नो जापी न स्मर्त्ता न च साधकः ।
नोद्धर्त्ता नोपदेष्टा च न प्रष्टा न जिघृक्षुकः ॥३॥
षट्स्वाम्नायेषु ये मन्त्राः प्रोक्ताः सन्ति वरानने ।
वर्तन्ते तेऽखिलाः सर्वनद्यम्बून्यर्णवे यथा ॥४॥
उत्पत्तिमयुताक्षर्य्यास्त्वमादौ शृणु सोत्सुका ।
ततः श्रोष्यसि तं मन्त्रमुग्रादुग्रतरं प्रिये ॥५॥
अहं नारायणश्चापि कल्पे ऋष्यन्तराह्वये ।
सर्गादौ त्रिपुरघ्नेनास्मद्भक्त्या तोषमीयुषा ॥६॥
त्रैलोक्याकर्षणेनोपदिष्टौ स्यावो वरानने ।
शिक्षयित्वा विधानानि ध्यानपूजादिकानि हि ॥७॥
दत्ताभ्यनुज्ञौ गुरुणा मिथः संमन्त्र्य सत्वरम् ।
संसिषाधयिषू आवाम् मन्त्रराजं महत्तरम् ॥८॥
अगच्छाव रहो ज्ञात्वा पुष्करद्वीपमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षां च प्रसन्नां च चिकीर्षू तामहर्निशम् ॥९॥

तपावहे तपो घोरं दिव्यानां शरदां शतम् ।
ततः प्रसन्ना भगवंत्यागत्य पुरतः स्थिता ॥१०॥
तां महोग्रतराकारां द्रष्टुमेव न शक्नुवः ।
मीलिताक्षौ नम्रशीर्षावतिष्ठाव क्षणं प्रिये ॥११॥
भीतावावां परिज्ञायाम्बा सौम्यं वपुराददे ।
तत उन्मील्य नेत्राणि पादयोरपतावहि ॥१२॥
कराभ्यां सा समुत्थाप्य प्रार्थयेतां युवां वरम् ।
इत्युवाच जगद्धात्री भक्तिप्रवणकन्धरौ ॥१३॥
आवामवोचाव ततः कृताञ्जलिपुटौ शिवाम् ।
देवि त्वयैव जगतां स्थितिसंहारकारकौ ॥१४॥
कृतावावां त्वत्प्रसादात्प्राप्तयुद्धपराजयौ ।
प्राप्तदेवाधिपत्यौ च स्वेच्छाकर्मविहारिणौ ॥१५॥
ब्रह्माणं च तृणं मन्यावन्येषाञ्च वरप्रदौ ।
किञ्चिदप्यवशिष्टं नावयोस्त्वत्करुणावशात् ॥१६॥
आवयोर्देवता त्वं हि देवेष्वावां च देवताः ।
देवा देवा द्विजातीनां द्विजाः शेषस्य देवताः ॥१७॥
वरं दित्सस्यावयोश्च तदेकं देहि नौ वरम् ।
मूर्त्तीनां कतिभेदास्ते सौम्योग्राणां महेश्वरि ॥१८॥
तान् परिज्ञातुमिच्छावः समन्तान् जगदम्बिके ।
एकस्यां तव मूर्त्तौ चोपासितायां धरेश्वरि ॥१९॥
उपासितास्ता भवन्ति चण्डिके तद्वदावयोः ।
श्रुत्वा तदावयोर्वाक्यं स्मितं कृत्वावदच्छिवा ॥२०॥

महाकाल्युवाच

अन्तो न मम मूर्त्तीनां सौम्योग्राणां सुरेश्वरौ ।
न च तन्मन्त्रभेदानां संख्यास्ति जगतीतले ॥२१॥

आगमादिपुराणेषु याः काश्चिच्छिवशक्तयः ।
श्रूयन्ते वाथ दृश्यन्ते मूर्त्तयो हि ममैव ताः ॥२२॥
सुरैर्भवदिदृक्षार्थं तत्र काश्चन मूर्त्तयः ।
मयैव निर्मिता देवौ सौम्याग्राश्चित्स्वरूपया ॥२३॥
रक्षोदानवदैत्यानां मारणाय भयानकाः ।
सौम्याः परशिवस्यापि मोहार्थमुपपादिताः ॥२४॥
एता मूर्त्त्यनुकारिण्यः कृताश्चान्या सुमूर्त्तयः ।
सौम्यानां कोटिमूर्त्तीनां सौन्दर्य्यमयताजुषाम् ॥२५॥
या मूर्त्तिर्मम विख्याता नाम्ना त्रिपुरसुन्दरी ।
सर्वासामेव मध्ये सा विज्ञेया परमावधिः ॥२६॥
उग्रावन्ध्या मूर्त्तयो मे सन्ति कोटचष्टसम्मिताः ।
घोरघोरतराकाराः शक्यन्ते या न वीक्षितुम् ॥२७॥
चामुण्डा भैरवी भीमा गुह्यकाली च दक्षिणा ।
छिन्नमस्ता चैकजटा कालसङ्कर्षणी तथा ॥२८॥
श्मशानकाली कोरङ्गी भद्रकाली च कुब्जिका ।
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥२९॥
चण्डा चण्डवती चण्डचण्डा चण्डी च चण्डिका ।
वाभ्रवी शिवदूती च कात्यायन्यर्द्धमस्तका ॥३०॥
काल्योऽन्याः पञ्चपञ्चाशन् मुख्याः सर्वागमेषु याः ।
सतीषु तासु घोरासु मूर्त्तिषु प्रथितासु मे ॥३१॥
नहि कामकलाकाली सदृश्युग्रा जगत्त्रये ।
उग्राणां मम मूर्त्तीनामियं हि परमावधिः ॥३२॥
सौम्योग्रा मूर्त्तयः सन्ति यावत्यो मे सुरेश्वरौ ।
तावतीनामपि ध्यानं मन्त्रः पूजा च वर्त्तते ॥३३॥

नान्योऽस्ति जगतीमध्ये तासां वेत्ता शिवं विना ।
अतएव षडाम्नायान् परिज्ञाय चकार सः ॥३४॥
तत्तन्मन्त्रध्यानभेदन्यासपूजाविधीनपि ।
प्रोक्तवान् स हि सर्वज्ञः सर्वं विज्ञाय तत्त्वतः ॥३५॥
उत्तरोद्‌र्ध्वाधःप्रतीचीपूर्वदक्षिणसंज्ञकाः ।
आम्नायास्तु षडेवैते शिववक्त्रविनिर्गताः ॥३६॥
यामला डामरास्तन्त्रसंहितास्तस्य मध्यगाः ।
स्वस्वभक्तिविशेषेण तत्तत्कार्यादिसिद्धये ॥३७॥
दैवतैर्ऋषिभिः सिद्धैरसुरैर्दैत्यदानवैः ।
गुह्यकैरप्सरोभिश्च किन्नरोरगराक्षसैः ॥३८॥
सोमसूर्य्यान्वयोद्‌भूतैर्भूपालैरितरैर्नरैः ।
दृष्टप्रतीतिभिर्मर्त्यैः सा सा मूर्त्तिरुपास्यते ॥३९॥
युगशेषे कलौ क्षीणे नरा अल्पायुषोऽलसाः ।
निरुत्साहा दरिद्राश्च भक्तिहीनाः कुमार्गकाः ॥४०॥
आसामुपासका नैव भविष्यन्ति विशेषतः ।
ध्यानमन्त्रादिकं तासां तदा लुप्तं भविष्यति ॥४१॥
तासां सौम्योग्रमूर्त्तीनां भिन्नाम्नायजुषां सदा ।
एकत्रावस्थितिर्नैव तिमिरालोकयोरिव ॥४२॥
उपासितायामेकस्यां कथं ताः समुपासिताः ।
भवेयुरित्यपि महद्‌दुर्घटं प्रतिभाति मे ॥४३॥
ममैको वर्त्तते किन्तु महामन्त्रोऽयुताक्षरः ।
षडाम्नायस्थिता मन्त्राः प्रायशः सन्ति तत्र हि ॥४४॥
सौम्योग्राणां च मूर्त्तीनां भेदो नामानि सन्ति वै ।
एतत्परो न मन्त्रोऽस्ति क्वापि त्रिजगतीतले ॥४५॥

[illegible]तर सर्वसिद्ध्येकसाधकः ।
[illegible]कर्षणस्यायं तुल्यावेतौ मतौ मम ॥४६॥
नदीजलौघा जलधिं यथा सर्वे विशन्ति हि ।
षडाम्नायस्थिताः मन्त्रास्तथैवानुविशन्ति तम् ॥४७॥
मेरुर्यथा पर्वतानां गङ्गा च सरितां यथा ।
तीर्थानां च यथा काशी शस्त्राणामशनिर्यथा ॥४८॥
अश्वमेधोऽध्वराणां च तपस्यानामुपोषणम् ।
समीरणो बलवतां कामधेनुर्गवां यथा ॥४९॥
शिवो यथा देवतानां देवीनाञ्च यथाप्यहम् ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां तथायमयुताक्षरः ॥५०॥
आराधितायामेतेन मन्त्रेणैव मयि ध्रुवम् ।
सर्वा आराधिता हि स्युः षडाम्नायस्य शक्तयः ॥५१॥
आरिराधयिषू चेन्मां सौम्योग्रास्ताश्च देवताः ।
कुरुतं यत्नमेतस्मिन् मालामन्त्रेऽयुताक्षरे ॥५२॥
प्रविशन्ति यथेभानां पादेऽन्येषां पदानि हि ।
यथेतरेषां हि पदे विशेदिभपदं न च ॥५३॥
मन्त्राः सर्वे तथामुष्मिन् प्रविशन्ति सुरोत्तमौ ।
न च प्रवेशः क्वाप्यस्य प्रकारैरपि भूरिभिः ॥५४॥
बीजकूटोपकूटाश्च यावन्तश्चागमोद्धृताः ।
ते सर्वे तत्र तिष्ठन्ति मयि त्रिभुवनं यथा ॥५५॥
आम्नायानां यथा षण्णामुपदेशो भवेत्तदा ।
अस्याधिकारी भवति नो चेन्नार्हत्यमुं मनुम् ॥५६॥
महिमानममुष्याहं वेद्मि वेद शिवोऽथवा ।
गुरूपदेशाधिगतेस्तन्मन्त्रस्य नरस्य हि ॥५७॥

पुरस्तिष्ठामि सततं भवामि वशवर्त्तिनी ।
यथाकर्षन्ति सूत्रेण खगमाराद्विहङ्गमम् ॥५८॥
तथामुनैव मन्त्रेण मामाकर्षन्ति साधकाः ।
इत्येतत्कथितं यत्तद्भवद्भ्यां पृष्टवत्यहम् ॥५९॥
समासाद्विस्तराद् वक्तुं मम शक्तिर्न विद्यते ।

महाकाल उवाच

श्रुत्वा देव्या वचः सर्वमावाभ्यां पुनरीरितम् ॥६०॥
यदि देवि प्रसन्नासि तदाहत्युपदिश स्वयम् ।
इति विज्ञापिता देवी प्राहावां सस्मितानना ॥६१॥
कृताञ्जलिपुटौ देवौ गदत्या गदतां मनुम् ।
इति देव्या वचः श्रुत्वा तथैवाकरवावहि ॥६२॥
एवं देव्युपदिश्यावां क्षणादन्तर्द्धिमागता ।
एवं प्रकारेणावाभ्यां लब्धोऽयमयुताक्षरः ॥६३॥
अदाद्विष्णुर्नारदाय सनकाय च तोषितः ।
दुर्वासाः कश्यपो दत्तात्रेयश्च कपिलस्तथा ॥६४॥
चत्वार एते मच्छिष्या मता मन्त्रस्य पार्वति ।
एतैः शिष्यप्रशिष्याश्च बहवो विहिताः स्वकाः ॥६५॥
इत्थं परम्पराप्राप्तो ह्यस्मिंल्लोके प्रतिष्ठितः ।
नाम्ना मृत्युञ्जयप्राणो मालामन्त्रोऽयुताक्षरः ॥६६॥
एवमेतस्य महिमा वर्णितुं केन शक्यते ।
यत्रैवमवदद् देवी तत्रान्यस्य हि का कथा ॥६७॥
शाम्भवाद्याश्च ये कूटास्ताराद्या बीजसञ्चयाः ।
सर्वे तत्रैव तिष्ठन्ति ब्रह्मणीव जगत्त्रयम् ॥६८॥
यथोर्णनाभिः सूत्राणि वमत्यपि गिलत्यपि ।

तथैवायं सृजत्यत्ति विश्वं स्थावरजङ्गमम् ॥६९॥
जन्मकोटिसहस्राणां लक्षेणापि न लभ्यते ।
विना देवीप्रसादेन तथैवानुग्रहं गुरोः ॥७०॥
जिघृक्षुरिममध्यायं पठित्वा प्रथमं प्रिये ।
ततो मृत्युञ्जयप्राणं शनैः स्पष्टमुदीरयेत् ॥७१॥
समाप्य सकलं मन्त्रं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ।
मृत्युञ्जयप्राणदात्रे सर्वस्वं गुरवेऽर्पयेत् ॥७२॥
अथवा येन सन्तोषं गुरुर्व्रजति तच्चरेत् ।

इति महाकालसंहितायां प्राणामृताख्यायाः प्रशंसाकथनं नाम चतुर्पंचाशत्तमः पटलः ।

पञ्चदशतमः पटलः

[कामकलाकाल्या अयुताक्षरमन्त्र निर्देशः]

महाकाल उवाच

श्रृणुष्व हिमवत्पुत्रि षष्ठकाल्ययुताक्षरम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते ।।१।।
तारवाग्भवमायाश्च लक्ष्मीर्ह्रीः स्मर एव च ।
क्रोधश्च योगिनी चैव वधूश्च शाकिनी तथा ।।२।।
अङ्कुशं च प्रासादं च क्षौंकारं पाशमेव च ।
स्फ्रोंकारं च समुच्चार्य्यं वह्निजायां ततो वदेत् ।।३।।
ततः कामकलाकालि मायाकाल्यौ ततो वदेत् ।
मायात्रयं समुच्चार्यं क्रोधद्वयं समुच्चरेत् ।।४।।
दक्षिणकालिके चैव क्रोधद्वयं तथा पुनः ।
भुवनेशीत्रयं चोक्त्वा कालीत्रयं द्विठस्तथा ।।५।।
ततो दक्षिणकालिके वाक्काल्यौ च समाहरेत् ।
त्रपा क्रोधाबला चैव शाकिमीबोजमुद्धरेत् ।।६।।
वधूबीजं योगिनीं च ख्फ्रेंकारं भद्रकाल्यपि ।
हूं द्वितयं समुच्चार्य्यं चास्त्रद्वयं नमः पुनः ।।७।।
वह्निजाया भद्रकालि तारं माये क्रोधौ तथा ।
भगवति ततः प्रोच्य ततः श्मशानकाल्यपि ।।८।।
नरकङ्कालमालाधारिणि च ततो वदेत् ।
भुवनेशी कालीबीजं कुणपभोजिनि तथा ।।९।।

शाकिनीद्वितयं प्रोच्य ततो वह्निनितम्बिनी ।
श्मशानकालि संप्रोच्य कालीक्रोधौ तथोच्चरेत् ॥१०॥
मायावधूरमाकामफट्स्वाहा कालकालि च ।
तारं च शाकिनी चैव सिद्धिकरालि च वदेत् ॥११॥
मायाबीजं समुच्चार्य योगिनीबीजमुच्चरेत् ।
क्रोधवधूशाकिन्यश्च हृल्लेखा वह्निवल्लभा ॥१२॥
गुह्यकालि समुच्चार्य्य तारमन्त्रद्वयं चरेत् ।
हूंकारं ह्रींकारं चैव फ्रेंकारं छ्रींकारं पुनः ॥१३॥
स्त्रींकारं च रमाबीजमङ्कुशं हृदयं वदेत् ।
ङेऽन्ता धनकालि च विकरालरूपिण्यपि ॥१४॥
संबोधनान्ता बोद्धव्या सर्वत्रैव सुरेश्वरी ।
धनं चोक्त्वा देहिद्वयं दापय दापयेति च ॥१५॥
क्षेत्रपालं तथोच्चार्य इन्द्रस्वरविभूषितम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तमङ्कुशं पाशमेव च ॥१६॥
मायाक्रोधहृदां द्वे चास्त्रद्वे वह्निवल्लभा ।
ततो धनकालिके च तारवाग्भवमन्मथाः ॥१७॥
लज्जाक्रोधौ सिद्धिकाल्यै हृदयं सिद्धिकालि च ।
ततो मायां समुच्चार्य्य वदेच्चण्डाट्टहासिनि ॥१८॥
ततो जगद्ग्रसनकारिणि तु समुच्चरेत् ।
नरमुण्डमालिनि च प्रवदेच् चण्डकालिके ॥१९॥
कामरमाक्रोधानुक्त्वा शाकिनी त्वङ्गनापि च ।
योगिनी फट्द्वयं प्रोच्य वह्निस्त्री चण्डकालिके ॥२०॥
नमः कमलवासिन्यै स्वाहालक्ष्मि तथोच्चरेत् ।
तारं च लक्ष्मीबीजं च माया च कमला पुनः ॥२१॥

कमले च ततश्चोक्त्वा प्रवदेत्कमलालये ।
प्रसीद द्वितयं चोक्त्वा रमा लज्जा रमा पुनः ॥२२॥
महालक्ष्म्यै नमः प्रोच्य महालक्ष्मि मायां वदेत् ।
नमो भगवति चोक्त्वा माहेश्वरि ततो वदेत् ॥२३॥
अन्नपूर्णे वह्निजाया अन्नपूर्णे तथोच्चरेत् ।
तारमायाक्रोधान् प्रोच्य उत्तिष्ठ पुरुषि वदेत् ॥२४॥
किं स्वपिषि भयं चोक्त्वा ततो मे समुपस्थितम् ।
यदिं शक्यमशक्यं वा क्रोधदुर्गे ततो वदेत् ॥२५॥
भगवति ततश्चोक्त्वा शमय वह्निसुन्दरी ।
क्रोधलज्जातारानुक्त्वा वनदुर्ग्गे मायां वदेत् ॥२६॥
स्फुर द्वे प्रस्फुर द्वे च घोरघोरतरेत्यपि ।
तनुरूपे समुच्चार्य्य चट द्वे प्रचटद्वयम् ॥२७॥
कह कह रम रम बन्ध बन्ध ततो वदेत् ।
घातय द्वितयं चोक्त्वा क्रोधमस्त्रं ततः स्मरेत् ॥२८॥
ततश्च विजयाघोरे माया पद्मावति वदेत् ।
वह्निजायां ततः स्मृत्वा ततः पद्मावति स्मरेत् ॥२९॥
महिषमर्दिनि स्वाहा महिषमर्दिनि स्मरेत् ।
तारं चोक्त्वा दुर्गे द्वयं रक्षिणि वह्निकामिनी ॥३०॥
जय दुर्गे समुच्चार्य तारमाये समुच्चरेत् ।
दुं दुर्गायै स्वाहा चोक्त्वा वाङ्मायाविष्णुवल्लभाः ॥३१॥
तारं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि संस्मरेत् ।
सर्वस्त्रीपुरुषेत्युक्त्वा वशङ्करि ततो वदेत् ॥३२॥
सर्वदुष्टमृगेत्युक्त्वा वशङ्करि ततो वदेत् ।
सर्वग्रहवशङ्करि सर्वसत्ववशङ्करि ॥३३॥

सर्वजनमनोहरि सर्वमुखरञ्जिनि च ।
सर्वराजवशङ्करि ततः स्मरेच्च साधकः ॥३४॥
सर्वलोकमुमे वशमानय ततो वदेत् ।
वह्निस्त्री च तथा राजमातङ्गि साधकोत्तमः ॥३५॥
तथोच्छिष्टमातङ्गिनि चान्ते क्रोधबीजं स्मरेत् ।
एवं मायां ततस्तारं ततो मन्मथमेव च ॥३६॥
वह्निजायोच्छिष्टेत्युक्त्वा मातङ्गि समुदाहरेत् ।
तथोच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि संवदेत् ॥३७॥
महापिशाचिनि माया त्रिठं द्विबिन्दुकं स्मरेत् ।
तथोच्छिष्टचाण्डालिनि तारं च समुदाहरेत् ॥३८॥
महासेनो धरासंस्थो वामनेत्रविभूषितः ।
बिन्दुनादसमायुक्तो वगलामुखि चोद्धरेत् ॥३९॥
सर्वेत्युक्त्वा च दुष्टानां मुखं वाचं समीरयेत् ।
ततश्च स्तम्भय जिह्वां कीलय द्वितयं वदेत् ॥४०॥
बुद्धिं नाशय संस्मृत्य पूर्वबीजं ततः स्मरेत् ।
तारपूर्वा वह्निजाया वगले वाग्भवं वदेत् ॥४१॥
रमामायास्मरान् स्मृत्वा धनलक्ष्मि वदेत्ततः ।
तारलज्जावाग्भवाश्च मायां तारं स्मरेत्ततः ॥४२॥
सरस्वत्यै नमः स्मृत्वा सरस्वति वदेत्ततः ।
पाशं मायां क्रोधं चोक्त्वा भुवनेश्वरि चेत्यपि ॥४३॥
तारत्रपाविष्णुजायाक्रोधकामपाशास्ततः ।
तथा चाश्वारूढायै च फट्द्वयं वह्निवल्लभा ॥४४॥
अश्वारूढे समाभाष्य तारवाग्भवलज्जकाः ।
नित्यक्लिन्ने मदद्रवे वाङ्माया वह्निसुन्दरी ॥४५॥

नित्यक्लिन्ने समाभाष्य सुन्दरीबीजमुंद्धरेत् ।
ततश्च भैरवीकूटं बालाकूटं ततः स्मरेत् ॥४६॥
बगलाकूटमुच्चार्य्य त्वरिताकूटमुद्धरेत् ।
जय भैरवि संप्रोच्य रमात्रपावाग्भवं स्मरेत् ॥४७॥
ब्लूंकारं च ततश्चोक्त्वा चन्द्रश्च सविसर्गकः ।
अकारं च आकारं च इकारं संस्मरेत्ततः ॥४८॥
बिन्दुनादसमायुक्तं वाचयेत् साधकोत्तमः ।
राजदेवो राजलक्ष्मी क्रमशस्तु ततः स्मरेत् ॥४९॥
चतुर्दशस्वरोपेतबिन्दुद्वयविभूषितः ।
चन्द्रबीजं समुच्चार्य्य स्वर्णकूटं समाहरेत् ॥५०॥
वाङ्मायाकाममातृश्च राजराजेश्वरि ततः ।
ज्वल ज्वल समाभाष्य शूलिनि दुष्टग्रहं वै ॥५१॥
ग्रस स्वाहा समुच्चार्य्य शूलिनि च वदेत् सुधीः ।
माया महाचण्डयोगेश्वरि ध्रींकारमुद्धरेत् ॥५२॥
दान्ततान्तौ वह्निसंस्थौ तुरीयस्वरभूषितौ ।
नादबिन्दुसमायुक्तौ ततोऽस्त्रपञ्चकं स्मरेत् ॥५३॥
जय महाचण्डयोगेश्वरि विष्णुनितम्बिनी ।
त्रपा कामत्रिपुटे च वाङ्मायानङ्गमातरः ॥५४॥
क्षींकारं क्लींकारं चैव सिद्धिलक्ष्म्यै नमस्ततः ।
काममाता भुवनेशी वाग्भवश्च स्मरेत्ततः ॥५५॥
राज्यसिद्धिलक्ष्मि चोक्त्वा ॐकारं शम्भुवल्लभा ।
क्रोधपाशौ क्रोंकारं च स्त्रींकारं क्रोधमुच्चरेत् ॥५६॥
क्षौंकारं ह्लांकारं चैव फट्कारं त्वरितं स्मरेत् ।
नक्षत्रकूटमुच्चार्य्यं चन्द्रकूटं ततः स्मरेत् ॥५७॥

ततो भक्कूटं चैव तदन्ते च दिवाकरम् ।
कामकूटं ततोऽपि स्यात्ततः कालकूटं चरेत् ॥५८॥
तदुत्तरं पार्श्वकूटं कामकूटं तदुत्तरम् ।
ततः पश्चात् धराकूटं वारुणं तदनन्तरम् ॥५९॥
चक्रकूटं समाभाष्य पद्मकूटमनन्तरम् ।
शङ्खवराहकूटौ दर्शनान्मुक्तिदायकौ ॥६०॥
ततः स्मरेन्नृसिंहकूटं सर्वफलप्रदम् ।
इन्द्रकूटं समाराध्य इन्द्रलोके महीयते ॥६१॥
मत्स्यकूटं ततोऽपि स्यात्ततो ज्ञेयं त्रिशूलकम् ।
शक्तिकूटं तथोच्चार्य्य शिवलोके वसेद् ध्रुवम् ॥६२॥
वैष्णवकूटं तथा ज्ञेयं केवलं विष्णुरूपिणम् ।
कपाललज्जाक्रोधकामयोषितो वाग्भवं तथा ॥६३॥
गारुडं योगिनीं चैव शाकिनीं कालिकां चरेत् ।
ततो धराकूटं ज्ञेयं क्रोधबीजं ततश्चरेत् ॥६४॥
ततोऽघोरे सिद्धिं मे वै देहि दापय संस्मरेत् ।
वह्निजाया अघोरे च ॐकारं नम इत्यपि ॥६५॥
चामुण्डे च तथोच्चार्य्यं करङ्किणि वदेत्ततः ।
करङ्कमालाधारिणि च किं किं विलम्बसे ततः ॥६६॥
भगवति ततश्चोक्त्वा शुष्कानननि ततः स्मरेत् ।
खट्वाङ्गं च ततः प्रोच्य चान्धकरावनेति च ॥६७॥
भो भो वल्ग इति प्रोच्य वल्गेति वदेत्ततः ।
कृष्णभुजङ्गवेष्टिततनुलम्बकपाले वै ॥६८॥
हृष्ट हृष्ट इति प्रोच्य हट्ट हट्ट तदन्तरम् ।
पत पत समुच्चार्य्यं पताका च ततो वदेत् ॥६९॥

हस्ते ज्वल ज्वल प्रोच्य ज्वालामुखि ततो वदेत् ।
अनलनखखट्वाङ्गधारिणि च तथोच्चरेत् ॥७०॥
हा हा चट्ट चट्ट इति हूं हूं अट्टाट्टहासिनि ।
उड्ड उड्ड ततोऽपि स्याद्वेतालमुखि इति ॥७१॥
अकि अकि स्फुलिङ्गेति पिङ्गलाक्षि ततोऽपि च ।
चल चल चालयेति चालयेति तथोच्चरेत् ॥७२॥
करङ्कमालिनि प्रोच्य नमोऽस्तु ते स्वाहा ततः ।
विश्वलक्ष्मि ततश्चोक्त्वा तारमाये समुच्चरेत् ॥७३॥
क्षेत्रपालो वह्निसंस्थो चतुर्थस्वरमस्तकः ।
नादबिन्दुसमायुक्तो बीजं समुच्चरेत् सुधीः ॥७४॥
दाद्विरेवं समुच्चार्य्य रान्तश्चैवं समाहरेत् ।
एवं शान्तः समाहार्य्यः कालीक्रोधौ पुनर्वदेत् ॥७५॥
अस्त्रं यन्त्रप्रमथिनि ख्फ्रेंकारं च ततः स्मरेत् ।
ततो धरां समाहृत्य बीजं श्रृणु मनोहरम् ॥७६॥
रेफश्चैव जकारश्च तदन्तश्च क्रमाल्लिखेत् ।
वह्निरूढं बीजं ज्ञेयं तुरीयस्वरपूजितम् ॥७७॥
नादबिन्दुशिरोबीजमुच्चरेद्बीजमुत्तमम् ।
तारत्रये समाभाष्य फ्रेंकारं समुदीरितम् ॥७८॥
चण्डयोगेश्वरि कालि शाकिनी हृदयं तथा ।
चण्डयोगेश्वरि लज्जाक्रोधास्त्राणि विनिर्दिशेत् ॥७९॥
महाचण्डभैरवि च भुवनेशीं वदेत्ततः ।
क्रोधास्त्रं वह्निजायां च महाचण्डभैरवो वै ॥८०॥
वाग्भुवनेश्वरी कामशाकिनी वाग्भवानपि ।
लज्जा रमा तथा चैव उद्धरेत्कोविदो जनः ॥८१॥

त्रैलोक्यविजया ङेन्ता हृदये वह्निवल्लभा ।
त्रैलोक्यविजये चैव वाग्लज्जालक्ष्मीमन्मथाः ॥८२॥
प्रासादं जयलक्ष्मि च युद्धे मे विजयं वदेत् ।
देहि चेत्युच्य प्रासादं पाशमङ्कुशफट्त्रयम् ॥८३॥
वह्निस्त्री जयलक्ष्मि च अतिचण्डं तथोच्चरेत् ।
तथा महाप्रचण्डेति भैरवि च ततः स्मरेत् ॥८४॥
क्रोधचण्डं समाभाष्य अतिचण्डटकारकौ ।
योगबीजं समाभाष्य फ्रटं स्मरेत्ततोऽपि च ॥८५॥
विलिखेच्च ततो याम्यकूटं परमसिद्धिदम् ।
फान्तफस्थो वह्निसंस्थस्ततश्च ठादिमुच्चरेत् ॥८६॥
तदन्ते च महाकूटमीशसंज्ञं समुच्चरेत् ।
रेफमुच्चार्य्य धीरेन्द्र फ्रटं स्मरेत्तदन्तरम् ॥८७॥
महामन्त्रेश्वरि चैव तारत्रपारमास्मरान् ।
प्रासादक्रोधौ वज्रं च वदेत् प्रस्ताविनि द्विठम् ॥८८॥
वज्रप्रस्तारिणि चोक्त्वा तारं ह्रीं हृदयं वदेत् ।
परमभीषणे चोक्त्वा क्रोधद्वयं क्रमाल्लिखेत् ॥८९॥
नरकङ्कालमालिनि चोक्त्वा वै शाकिनीद्वयम् ।
कात्यायनि व्याघ्रचर्मावृतकटि वदेदिति ॥९०॥
कालीद्वयं समुच्चार्य्य श्मशानचारिणि वदेत् ।
नृत्य नृत्य गाय गाय हस हस क्रोधद्वयम् ॥९१॥
कारणादीनि संलेख्य चाङ्कुशद्वितयमपि ।
शववाहिनि संलेख्य मां रक्ष रक्ष चेत्यपि ॥९२॥
अस्त्रद्वयं क्रोधद्वयं हृल्लेखा वह्निकामिनी ।
कात्यायनी त्विति प्रोच्य वाङ्माया हरिसुन्दरी ॥९३॥

शान्तः षान्तश्च पान्तश्च यान्तो भगविभूषितः ।
नादबिन्दुस्वलंकृत्य वदेद्बीजमनुत्तमम् ॥९४॥
बिन्दुहीनं प्रेतबीजं शान्तं पाशसमन्वितम् ।
बिन्दुनादभूषितं तु वदेद्बीजं तदुत्तरम् ॥९५॥
भान्तं बिन्दुयुतं चैव तुरीयस्वरभूषितम् ।
दादि बिन्दुयुतं स्मृत्वा वामकर्णविभूषितम् ॥९६॥
नकुलीशो वह्निसंस्थो पाशबिन्दुसमन्वितः ।
बीजं स्मृत्वा तथा मायां तथा दीर्घतनुच्छदम् ॥९७॥
योगिनीकूटमुच्चार्य्य फेत्कारी कूटमुच्चरेत् ।
शिवशक्तिसमरसचण्डकापालेश्वरि ततः ॥९८॥
क्रोधं हृदयमुच्चार्य्य चण्डं वदेत्तादन्तरम् ।
कापालेश्वरि चोच्चार्य्य वाक्कालीमारमातरः ॥९९॥
ततश्च खेचरीकूटं कूटानां कटमुत्तमम् ।
सुवर्णद्वितयं प्रोच्य महासुवर्ण इत्यपि ॥१००॥
कूटेश्वरी समाभाष्य व्यूहकूटं ततः स्मरेत् ।
रमा त्रपा वाग्भवश्च हृल्लेखा वह्निसुन्दरी ॥१०१॥
स्वर्णकूटेश्वरि प्रोच्य वाग् लज्जा कृष्णभार्य्यका ।
पाशमुच्चार्य्य देवेशि ब्रह्मणस्तृतीयं वदेत् ॥१०२॥
बिन्दुयुक्तं धरासंस्थं वामकर्णसमन्वितम् ।
बीजमेतत्समुच्चार्य्य ईंकारं पाशमेव च ॥१०३॥
ततो नादं समुच्चार्य्य हृल्लेखा भगवति वदेत् ।
वार्त्तालि द्वितयं प्रोच्य वाराहि द्वितयं वदेत् ॥१०४॥
वराहमुखि तथैवोक्त्वा ऐंकारं ग्लूंकारं तथा ।
अन्धे अन्धिनि हृदयं रुन्धे रुन्धिनि सञ्चरेत् ॥१०५॥

हृल्लेखा जम्भे जम्भिनि च हृदयं मोहे मोहिनि स्मरेत् ।
नमः स्तम्भे स्तम्भिनि च नमः सर्वदुष्टें चेत्यपि ॥१०६॥
प्रदुष्टानां ततश्चोक्त्वा सर्वेषां सर्ववाक्चित्त ।
चक्षुःश्रोत्रमुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरुद्वयम् ॥१०७॥
शीघ्रं वशं कुरु कुरु शीघ्रं वशं कुरुद्वयम् ।
वाग्भवं कालीबीजं च श्रीबीजं तदनन्तरम् ॥१०८॥
ठपञ्चकं समाभाष्य तारहेतुं क्रोधमुच्चरेत् ।
अस्त्रं द्विठं वार्त्तालि च भवेद्द्वादशिकामपि ॥१०९॥
ग्लुं ह्लीं बीजं समुच्चार्य्यं वार्त्तालि वाराहि वदेत् ।
ह्लीं ग्लुं तावनुस्मृत्य द्वादशिकं बीजमुल्लिखेत् ॥११०॥
चण्डवार्त्तालि संप्रोच्य वाङ्मायाविष्णुवल्लभाः ।
आंकारं ग्लूंकारं चैव ईंकारं वार्त्तालिद्वयम् ॥१११॥
वाराहिद्वितयं प्रोच्य शत्रून् दह दहेति च ।
ग्रस ग्रसेति संलेख्य चतुर्थबीजमुच्चरेत् ॥११२॥
तत आं च ततो ग्लुं च ततो हूं च फटं तथा ।
जय वार्त्तालि संभाष्य वाङ्माया हरिवल्लभा ॥११३॥
महाबीजं समुच्चार्य्य प्रेतबीजं समुच्चरेत् ।
तारमायाक्रोधाश्चैव शाकिनीबीजमुच्चरेत् ॥११४॥
राज्यप्रदे समाभाष्य ख्फ्रेंकारबीजमुच्चरेत् ।
फेत्कारीबीजमुच्चार्य्यं उग्रचण्डे स्मरेत् पुनः ॥११५॥
रणमर्द्दिनि संभाष्य क्रोधं च शाकिनीं वदेत् ।
योगिनीं च वधूबीजं सदेति रक्ष रक्ष च ॥११६॥
त्वं रूपं मां रूपं च जूं सं सर्गान्तमेव च ।
मृत्युहरे नमः प्रोच्य वह्निजायां द्विबिन्दुकम् ॥११७॥

स्मरेदुग्रचण्डे चैव वाग्भवं ... पुनः ।
योगिनीकूटमुच्चार्य्य फेत्कारीकूटमुद्धरेत् ॥११८॥
वामनेत्रयुतं बीजं भजतां कामदं महत् ।
तारमाया हसफ्रें क्रोध च शाकिनीं चरेत् ॥११९॥
उग्रचण्डे समाभाष्य बीजं चण्डेश्वरं ततः ।
महाप्रेतं समाभाष्य वह्नेर्भार्यां लिखेत्ततः ॥१२०॥
श्मशानोग्रचण्डे इत्युक्त्वा वाग्भवपञ्चकं वदेत् ।
ततश्च फेत्कारीकूटं वामनेत्रयुतं स्मरेत् ॥१२१॥
अमृताख्यं ततः स्मृत्वा डाकिनीं वामनेत्रिकाम् ।
फेत्कारीं च ततो देवि वामनेत्रविभूषिताम् ॥१२२॥
रुद्रचण्डा चतुर्थ्यन्ता सानुहृद्वह्निवल्लभा ।
सम्बुद्धयन्ता रुद्रचण्डा वाग्भवपञ्चकं पुनः ॥१२३॥
फेत्कारीकूटं ततो देवि वामनेत्रविभूषितम् ।
चण्डकूटं समाभाष्य डाकिनीं बीजमुद्धरेत् ॥१२४॥
धराकूटं समाभाष्य तुरीयस्वरभूषितम् ।
प्रचण्डायै ततश्चोक्त्वा हृदयं वह्निवल्लभा ॥१२५॥
प्रचण्डे वाग्भवं पञ्च फेत्कारीं मायया युताम् ।
सन्धिकूटं ततश्चोक्त्वा ङेन्ता हि चण्डनायिका ॥१२६॥
ग्लूंकारं च समुच्चार्य्य नमः स्वाहे ततः परम् ।
ततश्चण्डनायिके च वाग्भवपञ्चकं ततः ॥१२७॥
तथैव फेत्कारीकूटं कूटं च ब्रह्मनिर्मितम् ।
चण्डेश्वरं ततो देवि वामाक्षि बिन्दुसंयुतम् ॥१२८॥
महाप्रेतं समुच्चार्य क्लीं हृद्वह्निवल्लभा ।
चण्डे चोक्त्वा महादेवि वाग्भवपञ्चकं वदेत् ॥१२९॥

फेत्कारीकूटं तथेशानि नादं वामाक्षि संयुतम् ।
चण्डवत्यै ततश्चोक्त्वा क्ष्म्लूं कारं हृदयं तथा ॥१३०॥
स्वाहा चण्डवति चोक्त्वा वाग्भवपञ्चकं पुनः ।
फेत्कारीकूटं तथा देवि वायुकूटं ततो वदेत् ॥१३१॥
डाकिनीं च ततो देवि वामनेत्रविभूषिताम् ।
अतिप्रेतं समाराध्य चातिचण्डां महेश्वरि ॥१३२॥
चतुर्थ्यन्तां च हृदयममृतं बीजमुद्धरेत् ।
नमःस्वाहे चातिचण्डे वाग्भवपञ्चकं चरेत् ॥१३३॥
फेत्कारीकूटं देवेशि श्मशानकूटकं पुनः ।
डाकिनीं च समाभाष्य वामनेत्रविभूषिताम् ॥१३४॥
महाप्रेतं तथोच्चार्य चण्डिकायै स्मरेत्ततः ।
रौद्रबीजं समुच्चार्य्य नमःस्वाहे ततः परम् ॥१३५॥
चण्डिके च तथोच्चार्य्य वाग्भवपञ्चकं पुनः ।
फेत्कारीकूटं चोच्चार्य्य स्हफ्रींकारं तदनन्तरम् ॥१३६॥
कामक्रोधौ—कारश्च क्लह्रींकारं तदनन्तरम् ।
कात्यायन्यै ख्फ्रेंकारं च कामदायिन्यै ततः परम् १३७॥
हूंकारं च नमःस्वाहे ज्वालाकात्यायनि ततः ।
वाग्भवान् पञ्च संलिख्य कामक्रोधौ रमा ततः ॥१३८॥
द्रावणं च समुच्चार्य्य महिषमर्दिनि ततः ।
श्रीकारं चैव देवेशि वाग्भवाः पञ्च एव च ॥१३९॥
उन्मत्तमहिषमर्दिनि च ततः परम् ।
ततो वाग्भवान् पञ्च नक्षत्रकूटं संलिखेत् ॥१४०॥
शंखकूटं ततश्चोक्त्वा महामहेश्वरि वदेत् ।
ततश्च तुम्बुरेश्वरि वह्निजाया ततः परम् ॥१४१॥

तुम्बुरेश्वरि ततश्चोक्त्वा तारत्रपे ततः परम् ।
कामक्रोधामृतांश्चैव पाशं वाग्भवमेव च ॥१४२॥
क्रोधप्रेतौ शाकिनी च चैतन्यभैरवि तथा ।
शाकिनी च प्रेताङ्कुशौ पाशवागमृतक्रोधाः ॥१४३॥
काममाये तारास्त्रे च द्विठश्चैतन्यभैरवि ।
वाग्भवाः पञ्च च तदा तदा मुण्डमधुमती ॥१४४॥
चतुर्थ्यन्ता समुच्चार्य्या तथैव शक्तिभूतिनी ।
ततो मायात्रयं चोक्त्वा फट्कारं मधुमत्यपि ॥१४५॥
सम्बुद्धयन्ता समुच्चार्य्या वद वद ततः परम् ।
वाग्वादिनि प्रेतबीजं बिन्दुनादसमन्वितम् ॥१४६॥
विसर्गहीनं चोच्चार्य्यं क्लिन्नक्लेदिनि ततः परम् ।
महाक्षोभं कुरु तदा प्रेतबीजमतः परम् ॥१४७॥
वाग्वादिनी भैरवि च माया च शाकिनी तथा ।
स्फ्रेंकारश्च समुच्चार्य्य कामबीजं ततः परम् ॥१४८॥
पूर्णेश्वरि सर्वकामान् पूरयानु तारं लिखेत् ।
अस्त्रं स्वाहा पूर्णेश्वरि सम्बोध्यन्ता ततः परम् ॥१४९॥
वाग्भवपञ्चकं चैव रक्तरक्ते ततो लिखेत् ।
महारक्तचामुण्डेश्वरि चैव ततः परम् ॥१५०॥
अवतरद्वयं चैव वह्निपत्नी तदा प्रिये ।
ततो रक्तचामुण्डेश्वरि संलिख्य माहेशि ॥१५१॥
तारत्रपारमास्त्रिपुरावागीश्वरी तथा ।
ङेऽन्ता नमः समुच्चार्य्य पुरा वागीश्वरि तथा ॥१५२॥
हसें बीजं तदा देवि कूटं मारं तथा परम् ।
महाप्रेतं ततः कालभैरवि च ततः परम् ॥१५३॥

निशाकूटकूर्च्चकूटौ तुङ्गप्रतुङ्गकूटकौ ।
चण्डवारुणि संप्रोच्य तारमघोरे च तदा ॥१५४॥
पाशयुक्तं हृकारञ्च घोरे तदनु वदेत् ।
त्रपा घोरघोरतरे दीर्घं तनुच्छदं ततः ॥१५५॥
सर्वतः शर्वशर्वे च ह्लेंकारं च ततः प्रिये ।
नमस्ते रुद्ररूपे च ह्रविसर्गौ ततः शृणु ॥१५६॥
प्रणवं च तथा घोरे त्रपालक्ष्म्यङ्कुशा अपि ।
कामाङ्गना वाग्भवाश्च गारुडं योगिनी प्रिये ॥१५७॥
शाकिनी च कालीबीजं फेत्कारी तदनन्तरम् ।
क्रोधबीजं अघोरे च सिद्धि मे देहि दापय ॥१५८॥
वह्निजायां ततो दद्याद्धनदानु घोरे वदेत् ।
तारमाये शाकिनी च क्रोधबीजं च पार्वति ॥१५९॥
महादिग्वीर तदा वाग्रमास्मरपाशकाः ।
मुक्तकेशि चण्डाट्टहासिनि योगिनी तथा ॥१६०॥
वधूकाल्यमृतान्युक्त्वा मुण्डमालिनि संवदेत् ।
ततस्तारं वह्निजायां दिगम्बरि च तारकम् ॥१६१॥
वाक्त्रपाकामकमलाकालेश्वरि ततो हरेत् ।
सर्वमुखस्तम्भिनि च सर्वजनमनोहरि ॥१६२॥
सर्वजनवशंकरि सर्वदुष्टनिर्मर्द्दिनि ।
सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि छिन्धि शृंखलां ततः ॥१६३॥
त्रोटयद्वितयं प्रोच्य सर्वशत्रून् वदेत् प्रिये ।
जम्भयद्वितयं चोक्त्वा द्विषां निर्द्दलयद्वयम् ॥१६४॥
सर्वान् स्तम्भय द्वितयं मोहनास्त्रेण द्वेषिणः ।
उच्चाटयद्वयं प्रोक्त्वा सर्ववश्यं कुरुद्वयम् ॥१६५॥

वह्निपत्नी देहि युगं ततः सर्वं स्मरेत्प्रिये ।
कालरात्र्यै कामिन्यै च गणेश्वर्य्यै नमस्तदा ॥१६६॥
कालरात्रि ततश्चोक्त्वा तारवाग्भवपाशकाः ।
ततः कलारामकलां सबिन्दुं शृणु पार्वति ॥१६७॥
एह्यहि भगवति ततः किरातेश्वरि ततः परम् ।
विपिनकुसुमावतंसिनि कर्णे ततः प्रिये ॥१६८॥
भुजगनिर्मोचकञ्चुकिनि मायाद्वयं ततः ।
सबिन्दुकं ह्लद्वयञ्च कहद्वयं ज्वलद्वयम् ॥१६९॥
प्रज्वलद्वितयं देवि सर्वसिद्धि ददद्वयम् ।
देहिद्वयं दापय च सर्वशत्रून् दहद्वयम् ॥१७०॥
बन्धद्वयं पठद्वयं मथद्वयं महेश्वरि ।
विध्वंसयद्वयं प्रोच्य कवचत्रितयं ततः ॥१७१॥
अस्त्रहृद्वह्निभार्य्या च किरातेश्वरि संवदेत् ।
वाग्भवपञ्च च तथा वज्रकुब्जिके ततः स्मरेत् ॥१७२॥
प्रलयबीजं प्राणेशि त्रैलोक्यार्काषिणि तत ।
त्रपाकामांगद्राविणि स्मराङ्गणे ततोऽनघे ॥१७३॥
महाक्षोभकारिणी ततो वाग्भवो मीनकेतनः ।
द्विबिन्दुकश्चन्द्रबीजश्चतुर्द्दशस्वरान्वितः ॥१७४॥
द्विबिन्दुकं पुनश्चन्द्रं ततो वज्रकुब्जिके च ।
नमो भगवति तदा ततो घोरे महेश्वरि ॥१७५॥
भोगबीजं ततो देवि श्रीकुब्जिके ततः परम् ।
सानुबीजं सकारञ्च जीवारूढं रेफान्वितम् ॥१७६॥
कलया भूषितं ज्ञेयं तदुत्तरं शृणु प्रिये ।
बीजं तत्परमेशानि वामकर्णविभूषितम् ॥१७७॥

ङ ञ ण न म उच्चार्यं अघोरामुखि तत्परम् ।
छकारं बिन्दुसहितमाद्यदीर्घत्रयान्वितम् ॥१७८॥
क्रमेण त्रीणि बीजानि संलिख्य प्राणवल्लभे ।
किलिद्वयं ततो विच्चे पादुकां पूजयाम्यपि ॥१७९॥
नमः समयकुब्जिके तारमैधत्रपास्मराः ।
शाकिनी प्रलयश्चैव फेत्कारी तदनन्तरम् ॥१८०॥
भाषाख्यकूटं ततो देवि चतुर्थस्वरभूषितम् ।
षष्ठस्वरविहीनं च भगवति वदेत्ततः ॥१८१॥
विच्चे घोरे ततोऽपि स्यात्फेत्कारी वाग्भवान्विता ।
श्रीकुब्जिके ततः पश्चात्सानुबीजं ततः परम् ॥१८२॥
तदेव षष्ठस्वरेण समुद्धरेन्महेश्वरि ।
प्रेतबीजं विसर्गहीनं ङ ञ ण न म इत्यपि ॥१८३॥
अघोरामुखि तदा छस्य बीजत्रयं तथा ।
किलि किलि ततो विच्चे कामिनी क्रोध एव च ॥१८४॥
प्रेतबीजं पादुकां च पूजयामि नमः स्वाहा ।
मोक्षकुब्जिके ततोऽपि स्यान्नमो भगवति तथा ॥१८५॥
सिद्धे तदा महेशानि प्रलयत्रयमुद्धरेत् ।
दीर्घाद्यत्रयसंयुक्तं कुब्जिके तदनन्तरम् ॥१८६॥
सानुत्रयं तथा देवी दीर्घत्रयविभूषितम् ।
खगे ततो वाग्भवश्च अघोरे तदनन्तरम् ॥१८७॥
अघोरामुखि ततः किलि द्वयं तथोद्धरेत् ।
विच्चे पादुकां चोक्त्वैव पूजयामि नमस्ततः ॥१८८॥
भोगकुब्जिके तथैव मैधत्रपारमास्तथा ।
फेत्कारी च जीवषान्तौ वह्न्यारूढौ तारान्वितौ ॥१८९॥

भगवत्यम्ब ततः कूटं प्राभातिकं ततः ।
पुनस्तदेव कूटं स्यान्सकाराद्यं च चिन्तयेत् ॥१६०॥
कुब्जिकायै तथोच्चार्य्य नकुलीशसकारकौ ।
ब्रह्मेन्द्रगौरी च तदा बिन्दुं च कलयान्वितम् ॥१६१॥
जीवश्चन्द्रश्च ब्रह्मा च एकादशस्वरस्तथा ।
गौरीबीजं परे दत्वा षष्ठस्वरविभूषितम् ॥१६२॥
ततो ङञणनमेति अघोरामुखि संलिखेत् ।
पूर्ववत्त्रीणि बीजानि छकारस्य समुद्धरेत् ॥१६३॥
किलि किलि ततो विच्चे मानुषान्तौ रेफारूढ़ौ ।
तारान्वितौ फेत्कारी च रमा माया मैधा अपि ॥१६४॥
ततो जय कुब्जिके हि मैधमायारमास्तथा ।
ततः साद्यप्रलयं च प्रेतं विसर्गहीनकम् ॥१६५॥
बिन्दुयुक्तं ततः पश्चाद् भगवत्यम्व इत्यपि ।
ततः प्राभातिकं कूटं साद्येन तद्द्वितीयकम् ॥१६६॥
बामकर्णविहीनं च कलया मण्डितं प्रिये ।
कुब्जिके च ततश्चोक्त्वा बालाकूटं ततः परम् ॥१६७॥
तत्कूटं च द्वयं लेख्यं तुरीयषष्ठभूषितम् ।
ततो ङञणनम अघोरामुखि संवदेत् ॥१६८॥
छां छीं किलि किलि ततो विच्चेऽस्त्रं वह्निवल्लभा ।
क्रोधास्त्रं वह्निपत्नी च हृद्वाक्त्रितयं ततः ॥१६९॥
ततः सिद्धिकुब्जिके [च] मैधमायारमा अपि ।
प्रलयं प्रेतबीजं ततो देविकूटं वाराहिकं ततः ॥२००॥
साद्यं तदेव कूटं स्याद् द्वितीयं परमेश्वरि ।
रैफस्थाः सह पान्ताश्च कलाबिन्दुसमन्विताः ॥२०१॥

षष्ठस्वरविहीनं तु कलाबीजेन भूषितम् ।
एतद्बीजं समाभाष्य कुब्जिके तदनन्तरम् ॥२०२॥
मायाद्वयमागच्छद्वयं तत्र विचिन्तयेत् ।
आवेशयद्वयं प्रोच्य वेधयद्वयमाहरेत् ॥२०३॥
मायाद्वयं तथैवोक्त्वा द्वितीयं च वाराहिकम् ।
संलिख्य द्वितीयं कूटं मूलवाराहिकं ततः ॥२०४॥
नमःस्वाहे तथा चोक्त्वा आवेशकुब्जिके ततः ।
माहेन्द्राख्यं ततः कूटं फेत्कारीबीजमुद्धरेत् ॥२०५॥
पित्स [?] कूटं ततो भद्रे मार्ज्जाराख्यं ततः प्रिये ।
मणिकूटमृषिकूटं कूटं सारङ्गकं ततः ॥२०६॥
वाग्भवपञ्चकं ततः कालि कालि ततः परम् ।
महाकालि मांस इति शोणितभोजिनि ततः ॥२०७॥
ह्रां ह्रीं ह्रूं रक्तकृष्णमुखि समुद्धरेत्ततः ।
देवि मा मां पश्यन्त्विवति शत्रव इति संवदेत् ॥२०८॥
श्रीहृदयशिवदूति श्रीपादुकां ततः परम् ।
पुजयामि ह्रांकारं च हृदयाय नमस्ततः ॥२०९॥
हृदय शिवदूति च मैधपञ्चकमुद्धरेत् ।
नमो भगवति तदा दुष्टचाण्डालिनि ततः ॥२१०॥
रुधिरमांसभक्षिणि कपालखट्वाङ्ग तथा ।
ततः पश्चाद्धारिणि च हनयुग्मं वदेत्ततः ॥२११॥
दहयुग्मं पचयुग्मं मम शत्रून् ग्रसद्वयम् ।
मारयद्वितयं प्रोच्य क्रोधत्रयं ततः प्रिये ॥२१२॥
फट्शिरः शिवदूतीति श्रीपादुकां पूजयामि ।
ह्रीं शिरसे ततः स्वाहा शिरः शिवदूति ततः ॥२१३॥

वाग्भवपञ्चकं ततः प्रलयत्रयमाहरेत् ।
आद्यदीर्घत्रयं कृत्वा महापिंगल ततः ॥२१४॥
जटाभारे विकटरसनाकराले संवदेत् ।
सर्वसिद्धिं देहि देहि दापयद्वितयं वदेत् ॥२१५॥
शिखाशिवदूति ततः श्रीपादुकां पूजयामि ।
दीर्घतनुच्छदं ततः शिखायै च वषट् ततः ॥२१६॥
शिखाशिवदूति ततो वाग्भवपञ्चकं ततः ।
महाश्मशानवासिनि घोराट्टहासिनि ततः ॥२१७॥
विकटतुङ्गकोकामुखि मायास्मरौ तथा ।
हरिजायामहापातालतुलितोदरि संवदेत् ॥२१८॥
भूतवेतालसहचारिणि संलिख्य चानघे ।
कवचशिवदूति च श्रीपादुकां ततः स्मरेत् ॥२१९॥
पूजयामि कवचाय क्रोधबीजं स्मरेत्ततः ।
कवचशिवदूति हि मैधानां पञ्च एव च ॥२२०॥
लेलिहानरसना तु भयानके वदेत्ततः ।
विस्रस्तचिकुरभारभासुरे संवदेत् प्रिये ॥२२१॥
चामुण्डा भैरवी ततो डाकिनीगण चेत्यपि ।
परिवृते शाकिनी च डाकिनी क्रोध एव च ॥२१२॥
आगच्छ द्वितयं प्रोच्य सान्निध्यं कल्पयद्वयम् ।
त्रैलोक्यडामरे तथा महापिशाचिनि ततः ॥२२३॥
नेत्रशिवदूति तदा श्रीपादुकां तथा प्रिये ।
पूजयामि नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्र इत्यपि ॥२२४॥
शिवदूति समाभाष्य वाग्भवपञ्चकं ततः ।
गुह्यातिगुह्यकुब्जिके त्रिक्रोधमस्त्रमेव च ॥२२५॥

मम सर्वोपद्रवान् मन्त्रतन्त्र ईलि तदा ।
यन्त्रचूर्णप्रयोगादिकान् परकृतान् तदा ॥२२६॥
करिष्यन्ति तान् सर्वान् हनयुग्मं तथोत्तरम् ।
मथयुग्मं मर्दययुगं युगलं परिकीर्तितम् ॥२२७॥
दंष्ट्राकरालि शाकिनी च क्रोधास्त्रे च ततः परम् ।
गुह्यातिगुह्यकुब्जिके ततोऽस्त्रशिवदूति च ॥२२८॥
श्रीपादुकां पूजयामि अस्त्राय फट् तदन्तरम् ।
अस्त्रशिवदूति ततो वाग्भवपञ्चकं तथा ॥२२९॥
क्रोधानां पञ्च आहृत्य कारघोरनादेति च ।
विद्राविद्राविजगत्त्रये ततो मायात्रयं हरेत् ॥२३०॥
प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते ।
स्मरत्रयं पदविन्यासत्रासित इति स्मरन् ॥२३१॥
सकलं पाताले रमात्रयं ततो वदेत् ।
व्यापकशिवदूति च ततो वदेज्जितेन्द्रिय ॥२३२॥
परमशिवपर्यङ्कशायिनि तदनन्तरम् ।
ततः क्रमेण देविशि योगिनीत्रयमुद्धरेत् ॥२३३॥
गलद्रुधिरमुण्डमालाधारिणि संवदेत् ।
घोरघोरतर रूपिणि संवदेत्ततः ॥२३४॥
ततः परं शाकिन्यास्तु क्रमेण त्रयमाहरेत् ।
ज्वालामालिपिङ्गजटाजूटे वदेच्च साधकः ॥२३५॥
अचिन्त्यमहिमबलप्रभावे तदनन्तरम् ।
कामिनीत्रयमुद्धृत्य दैत्यदानव इत्यपि ॥२३६॥
निकृन्तनि ततोऽपि स्यात् श्रृणुष्व परमेश्वरि ।
सकलसुरासुरकार्यसाधिके तदनन्तरम् ॥२३७॥

त्रितारं फट् नमः स्वाहा व्यापकशिवदूति ततः ।
तारत्नपारमाकामवाग्भवाङ्कुशलज्जकाः ॥२३८॥
पाशक्रोधौ महापुरुषप्रासादौ तदनन्तरम् ।
अमृतं गारुडं चैव फेत्कारी तदनन्तरम् ॥२३९॥
चण्डहयग्रीवौ ततो योगिनी शाकिनी तथा ।
मेघोविद्युद्रतिश्चैव प्रेतं स्फ्रोंकारमेव च ॥२४०॥
खेचर्य्यनेहसौ चैव भौजंगमस्तथापरः ।
कालसंकर्षिणि तदा क्रोधौ च वह्निवल्लभा ॥२४१॥
कालसंकर्षिणि पुनर्मधमायारमास्मराः ।
फेत्कारी क्रोधौ तदनु कुक्कुटि क्रींकार तदा ॥२४२॥
पाशाङ्कुशौ शाकिनी च चण्डबोजं ततः परम् ।
अस्त्रद्वयं वह्निजाया कुक्कुटि तदनु स्मरेत् ॥२४३॥
तारं माया ततः कामः कामिनो शाकिनो तथा ।
भ्रमराम्बिके तदनु शत्रुमर्दिनि संवदेत् ॥२४४॥
पाशाङ्कुशप्रासादाश्च क्रोधश्च योगिनी तथा ।
अस्त्रद्वयं हृदयं च वह्नयङ्गना तारा तथा ॥२४५॥
भ्रमराम्बिके तदनु चण्डबीजं ततः स्मरेत् ।
धनदे भुवनेशो च सां सीं सूं तदनन्तरम् ॥२४६॥
ततश्च संकटादेवि संकटेभ्यो मां तथा ।
तारयद्वयं रमाकामौ प्रासादो क्रोध एव च ॥२४७॥
पाशास्त्रे च वह्नयबला संकटादेवि तत्परम् ।
पाशाङ्कुशप्रासादाश्च भोगवति ततः परम् ॥२४८॥
तारमाये समुच्चार्य षादिक्षान्तं समुद्धरेत् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं नव बीजं क्रमेण हि ॥२४९॥

क्रोधश्च हृदयं चैव भगवति वदेत्ततः ।
महार्णवेश्वरि ततस्त्रैलोक्यग्रसनेति च ।।२५०।।
शीले पाशं कलाबीजं वामकर्णं सबिन्दुकम् ।
अस्त्रं च वह्निपत्नी च महार्णवेश्वरि ततः ।।२५१।।
तारबीजं क्षींकारं च पोंकारं चूंकारं तदा ।
ततो भगवति ततो जान्तः षष्ठस्वरान्वितः ।।२५२।।
बिन्दुयुक्तो महेशानि कूटं प्राभातिकं ततः ।
ततो वाराहिकं कूटं सर्वतन्त्रसुगोपितम् ।।२५३।।
चण्डझंकारकापालिनि जय कंकेश्वरि नमः ।
द्विठो जयकंकेश्वरि तारमायापाशास्तथा ।।२५४।।
ङेऽन्ता च शवरेश्वरी नमश्च शवरेश्वरि ।
प्रणवं मैधपाशौ च त्रपारमास्मरास्ततः ।।२५५।।
क्रोधश्च शाकिनीबीजं डाकिनी फेत्कारी तथा ।
पिङ्गले पिङ्गले ततो महापिङ्गले ततः परम् ।।२५६।।
कालीबीजं क्रोधबीजं शाकिनी योगिनी तथा ।
प्रेतकाल्यावङ्कुशं च शाकिनी कामिनी तथा ।।२५७।।
रमाचण्डानेहसां च विद्युत्पन्नगद्विठाः पुनः ।
सिद्धिलक्ष्मि ततस्तारं वाक्त्रपाश्रीस्मरा अपि ।।२५८।।
भगवति महा तदा मोहिनि तदनन्तरम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवादिसकलेति वदेत्ततः ।।२५९।।
सुरासुरमोहिनि सकलं प्रवदेत्ततः ।
जनं मोहय मोहय वशीकुरुद्वयं वदेत् ।।२६०।।
कामाङ्गद्राविणि ततः कामाङ्कुशे ततः परम् ।
त्रिकामिनी कामरमे त्रपा मैधं तारं तथा ।।२६१।।

महामोहिनि तदनु वाक्स्मरौ कुलिका तथा ।
ततो बाले हकारं च सकलाश्च स्वरूपकाः ॥२६२॥
माया बीजं समुद्धार्य्य हसकहलह्रीं ततः ।
सकलह्रीं तदनु त्रिपुरसुन्दरि ततः ॥२६३॥
हूं नमो मूकाम्बिकायै वादिनो मूकयद्वयम् ।
पाशबीजं कामबीजं मायाबीजं ततः परम् ॥२६४॥
बिन्दुविसर्गसहितं रुद्रस्वरविहीनकम् ।
तत्त्वबीजं आदित्यश्च शक्रस्वरंविभूषितम् ॥२६५॥
वह्निचङ्गना च तदनु मूकाम्बिके ततः प्रिये ।
माया च नाकुलं चैव क्रोधास्त्रे तदनन्तरम् ॥२६६॥
एकजटे ततः पश्चात् त्रपानाकुलक्रोधकाः ।
नीलसरस्वति ततस्तारत्रपा ततः परम् ॥२६७॥
नाकुलेर्ष्ये च तदनु फट्कारं तदनन्तरम् ।
उग्रतारे च तदनु तारमामायास्तथा ॥२६८॥
मैधं वज्रवैरोचनीये ईर्ष्याद्वयं ततः परम् ।
अस्त्रद्विठे छिन्नमस्ते तारं हृदयमेव च ॥२६९॥
भगवत्यै पीताम्बरायै त्रपे सुमुखि ततः ।
वगले विश्वं मे वशं कुरु कुरु तथा ॥२७०॥
द्विठौ वश्यवगले च हूं रक्ष तदनन्तरम् ।
त्रिकण्टकि तदनु च ताराङ्कुशस्मरा अपि ॥२७१॥
कमला हरपत्नी च पाशं जाया क्रोधं तथा ।
जयदुर्ग्गे तदनु च रक्ष रक्ष स्वाहा ततः ॥२७२॥
संग्रामजयदुर्ग्गे च त्रपास्मररुषस्तथा ।
विजयप्रदे तदनु प्रणवं पाशमेव च ॥२७६॥

प्रासादामृतगारुडाः पन्नगास्त्रे ततः परम् ।
ब्रह्माणि तारप्रासादौ ग्लूं आं ह्रीं तदनन्तरम् ॥२७४॥
रमेर्ष्ये च ततोऽपि स्यान्माहेश्वरि वदेत्ततः ।
भुजङ्गविद्युज्जलदाः शाकिनीरतिकालिकाः ॥२७५॥
चण्डकालौ ग्लूंकारं च प्रेतं क्रोधं तथैव च ।
क्रोधमस्त्रद्वयं ततो वह्निजाया ततः परम् ॥२७६॥
माहेश्वरि तदनु त्रपावाणीस्मरास्तथा ।
तारं कौमारि तदनु मयूरवाहिनि ततः ॥२७७॥
शक्तिहस्ते ततः क्रोधं शाकिनी तदनन्तरम् ।
वधूबीजमस्त्रद्वयं वह्निजाया ततः परम् ॥२७८॥
कौमारि तत्परस्तारं नमो नारायण्यै ततः ।
जगत्स्थितिकारिण्यै त्रिकामस्त्रिरमास्ततः ॥२७९॥
पाशकालद्विठानुक्त्वा वैष्णवि प्रणवं ततः ।
हृदयं भगवत्यै वराहरूपिण्यै ततः परम् ॥२८०॥
चतुर्दशभुवनाधिपायै भूपतित्वं वदेत्ततः ।
मे देहि दापय स्वाहा वाराहि तदनु प्रिये ॥२८१॥
तारपाशाङ्कुशक्रोधकालमायास्मरस्त्रियः ।
महाक्रोधः क्षेत्रपाली चण्डकालौ च शाकिनी ॥२८२॥
जिह्वासटाघोररूपे दंष्ट्राकराले ततः स्मृतम् ।
नारसिंहि त्रिप्रासादं ततः क्रोधत्रयं भवेत् ॥२८३॥
अस्त्रद्वयं वह्निजाया नारसिंहि ततोऽप्यनु ।
तारमाररमाक्रोधा इन्द्राणि तदनन्तरम् ॥२८४॥
मायायुग्मं जयद्वन्द्वं क्षेत्रपालिद्वयं ततः ।
अस्त्रद्वयं वह्निजाया इन्द्राणि तदनन्तरम् ॥२८५॥

प्रणवाङ्कुशकाल्यश्च शाकिनी चण्ड एव च ।
योगिनी खेचरी चैव असूया फेत्कारी तथा ॥२८६॥
विद्युत्कालौ रतिश्चैव मायासर्पमहारुषः ।
गारुडं च ततो बीजं चामुण्डे तदनन्तरम् ॥२८७॥
ज्वलयुग्मं हिलियुग्मं किलियुग्मं ततः परम् ।
मम शत्रूंस्ततश्चोक्त्वा त्रासयद्वन्द्वमेव च ॥२८८॥
मारययुगलं ततो हन पच द्वयं द्वयम् ।
भक्षययुगलं ततः कालीयुग्मं ततो हरेत् ॥२८९॥
मायाद्वन्द्वं क्रोधद्वन्द्वमस्त्रद्वन्द्वं द्विठस्ततः ।
चामुण्डे तारहृदये कामेश्वरि पदं ततः ॥२९०॥
कामाङ्कुशे कामप्रदायिके भगवति ततः ।
नीलपताके भगान्तिके पदद्वयं महेश्वरि ॥२९१॥
रतिहृन्मन्त्रोऽस्तु ते ततः परमान्ते गुह्ये तदा ।
ईर्ष्यात्रियं मदने हि मदनान्तदेहे तदा ॥२९२॥
त्रैलोक्यमावेशयेति च क्रोधास्त्रे वह्निवल्लभा ।
नीलपताके ततः पश्चात् कालीद्वयं ततः प्रिये ॥२९३॥
चत्वारः क्रोधास्तदनु चाङ्कुशानां त्रयं तदा ।
रमायुग्मं त्रपायुग्मं योगिनी शाकिनी तदा ॥२९४॥
कामिनीचण्डघण्टे च शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय ।
मारय मारय तदा क्रोधास्त्रे वह्निवल्लभा ॥२९५॥
चण्डघण्टे ततः शत्रून् स्तम्भयद्वितयं हरेत् ।
मारयद्वितयं क्रोधमस्त्रस्वाहे तथोच्चरेत् ॥२९६॥
चण्डघटे तारमायारमाक्रोधाङ्कुशास्तथा ।
काली च कामिनी चैव मन्मथस्तदनन्तरम् ॥२९७॥

ततश्च शाम्भवं कूटमुमाकूटं ततः परम् ।
शम्भुकूटं ततः पश्चात्परापरं च कूटकम् ॥२९८॥
सर्प्पंकूटं ततः पश्चाच्चण्डेश्वरि ततः परम् ।
खेचरी योगिनी चैव शाकिनी गारुडं तदा ॥२९९॥
क्रोधद्वन्द्वमस्त्रद्वन्द्वं स्वाहा चण्डेश्वरि ततः ।
तारमैधपाशमायाक्रोधाङ्कुशा अपि प्रिये ॥३००॥
क्षेत्रपाली च काली च गारुडं शाकिनी तथा ।
अनङ्गमाले ततः स्त्रियमाकर्षयद्वयं ततः ॥३०१॥
त्रुटयुग्मं छेदययुग्मं क्रोधयुग्मं स्मरेत्ततः ।
अस्त्रयुग्मं वह्निजायाऽनङ्गमाले ततः परम् ॥३०२॥
तारवाग्भवमायाश्च रमा स्मरश्च कालिका ।
पाशाङ्कुशौ चण्डक्रोधौ महासूया च फेत्कारी ॥३०३॥
शाकिनीहरसिद्धे च सर्वसिद्धिं कुरुद्वयम् ।
देहिद्वन्द्वं दापय च युग्मं क्रोधत्रयं ततः ॥३०४॥
अस्त्रद्वयं वह्निजाया हरसिद्धे ततः परम् ।
प्रणवाङ्कुशगारुडाः फेत्कारी क्रोधमेव च ॥३०५॥
योगिनी फेत्कारी सम्बुद्धयन्ता ततः परम् ।
ददयुग्मं देहि दापय स्वाहा ततः परम् ॥३०६॥
फेत्कार्य्याः पूर्वरूपं च वाग्रंमापाशमेव च ।
प्रासादक्रोधौ तदनु भूतं प्रेतं तथैव च ॥३०७॥
शाकिनी योगिनी चैव कामिनी मानसं तथा ।
परिभाण्डकापालाः सिद्धिस्तारं तथैव च ॥३०८॥
लवणेश्वरि तदनु हराङ्गना च योगिनी ।
क्रोधस्त्रीशाकिनी चैव नाकुलि तदनु स्मरेत् ॥३०९॥

तारमैधपाशक्रोधा मायारमाक्रोधस्मराः ।
कालबीजं च तदनु मृत्युहारिणि तत्परम् ॥३१०॥
तारवाग्भवमायाश्च क्रोधश्च हृदयं तथा ।
भगवति रुद्रवाराहि रुद्रतुण्डप्रहारे च ॥३११॥
जयबीजयुगं देव्याः सिद्धयुग्मं ततः परम् ।
सर्वोत्पातान् प्रशमय प्रशमय तथा परम् ॥३१२॥
हरेः पुत्रस्ततो जाया योगिनी स्त्री च शाकिनी ।
हृदयं वह्निजाया च वज्रवाराहि ततः परम् ॥३१३॥
तारमाये क्षेत्रपाली अङ्कुशं हं त्रयं तथा ।
हयग्रीवेश्वरि ततश्चतुर्वेदमयि तदा ॥३१४॥
शाकिनी योगिनी चैव कामिनी क्रोधमेव च ।
सर्वविद्यानां मय्यधिष्ठानं कुरुद्वयं ततः स्वाहा ॥३१५॥
हयग्रीवेश्वरि ततो वेदाद्या वाग्भवस्तथा ।
पाशं माया तत्त्वबीजं एहीनं च द्विविन्दुकम् ॥३१६॥
परमहंसेश्वरि तदा कैवल्यं साधय स्वाहा ।
परमहंसेश्वरि पुनस्तारं माया रमात्रयम् ॥३१७॥
स्मरयुग्मं निर्विकारस्थचिदानन्दघनेति च ।
रूपायै मोक्षलक्ष्म्यै च अमितानन्त इत्यपि ॥३१८॥
शक्तितत्त्वायै तदनु स्मरयुग्मं रमात्रयम् ।
मायातारौ मोक्षलक्ष्मि तारकाल्यौ नमस्ततः ॥३१९॥
ङेऽन्ता ब्रह्मवादिनी च काली तारं नमस्तथा ।
वह्निजाया मायाबीजं कामक्रोधौ च शाकिनी ॥३२०॥
शातकर्णि महाघोररूपिणि तारमेव च ।
कमलायोगिनीरामाः फट्द्वन्द्वं वह्निसुन्दरी ॥३२१॥

शातकर्णि ततस्तारे ज्वलयुग्मं ततः परम् ।
प्रज्वलद्वितयं ततो महेश्वरि शृणुष्व मे ।।३२२।।
सर्वमुखरूपे तदा जातवेदसि तदनन्तरम् ।
ब्रह्मास्त्रेण नाशयेति सचराचरं ततः परम् ।।३२३।।
जगत्स्वाहा तदनु जातवेदसि ततः परम् ।
तारपाशवाग्भवाश्चाङ्कुशकालीरमास्तथा ।।३२४।।
कामक्रोधौ शाकिनी च महानीले ततः परम् ।
प्रलयाटोपघोरेति नादघुर्घुरे वदेत्ततः ।।३२५।।
आत्मानमुपशमय जूँ सः स्वाहा ततः परम् ।
महानीले ततस्तारं कामसिद्धस्मरास्ततः ।।३२६।।
ततो नु ब्रह्मविद्ये च जगद्ग्रसनशीले तु ।
महाविद्ये ततो माया क्रोधं ह्लीं च ततः परम् ।।३२७।।
विष्णुमाये समाभाष्य क्षोभयद्वितयं हरेत् ।
कामाङ्कुशपाशाश्चापि निरञ्जनं ततः शिवे ।।३२८।।
सर्वास्त्राणि ग्रस ग्रस हूं फट् तारं तथैव च ।
निरञ्जनं समाभाष्य वगलामुखि ततः परम् ।।३२९।।
सर्वशत्रून् स्तम्भय स्तम्भयेति लिखेत्परम् ।
तथा ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्रायेति संस्मरेत् ।।३३०।।
क्रोधकामनिरञ्जनास्तारं हृद्वह्निसुन्दरी ।
विष्णुमाये तदनु च तारं ह्लीं शाकिनी तथा ।।३३१।।
डाकिनी च रमाबीजं कामक्रोधौ च योगिनी ।
कामिनी च गुह्येश्वरि महागुह्येति संवदेत् ।।३३२।।
विद्यासंप्रदायबोधिके पाशाङ्कुशामृतान्यपि ।
अस्त्रं कृष्णलोहिततनूदरि प्रासादमेव च ।।३३३।।

अध्वा चैवं मनोऽस्त्रं च हृदयं द्विठमेव च ।
गुह्यचेश्वरि ततश्चैव तारं हृदयमेव च ।।३३४।।
श्वेतपुण्डरीकासनायै प्रतिसमरेति च ।
विजयप्रदायै भगवत्यै अपराजितायै ततः परम् ।।३३५।।
हरपत्नी हरिपत्नी हरिपुत्रस्ततः परम् ।
फट्कारं च वह्निनारी प्रणवं चापराजिते ।।३३६।।
सम्बोध्यान्ते च प्रणवं माया हं बीजमुत्तमम् ।
अध्वा चैव महाविद्ये मोहय विश्वकर्मकम् ।।३३७।।
वाग्रमाकामबीजं च त्रैलोक्यमावेशयेति च ।
क्रोधमस्त्रद्वयं चोक्त्वा महाविद्ये ततः परम् ।।३३८।।
वाग्भवः प्रेतबीजं च डाकिनी तदनन्तरम् ।
मनःकूटं समाभाष्य एह्येहि भगवति ततः ।।३३९।।
वाभ्रवि तदनुस्मृत्य महाप्रलय चेत्यपि ।
ताण्डवकारिणि तदा गगनग्रासिनि ततः ।।३४०।।
रमाक्रोधौ योगिनी च कामिनी शाकिनी तथा ।
शत्रून् हन हन चेति सर्वैश्वर्य्यं दद द्वयम् ।।३४१।।
महोत्पातान् विध्वंसय विध्वंसयेति चाहरन् ।
सर्वरोगान्नाशय नाशयेति ततः परम् ।।३४२।।
वेदमस्तककमलाकामप्रासादपाशकाः ।
महाकृत्याभिचारग्रहदोषान्निवारय ।।३४३।।
निवारय मथ द्वन्द्वमङ्कुशं कालमेव च ।
अमृतं प्रलयं चैव फेत्कारी तदनन्तरम् ।।३४४।।
वह्न्यङ्गना वाभ्रवि च तारमायारमास्तथा ।
क्रोधं भगवति ततो महाडामरि तत्परम् ।।३४५।।

डमरुहस्ते तदनु नीलपीतमुखि ततः ।
जीवब्रह्मगलनिष्पेषिणि ततो हरेत्सुधीः ॥३४६॥
योगिनी कामिनी चैव शाकिनी डाकिनी तथा ।
महाश्मशानरङ्गचर्च्चरीगायिके ततः ॥३४७॥
तुरुयुग्मं मर्दयुग्मं मर्दययुगमेव च ।
फेत्कारी वह्निजाया च डामरि तदनु स्मरेत् ॥३४८॥
तारमाया शाकिनी च वेतालमुखि तत्परम् ।
चर्च्चिके तदनु क्रोधं योगिनी कामिनी तथा ॥३४९॥
ज्वालामालि ततः पश्चाद्विस्फुलिङ्गरमणि हि ।
महाकापालिनि तदा कात्यायनि ततः परम् ॥३५०॥
रमास्मरी डाकिनी च कहयुग्मं धमद्वयम् ।
ग्रसद्वन्द्वं ततः पाशाङ्कुशौ प्रासादमेव च ॥३५१॥
नरमांसरुधिरपरिपूरितकपाले च ।
पीयूषघनशक्तीनां क्रमेण वीजमाहरेत् ॥३५२॥
असूयात्रितयं चास्त्रद्वयं चानलभाविनि ।
चर्च्चिके तदनु मायाद्वयं महामङ्गले ततः ॥३५३॥
महामङ्गलदायिनि अभये भयहारिणि ।
वह्निस्त्री च ततः पश्चादभये तदनन्तरम् ॥३५४॥
तारवाग्भवचामुण्डाः प्रासादं प्रेतमेव च ।
उत्तानपादे तदनु एकवीरे ततः परम् ॥३५५॥
हसयुग्मं गाययुग्मं नृत्ययुगलमेव च ।
रक्षद्वयं महाक्रोधचण्डकालास्तथैव च ॥३५६॥
सर्प्पबीजं रतिवीजं पाशघण्टामुण्डेत्यपि ।
खट्वाङ्गधारिणि ततोऽस्त्रद्वयं हृदयं द्विठः ॥३५७॥

एकवीरे ततः पश्चात् तारत्रपाक्रोधास्तथा ।
वाणीरमामारपाशाङ्कुशप्रासादास्तदनन्तरम् ॥३५८॥
भगवति महाघोरकरालिनि ततः परम् ।
तामसि महाप्रलयताण्डविनि ततः परम् ॥३५९॥
चर्च्चरीकरतालिके ततो जयद्वयं स्मरेत् ।
जननि तदनु स्मृत्वा जम्भ जम्भ ततः परम् ॥३६०॥
महाकालि तदनु च कालनाशिनि ततः परम् ।
भ्रामरि भ्रामरि ततो डमरुभ्रामिणि तथा ॥३६१॥
मैधस्मरौ तथा भूतं योगिनी कामिनी ततः ।
शाकिनी डाकिनी चैव प्रलयः फेत्कारी तथा ॥३६२॥
ततोऽस्त्रं हृदयं चैव वैश्वानराङ्गना ततः ।
तामसि तदनु स्मृत्वा तारवाण्यौ ततः परम् ॥३६३॥
समरविजयेत्युक्त्वा दायिनि तदनन्तरम् ।
मत्तमातङ्गेति ततो यायिनि तदनन्तरम् ॥३६४॥
रमाबीजं पाशबीजं हरपत्नी ततः परम् ।
भगवति ततः पश्चाज्जयन्ति तदनन्तरम् ॥३६५॥
समरे जयं तदनु देहि देहि ततः परम् ।
मम शत्रून् विध्वंसय विध्वंसयेति तत्परम् ॥३६६॥
विद्रावययुगं तदा भञ्जद्वयं तथापरम् ।
मर्दययुगलं ततस्तुरुयुग्मं तथा वदेत् ॥३६७॥
हर्य्यङ्गनाहरिसुतौ कामिनी तदनन्तरम् ।
हृदयं वह्निजाया च जयन्ति तदनन्तरम् ॥३६८॥
ताररमापाशाङ्कुशस्मरक्रोधास्ततः परम् ।
धनदा त्र समाधिश्च एकानंशे ततः परम् ॥३६९॥

डमरु डामरि नीलाम्बरे नीलविभूषणे।
नीलनागासने ततः सकलसुरासुरानिति ॥३७०॥
वशे कुरु कुरु तदा जन्यिके कन्यिके ततः।
सिद्धिदे वृद्धिदे ततो योगिनी कामिनी तथा ॥३७१॥
क्रोधस्मरौ शाकिनी च प्रासादं फट्कारं ततः।
वह्निजाया ततः पश्चादेकानंशे ततः परम् ॥३७२॥
वाग्भवं ब्रह्मवादिन्यै ब्रह्मरूपिण्यै द्विठस्तथा।
तदन्ते ब्रह्मरूपिणि तारत्रपारमास्मराः ॥३७३॥
असूया भगवति तथा नीललोहितेश्वरि ततः।
त्रिभुवनं रञ्जय रञ्जय सकलेति च ॥३७४॥
सुरासुरानाकर्षयाकर्षय हृदयं तदा।
वह्निजाया नीललोहितेश्वरि ततः परम् ॥३७५॥
वाणी तस्या सपत्नी च त्रिकालवेदिन्यै ततः।
वह्निजाया तदन्ते च त्रिकालवेदिनि ततः ॥३७६॥
वेदशिरश्च कमला भुवनेशी स्मरस्तथा।
कामिनी शाकिनी चैव क्रोधभस्त्रं ततः परम् ॥३७७॥
ब्रह्मवेतालराक्षसि काली महासूया तथा।
चण्डो विष्णुशवावतंसिके ततः परम् ॥३७८॥
योगिनी प्रेतबीजं च पीयूषं तदनन्तरम्।
महारुद्रकुणपारूढे मैधपाशौ ततः शृणु ॥३७९॥
प्रासादमस्त्रत्रितयं हृदयं वह्निवल्लभा।
कोरंगि तारवाण्यौ च रमा ह्रीं स्मर एव च ॥३८०॥
प्रासादक्रोधपाशाश्च योगिनी कामिनी ततः।
क्रोधश्च शाकिनी चैव काली मेघस्तथापरम् ॥३८१॥

वह्निजाया रक्तदन्ति हरपत्नी स्मरस्तथा ।
असूया शाकिनी चैव डाकिनी प्रलयस्तथा ॥३८२॥
फेत्कारी कर्णिका चैव हारः सानुस्तथैव च ।
इष्टिरस्त्रं वह्निजाया भूतभैरवि ततः परम् ॥३८३॥
वाणी रमा पाशकला हृदयं तदनन्तरम् ।
ततः पश्चात् षडाम्नायं परिपालिन्यै ततो वदेत् ॥३८४॥
शोषिण्यै द्राविण्यै ततो नामक्यै भ्रामक्यै ततः ।
जूं बीजं ब्लुं बीजं चैवमादित्यमोकारयुक्तकः ॥३८५॥
कुलकोटिन्यै ततः काकासनायै शाकिनी ततः ।
अस्त्रं द्विठः कुलकुट्टिनि ततस्तारं स्मरस्तथा ॥३८६॥
पीयूषं भुवनेशी च कामिनी क्रोध एव च ।
शाकिनी योगिनी चैव ततश्चण्डं शृणु प्रिये ॥३८७॥
कामाख्यायै फट्कारं च शिरः कामाख्ये ततः परम् ।
मैधपाशौ प्रासादश्च प्रेताङ्कुशकाला अपि ॥३८८॥
चतुरशीतिकोटिमूर्त्तये तदनन्तरम् ।
विश्वरूपायै ब्रह्माण्डजठरायै तारं ततः ॥३८९॥
स्वाहा विश्वरूपे पाशकाले वामकर्णस्ततः परम् ।
ऐं औं क्षेमङ्कर्य्यै ततो द्विठः क्षेमङ्करि ततः ॥३९०॥
वाण्यागमशिरोमायाकन्दर्पास्तदनन्तरम् ।
निगमागमबोधिते सद्योधनपदं ततः ॥३९१॥
भगवति कुलेश्वरि ततः क्रोधास्त्रद्विठकाः ।
कुलेश्वरि वाग्भवश्च कामबीजं ततः परम् ॥३९२॥
ततो जगदुन्मादिन्यै ङेऽन्ता कामङ्कुशा ततः ।
विश्वविद्राविणी ङेऽन्ता स्त्रीपुरुषमोहिनी च ॥३९३॥

चतुर्थ्यन्तां समाभाष्य मायाक्रोधाबलास्तथा ।
वह्निस्त्री च ततः पश्चात्कामाङ्कुशे पदं ततः ।।३९४।।
तारं च हृदयं चैव सर्वधर्मध्वजां ततः ।
ङन्तामुच्चार्य्य ततः सकलसमयाचारेत्यपि ।।३९५।।
बोधितायै ततः क्रोधमावेशिन्यै ततः परम् ।
अस्त्रस्वाहे ततः पश्चादावेशिनि पदं ततः ।।३९६।।
तारत्रपारमाकामयोगिनीकामिनो तथा ।
डाकिनी क्रोधमस्त्रं च करालिनि पदं ततः ।।३९७।।
मायूरिशिखिपिच्छिकाहस्ते सद्यो धनं पदम् ।
खेचरी मेघनाङ्गना ऋक्षकर्णि पदं ततः ।।३९८।।
जालन्धरि पदमाभाष्य मा मां द्विषन्तु शत्रवः ।
नन्दयन्तु भूपतयो भयं मोचय ततः परम् ।।३९९।।
क्रोधास्त्रं वह्निजाया च मायूरिपदमेव च ।
तारमैधामृताङ्कुशा इन्द्राक्षि तदनन्तरम् ।।४००।।
क्रोधास्त्रत्रयमाभाष्य वह्निजाया ततः परम् ।
इन्द्राक्षिपदमाभाष्य काल्यङ्कुशौ ततः परम् ।।४०१।।
हयग्रीवस्ततः सिद्धो मायाचण्डस्ततः घोणकि ।
घोणकिमुखि तुभ्यं नमः स्वाहा ततः [परम्] ।।४०२।।
घोणकि वाक्त्रपापद्माक्रोधकामाश्च शाकिनी ।
योगिनी शाकिनी चैव फेत्कारी तदनन्तरम् ।।४०३।।
भीमादेवि भीमनादे भीमकरालि ततः परम् ।
महाप्रलयचण्डलक्ष्मीः सिद्धेश्वरि ततः परम् ।।४०४।।
जीवहीनं पराकूटं बृहत्कूटमतः परम् ।
रथन्तरं ततः कूटं महाघोरेति संवदेत् ।।४०५।।

घोरतरे भगवति भयहारिणि तत्परम् ।
मां द्विषतो विभाष्यैव निर्मूलययुगं वदेत् ।।४०६।।
विद्रावययुगं चोक्त्वा उत्सादययुगं ततः ।
ततो महाराज्यलक्ष्मीं वितरयद्वयं हरेत् ।।४०७।।
देहियुग्मं दापययुगं डाकिनी प्रलयस्तथा ।
अमृतप्रेतप्रासादा.................ततः परम् ।।४०८।।
क्रोधक्षेत्रपदस्त्राश्च प्रासादस्तत एव च ।
जययुग्मं राक्षसक्षयकारिणि वदेत्ततः ।।४०९।।
तारत्रपा क्रोधास्तदा त्रिठान्तं व्यस्त्रमेव च ।
हृच्छिरसी तदनु भीमादेवी तथापरम् ।।४१०।।
तारवाणीरमामायाक्रोधशाकिन्य एव च ।
डाकिनी प्रलयश्चैव फेत्कारी फंकारं तथा ।।४११।।
प्रविश संसारं तदनु महामाये ततः परम् ।
फें फडिति समाभाष्य ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि ।।४१२।।
विष्णुतनुनिर्दलिनि जे जंभिके ततः परम् ।
स्तें स्तम्भिके छिन्दियुगं भिन्दि दह युगं युगम् ।।४१३।।
मथयुग्मं पचयुग्मं पञ्चशवारूढ़ ततः ।
पञ्चागमप्रिये ततोऽमृतं दस्त्रं च खेचरी ।।४१४।।
रमा कामस्तथा संविः पञ्चपाशुपतेत्यपि ।
अस्त्रधारिणि संप्रोच्य क्रोधत्रितयमेव च ।।४१५।।
अस्त्रद्वयं वह्निजाया ब्रह्मनिकृन्तनि ततः ।
वाक्यांशवेदशिरसस्ततो हृदयमेव च ।।४१६।।
परशिवविपरीताचारकारिणि ततः परम् ।
ह्रीरमाकामयोगिनीकामिन्यस्तत एव हि ।।४१७।।

महाघोरविकरालिनि खण्डार्द्धशिरोधारिणि ।
ततोऽपि भगवत्युग्रे शाकिनी डाकिनी तदा ॥४१८॥
प्रलयफेत्कार्यै च कूटं प्राभातिकं ततः ।
वाराहिकं ततः कूटं क्रोधास्त्रे वह्निवल्लभा ॥४१९॥
भुवनेशी ततः क्रोधमर्द्धमस्तके ततः परम् ।
कालो तारश्च क्रोधं च शाकिनी कामिनी तदा ॥४२०॥
चण्डबीजं ततश्चण्डखेचरि ज्वलयुग्मकम् ।
प्रज्वलद्वितयं चैव निर्म्मांसदेहे नमः ॥४२१॥
द्विठश्चण्डखेचरि हि वेदादिर्नम एव च ।
प्रचण्डघोरदावानलबासिन्यै ततः परम् ॥४२२॥
ह्रीं ह्रूं समयविद्या कुलतत्त्वधारिणी च ।
ङेऽन्ता ज्ञेया ततः पश्चान्महामांसरुधिरप्रिया ॥४२३॥
चतुर्थ्यन्ता समाज्ञेया योगिनी वोजमेब च ।
कामिनी कामवीजं च धूमावत्यै ततः परम् ॥४२४॥
सर्वज्ञाता सिद्धिदायै शाकिन्यस्त्रं शिरस्तथा ।
ततो धूमावति पश्चाद्वाक्त्रपा पाशमेव च ॥४२५॥
ह्लां सौः क्लीं महाभोगिराजभूषणे ततः परम् ।
सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि तदनन्तरम् ॥४२६॥
हूं हूंकारनादभूरितारिणि भगवति ततः ।
हाटकेश्वरि ततः पश्चादमृतं तदनन्तरम् ॥४२७॥
दस्रानन्दौ रौद्रबीजं रमावाग्भवचण्डकाः ।
शाकिनी डाकिनी चैव मम शत्रूनिति स्मरेत् ॥४२८॥
मारय बन्धय द्वौ द्वौ मर्दययुगलं तथा ।
पातययुगलं चैव ततः पश्चान्महेश्वरि ॥४२९॥

धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्य्यं ततो देहिद्वयम् ।
दापययुगलं चैव मानसं तदनन्तरम् ॥४३० ॥
पविकापालभारुण्डाः प्रासादं बीजमेव च ।
पाशमङ्कुशवाण्यौ च तारं हृद्वह्निवल्लभा ॥४३१॥
ह्राटकेश्वरि तदनु वेदादिः पाशमेव च ।
वाणीह्रीकमलाश्चैव शक्तिसौपर्णि तत्परम् ॥४३२॥
कमलासने समुच्चार्य्यं उच्चाटय द्वयं ततः ।
विद्वेषय द्वयं चैव क्रोधास्त्रे वह्निसुन्दरी ॥४३३॥
शक्तिसौपर्णि तदनु तारवाण्यौ त्रपा ततः ।
कमलाकामरुषश्चैव योगिनी कामिनी ततः ॥४३४॥
शाकिनी डाकिनी चैव प्रलयः फेत्कारी तथा ।
मणिमेखला तदनु हारसानू ततः परम् ॥४३५॥
भगवति महामारि जगदुन्मूलिनि ततः ।
कल्पान्तकारिणि तदा शिरोनिविष्टवामचरणे ॥४३६॥
दिगम्बरि ततः पश्चात् समयेति ततः परम् ।
ततः कुलचक्रचूडालये मां रक्ष रक्षेति ॥४३७॥
त्राहियुग्मं पालय युगं प्रज्वलदावानलेत्यपि ।
ज्वालाजटालजटिले ततो हं त्रयमाहरेत् ॥४३८॥
हृदयं वह्निजाया च महामारि ततः परम् ।
वेदादिश्च वाणी चैव रक्ताम्बरे तदनन्तरम् ॥४३९॥
रक्तस्रगनुलेपने महामांसरक्तप्रिये ।
महाकान्तारे तदनु मां त्राहिद्वन्द्वं ततः परम् ॥४४० ॥
रामाकामत्रपाक्रोधशाकिन्योऽस्त्रं शिरस्तथा ।
मङ्गलचण्डि तदनु मायास्त्रं हृदयं तथा ॥४४१॥

चण्डोग्रकालिनि ततः परमशिवशक्ति हि ।
सामरस्य ततः पश्चान्निर्वाणदायिनि ततः ॥४४२॥
नरकङ्कालधारिणि ब्रह्मविष्णुकुणपवाहिनि ।
वाणो वेदशिरश्चैव शाकिनी तदनन्तरम् ॥४४३॥
ततः प्रत्यक्षं परोक्षं मां द्विषन्ति ये तानपि ।
हनयुग्मं नाशययुग्मं कुष्माण्डडाकिनी तदा ॥४४४॥
स्कन्दवेतालभयं नुदयुग्मं ततः परम् ।
कोकामुखि च तदनु स्वाहा तारं त्रपा ततः ॥४४५॥
मदनः शाकिनी चैव क्रोधं तारं त्रपा ततः ।
क्रोधबीजं ततः पश्चात् श्मशानेति वदेत् सुधीः ॥४४६॥
शिखाचारिण्यै भगवत्यै ज्वालाकाल्यै ततः परम् ।
योगिनी कामिनो चैव शाकिनी कालिकापि च ॥४४७॥
चण्डास्त्रहृच्छिरसां ज्वालाकालि तथापरम् ।
वाणी च कमलाकामपाशाङ्कुशाश्च कालिका ॥४४८॥
अतिचण्डं योगिनी च कामिनी तदनन्तरम् ।
ततो घोरनादकालि सिद्धि मे देहि तत्परम् ॥४४९॥
सर्वं विघ्नमुपशमय सिद्धिकरालि तथापरम् ।
ततः सिद्धिविकरालि क्रोधयुगं वदेत्ततः ॥४५०॥
फट् स्वाहा घोरनादकालिपदं माया ततः ।
क्रोधं च शाकिनी चैव डाकिनी योगिनी तथा ॥४५१॥
उग्रकाल्यै खेचरीसिद्धिदायिन्यै ततः परम् ।
परापरकुलचक्रनायिकायै वदेत्ततः ॥४५२॥
अमृतं गारुडं चैव कामिनोक्षेत्रपालिनी ।
कन्दर्पस्त्रिशूलझंकारिण्यै नमः स्वाहा ततः ॥४५३॥

उग्रकालि ततः पश्चात्प्रासादं प्रेतमेव च ।
आदित्यौकारयुक्तश्च काली माया ततः परम् ॥४५४॥
शाकिनी चण्डरुषश्चैव चास्त्रं वेतालकालि हि ।
कमला भुवनेशी च वाणीमन्मथकालिकाः ॥४५५॥
भगवति संहारकालि ब्रह्माण्डं च पिषद्वयम् ।
चूर्णययुगलं मां रक्षद्वयं ततः परम् ॥४५६॥
काल्घनरुषश्चैव क्रोधास्त्रद्वितयं पुनः ।
हृदयं वह्निजाया च संहारकालि तत्परम् ॥४५७॥
तारवाग्भवमायाश्च रमा मीनध्वजस्ततः ।
महाघोरविकटरूपायै तदनन्तरम् ॥४५८॥
ज्वलदनलवदनायै सर्वज्ञतासिद्धिदायै ।
कालीशाकिनीक्रोधाश्च हृदस्त्रं वह्निसुन्दरी ॥४५९॥
रौद्रकालि ततः पश्चात् शाकिनीबीजमुत्तमम् ।
चण्डाट्टाहसिनि ततो डाकिनी तदनन्तरम् ॥४६०॥
ब्रह्माण्डमर्दिनि ततः प्रलयश्च ततः परम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवभक्षिणि तत्परं स्मृतम् ॥४६१॥
फेत्कारी मृत्युमृत्युदायिनि ततः परम् ।
नक्षत्रकूटं तदनु भक्तसिद्धिविधायिनि ॥४६२॥
संबुद्धिपदमुच्चार्य्यं कूटं वाराहिकं ततः ।
भगवति कृतान्तकालि तदनु क्रोधमस्त्रकम् ॥४६३॥
कुण्डलाख्यं ततः कूटं हृदस्त्रवह्निवल्लभाः ।
कृतान्तकालि तदनु तारवाणीरमास्मराः ॥४६४॥
शाकिनी कालिका चैव योगिनी कामिनी तथा ।
क्रोधं भीमकालि च कालीद्वयं ततः परम् ॥४६५॥

महाक्रोधं गारुडं च पन्नगस्तदनन्तरम् ।
प्रेतशिवपर्यंकशायिनि पदमेव च ॥४६६॥
महाभैरवविनादिनि पदमेतत्ततः परम् ।
पशुपाशं मोचय मोचयेति वदेत्सुधीः ॥४६७॥
कामिनी शाकिनी चैव खेचरी चण्ड एव च ।
चण्डकालि क्रोधबीजं फट्द्वयं तदनन्तरम् ॥४६८॥
चण्डकालिपदं चैव औंकारस्थो दिवाकरः ।
दस्रश्च ब्रह्मभारुण्डौ कलाबीजमतः परम् ॥४६९॥
धनकालि धनप्रदे धनं मे देहि दापय ।
कालिकाशाकिनीक्रोधास्ततो विषधरेत्यपि ॥४७०॥
वज्रिणि कामबीजं च रमाहृद्वह्निवल्लभाः ।
धनकालि ततः पश्चात्तारभूतौ ततः परम् ॥४७१॥
सुदीर्घकूटं तदनु मेघो विद्युत्ततः परम् ।
घोरकालि ततः पश्चाद्विश्वं वशीकुरु ततः ॥४७२॥
पुनर्वशीकुरु सर्वं काव्यं साधय द्वयमेव च ।
करालि विकरालि वै योगिनी स्त्री च शाकिनी ॥४७३॥
प्रेतारूढे प्रेतावतंसे त्रपा रमा स्मरस्तथा ।
राजानं तदनुस्मृत्य मोहययुगलं ततः ॥४७४॥
क्रोधास्त्रहृदयाश्चैव घोरकालि ततः परम् ।
बाणो त्रपा रमा कामा योगिनी कामिनी तथा ॥४७५॥
शाकिनी कालिकास्त्रे च द्विठः मंत्रागकालि वै ।
कालीयुग्मं मायायुग्मं क्रोधयुग्मं ततः परम् ॥४७६॥
लेलिहानरसनाकराले तदनन्तरम् ।
रोरूयमानसजीवशिवानक्षत्रमाले च ॥४७७॥

योगिनी स्त्री शाकिनी च प्रेतकालि ततः परम् ।
भगवति भयानके मम भयं ततः परम् ॥४७८॥
अपनय ततः स्वाहा प्रेतकालि ततः परम् ।
तारवाणीत्रपाक्रोधा रतिरानन्द एव च ॥४७९॥
खेचरी च गौरी चैव शाकिनी प्रलयकालि वै ।
प्रलयकारिणि ततो नवकोटि ततः परम् ॥४८०॥
कुलाकुलचक्रेश्वरि दानवः कुर्म्म एव च ।
ब्लूंकारं म्लैंकारं चैव द्रावणं च ततः परम् ॥४८१॥
परमशिवतत्त्वसमयप्रकाशिनि च ।
बिन्दुद्वयान्वितं बीजं जयाख्यं तदनन्तरम् ॥४८२॥
अस्त्रस्वाहा तदनु प्रलयकालि तथा परम् ।
पाशकालीकामरमावाग्भवाश्च ततः स्मृताः ॥४८३॥
विभूतिकालि तदनु सम्पदं मे पुनस्तथा ।
वितरद्वयं सौम्या भव वृद्धिदाभव ॥४८४॥
सिद्धिदा भवेति च जयद्वयं तथापरम् ।
जीवद्वन्द्वं च अंवोजं कापालदक्षनेत्रकौ ॥४८५॥
मानसं चैव स्थाणुं च पविरेंकारमेव च ।
भारुण्डं ठद्वयं चैव फट्कारत्रयमेव च ॥४८६॥
हृदयं वह्निजाया च तारत्रयमतः परम् ।
विभूतिकालि तदनु तारांकुशत्रपास्ततः ॥४८७॥
स्मरश्च योगिनी चैवं शाकिनीस्त्रीरमास्तथा ।
वाग्भवं जयकालि वै परमचण्डे ततः परम् ॥४८८॥
महासूक्ष्मविद्यासमयप्रकाशिनि तथा परम् ।
क्ष्रौंकारं प्लुंकारं चैव व्फ्लुंकारं तदनन्तरम् ॥४८९॥

हृद्वह्निपत्नी तदनु जयकालि ततः परम् ।
वाग्भवं कमला चैव वेदमस्तकमेव च ॥४९०॥
गुरुभिरन्वितं बीजं फ्रंकारं सप्त चोद्धरेत् ।
भोगकालि ततः पश्चात् फेत्कारी तदनन्तरम् ॥४९१॥
त्रेताबीजं फट्त्रयं च स्वाहा भोगकालि ततः ।
क्रोधं च हृदयं चैव कल्पान्तकालि तत्परम् ॥४९२॥
भगवति भीमरावे कान्तं पान्तस्थमेव च ।
रेफसंस्थं चान्तवर्णं वामकर्णविभूषितम् ॥४९३॥
तदन्ते विनियोज्यैवं नादबिन्दुसमन्वितम् ।
इन्द्रारूढो मकारादिवामनेत्रविभूषितम् ॥४९४॥
नादबिन्दुसमायुक्तं द्वितीयं बीजमुद्धरेत् ।
पपञ्चमो वह्निसंस्थो वामनेत्रेण भूषितः ॥४९५॥
सनादं तार्त्तीयबीजं मेघमाले ततः परम् ।
महामारीश्वरि ततो विद्युत्कटाक्षे ततः परम् ॥४९६॥
अरूपे बहुरूपे च विरूपे च ततः परम् ।
ज्वलितमुखि तदनु चण्डेश्वरि तथापरम् ॥४९७॥
सानुः द्रावणः स्वाहा च कल्पान्तकालि तत्परम् ।
तारं च योगिनी चैव क्ष्वेडं वामाक्षिसंयुतम् ॥४९८॥
कला ब्लंकारं च डामरमुखि तत्परम् ।
वज्रशरीरे तदनु क्रोधबीजं ततः परम् ॥४९९॥
सन्तानकालि तदनु फट्कारं द्विठमेव च ।
पुनर्मन्थानकालि च तारबीजं त्रपा ततः ॥५००॥
क्रोधबीजं धर्मकूटं कूटं कुन्दाख्यमेव च ।
ततो वैहायसीकूटं वायवीयकूटं ततः ॥५०१॥

भारुण्डाख्यं ततः कूटं दुर्ज्जयकालि तत्परम् ।
हट्टायुधधारिणि वज्रशरीरे ततः परम् ॥५०२॥
इष्टिबीजं सानुबीजं भारुडण्स्थोऽनलस्तदा ।
कालविध्वंसिनि ततः कुलचक्रराजेश्वरि ॥५०३॥
सर्वैश्च गुरुभिर्युक्तं स्त्रीबीजं नव चोद्धरेत् ।
फट्त्रयं वह्निजाया चं दुर्ज्जयकालि तत्परम् ॥५०४॥
वाणीपाशकलावामकर्णमायारमास्मराः ।
क्रोधं घोराचाररौद्रे महाघोरवाडवेति ॥५०५॥
सन्धिङ्कृत्वा ततोऽग्निं च ग्रसद्वयमतः परम् ।
महाबले महाचण्डयोगेश्वरि नमो द्विठः ॥५०६॥
कालकालि ततो वाणी चामुण्डा तदनन्तरम् ।
ततः पश्चाद्विरिञ्चिश्च महारुद्रान्तमस्तकः ॥५०७॥
ततः पयोबीजं वज्रकालि महाबले ।
धृतिबीजं ततः पश्चान्नारसिंहं ततः परम् ॥५०८॥
सद्यो महाप्रपञ्चरूपे रौषिकानलमित्यपि ।
पतयुग्मं फेरुमुखि ततः पश्चाच्छृणुष्व मे ॥५०९॥
योगिनी डाकिनी खेचरी भूचरी सुरूपिणी ।
तदनु चक्रसुन्दरि महाकालि तथापरम् ॥५१०॥
कापालि तदनुस्मृत्य च मध्यं वह्निर्वीजकम् ।
कलाबिन्दुयुतं स्मृत्वा तान्तस्य च तथैव च ॥५११॥
मणिमेखला तदनु कहद्वयं ततः परम् ।
त्वां प्रपद्ये तुभ्यन्नमः स्वाहा वज्रकालि ततः ॥५१२॥
तारमैधत्रपालक्ष्मीस्मरास्तथा शृणुष्व मे ।
ततः सिद्धियोनि महाराविणि तदनन्तरम् ॥५१३॥

ततः परम्गुह्यातिगुह्यमङ्गले ततः परम् ।
विद्याकालि ततस्त्यष्टा लाङ्गूलं काकिनी ततः ॥५१४॥
उदुम्बरसुदशनो चान्तस्थः कान्त एव च ।
नदवामकर्णयुक्तं रान्तस्थः काल एव च ॥५१५॥
असुरो योगिनी चैव धीवरी च स्वरूपिणी ।
तथैव शवरी पोवरी च तथा शृणु ॥५१६॥
चर्च्चिके भक्षिके तदनु रक्षिके तदनन्तरम् ।
हर्षबीजं ततः पश्चादहर्षं तदनन्तरम् ॥५१७॥
ठत्रयं फट्त्रयं चैव नमः स्वाहा ततः परम् ।
विद्याकालि ततः पश्चात्तारपाशकलास्तथा ॥५१८॥
वाणीभारुण्डकापाला ग्रीं म्रूं म्रैं म्लौं तथा ।
कान्तचान्तचकारान्ता वह्निचामुण्डाश्च पार्वति ॥५१९॥
षष्ठस्वरसमायुक्ता नादबिन्दुविभूषिता ।
ममध्यं रेफबीजं तु कलाबीजममन्वितम् ॥५२०॥
चतुर्दशस्वरोपेतं यान्तं बिन्दुविभूषितम् ।
मौं बीजं तदनुस्मृत्य स्वाहा शक्तिकालि ततः ॥५२१॥
तारं च फेत्कारीकूटं हृदयं तदनन्तरम् ।
चण्डातिचण्डे तदनु मायाकालि ततः परम् ॥५२२॥
कालवञ्चनि तदनु महाङ्कुशे ततः परम् ।
नन्दनाख्यं ततः कूटं पातालनाग चेत्यपि ॥५२३॥
वाहिनि गगनग्रासिनि ब्रह्माण्डनिष्पेषिणि ततः ।
हं त्रयश्च मनस्त्रयं क्रोधत्रयं ततः परम् ॥५२४॥
तारं माया क्रोधं चैव चामुण्डा डाकिनी ततः ।
महाचण्डवज्रिणि च भ्रमरि भ्रामरि ततः ॥५२५॥

महाशक्ति ततश्चक्रकर्त्तरी तदनन्तरम् ।
कुलार्णवचारिणी च फिंकारं फांकारं ततः ॥५२६॥
फें फूं फौं समयेति विद्यागोपिनि तत्परम् ।
किरीटी ताण्डवी हंसी कूटत्रयमतः परम् ॥५२७॥
महाकालि ततः पश्चात् समयलाभं ततः परम् ।
कुरुद्वन्द्वं ततो विद्यां प्रकाशयद्वयं ततः ॥५२८॥
सिद्धो माया चण्डबीजं धर्मबीजं तथा परम् ।
ह्लौं बीजं च जयोबीजं गौरीबीजं तथैव च ॥५२९॥
अस्त्रं च वह्निपत्नी च महाकालि ततः परम् ।
वाग्भवश्च ततः पश्चात्परापरेति संवदेत् ॥५३०॥
रहस्यसाधिके ततः कुलकालि ततः परम् ।
शाकिनो योगिनी चैव कामिनीह्लीरुषस्तथा ॥५३१॥
स्मरामृतं लाङ्गूलं च मस्थः क्षेत्रपाली ततः ।
बिन्दुद्वयेन संयुज्य त्र्यस्त्रं तत्र चाहरेत् ॥५३२॥
कुलकालि ततः पश्चात्तारमायास्मरास्तथा ।
क्रोधं च शाकिनी चैव परापरपरमेत्यपि ॥५३३॥
रहस्यकाली कुलक्रमपरम्पराप्रचारिणि ततः ।
भगवति नादकालि करालरूपिणि ततः ॥५३४॥
मनःकूटं शाकिनी च डाकिनी प्रलयस्तथा ।
फेत्कारीबीजं तदनु मम शत्रूनिति वदेत् ॥५३५॥
मर्दययुगलं चैव चूर्णययुग्ममेव च ।
पातयद्वन्द्वं नाशययुगं भक्षयद्वितयं तथा ॥५३६॥
खेचराख्यं महाकूटं पावित्राख्यं ततः परम् ।
कूटं गजघटाख्यं हि श्रृंखलाकूटमेव च ॥५३७॥

दण्डाख्यकूटं तदनु नवकोटि ततः परम् ।
कुलाकुलचक्रेश्वरि ततः पश्चाद्वदेत्सुधीः ॥५३८॥
सकलगुह्यानन्ततत्त्वधारिणि तदनन्तरम् ।
कूँ चूँ टूँ तूँ पूं मां क्रपय द्वितयं तथा ॥५३९॥
त्रपा क्रोधं शाकिनी च योगिनो कामिनी तथा ।
अस्त्रं च वह्निपत्नी च नादकालि ततः परम् ॥५४०॥
तारं च शाकिनी चैव चतुरशीति तत्परम् ।
कोटिब्रह्माण्ड तदनु सृष्टिकारिणि तत्परम् ॥५४१॥
प्रज्वलज्वलनलोचने वज्रसमदंष्ट्रायुधे ।
दुर्निरीक्ष्याकारे तदनु भगवति ततः परम् ॥५४२॥
मुण्डकालि ततः पश्चात् कहद्वन्द्वं तुरुद्वयम् ।
दमयुग्मं चटयुग्मं प्रचटयुगलं ततः ॥५४३॥
हरिहराख्यं तत्कूटं कूटं कूटाख्यमेव ।
पत्रकूटं ततः पश्चात् सर्वसिद्धि देहि द्वयम् ॥५४४॥
सर्वैश्वर्य्यं तदनु दापययुगलं ततः ।
विद्युदुज्ज्वलजटे वै विकटसटे च ततः ॥५४५॥
महाविकटकटे च त्रपाकामक्रोधास्तथा ।
योगिनी कामिनी चैव शाकिनी हृदयं द्विठः ॥५४६॥
मुण्डकालि ततः पश्चात्तारं वाग्भव एव च
पाशरमाकामत्रपामहाक्रोधास्ततः परम् ॥५४७॥
ततो दस्रस्तथा स्ह्फ्यूँ च चौंकारं क्वींकारं तथा ।
धूमकालि ततः पश्चात्सर्वमेवेति तत्परम् ॥५४८॥
मे वशं च कुरुद्वन्द्वं पाहियुग्ममतः परम् ।
जम्भिके करालिके ततः पूतिके घोणिके ततः ॥५४९॥

खं त्रयमस्त्रहृदये धूमकालि ततः परम् ।
वाण्यङ्कुशौ शाकिनी च योगिनी काम एव च ॥५५०॥
आज्ञाकालि ततः पश्चान्ममाज्ञां राजान इत्यपि ।
ततः शिरसा धारयन्तु क्रोधमस्त्रशिरस्तथा ॥५५१॥
ततः परमाज्ञाकालि तारत्रपे तथैव च ।
चण्डबीजं ड्रींकारं च ड्रैंकारं तिग्मकालि च ॥५५२॥
तिग्मरूपे तिग्मातितिग्मे भ्रमं मोचयेत्यपि ।
स्वं प्रकाशय स्वाहा तिग्मकालि ततः परम् ॥५५३॥
तारं वाणी त्रपा चैव योगिनी कामिनी तथा ।
शाकिनी कमला कामक्रोधस्तथा महाकालि ॥५५४॥
लेलिहानरसनाभयानके ततः परम् ।
घोरतरदशनचर्वितब्रह्माण्डे ततः ॥५५५॥
चण्डयोगेश्वरीशक्तितत्त्वसहिते ततः ।
गाँ जाँ डाँ दाँ राँ प्रचण्डचण्डिनि सद्यो धनं ततः ॥५५६॥
महामारी सहायिनि भगवति भयानके ।
चामुण्डा योगिनी ततो डाकिनी शाकिनी तथा ॥५५७॥
भैरवीमातृगणमध्यगे तदनन्तरम् ।
जयद्वन्द्वं कहयुग्मं हसद्वयं ततः परम् ॥५५८॥
प्रहसयुगलं जम्भयुग्मं तुरुयुगं तथा ।
धावद्वयं श्मशानवासिनि तदनन्तरम् ॥५५९॥
शववाहिनि नरमांसभोजिनि ततः परम् ।
कङ्कालमालिनि ततः फेंकारत्रयमेव च ॥५६०॥
तुभ्यं नमो नमः स्वाहा महारात्रिकालि ततः ।
फेत्कारी च भगवति संग्रामकालि तत्परम् ॥५६१॥

संग्रामे जयमेत्रोक्त्वा देहियुग्मं वदेत्ततः ।
मां द्विषतो मम वशे कुरुद्वयं स्मरेत्सुधीः ॥५६२॥
पाँ पीँ पूँ पैँ पौँ ततश्च ज्वलद्वयं ततः परम् ।
प्रज्वलद्वितयं चैव विद्युत्केशि ततः परम् ॥५६३॥
पातालनयनि तदा ब्रह्माण्डोदरि तत्परम् ।
महोत्पातं प्रशमययुगं मायाक्रोधौ ततः ॥५६४॥
योगिनी कामिनी चैव शाकिनी हृदयं द्विठः ।
संग्रामकालि तदनु वाग्भवः शाकिनी तथा ॥५६५॥
योगिनी क्रोधः क्षेत्रपालीबीजं ततः परम् ।
नक्षत्रनरमुण्डेति मालालङ्कृतायै तदा ॥५६६॥
चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मा ङेन्ता ।
भगवत्यै शवकालिकायै ततः परं शृणु ॥५६७॥
यकारादिक्षकारान्ता वामकर्णविभूषिताः ।
नादबिन्दुसमायुक्ता नवबीजानि चोद्धरेत् ॥५६८॥
दुष्टग्रहनाशिन्यै च शुभफलदायिन्यै च ।
रुद्रासनायै तदनु सानुबीजं समाचरेत् ॥५६९॥
समेखलाजलं चैव हं खं वारत्रयं वदेत् ।
क्रोधत्रयं ठान्तत्रयं फट्त्रयं हृदयं द्विठः ॥५७०॥
शवकालि ततः पश्चाद्वाणी त्रपा तथापरम् ।
सर्वदीर्घयुतं क्रञ्च नादबिन्दुसमन्वितम् ॥५७१॥
पूर्वसंध्यक्षरे हीनं नादहीनं तथा प्रिये ।
क्रमेण षष्ठबीजानि वह्निस्थः क्षेत्रपस्तथा ॥५७२॥
वमदग्निमुखि ततः फेरुकोटिपरिवृते ।
विस्रस्तजटाभारे च भगवनि तथैव च ॥५७३॥

नग्नकालि ततः पश्चाद्रक्ष पाहि द्वयं द्वयम् ।
परमशिवपर्य्यङ्कनिवासिनि तथोच्चरेत् ॥५७४॥
कतृतीयचतुर्थौ च वह्निसंस्थौ कलान्वितौ ।
एवं च पञ्चवर्गाणां बीजानां दश चाहरेत् ॥५७५॥
विकरालमूर्त्तिकतामुपहृत्येति तत्परम् ।
दर्शय क्रोधहृदयं नग्नकालि ततः परम् ॥५७६॥
पाशाङ्कुशवाग्भवाश्च प्रेतबीजं तथापरम् ।
सर्गहीनं प्रेतबीजं त्रस्थं नादकलान्वितम् ॥५७७॥
आनन्दबीजं तदनु डूंकारं त्रिकुटा ततः ।
व्नैं रुधिरकालिकायै निपीतेति स्मरेत्ततः ॥५७८॥
बालनररुधिरायै त्वगस्थिचर्म्मा ततः परम् ।
वशिष्टायै महाश्मशानधावनप्रचलित ॥५७९॥
पिंगजटाभारायै च नारसिंहं ततः परम् ।
थ्रौं चौं फ्रौं ख्रौं ममाभीष्टसिद्धिं ततः ॥५८०॥
देहिद्वन्द्वं वितरयुगलं क्रोधमेव च ।
डाकिनि राकिनि चैव शाकिनि काकिनि तथा ॥५८१॥
लाकिनि हाकिनि चैव सद्यो धनानि चोद्धरेत् ।
नररुधिरं च ततः पिबद्वयं ततः स्मृतम् ॥५८२॥
महामांसं खाद खाद वाग्भवं तारमेव च ।
रमात्रपाकामक्रोधाः शाकिनी योगिनी ततः ॥५८३॥
कामिन्यस्त्रं द्विठश्चैव रुधिरकालि तत्परम् ।
कालीबोजं करङ्कधारिणि तदनन्तरम् ॥५८४॥
कङ्कालकालि तदनु प्रसीदयुगलं ततः ।
विद्यामावाहयामि तवाज्ञया ततः परम् ॥५८५॥

समागत्य मयि चिरं तिष्ठन्तु द्विठ एव च ।
कङ्कालकालि तदनु तारवाणीरमास्तथा ।।५८६।।
पाशकर्णत्रपाकामक्रोधशाकिन्य एव च ।
अतिचामुण्डा क्लीं चैव भगवति ततः परम् ।।५८७।।
भयङ्करकालि ततस्त्रैलोक्यदुर्निरीक्ष्य च ।
रूपे तदनु संभाष्य नवकोटि भैरवी च ।।५८८।।
ततश्चामुण्डाशतकोटिपरिवृते ततः परम् ।
तदनु मम द्विषतो हन मथ द्वयं द्वयम् ।।५८९।।
पच युग्मं विद्रावय युगं पातय चेत्यपि ।
निःशेषय युगं चोक्त्वा सानुबीजं ततः परम् ।।५९०।।
सर्वदीर्घयुतेनैव पूर्वसन्ध्यक्षरे हीनम् ।
बिन्दुसर्गविहीनं च ततश्च हृदयास्त्रके ।।५९१।।
भयङ्करकालि ततस्तारत्रपारमास्मराः ।
योगिनी कामिनी चैव शाकिनी भस्मली तथा ।।५९२।।
पाशहीनं भस्मबीजं षष्ठस्वरविभूषितम् ।
तदेव वाग्भवयुतं ततः पश्चाद्विनिर्द्दिशेत् ।।५९३।।
वह्निः पान्तं तथा वान्तं चतुर्दशस्वरैर्युतः ।
सबिन्दुं बीजमुच्चार्य्यं कर्णिका तदनन्तरम् ।।५९४।।
पपञ्चमं च रेफस्थं मेखलाबीजमेव च ।
मेखला च ततः पश्चाद्वह्निपत्नी ततः परम् ।।५९५।।
फेरुकालि तदन्ते च वाणीक्रोधौ ततः परम् ।
प्रचण्ड चा क्षिविततो विकटकालि ततः परम् ।।५९६।।
फां फीं फूं मुञ्जयुग्मं वलायुग्मं ततः परम् ।
त्रुटयुग्मं हृदयं च द्विठो विकटकालि ततः ।।५९७।।

जयक्रोधौ आये माये तायें प्रचण्डचण्ड वै ।
रक्षिणि भक्षिणि चैव दक्षिणि द्विठ एव च ॥५९८॥
करालकालि तदनु प्रणवः शाकिनी तथा ।
सर्वाभयप्रदे चैव सर्वसम्पत्प्रदे तथा ॥५९९॥
चटिनि वटिनि चैव कटिनि च स्फुरद्वयम् ।
प्रस्फुरयुगलं चैव ग्राँ ग्रीँ ग्रूँ चैव ग्रौँ ग्रः नमः स्वाहा ॥६००॥
तथा शाकिनो डाकिनी चैव तारं वाणी ततः ।
पाशाङ्कुशकालिकाश्च रमामायास्मरास्तथा ॥६०१॥
क्रोधं च योगिनी चैव कामिनी शाकिनी तथा ।
ध्व्रींकारं च त्रिशक्ति च क्षमा कुष्माण्डी तत्परम् ॥६०२॥
घोरघोरतरकालि ब्रह्माण्डबर्हिणि ततः ।
निर्गतमस्तके तवा[था]जटाविधूननेत्यपि ॥६०३॥
चकिततपोलोके ज्वालामालिनि तत्परम् ।
संमोहिनि संहारिणि सन्तारिणि ततः परम् ॥६०४॥
क्लाँ क्लोँ क्लूँ बलि चोक्त्वा गृह्ण खादय युगं युगम् ।
भक्षद्वयं ततः सिद्धि देहिद्वयं ततः परम् ॥६०५॥
मम शत्रूनिति स्मृत्य नाशययुगलं ततः ।
मथयुग्मं विद्रावययुगलं तदनन्तरम् ॥६०६॥
मारययुगं स्तम्भययुगं जम्भययुगलं ततः ।
स्फोटययुगं विध्वंसययुगलं परिकीर्त्तितम् ॥६०७॥
उच्चाटययुगं चापि हर तुरु युगं युगम् ।
दमयुग्मं मर्दयुग्मं भस्मीकुरु युगं तथा ॥६०८॥
सर्वभूतभयङ्करि सर्वशत्रुक्षयङ्करि ।
शाकिनी डाकिनी चैव प्रलयः फेत्कारी तथा ॥६०९॥

ततः सर्वजनसर्वेन्द्रियहारिणि तत्परम् ।
त्रिभुवनमारिणि च संसारतारिणि ततः ॥६१०॥
स्फ्रें स्फ्रौं ज्रौं क्ष्रौं चैव म्लैं क्लों व्लीं तथा ।
श्रीं प्रसीद भगवति नमः स्वाहा ततः परम् ॥६११॥
माया क्रोधश्च कामश्च योगिनी तदनन्तरम् ।
घोरघोरतरकालि ततो नु भुवनेश्वरी ॥६१२॥
शाकिनी चाङ्कुशं चैवामृतं योगिनी तथा ।
कामिनीक्रोधभूताश्च डाकिनी प्रलयस्तथा ॥६१३॥
फेत्कारी चामुण्डा चैव प्रेतबीजं ततः परम् ।
अस्त्रं शिरः कामकलाकालि ततः परं शृणु ॥६१४॥
डाकिनी सानुबीजं च तुङ्गश्चूडा ततः परम् ।
मणिमेखलाबलिजं चैव जलं च तदनन्तरम् ॥६१५॥
सभोगोऽस्त्रं कामकलाकालि तथापरं च रुट् ।
अस्त्रं च शाकिनी चैव कामकलाकालिका च ॥६१६॥
ङेऽन्ता नमः शिरः पश्चात्कामकलाकालि ततः ।
तारं वाणी योगिनी च शाकिनी स्मर एव च ॥६१७॥
कामिनीभूतरुषश्चैव क्रीं कामकलाकालि ततः ।
अङ्कुशं भूतबीजं च शाकिनी डाकिनी ततः ॥६१८॥
क्रोधं कामकलाकालि मन्मथः कालिका ततः ।
क्रोधाङ्कुशौ तथा भूतं कामकलाकालि ततः ॥६१९॥
भूताङ्कुशौ क्रोधबीजं काली स्मरः शिरस्तथा ।
ततः कामकलाकालि संबोधनपदं ततः ॥६२०॥
ततः सर्वशक्तिमयशरीरे तदनन्तरम् ।
ततः सर्वमन्त्रमयविग्रहे तदनन्तरम् ॥६२१॥

महासौम्यमहाघोररूपधारिणि तत्परम् ।
भगवति कामकलाकालि संबोधनपदम् ॥६२२॥
हरपत्नी हरिजाया मन्मथो वाग्भवस्तथा ।
पाशांकुशक्रोधाश्चैव योगिनी कामिनी ततः ॥६२३॥
शाकिनी डाकिनी चैव चामुण्डा तत एव हि ।
यक्षबीजं मेखला च पयःसानू ततः परम् ॥६२४॥
भासाख्यकूटं तदनु कूटं वाराहिकं ततः ।
अश्वमेधं ततः कूटं कूटं च शाम्भवं ततः ॥६२५॥
पाशुपतं ततः कूटं क्रोधत्रयं ततः परम् ।
अस्त्रद्वयं हृदयं च वह्निजाया ततः परम् ॥६२६॥
इति ते कथितो देवि प्राणायुताक्षरी मया ।

[कामकलाकाल्याः अयुताक्षरमन्त्रस्य फलश्रुतिः]

देव्याः कामकलाकाल्याः सर्वसिद्धिप्रदायिका ॥६२७॥
अस्याः स्मरणमात्रेण नासाध्यं भुवि विद्यते ।
रावणं हतवान् देवि संजप्य राघवः पुरा ॥६२८॥
हिरण्यकशिपुं दैत्यं जघान परमेश्वरः ।
एवं संजप्य देवेशि त्रिपुरं हतवान् हरः ॥६२९॥
कीर्त्तवीर्य्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रभृत् ।
त्रैलोक्यविजयी वीरो मनोरस्यप्रसादतः ॥६३०॥
मनोरस्य प्रसादेन कुवेरोऽभूद्धनाधिपः ।
मनोरस्य प्रसादेन अमरेशः शचीपतिः ॥६३१॥
मनोरस्य प्रभावश्च बहु किं कथ्यते त्वयि ।
कीर्त्त्यर्थी कीर्त्तिं लभते धनार्थी लभते धनम् ॥६३२॥
राज्यार्थी राज्यं लभते यशोऽर्थी लभते यशः ।
विद्यार्थी लभते विद्यां मुक्त्यर्थी मुक्तिमाप्नुयात् ॥६३३॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रं दारार्थी दारमाप्नुयात् ।
षष्ठकालीं च संपूज्य संजप्य मनुमुत्तमम् ॥६३४॥
यद्यद्वाञ्छति यल्लोकस्तत्तदाप्नोति सत्वरम् ।
यथा चिन्तामणिर्देवि यथा कल्पद्रुमस्तरुः ॥६३५॥
यथा रत्नाकरः सिन्धुः सुरभिश्च यथा धेनुः ।
तथाशुफलदो देवि मन्त्रोऽयुताक्षरः सदा ॥६३६॥
देव्याः कामकलाकाल्याः सर्वं निगदितं तव ।
नित्यार्चनं जपं चैव स्तोत्रं कवचमेव च ॥६३७॥
सहस्रनामस्तोत्रं च तस्य गद्यमनुत्तमम् ।
पूजाकाले न्यासादिकं सर्वं निगदितं त्वयि ॥६३८॥
तव. स्नेहेन देवेशि सर्वमेतत्प्रकाशितम् ।
अतिगुह्यतमं देवि न प्रकाश्यं कदाचन ॥६३९॥
मा प्रकाशय देवेशि शपथे तिष्ठ सर्वदा ।
अधुना किं श्रवणेच्छा ते तन्मे कथय पार्वति ॥६४०॥

इति श्रीमदादिनाथविरचितायां महाकालसंहितायां श्रीकामकलाकाल्याः प्राणायुताक्षरीमन्त्रोद्धारोनाम पञ्चदशतमः पटलः ।

समाप्तश्चायं कामकलाकाल्याः सपर्य्यापर्य्यायः ।

शुभमस्तु ।

परिशिष्टम् (१)

आलोचनात्मिका टिप्पणी

प्रथमः पटलः

१।१-५४।—अयमुपक्रमात्मकः पटलः। आरम्भे कामकलाकालीमधिकृत्य जिज्ञासा, एतस्या एतदीयमन्त्रस्य त्रैलोक्याकर्षणाभिधस्य वक्ष्यमाणस्य च माहात्म्यस्य गोपनीयतायाश्च प्रतिपादनव्याजेन तज्जिज्ञासाशान्तिः।

मन्त्रोऽयं भुक्तिमुक्त्योरविशेषेण साधकः। सहेलं सलीलमपि वास्य स्मरणं विद्याराज्यमोक्षलक्ष्मीः स्मरणकर्त्रे ददाति। विद् ज्ञाने विद् विचारणे, विद् सत्तायां, विद्लृ लाभे इत्यर्थचतुष्टयसम्पन्नाद् विद्धातोः विद्यापदं निष्पद्यते। अत एवैहिकस्य निःश्रेयसस्य पारत्रिकस्य चापवर्गस्य साधनं विद्या प्रथमत इहोपात्ता भुक्तिमुक्त्युभय-साधिका। राज्यपदमैहिकस्य सुखभोगस्य भौतिक्याः समृद्धेर्वा व्यञ्जकम्। मोक्ष स्तूत्कृष्टपुरुषार्थतया सर्वत्र शास्त्रेषु निर्दिष्ट इत्येकमिह साधनमपरे तु साध्येषु श्रेष्ठतमे तथाविधानां लक्ष्मीनां शुभप्रदानां लाभकरोऽयं मन्त्र इत्यस्योत्कर्षप्रतिपादनम् ग्रन्थकृतोऽभिप्रेतम्। विद्याराज्यमोक्षपदैः सह लक्ष्मीपदप्रयोगस्तेषां शुभप्रदत्वप्रसाद-योश्च व्यञ्जनाय।

शुभस्य शीघ्रमिति अभियुक्तोक्तिः। अत एवंविधस्य मन्त्रस्य ग्रहणार्थं देश-कालयोर्बन्धनं नास्ति किन्तु गुरोरपेक्षा वर्तते। गुरुणा विना न ज्ञानमिति तान्त्रिक-सिद्धान्तः। स चायं गुरुर्यथा सन्तुष्टः सन् मन्त्रं दीक्षयेत् तथानुतिष्ठेज्जिघृक्षुः साधक इति ग्रन्थकृदाज्ञा। अस्यामेव संहितायामभिहितम्।

न शास्त्रमालोक्य वदेन्नाचरेन्न जपेदपि।
न पश्येन्नोपदिश्याच्च न कुर्यान्नैव साधयेत्॥
गुरूपदेशतो लब्धे जपन्यासार्चनादिके।
पश्चात् तत्साधयेत् सर्वं सदा तद्भावभावितः॥

[बीजोद्धाराख्यस्तृतीयः पटलः। श्लोक सं०—६-७।]

अत्र २७ तमे पद्ये चतुर्वर्गस्य चतुर्भद्रस्य च समुल्लेखो दृश्यते । तत्र धर्मार्थ-काममोक्षात्मकं पुरुषार्थचतुष्टयं चतुर्वर्गः । कीर्तिरायुर्यशोबलमिति धर्मज्ञानवैराग्यैश्व-र्याणीति, दानं ज्ञानं सौर्यं भोगो वेति चतुर्भद्रस्य विविधं स्वरूपं महाभारते दृश्यते ।

गुह्यकालिकामकलाकाल्योर्वास्तविकोऽभेदः । मन्त्रस्य ध्यानस्य प्रयोगस्यार्थात् पुरश्चरणस्य पूजायाश्च भेदेन व्यावहारिको भेद एतयोरिति प्रतिपादितमिह ।

पश्चात् सम्पूर्णस्य ग्रन्थस्य प्रतिपाद्यं समष्ट्येहाभिलपितम् । उपसंहारे तु आगामिपटले प्रतिपिपादयिषितस्य विषयस्य सूचना वर्तते । अयं च ग्रन्थकृतः स्वभावः अग्रिमाभिधेयं पटलस्योपसंहारे निर्दिशतीति ।

द्वितीयः पटलः

२।१-५।—कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्याकर्षणमन्त्रस्य स्वरूपम्—"क्लीं क्रीं हूं क्रों स्फ्रों कामकलाकालि स्फ्रों क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा" । अयमेव मन्त्रः मूलमन्त्रतया ग्रन्थकृताग्रे निर्देक्ष्यते । यथामति मन्त्रस्यास्य स्वरूपमुद्घाटितम् । सुधीभिः साधकैरिह स्वयमप्यूहेन परीक्षास्य कर्तव्या ततश्चेह प्रवर्तितव्यम् । तथा हि आद्यवर्गस्य कवर्गस्याद्यवर्णः क इत्यक्षरम् । अक्ष्णा वामेन ईकारेण परिशीलितः मूर्ध्नि मूर्धा अनुस्वारः य तृतीयो लकारः सचाधोयुक्तः सन् "क्लीं" इति बीजं भवति । अत एवेह चतुर्थचरणे युगधः इति पाठः समुचितः प्रतिभाति । बिन्दुरनुस्वारः, वामाक्षि-ईकारः, वह्निः-रेफः सर्वाद्यः कवर्गः मस्तके प्रधानतया निर्दिष्टे यस्य बीजस्यासौ "क्रीं" इति बीजं भवति । वामश्रुतिरूकारः सपरो हकारः वर्णमालायां तथैव पाठात्, अर्धचन्द्रोऽनु-स्वारस्तथा च "हूं" इति तृतीयं बीजं भवति । दक्षस्कन्धः ककारः ऊर्ध्वदन्त ओकार अधोऽर्थादधस्ताद् रोऽर्थाद् रेफेण युक्तः बिन्दुरनुस्वारो मस्तके यस्य स "क्रों" इति बीजम् । ओष्ठवर्गः पवर्गः उपूपध्मानीयानामोष्ठावित्यनुशासनेन तत्स्थानकत्वा-देतस्य, तस्य द्वितीयः फकारः स च हपूर्वेण सकारेण पूर्वयुक्तस्तथैव वर्णमालायां पाठात्, भूतबीजस्य तथादर्शनाच्च ओष्ठ ओकारो बिन्दुरनुस्वार इति "स्फ्रों" बीजं निष्पद्यते । देव्याः संबोधनं कामकलाकालि इति षडक्षराणि भवन्ति । भूतबीजाद्यं मारबीजान्तं च प्रतिलोमेन बीजानामूर्ध्वंनिर्दिष्टानां पञ्चानामभिधानम् । अनुलोमेना-भिधाने तु मारबीजाद्यं भूतबीजान्तं तस्य भवति निर्देशः । तथा च प्रथमतोऽनुलोमेन पश्चात् प्रतिलोमेन पञ्चानां बीजानां निर्देशं कृत्वा वैश्वानरवधू स्वाहा विद्यते प्रसिद्धा, तामन्ते योजयित्वा क्लीं क्रीं हूं क्रों स्फ्रों कामकलाकालि स्फ्रों क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा इति तन्मन्त्रस्वरूपं स्पष्टं भवति ।

२।६-११।—मन्त्रस्यास्य माहात्म्यकीर्तनम् ।

२।१२-१४।—अस्य मन्त्रस्य महाकाल ऋषिः, बृहती छन्दः, कामकलाकाली देवता, क्लीं बीजं, हूं शक्तिः, सर्वदा सर्वसिद्धये च विनियोगः कर्तव्यः । -

२।१५।—षडङ्गन्यासस्तु पञ्चभिर्बीजैरिह यथाक्रमं कर्तव्यः । एकश्च तन्नाम्ना करणीयः । सर्वत्र नाम्न एकैकमक्षरं निवेश्यम् । तथा हि—

क्लीं का हृदयाय नमः । क्रीं म शिरसे स्वाहा । हूं क शिखायै वषट् । क्रों ला नेत्रत्रयाय वौषट् । स्फ्रों का कवचाय हूं । ली कामकलाकाली सर्वाङ्गव्यापकाय फट् ।

२।१६-४३।—देव्याः ध्यानमभिहितमस्ति ।

२।४५-४९।—कामकलाकाल्याः । यन्त्रस्वरूपनिरूपणम् । अस्मिन् यन्त्रे भूपुरं कार्यं तत्र चतुर्षु द्वारेषु द्वे द्वे वज्रास्त्रे लेखनीये । यतो हि वसुवज्राढयं भूपुर-मिहापेक्षितम् । पुनर्भूपुरमध्येऽष्टदलं पद्ममारचनीयम् । तत्र केसराणि कर्णिकाश्च प्रकल्प्याः । कर्णिकामध्येऽधोमुखस्य त्रिकोणस्य त्रितयं लेखनीयम् । त्रिकोणानां बहिस्त्रि-कोणेषु बीजत्रयं ह्रीं हूं आं इति वामदक्षिणाधोभागक्रमेण लेखनीयम् । मध्यभागे तु क्लीं बीजं लेख्यम् । यन्त्रस्वरूपमग्रे प्रदर्शितमस्ति ।

२।५०-५३।—पूजायां प्रथमं भूतशुद्धिः मातृकान्यासः, पीठन्यासः, सामान्य-विशेषयोरर्घ्ययोः स्थापनं चतुर्णामङ्गदेवतानां गणेशसूर्यविष्णुशिवानां पूजा च कार्या । अनन्तरं मुख्याया कामकलाकाल्याः मानसी बाह्या च पूजोपचारैः पञ्चभिर्दशभिः षोडशभिर्वा यथाविभवं कर्तव्या ।

पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं स्नानीयं चन्दनमिति पञ्चोपचाराः । पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीयानि गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यानि पुनराचमनीयं चेति संकलनया दशोपचाराः । आसनं मधुपर्कं वस्त्रं भूषणं नेत्राञ्जनं प्रदक्षिणनमस्कृतिश्चेति षट् दशोपचारेषु संयोज्य षोडशोपचाराः भवन्ति ।

एतदर्थं द्रष्टव्यः गुह्यकालीखण्डस्य षष्ठः पटलः—श्लोक संख्या १६९-१७६ ।

२।५४-५६।—देव्याः आवाहनमन्त्रः—

ओं ह्रीं क्लीं आं कामकलाकालि देवि आगच्छ आगच्छ तिष्ठ तिष्ठ पूजां गृहाण गृहाण स्वाहा ।

२।५७।—मूलमन्त्र इह समुल्लिखितः । तेनाष्टादशाक्षरस्त्रैलोक्याकर्षणो मन्त्रः पूर्वनिर्दिष्टो ग्राह्यः ।

२।५७-५६।—उपचाराणामर्पणाय सामान्यमन्त्रः—

यथा "एष पुष्पाञ्जलिः क्लीं कामकलाकाल्यै नमः" इति रीत्यानया वस्त्वन्तरमप्यर्पणीयम् ।

२।५६-६१।—अर्घ्यदानाय मन्त्रविशेषाभिधानम्—

ओं आं हूं ह्लींस्फ्रों श्मशानवासिन्यै कामकलाकाल्यै एषोऽर्घ्यो नमः । दक्षऽर्धेबोऽर्ध इति प्राङ्मन्त्रारम्भात् पठनीयस्तथापि ग्रन्थानुरोधादेवं लिखितः । एवमन्यत्राप्यूहनीयम् ।

२।६१।—षोडशोपचाराणां परिचयः प्रागेवेह प्रदर्शितस्ततोऽनुसन्धेयः ।

२।६३-६६।—अनङ्गगन्धपरिचयस्तन्माहात्म्याभिधानं च । अष्टादशवार्षिक्यास्ततो न्यूनवयस्काया युवत्या विवाहिताविवाहितसाधारण्या ऋतुमत्याः प्रथमदिनसंभवं रजः अनङ्गगन्धतयेह अभिमतम् ।

प्रथमत एव यस्या रजोदर्शनं तस्याः प्रथमदिनसंभवं रजः स्वयम्भूकुसुमतयेह विवक्षितम् । अत्रापि विवाहिताविवाहितसाधरण्या युवत्याः रजः अभिमतम् । किन्त्वत्र वयसः बन्धनं नास्ति । प्रथमरजो दर्शनमेकादशवर्षमारम्य पञ्चदशवर्षं यावत् भवति नार्या इति प्रसिद्धिः ।

२।६६-६६।—अनङ्गगन्धदानमन्त्रः—

ओं ऐं ह्रौं श्रीं हूं क्लीं ठः ह्लीं आं रतिप्रियायै कामकलाकाल्यै एष अनङ्गगन्धः नमः ।

२।६६-७२।—स्वयम्भूकुसुमपरिचयस्तस्या देवीप्रीतिकरतोपपादनम् ।

२।७३-७७।—स्वयम्भूकुसुमार्पणमन्त्र.—ओं ह्रीं क्लूं कामकलाकाल्यै हूं आं भगमालिन्यै ऐं स्त्रौं भगप्रियायै ठः श्रीं मदनातुरायै इदं स्वयम्भूकुसुमं नमः । धूपदीपनैवेद्याद्यर्पणावसरे मूलमन्त्रस्य व्यवहारो भवति ।

२।७८-८२।—पूजायां बल्यर्पणस्य मन्त्रः—

ओं क्लीं क्लीं क्लीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं हूं ह्रां ह्रीं ह्रूं भगप्रिये भगमालिनि महाबलिं गृह्ण गृह्ण भक्षय भक्षय मम शत्रून् नाशय नाशय उच्चाटय उच्चाटय हन हन त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि पच पच मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय मारय मारय द्रावय द्रावय ह्रीं स्वाहा ।

२। ८३-८८।—भोजने बल्यर्पणमन्त्रः—

ओं ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्षौं क्षौं स्फ्रों स्फ्रों आं आं फ्लीं फ्लीं कामकलाकालि महाकामातुरे महाकालप्रिये ममानिष्टं निवारय निवारय शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय धम धम मर्दय मर्दय शोषय शोषय इमं बलिं गृहण गृहण खादय खादय हूं स्वाहा ।

तृतीयः पटलः

इह तृतीयपटले कामकलाकाल्या आवरणपूजाविधिः सविशदमभिहितो विद्यते। सप्तावरणान्यत्र भवन्ति। आवरणसंख्यायां तद्विधाने च भेदस्तु देवताया आगमस्य सम्प्रदायस्य क्रमस्य च भेदतो भवति। देवताया वैविध्यं, शाक्तागमानां स्थूलतः षट्त्वं षडाम्नायत्वात्, सम्प्रदायस्य पञ्चत्वं कापालिकमौलेयदिगम्बरभाण्डिकेरमहाकालसंहितानुगामिभेदात्, क्रमस्य त्रित्वं सृष्टिस्थितिसंहारभेदादिति प्रसिद्धम्। सर्वमेतद् गुह्यकालीखण्डस्य दशमपटले विस्तरेण विवृतम्।

कामकलाकाल्या आवरणपूजा यन्त्रोपरि भवति। यन्त्रस्वरूपं द्वितीयपटले प्रदर्शितमस्ति। यत्राष्टदलमध्ये त्रिकोणत्रयं वर्तते। तत्र प्रथमावरणे बाह्यत्रिकोणस्य बहिः कोणेषु संहारिणी भीषणा मोहिनीति देवतात्रयस्य पूजा भवति। कोणमध्ये तु कुरुकुल्ला कपालिनी विप्रचित्ता पूज्यन्ते। तथा च षण्णां देवतानामिह प्रथमावरणे भवति पूजा। द्वितीयावरणे मध्यत्रिकोणस्य बहिरन्तश्च कोणेषु यथाक्रममुग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, नीला, घना, बलाका च पूजनीयतां यान्ति। तृतीयावरणेऽन्तस्त्रिकोणस्य प्रत्येकं कोणे तिसृणां देवीनामेकत्र पूजेति नवदेवीनां भवति पूजा। तथा हि वामकोणे ब्राह्मी नारायणी माहेश्वरी, दक्षिणकोणे चामुण्डा कौमारी अपराजिता, अधः कोणे वाराही नारसिंहीन्द्राणी च पूजनीयाः। एतासां वारत्रयं कर्तव्या पूजेत्यपि वर्तते निर्देशः। चतुर्थावरणेऽष्टसु पद्मदलेषु वसुमितानां भैरवाणां पूजायाः विधानमस्ति। ते च असिताङ्गः, रुरुः, चण्डः, उन्मत्तः, क्रोधः, कापाली, भीषणः सम्मोहनश्चेत्यभिधानवन्तः। पञ्चमावरणे दलयोरन्तरेषु अष्टौ क्षेत्रपालाः पूज्यन्ते। तेषां नामानि यथा एकपादः, विरूपाक्षः, भीमः, सङ्कर्षणः, चण्डघण्टः, मेघनादः, वेगमाली, प्रकम्पनश्चेति। षष्ठावरणे पद्मदलानामग्रभागेषु अष्टौ योगिन्यः पूज्यन्ते। ताश्च उल्कामुखी कोटराक्षी, विद्युज्जिह्वा, करालिनी, वज्रोदरी, तापिनी, ज्वाला, जालन्धरी चेत्येतै-

नर्मभिरभिधीयन्ते । सप्तमावरणे दशसु दिक्षु लोकपालानां भवति पूजा । न चैषामिह नाम्नामुल्लेखो विद्यते । यथान्येषां पूज्यानां नामनिर्देशस्तथैषामप्युचितः स । अत्र इयं त्रुटिरिव प्रतिभाति ।

गुह्यकालीखण्डस्य द्वादशतमे पटले दिग्बन्धनमन्त्रा अभिहितास्तदुपक्रमे लिखितं—"संहितामतमीदृशम्" । संहितापदमिह महाकालसंहितामभिदत्ते । तस्मादिह कामकलाखण्डेऽपि लोकपालास्तत एवावगन्तव्यास्तत्र चादित्याः, पितरः दिङ्नागाः यक्षाश्च पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तराशाधिपाः, सिद्धाः यातुधानाः साध्या रुद्राश्चाग्नेयनैर्ऋत्यवायव्यैशानविदिशामधिपाः । ऊर्ध्वदिशः क्षेत्रपालाः अधोदिशश्च मातर अधिष्ठानं कुर्वन्ति । एत एव लोकपाला इति ध्येयम् [द्र० गु० ख० १२।८१०—१७ पद्यानि] अनन्तरं त्रिकोणमध्ये भैरवयुता योगिनी चक्रमध्यगा मुख्यदेवता पूज्यते ।

३।२४-३३।—कामकाल्याः पुरश्चरणविधिः । पुरश्चरणे शुद्धिरपेक्ष्यते । भूमेरासनस्य पूजासम्भारस्यात्मनोऽर्थात् पूजकस्य तस्यैव कायवाक्चित्तानां च शुद्धिः कर्तव्यतया निर्दिष्टास्ति । तत्र भूमिद्रव्ययोः शुद्ध्यर्थं प्रागुक्ता गुह्यकालीपूजापद्धतिरीतिरिहानुमतंव्या । आत्मशुद्ध्यर्थं यमनियमयोः परिपालनं कर्तव्यम् । पश्चात् प्रातः कृतनित्यक्रियः कृतपूजाविधिः शुचिश्च साधकः भूमौ नरास्थि समन्त्रं निखनेत् । मन्त्रस्तु—ओं हूं ह्रीं आं क्लीं स्फ्रों सिद्धिं देहि देहि स्वाहा । तदुपरि आसनमास्तीर्य नृमुण्डमग्रतः कृत्वा नरास्थिजपमालया त्रैलोक्याकर्षण भिधस्य मन्त्रस्य लक्षमितं जपं कुर्यात् ।

जपानुष्ठानं तावत् दिवा शुचिपूर्वकं हविष्यान्नं भक्षयन् लक्षमितं कर्तव्यम् रात्रौ त्वशुचिपूर्वकं लक्षमितं तत् कर्तव्यम् । उभयोश्च दशांशस्य विंशतिसहस्रस्य होमः कर्तव्यः । होमदशांशस्य तर्पणम्, तद्दशांशाभिषेकः कर्तव्यः । एषु सर्वत्र पूजाविधिरनुसरणीयः । अत्रानुक्तः कर्तव्यविधिः गुह्यकालीपूजाविधिना सम्पादनीयः । तत्राप्यनुक्तश्चेद् विधिस्तर्हि दक्षिणकाल्याः विधिरनुसर्तव्यः । संक्षेपेण कामकलाकाल्याः पूजाया अयं विधिरित्यवगन्तव्यम् ।

३।३४-८१।—ऐहिकसिद्धिप्रदाः पञ्चदश प्रयोगा अत्र निर्दिष्टास्तेषां विधयस्तत्रैव द्रष्टव्याः, स्पष्टतया टिप्पण्यां नोल्लिखितास्ते । केवलमष्टमप्रयोगे तत्र सन्देहो विद्यते (३।५३-५४) श्मशाने योषितं बीजैः सहस्रश अभ्यर्च्य रक्तचन्दनरक्तपुष्पाभ्यां तामलङ्कृत्य सम्पूज्य च तस्या भगदर्शनं कर्तव्यम् । पश्चात् कालिकाध्यानं कर्तव्यम् । अत्र कैर्बीजैरेतस्या पूजा कर्तव्या अथ च द्विवारं पूजाविधानस्य कोऽभिप्राय इति जिज्ञासा सन्तिष्ठत एवेति ।

षष्ठप्रयोगस्य फलश्रुतौ चतुर्विंशतिसिद्धिपदमुपलभ्यते। तद्विवृतिस्तु अष्टौ प्रसिद्धाः सिद्धयोऽष्टावुपसिद्धयोऽष्टौ च प्राकृतिकसिद्धय इति संकलनया चतुर्विंशतिः सिद्धयो भवन्ति। तद् यथा अणिमा, महिमा, लघिमा गरिमा, ईशित्वं, वशित्वं, प्राकाम्यं, यत्र कामावसायित्वमिति योगशास्त्रप्रसिद्धाः सिद्धयः। अञ्जन-गुटिका-पादुका धातुवाद-खड्ग-वेताल-यक्षिणी-खेचरीणां सिद्धय उपसिद्धितया प्रसिद्धाः। प्राकृतिकसिद्धयस्तु स्तम्भनं मोहनं वशीकरणमुच्चाटनं मारणं विद्वेषणमाकर्षणं क्षोभणं चेति ज्ञेयम्।

चतुर्थः पटलः।

चतुर्थपटलस्य प्रतिपाद्यः शिवाबलिविधिः। साङ्गोपाङ्गमिहास्य विवरणं ग्रन्थकृता प्रस्तुतम्।

४।१-५।—प्रयोगस्यास्य गोपनीयतमत्वाभिधानम्, पुरश्चरणानन्तरं च कर्तव्यमिति निर्देशः। कामकलाकाल्या अष्टौ प्रकाराः प्रागुपवर्णिताः सन्तीत्युल्लेखोऽत्र दृश्यते किन्तु गुह्यकालीखण्डेऽथवात्र पूर्वपटलेषु नास्माकमेतस्यास्ते प्रकारा दृष्टपथमायाता इति पंक्तेरस्याः सङ्गतिश्चिन्तनीयैव भवति। वक्ष्यमाणप्रयोगाभिधानेन कामकलाख्य-राजमध्यलघुपूर्वप्रयोगानभिप्रैति ग्रन्थकृत्। एतेनैव प्रयोगेण कामकलानाम्नः सार्थकत्वम्। गुह्यकाल्या सह कामकलाकाल्या अभेदप्रतिपादनं संहितायामुभयोरेव दृश्यते। अत्र उभयत्र देव्योः पूजाविधेः स्वरूपस्य च विवरणमस्तीति। साधकानां रुचिवैविध्यानुकूलपरिकल्पनासिद्धयै निराकारायाः पराशक्तेः रूपकल्पना। तथा च गुह्यकाली खण्डेऽभिहितम्

निर्गुणा सगुणा जाता निराकारापि साकृतिः।
अदेहापि सदेहाभूदरूपा रूपधारिणी॥ २।२६॥

तुलनीयम्—चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

अस्मिन् कामकलाखण्डेऽपि अग्रे वक्ष्यते दानवानां संहाराय देव्या विकराल-रूपता देवानां सम्मोहनाय च तस्याः सौम्यरूपता भवतीति।

४।६-१७।—कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां तिथौ मध्यरात्रे समुत्थाय श्मशाने निर्जने वने वा सम्पादनीयोऽयं विधिः। साधकः दिने नित्यकृत्यं सम्पाद्य चतुर्विधामन्न

सामग्रीमुपकल्पयेत्—पायसमपूपं यावशं मोदकं च। विविधविध मत्स्यमष्टादशप्रकारं पशुमांसं च प्रस्तोतव्यम्। मांसमामं सिद्धं चेति प्रकारद्वयं देयम्। आममद्यतनमेव देयमपर्युषितम्। सिद्धमपि तत् कवोष्णं देयं न तूत्तप्तम् पृष्ठभागस्थमूलास्थ्नालेप च रहितं पवित्रं च देयम् न तु क्रव्यादादिभिर्हतमपवित्र दुर्गन्धयुतं चेति शास्त्रस्याज्ञा। मांसार्थमिह स्थलचराः जलचराः ग्राम्या आरण्याश्च पशवः परिगणिताः विद्यन्ते। नाना प्रकारकाणि व्यञ्जनानि भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यादीनि च षड्रसोपेतानि उपकल्पनीयानि। पात्राणि च सौवर्णानि राजतानि ताम्राणि मार्त्तिकाणि पलासमधूकान्यतरपत्रपुटकरूपाणि च भवन्ति। परिवेषणं चैषां पृथक् पृथक् कर्तव्यम्। एकपात्रे बहुवस्तुनां परिवेषणे दोषमभिदधाति ग्रन्थकृत्।

४।१८-२३।—इहार्पणीयपक्षिमांसपरिगणनम्। पक्षिणश्चेह षट्त्रिंशद्विधाः गृह्यन्ते। पूर्वोक्तविधानमत्राप्यनुवर्तते।

४।२४-२६।—साधकः निर्भयचित्तः श्मशानस्थं शववस्त्रमेवासनतया परिगृह्य पद्मासनं बद्ध्वा उपविश्य कामकलाकाल्याः धूपदीपादिभिर्दशविधोपचारैः पूजां कुर्यात्। एतन्मन्त्रजपः तदीयस्तुतिपाठस्तस्या नमस्कारादिकं च निष्पाद्य शिवाबलिसम्पादनाय भूमौ शिरः दधानः कृताञ्जलिपुटश्च साधकः तस्या अनुज्ञां याचेत।

४।३०।—अनुज्ञायाचनमन्त्रः।

४।३१-३६।—इदानीमिह शिवानामावाहनम्। तन्मन्त्रस्वरूपं यथा—

ओं ऐं ह्रीं ह्रूं ह्रौं क्लीं स्फ्रों ब्लां ब्लीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं श्रीं कामकलाकालि घोररावे महाकापालि विकट दंष्ट्रे सम्मोहिनि शोषिणि करालवदने भवनोन्मादिनि ज्वालामालिनि शिवारूपिणि भगवति आगच्छ आगच्छ मम सिद्धिं देहि देहि मां रक्ष रक्ष ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं क्षां क्षीं क्षूं क्षौं हूं हूं फट् फट् स्वाहा। अस्य मन्त्रस्य वारत्रयं सभक्ति शनैः पाठः कर्तव्यः।

४।४०-४५।—पश्चात् शिवागमनप्रतीक्षा कर्तव्या। यदि ता आगच्छन्ति तदा मनोरथस्य सिद्धिर्भवति। नायान्ति चेन्नेष्टसिद्धिरिति बोद्धव्यम्। आगतासु तासु दूरत एव प्रणतिपूर्वकं यथाशक्ति दशभिः षोडशभिर्वोपचारैः तासां पूजा कर्तव्या। पुनः सा चतुर्विधान्नसामग्री अन्यानि च भक्ष्याणि तासामग्रे समर्पणीयानि तत्रापि विहङ्गमानां मांसं पंक्तिशः स्थापनीयम्। अत्रार्पणस्य मन्त्रो यथा—

४।४६-५६।—ओं ह्रीं हूं कामकलाकाल्यै महाघोररावायै भगमालिन्यै शिवा-रूपिण्यै ज्वालामालिन्यै इमं बलिं प्रयच्छामि गृह्ण गृह्ण खाद खाद मम सिद्धिं कुरु कुरु मम शत्रून् नाशय नाशय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय उच्चाटय उच्चाटय हन हन विध्वंसय विध्वंसय मथ मथ विद्रावय विद्रावय पच पच छिन्धि छिन्धि शोषय शोषय त्रासय त्रासय त्रुट त्रुट मोहय मोहय उन्मूलय उन्मूलय भस्मीकुरु भस्मीकुरु जृम्भय जृम्भय स्फोटय स्फोटय मथ मथ विद्रावय विद्रावय हर हर विक्षोभय विक्षोभय तुरु तुरु दम दम मर्दय मर्दय पातय पातय सर्वभूतभयङ्करि सर्वजनमनोहारिणि सर्वशत्रु-क्षयङ्करि ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल शिवारूपधरे कालि कापालि महाकापालि ह्रीं ह्रीं हूं हूं ह्रौं ह्रौं राज्य मे देहि देहि किलि किलि चामुण्डे यमघण्टे हिलि हिलि मम सर्वाभीष्टं साधय साधय संहारिणि सम्मोहिनि कुरुकुल्ले किरि किरि हूं हूं फट् स्वाहा । इति मन्त्रं वारत्रयं पठित्वा सर्वमन्नमांसादिकं पाणौ जलमादायोत्सृजेत् ।

४।६०-६५।—पूजायाः वस्तुपरिक्षेपणस्य च स्थानात् किञ्चिद् दूरे स्थित्वा कालीरूपेण तासां ध्यानं कर्तव्यम्—यथास्ता न बिभ्यति । निरीक्षणीयं च ताः सर्वं भक्ष्यं भक्षयन्ति भक्ष्यविशेषमेव वा भक्षयन्तीति । यदि सर्वं भक्षयन्ति तर्हि सर्वसिद्धि-र्भविष्यति । यदि भक्ष्यविशेषं भक्षयन्ति तर्हि सिद्धिविशेषस्य प्राप्तिरिति । कस्य भक्ष्यविशेषस्य भक्षणे कश्च लभ्यते सिद्धिविशेष इति मूलग्रन्थतोऽवसेयम् ।

४।६६-७२।—अष्टादशविधपशूनामाममांसार्पणफलमिहाभिहितम् ।

४।७३-८४।—षट्त्रिंशद्विधपक्षिणां मासस्यार्पणफलमिहाभिहितम् । विशेषस्तु ग्रन्थतोऽवधेयः । अर्पणावसरे कौयष्टिकमांसोल्लेखो विद्यते किन्तु फलश्रुतौ तस्य नास्ति चर्चेति त्रुटिः प्रतिभाति ।

४।८५-८६।—नरमांसार्पणफलं षष्टिसिद्धिलाभः । परमिह शूद्रस्याधिकारो न तु ब्राह्मणस्येति स्पष्टमुक्तमस्मिन् ग्रन्थे ।

४।८७-९३।—शिवा एताः कालीस्वरूपा एवेति मन्तव्यम् । अत एतासामवहेलना न कार्या । यद्येतास्तदवसरे नायान्ति तदा भविष्यतो विघ्नस्य भवति सूचना । यद्यागत्य न भक्षयन्ति तानि वस्तूनि, तदा साधकस्य मरणं संसूच्यते । निःशेषं भक्षयन्ति चेत् महदैश्वर्यलाभः । अर्धभक्षणे त्वर्धसिद्धिः संकल्पितस्येष्टस्येति सिद्धान्तः । शिवानां भक्षणानन्तरं भूतेभ्यः संहारभैरवाय क्षेत्रपालेभ्यः सर्वाभ्यश्च डाकिनीभ्यो गुरोरादेशा-नुसारं बलिर्दातव्यः । प्रत्यष्टम्यां प्रतिचतुर्दश्यां चायं क्रमः शिवाबलेरनुसरणीयः ।

सम्पादनीयश्चाष्टादशमासान् यावत् तदैव सिद्धिर्भवति न तु वारमेकमेव करणीयोऽयं विधिरिति शास्त्रस्य स्पष्टमुक्तिराज्ञा वा ।

४।९४-१०९।—अस्य शिवाबलेर्माहात्म्यं कीर्तितमिह ।

४।११०।—देवताबुद्धया एताः शिवाः दण्डप्रणामेन स्तवेन कवचेनान्यविधविधानेन च पूजनीयाः ।

४।१११-११८।—शिवास्तोत्रमभिहितम् ।

४।११९-१२२।—पश्चात् शिवाभुक्तशेषमन्नं तत्रैव भूमौ तथा निखनेत् यथा काकश्वानादयो वनवासिनः प्राणिन उत्खननं कृत्वा तन्न भक्षयेयुः । अन्यथा साधकस्य विघ्नो भवति । साधकोऽप्यर्पितेषु वस्तुषु गन्धमाल्यनैवेद्यादीनि प्रसादरूपेण गृह्णीयादिति शास्त्रस्याज्ञा । रात्रावेव कृत्यं समाप्य श्मशानाद् गृहमागन्तव्यम् ।

४।१२३-१३३।—त्रैलोक्याकर्षणमन्त्रस्य प्रासङ्गिकं माहात्म्यवर्णनम् ।

पञ्चमः पटलः ।

ब्रह्मस्वरूपा निर्गुणा निराकारा चिन्मयी पराशक्तिः कामकालिकप्रयोगादेव कामकलेत्यभिधानमवाप्नोदिति भूमिकामारचयन् ग्रन्थकृदिह राजपूर्वं मध्यपूर्वं लघुपूर्वं च कामकालिकप्रयोगं प्रथममध्यमाधमकोटिकं यथायथं विवृणोति—

षट्त्रिंशन्मितानां सकलसौन्दर्यगुणसंपन्नानां विभिन्नजातीयकानां युवतीनामिह पुनः राजपूर्वकामकालिकप्रयोगे निर्दिष्टपद्धत्या भवति पूजा ।

५।१-१४।—कामकालिकप्रयोगस्य माहात्म्यकीर्तनम् ।

५।१५-२४।—ग्राह्यरमणीनां निर्देशः ।

५।२५।—रमणीनां पुष्पवासिततैलेनाभ्यङ्गः प्रसाधनं च कर्तव्यतया निर्दिष्टम् । कर्पूरवासितजलैस्ताः समन्तं स्नापनीयाः ।

५।२६-२९।—तासां स्नापनमन्त्रस्याभिधानम्—

ओं ह्रीं क्लीं भगवति महामाये अनङ्गवेगसाहसिनि सर्वजनमनोहारिणि सर्ववशंकरि मोदय मोदय प्रमोदय प्रमोदय एह्येहि आगच्छ आगच्छ कामकलाकालि सान्निध्यं कुरु कुरु हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

५।३०-३२।—एतासां समन्त्रं वस्त्रार्पणमिहाभिहितम् ।

तत्र मन्त्रस्वरूपं यथा—ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं स्त्रीं स्त्रीं त्रैलोक्याकर्षिणि वस्त्रं गृह्ण गृह्ण फट् स्वाहा ।

५।३४-३६।—एतासां कज्जलार्पणमन्त्रः—

ओं हूं महाघोरतरे फेत्काररराविणि महामांसप्रिये ह्रिलि ह्रिलि मिलि मिलि कज्जलं गृह्ण गृह्ण ठः ठः ।

५।३७-४१—एतासां सिन्दूरार्पणमन्त्रः—

ओं आ स्त्रीं क्लीं ह्रीं हूं श्रीं सर्वभूतपिशाचराक्षसान् ग्रस ग्रस मम जाड्यं छेदय छेदय छेदय स्फ्रों स्फ्रों स्फ्रों स्फ्रों ह्रौं ह्रौं मम शत्रून् दह दह उच्छादय उच्छादय स्तम्भय स्तम्भय विध्वंसय विध्वंसय सर्वग्रहेभ्यः शान्ति कुरु कुरु रक्षां कुरु कुरु ऐं ऐं ऐं फट् ठः ठः ।

५।४२-४६।—एतासामलक्तकार्पणमन्त्रः—

क्लीं क्लीं नवकोटियोगिनीपरिवृतायै हूं हूं कामकलाकाल्यै अनङ्गवेगमाला-कुलायै ह्रीं ह्रीं स्वयम्भूकुसुमप्रियायै इममलक्तं ह्रीं ह्रीं ह्रौं ह्रौं सुवासिन्यै निवेदयामि नमः स्वाहा ।

५।४७-५२।—पूजागृहे मण्डलारचनप्रकाराभिधानम् । मण्डलपदं वृत्ताकारस्य यन्त्रस्य च वाचकं भवति । प्रकृते वृत्ताकारमेव बोधयति तत्पदम् । अतएव विविध वर्णानामेकत्रिंशतिसंख्याकानां मण्डलानामष्टसु दिक्षु निर्माणस्येह निर्देशः । पूर्वस्याः दिशः श्वेतवर्णकं वह्निकोणस्यारुणवर्णकं दक्षिणस्याः दिशः कृष्णवर्णकं नैर्ऋत्यकोणस्य पीतवर्णकं पश्चिमायाः पाटलवर्णकं वायव्यकोणस्य हरितवर्णकमुत्तरस्या दिशः पिङ्गवर्णकमीशानकोणस्य धूमलवर्णकं मण्डलमारचनीयम् । सर्वत्र च द्वारपालैः साकं चत्वारि द्वाराणि देयानि । विदिशि द्वे दिशि च त्रीणि मण्डलानि कृत्वा मध्ये मण्डलमेकं करणीयम् । ऋषिपदं सप्तसंख्यामवबोधयति, सप्तर्षीणां प्रसिद्धत्वात् । त्रित्वसंख्यया तस्याः गुणने सति एकविंशतिसंख्यानां लाभः । एवं चन्द्रस्यैकत्वेन तद्वाचकं सोमपदमेकामेव संख्यां सङ्केतयति । अतोऽष्टसोमपदमङ्कस्य वामा गतिरिति रीत्याष्टादशसंख्यावाचकम् । एवं नवेन्दुपदमेकोनविंशतिसंख्यावाचकम् । यत्र मण्डले देव्या यन्त्रस्य पूर्वस्मिन् पटले विवृतस्यारचननिर्देशः । अस्मिन् यन्त्रे कामकला-काल्याः पूजाया निर्देशः । मण्डलेऽस्मिन् यन्त्रनिर्माणनिर्देशादेव मण्डलपदस्य

वृत्ताकारत्वमवधार्यते। अष्टादशसु मण्डलेषु षट्त्रिंशन्मितास्तरुण्यः युग्मकतयैवोपवेष्टुमर्हन्तीति तथैवोपवेशनीयास्ताः वामदक्षिणक्रममनुसृत्य गुरूणां गणेशादिदेवानां च पूजा विंशत्येकत्रिंशतितमयोर्मण्डलयोः करणीयेति अग्रे निर्देशस्तस्मात्सर्वमण्डलोपयोग इति ध्येयम्।

अत्र ५१ तमपद्यस्योत्तरार्द्धे "अष्टसोमसंख्यके" इति पाठः समुचितः प्रतिभाति पाठक्रमादर्थक्रमो बलीयान् इतिन्यायात्। मातृकानुसारमष्टसोमसंख्यकैरिति पाठस्तु ग्रन्थे धृत इति सुधीभिरालोचनीयम्।

५।५३-५४।—सुन्दरीणां मण्डलेषूपवेशनार्थं मन्त्रः—

हूं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं उपविश उपविश सुसन्निधिं कुरु कुरु स्वाहा।

५।५५-५६।—अत्र गजपदमष्टसंख्यावाचकम्। अष्टौ दिग्गजाः ऐरावताद्याः सन्ति प्रसिद्धाः। इन्द्रपदं च दशसंख्यां बोधयति, दशदिक्पालानामिन्द्रादीनां प्रसिद्धेः। यद्यपीन्द्राश्चतुर्दशाभूवन्निति पुराणप्रसिद्धिस्तथापीह तत्पदं दशसंख्यावाचकमुक्तयुक्तेः। अन्यथा गजेन्द्रतः [१४+८=२२] द्वाविंशतिसंख्याग्रहणे सति ततः परं त्रयोविंशतितमे मण्डले इष्टदेव्याः पूजाया आपत्तिः स्यात्। एकविंशतिरेव तु मण्डलानि निर्दिष्टानि सन्ति। अन्यथा ग्रन्थकृतः पूर्वापरसन्दर्भस्यापि सङ्गतिर्न स्यात्।

तथाहि पूर्वं—"नवेन्दुसंख्यके प्रिये विरच्य मूलमण्डलम्।
पुरोक्तयन्त्रमुत्तमं निवेश्य पूजनं चरेत्" ॥५।५२॥

इत्युक्तम्। पश्चाच्च—

"ऊनविंशे मण्डलेतु यजेद् देवीं प्रसन्नधी" ।५।६९॥

इत्यभिहितमस्ति ॥

मदुक्तरीत्या गजेन्द्रतोऽष्टादशसंख्याग्रहणे तूनविंशे मण्डले मुख्यदेव्या पूजोपपद्यते। पूर्वापरसन्दर्भाश्च संगच्छन्त इत्यवधेयम्। ऊनविंशतममण्डलमेवेह काममण्डलपदेन विवक्षितम्। विंशैकविंशतमयोर्मण्डलयोरुपयोगस्तु गुरुगणेशपूजयोरितिप्राङ् निर्दिष्टम्।

५।५७-६०।—मुख्यदेव्या आवाहनमन्त्रः—

ओं क्षौं क्षौं क्षौं क्षौं क्षौं एह्येहि परमतत्त्वरूपिणि भगवति कामकलाकालि स्फों स्फों स्फों स्फों स्फों सन्निधिं कुरु कुरु हूं हूं फट् फट् स्वाहा।

५।६१-६५ ।—कामकालिकप्रयोगार्थं देव्या अनुज्ञाप्रार्थना । तस्याः पद्यात्मकं स्वरूपमिह निर्दिष्टं तथैव पठनीयं च । ६१ तमे पद्ये चिन्मये इति पाठो दृश्यते परं "चिन्मयि" इति शुद्धः प्रतिभाति । चिच्छब्दात् मयट् प्रत्यये कृते सति टित्वात् टिड्ढाणयेति पाणिन्यनुशासनेन ङीपि सति चिन्मयीत्येव पदं शुद्धं भवति ।

५।६६-६६ ।—मण्डलोपविष्टसुन्दरीणां सोपचारं देवीबुद्धया पूजा कर्त्तव्ये-त्यस्येह निर्देशः । उपचारश्च षोडशविधः दशविधो वेति साधकस्य विभवानुसारं भवितु-मर्हति । यथैतास्तुष्टाः स्युस्तथाचरणीयम् । ऊर्नविंशे मण्डले पुरोक्तं यन्त्रं विलिख्य तदुपरि मुख्याया इष्टाया वा देव्याः पूजायाः विधानम् । प्रसन्नः सन् साधकोऽत्र पूजां नित्यपूजापद्धतिमनुसृत्य पूजासम्भारसञ्चयं च कृत्वा कुर्यात् ।

५।७०-७६।—षडङ्गन्यासं कृत्वा करणीयस्य पीठन्यासस्य विधिरभिहितोऽत्र । येन स्वदेहात्मके पीठे इष्टदेवताचिन्ता भवति । न्यासस्तन्मयताबुद्धिरिति तन्त्र-सिद्धान्तस्येहानुसरणम् । मानसी बाह्या चोभयप्रकारा पूजा कर्तव्या । तथैवेह ग्रन्थकृतो निर्देशः ।

५।७७-१५१—बाह्यपूजाविवरणम् । तदङ्गतयावश्यवक्तव्या अन्येऽपि प्रसङ्गादागता विषया इह विवेचिताः ।

५।७७-८०।—तत्र प्रथमं पूजोपकरणविन्यासः । मुद्राप्रदर्शनेन शङ्खस्थापन-विधेर्निर्देशः । कस्याः मुद्रायाः प्रदर्शनमिहेति जिज्ञासायां तच्छान्तये गुह्यकालीखण्डस्य दशमपटलीयः पूजाक्रमः दर्शनीयः । तत्र यथा भूमौ त्रिकोणं यन्त्रं विलिख्य मध्ये वृत्तं लेखनीयम् ओं अर्धपात्रासनाधाराय नमः इति मन्त्रेण तद् यन्त्रमभिमन्त्र्य ओं अर्घ पात्रासनाय नमः इति मन्त्रेण शङ्खस्याधारात्मिकां त्रिपादिकां सम्पूज्य तत्र जलेन अस्त्राय फडिति मन्त्रेण शंखं प्रक्षाल्य स्ववामे देव्याश्च दक्षिणे भागे तं शंखं स्थापयेत् । स्थापनार्थमिहाङ्कुशमुद्रा प्रदर्शनीया । अत्र च—

> क्षकारादीनकारान्तान् वर्णान् सर्वान् विलोमतः ।
> बिन्दुयुक्तान् पठन् शंखं पूरयेद् विमलोदकैः ।।
> [गु० का० ख० १०।१७-१८]

इति रीत्या शंखे जलं निदध्यात् । तस्मात् मुद्रां प्रदर्शयेदित्यत्र मुद्रयाङ्कुशमुद्रा गृह्यते विधिनेत्यनेन गुह्यकालीखण्डेऽभिहितस्येहोक्तं निर्दिष्टस्य विधेर्ग्रहणम् । स्युरत्र-

मार्गेजेनप्रक्षेपस्य विधिरिह क्षकाराद्यकारान्तवर्णानां ग्रहणेनोपपद्यत इति नात्र संशीतिलेशोऽपि ।

अं वह्निमण्डलाय धूम्रादिदशकलात्मने नमः, उं सूर्यमण्डलाय तपिन्यादि द्वादशकलात्मने नमः, मं सोममण्डलाय अमृतादिषोडशकलात्मने नमः इति मन्त्रत्रयेण क्रमशः आधारं शंखं च पूजयित्वा शंखं वेष्टयेत् । तीर्थावाहनमन्त्रेण शंखस्थलजे तीर्थमावाहयेत् । तन्मन्त्रस्वरूपं तु—

ओं गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

पश्चात् गन्धपुष्पाक्षतधूपदीपाद्यैर्दशोपचारैः शङ्खस्थजलं पूजयेत् । उपचारार्पणार्थमिह मूलमन्त्रस्योपयोगः कर्तव्यः विशेषमन्त्रानभिधानात ।

५।८१-८२।—शङ्खं पाणिनाच्छाद्य वाराष्टकं मूलमन्त्रं साधको जपेत् पश्चादङ्कुश मुद्रया चिन्मयं तीर्थं शङ्खस्थजले ध्यायेत् । अस्त्रायफडिति मन्त्रेण शङ्खस्थजलस्य रक्षा करणीया कवचाय हूमिति मन्त्रेण तस्यावगुण्ठनं धेनुमुद्रया कार्यं, पुनः तत्त्वमुद्रया तं शंखस्थजलं बोधयेत् ।

५।८३-८६।—आत्मनो दक्षिणभागे जलपरिपूरितं प्रोक्षणीपात्रं स्थापनीयम् । तस्मिन् प्रोक्षणीपात्रे शङ्खस्थमर्घ्यंजलं किञ्चिदुद्धृत्य देयम् । अर्घस्योत्तरभागे पाद्यमाचमनीयजलं च स्थाप्यम् । पश्चात् परमीकरणविधिना पवित्रितेन जलेन प्रतिमां पूजाद्रव्यमात्मानं ध्यातारमुपचारोपकरणादिकं च सिञ्चित्वा सर्वं पवित्रितं विदध्यात् । पवित्रतायै अवेक्षणं प्रोक्षणं वीक्षणं ताडनादि च पूजासामग्रीषु आत्मनि चापेक्ष्यन्ते । साधकस्य भक्तेः जागरूकतायाः परिचायकानि कर्माण्येतानि अपद्रव्यमुच्छिष्टादिकमपवित्रं वस्तु देव्यै मा समर्पितं भवतु इतीच्छयैव तथाविधाचरणस्येह निर्देशः । अर्घ्यपात्रे गन्धपुष्पयवाक्षतकुशाग्रतिलदूर्वासर्षपाश्च दातव्याः । पाद्य पात्रे श्यामाकं कूर्चं [?] कमलापराजितापुष्पे च देये । आचमनपात्रे जातीफलं लवङ्गं कक्कोलं च देयम् । एतेषां तत्र तत्र दानेन अर्घ्यपाद्याचमनीयानां प्राशस्त्यं भवति । विनैतैरपि सामान्यान्यर्घ्यादीनि भवितुमर्हन्तीत्यवधेयम् । मधुपर्कस्वरूपं परिदिशन्नाह—दधिमधुसर्पिषां सम्मिश्रणं मधुपर्कपदेन पूजायां व्यवह्रियते स चार्पणीयो भवति ।

५।६०-६५।—ऐहिकाभ्युदयसम्पादनाय अस्या देव्या इह बाह्यपूजाया विधानम्। इहागतं मण्डलपदं यन्त्रस्य वाचकम्। गोमयलिप्तभूमिपदं पवित्रस्थानं बोधयति। यतो हि भूमेः संस्कारः परिष्कारो वा गोमयेन सञ्जायते। यन्त्रं चाष्टदलपद्मात्मकमारचनीयम् तस्य च कर्णिकायामर्थात् मध्यभागे नव कोणा निर्मातव्याः कोणाग्रेषु बीजस्य पञ्चाशद्वर्णाख्यस्य लेखनमिह निर्दिष्टम्। अग्रे १०५ तमे पद्ये तथा संकेतोपलम्भात् पीठाधिष्ठातारः बृहदाकारः कूर्मः महामण्डूकः कालाग्निरुद्रश्च पूजनीया भवन्ति। ६४ तमे पद्ये साध्यपदेन कस्य ग्रहणमिति न ज्ञायते। क्रीं इति कालीबीजम्। कामकलाकाल्यास्तान्त्रिकगायत्र्या यन्त्रस्यास्य वेष्टनविधिर्विहितोऽस्ति। गायत्र्या अस्या स्वरूपमग्रे निर्दिष्टमस्ति।

५।६६।—कामकलाकाल्यास्त्रिपदा गायत्री निर्दिष्टा यस्याः जपेन राजसूययज्ञकरणफलं लभ्यत इति अभिहितमिह विद्यते।

५।६७-११६।—बाह्यपूजायाः क्रमो विधिश्चेह निर्दिष्टः। तथा हि यन्त्रस्य वामभागे गुरुपंक्ति—गुरुं परमगुरुं परमेष्ठिगुरुं परापरगुरुं च, दक्षिणभागे च गणेशादीन् गणार्काच्युतशूलिनः मध्ये चाधारशक्तिं साधकः पूजयेत्। वामदक्षिणभागविचारो यन्त्रमपेक्ष्य न तु साधक आत्मानमपेक्ष्य कुर्यात्। अस्यैव संहिताग्रन्थस्य गुह्यकालीपूजाक्रमं दशम पटले [गु० ख०] तथा दर्शनात्। अनन्तरं बृहदाकारः कूर्मः महामण्डूकः कालाग्निरुद्रश्च पीठाधिष्ठातारः पूजिताः भवेयुः। पश्चात् सागरचतुष्टयेन सहितायाः पृथिव्याः पूजा तत्र रत्नमयद्वीपस्य तत्र मणिमण्डपस्य तत्र कल्पतरोश्च कल्पनां विधाय पूजा कर्तव्यतयेह निर्दिष्टा। तदधस्तात् वेदिका कल्पनीया तत्र नादरूपिणी पीठशक्तिः धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यैश्चतुर्भिः सह पूजनीयाः। धर्मादयश्चत्वारः वृषकेशरिभूतेभरूपाः रक्तश्यामहरिच्छुक्लवर्णाः नादरूपिणी पीठशक्तिश्च नीलवर्णा ज्ञेया ध्येया च। विदिक्षु अग्निवायव्यनैर्ऋतेशाननाम्ना प्रसिद्धासु धर्मादीनामथ च दिक्षु पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरनाम्ना प्रसिद्धासु अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्याणां भवति पूजा।

यन्त्रात्मकस्य पद्मस्य कन्दं भवति आनन्दाख्यं, नालं भवति संविद्रूप, प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका पत्राणि भवन्ति अष्टसंख्याकानि, तस्या प्रकृतेश्च विकारः केसराणि भवन्ति, तन्मध्ये पञ्चाशद्वर्णयुक्ता कर्णिका भवति, या खलु पूज्यते साधकेन। सृष्टिप्रक्रियोपादानजातस्य पूजा उद्देश्यतयाभिहिता ग्रन्थकृता। यथा स्त्रीपुरुषयोः मैथुनेन सृष्टिरनुदिनं जगति दृश्यते तथास्य महत्त्वमवगत्य तान्त्रिकैरस्याः सृष्टेरादरं विधातुकामैः सृष्ट्युपादानजातं पूज्यते श्रीयन्त्रमपि सृष्टिनिदानप्रतीकं

मेवमिहापि तथा परिकल्पना । स्थूलस्य भावस्य महत्या: भावनाया वा सूक्ष्मतमाभिव्यक्तिः शाक्ततन्त्रेषु यन्त्रारचनपूजनादिना विधीयत इति स्पष्टमवलोक्यतेऽनुभूयते च । कर्णिकायां पुनरिह क्रमशः अउमबीजैरनुस्वारयुतैः सूर्यचन्द्राग्निदेवाः स्वकीयकलाभिर्युक्ताः पूज्यन्ते तत्पूजनमन्त्रस्तु प्रागिह निर्दिष्ट इति द्विरुक्तिभिया नोच्यते । सूर्यस्य द्वादश, चन्द्रस्य षोडश वह्नेश्च दश कलाः सन्ति प्रसिद्धाः ।

सत्त्वरजस्तमसां गुणानामथ चात्मन अन्तरात्मनः परमात्मनो ज्ञानात्मनश्च पूजा कार्या, पश्चात् पीठशक्तिपूजा कार्या । पीठस्य प्राणप्रतिष्ठादिकं तु गुह्यकालीखण्डे निर्दिष्टया रीत्या विधेयम् । तत्र ११।३६५-४१४। तथा १२।६१३-६४८। पद्येषु अभिहितौ स्तः मन्त्रविधीनि ततोऽनुसन्धेयौ । सिंहासनपूजाया इह निर्देशस्तद्रीतिरपि तत्रैव १०।८६४—८६६ पद्येषु द्रष्टव्या । पश्चादिह त्रैलोक्याकर्षणमन्त्रं जपन् साधक इष्टदेवीमात्मनि हृदि विचिन्तयन् पुष्पमेकं पाणौ निधाय करकच्छपिकया मुद्रया तस्याः ध्यानं कुर्यात् । ध्याने देवीयं शवासना शिवागणसंकुलश्मशानस्था शिवानादशोभिता सुरासुरमुनीन्द्रयोगिभिः सेविता समायाति । आसनार्थमुपकल्पिताः शवाश्च पञ्च सन्ति "ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः" इति वचनदर्शनात् । अनन्तरमस्या अञ्जलिमुद्रया आवाहनम् स्वागतादिकं च कार्यम् । पुनः क्रमशः आसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं स्नानीयं जलमुद्वर्तनम् चन्दनं सिन्दूरं कुङ्कुमं पुष्पमाल्यमन्यद्वार्पणीयं नैवेद्यादिकं समर्पणीयं तस्यै । पाद्यमर्घ्यं स्नानीयं जलं च स्वाहान्तेन मन्त्रेण, वस्त्रमाभरणादिकं च नमोऽन्तेन मन्त्रेण, आचमनं स्वधान्तेन मन्त्रेण, सर्वमन्यत्पुनः स्वाहान्तेन मन्त्रेण तस्यै समर्पणीयमिति विशेषनिर्देशः ।

पुनरिह तदीयपरिवारस्य पूजा कार्या । परिवारपदमिह परिचारकपरम् । तेन नाङ्गदेवताग्रहणम्, तासां कुटुम्बतयैव प्रसिद्धेः । धूपदीपनैवेद्यादीनि पश्चादर्पणीयानीति ।

५।१२०-१२६।—नैवेद्यविवरणम् । तत्र ब्राह्मणादेर्वर्णस्य नैवेद्याद्यर्पणेऽधिकारविशेषाभिधानम् । यथा सात्त्विकमेव द्रव्यं ब्राह्मणेनार्पणीयम् । आमिषं मदिरादिकं तत्रापि पैष्टिकीं विहाय क्षत्रियेणार्पणीयम् । सुराया अनुकल्पविशेषः—कांस्यपात्रे नारिकेलोदकं, ताम्रपात्रे गोः दुग्धं दधि घृतं मधु च क्षत्रियवैश्यावर्पयितुमर्हतो न ब्राह्मणः । शूद्रस्तु पैष्टिकीमपि मदिरां सर्वमन्यच्चार्पयितुमर्हति देव्यै इति ।

५।१२७-१३१।—केषां पशूनां मांसं द्विजोऽर्पयितुमर्हतीति परिगणितमिह । तदतिरिक्तपशुमांसार्पणेऽनधिकारोऽपि द्विजस्येह निर्णीतः । सिंहव्याघ्रनराणां मांसार्पणे

केवलं क्षत्रियस्य विद्यतेऽधिकारः। कृष्णसारमृगमांसार्पणे चैतस्यानधिकारः। एवं मूषमार्जारचापमांसार्पणेऽनधिकारः शूद्रस्येत्यवधेयम्।

५।१३२-१३३।—वैधपशुमारणविधिविवरणम् प्रदर्शितमिह।

५।१३३-१३५।—निषिद्धबलीनामिह निर्देशः। अत्र वर्णमाधारतया परिगृह्य निर्णयो दत्तः। स्वगात्ररुधिरं बलिरूपेणार्पयितुमधिकारः क्षत्रियस्यैव नान्यवर्णस्य। सात्त्विकवृत्तिसम्पन्ना कस्यापि वर्णस्य व्यक्तिः जीवहत्यां न कुर्यात्, किन्तु वक्ष्यमाणमनुकल्पं तत्स्थानीयं समर्पयेत्। पक्षिणस्त्रिपक्षतो न्यूनस्य महिषादेस्त्रिवर्षतो न्यूनस्यान्यस्य पशोस्त्रिमासतो न्यूनस्य वृद्धस्य विकृताङ्गस्य खञ्जान्धादेः बलौ न भवत्युपयोग इति विशेषनिर्देशोऽत्र विद्यते।

५।१३६-१३७।—अर्पणीयपश्वनुकल्पस्येह निर्देशः। अस्योपयोगं सात्त्विकः साधकः कर्तुमर्हतीति पूर्वमभिहितम्।

५।१३८।—ताम्बूलविन्यासविवरणमभिहितमिह।

५।१३९।—ताम्बूलार्पणमन्त्रात्मकोऽयं श्लोकः। अत आदौ प्रणवयोजना मन्त्रेऽस्मिन् कर्तव्या।

५।१४०-१४१।—मन्त्रजपविधानमभिहितम्। जपश्च मूलमन्त्रस्य भवेत् न तु-शक्तिगायत्र्याः, विशेषनिर्देशाभावात्। ततः पूर्वं पूजायां समागतानां शक्तीनां यथा सन्तोषो भवेत्तथाचर्य ताः विसर्जनीयाः।

५।१४१-१४४।—ब्राह्मणस्य कृते शक्तीनामाकर्षणं निषिद्धम्। अत्र द्विजपदं ब्राह्मणपरमत एव क्षत्रियवैश्यशूद्राणामिहाधिकारः कण्ठतोऽस्ति निर्दिष्टः।

५।१४५-१४७।—आकर्षणार्थमनुपयुक्तानां स्त्रीणां विवरणमिह प्रदत्तम् ग्रन्थकृता।

५।१४७-१५१।—आकर्षणोपयोगिन्यास्तरुण्याः लक्षणमभिहितमत्र। कामविकारस्यावश्यं संभावितस्य वर्जनम्। यथाशक्ति यथारुचि यथासंख्यं जपं देव्यै समर्प्य समन्त्रं पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा प्रदक्षिणं कुर्यात्। पुनः स्तोत्रस्य सहस्रनाम्नः कवचस्य च पाठं कुर्यात्। पुनः प्राणायामषडङ्गे विधायात्मानं देवतारूपं ध्यायन् देव्याः विसर्जनं कुर्यादिति। पुष्पाञ्जलित्रयदानमन्त्रः कः भवतीति जिज्ञासा न शाम्यति। अत्रानिर्देशादन्यत्र गुह्यकालीखण्डे योनिमुद्रया मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयदानमभिहितं तदनुसर्तव्यं नवेति सुधीभिर्विचार्यम्।

षष्ठः पटलः ।

६।१-३।—त्रिविधेषु कामकालिकप्रयोगेषु प्रथमोऽर्थादुत्तमस्तस्य प्रकारः पञ्चमे पटले सविस्तरमवगमितः ग्रन्थकृताधुनावशिष्टयोस्तयोर्मध्यलघुपूर्वयोर्मध्यमाधमकोटिकयोः सक्षेपेण परिचयः प्रस्तूयते । सैव रीतिस्त एव मन्त्रा इहानुसरणीयाः, केवलं शक्तीनां संख्यैकत्र चतुर्विंशतिरपरत्र द्वादशावगन्तव्या इति भेदः विशेषो वा । क्षत्रियस्यैषु प्रयोगेष्वधिकारः न तु ब्राह्मणस्य वैश्यस्य वेति बोध्यम् । अत एव राज्ञः कण्ठतोऽभिधानं द्विजस्य च निषेधः । द्विजपदमिह प्रसङ्गतः ब्राह्मणवैश्ययोरेव वाचकम् । राज्ञः पृथगभिधानात् । तदपि विपरीतकर्मणीति ग्रन्थस्वारस्येन स्वार्थकरणस्य सङ्गतिरवगन्तव्या ।

६।४-८।—कामकालिकप्रयोगस्य स्थानमधिकारिणां कर्तव्यजातं चेह निर्दिष्टम् । तद्यथा पुरश्चरणकरणे कुशलः जपशीलः यमनियमसंपन्नश्च साधकः निर्जनस्थाने पर्वते नद्यास्तटे शून्यागारे शिवालये सिद्धपीठे देव्याः वा पीठे चतुःपथेऽपि प्रयोगममुं कुर्यात् । श्मशानादिस्थानस्येहानिर्देशात् न तत्रायं कर्तव्यः प्रयोगः । शक्तीनां तत्र निर्भीकताया असंभवात् । विधिपूर्वकमेव कर्तव्यम् कर्मकर्तृसाधनानामन्यतमस्यापि वैगुण्ये न केवलं वैफल्यमपि तु देव्या रुष्टतायामनिष्टस्यापत्तिरपि संभवति । अतः कर्मण्यस्मिन् प्रवृत्तः साधकः त्रिकालस्नानमाचरेत् हविष्यमेव भक्षयेत् दुष्टप्रवादं, परस्यात्मीयस्य वा निन्दां, स्त्रीशूद्राभ्यामालापं दुर्जनस्य संसर्गं च वर्जयेदिति शास्त्रस्याज्ञा ।

६।९।—आसनप्रकारा अभिहिताः । तेषु प्राशस्त्यमपि निर्दिष्टम् ।

६।१०।—जपमालाप्रकारोऽत्राभिहितः तेषु प्राशस्त्यनिर्णयोऽपि कृतः ।

६।११।—मूलमन्त्रस्य लक्षसंख्याको जपो विहितस्तथा सति सामान्यविशेषयोस्तद्वतयोः प्रयोगयोरधिकारो भवति ।

जपसंख्यामवधीकृत्य तदीयदशांशं होमं तदीयदशांशं तर्पणं तदीयदशांशमभिषेकं च कृत्वा साधकः सिद्धमन्त्रो भवति । अनन्तरमेव प्रयोगेष्वधिकारमसौ लभत इत्याशयः ।

६।१२-१३।—सामान्यप्रयोगान्तर्गताकर्षणप्रयोगोऽभिहितः ।

६।१४-१५।—उच्चाटनप्रयोगोऽत्र निर्दिष्टः ।

६।१६-१७।—सर्वज्ञतासिद्धिप्रयोगोऽभिहितोऽत्र ।

६।१८।—शत्रुर्व्याधियुतो भवति प्रयोगेणानेन ।

६।१६—२१।—मारणप्रयोगोऽयम् । अत्र साध्यपदेन यस्य मारणमभिप्रेतं तस्य ग्रहणम् ।

६।२२-३०।—रक्षायन्त्रविवरणम् । अग्रे यन्त्रस्य स्वरूपं प्रदर्शितमिह । भूर्जपत्रे षट्कोणयुतमष्टदलकमलस्य निर्माणं कर्तव्यम् । योनिस्त्रिकोणस्येह वाचकम् । त्रिकोणद्वयं च षट्कोणबोधकम् । लाक्षागोरोचनकर्पूरकेसरकस्तूरीभिरस्य यन्त्रस्यालेखविधानम् भाषायां लाखनाम्ना प्रसिद्धस्य बोधकं लाक्षापदं, गोरोचनं प्रसिद्धम्, चन्द्रपदं कर्पूरवाचकम् काश्मीरभवं केशरं मृगनाभिजा कस्तूरीति कोषानुशासनतोऽवगम्यते । षट्कोणमध्ये देव्याः कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्याकर्षणमन्त्रः लेखनीयः । अष्टदलेषु क्रमशः ग्लूं क्रौं क्षूं क्षौं स्हौः ह्रौं फ्रों क्रीं बीजानि देयानि । दलयोरन्तरेष्वष्टसु ओं ऐं ह्रीं स्त्रीं श्रीं क्ली क्लूं क्लौं बीजानि देयानि । आं क्रों हूं स्फ्रों चत्वार्येतानि बीजानि सर्वत्र द्वारेषु लेख्यानि । सानुस्वरैः अकारादिक्षकारान्तैः वर्णैः वेष्टनं कार्यम् । वज्रास्त्रस्य युगलं च चतुर्द्वारेषु देयं तद्यन्त्रं प्रथमं रक्तवस्त्रेण पुनस्तन्तुभिर्जतुभिर्वा वेष्टयेत्, पुनः पट्टवस्त्रेणावृतं विधाय सुवर्णरजतताम्रादिधातुषु यथाविभवं निधाय बध्नीयात् पुरुषः दक्षिणबाहौ कण्ठे वा महिला तु वामबाहौ कण्ठे वेति । यं मनोरथमादाय धारयेत् सोऽवश्यं पूर्ति यास्यतीति परीक्षितम् । अत एवेह ग्रन्थे यन्त्रराजेत्यस्याभिधानम् ।

६।३१-४४।—रक्षायन्त्रस्य माहात्म्यं फलश्रुतिश्चेह वर्णिता । न कश्चिदस्ति विशेषः व्याख्येयो वा ।

६।४५-४८।—अस्यैव रक्षात्मकस्य यन्त्रराजस्य प्रकारान्तरेणापि कौलिकः प्रयोगं करोति यस्येह निर्देशः ।

६।४६-५४।—रक्षायन्त्रस्य प्रकारान्तराभिहितप्रयोगस्य फलश्रुतिः । नास्ति कश्चन व्याख्येयो विषयः ।

६।५५-५६।—आकर्षणप्रयोगः । तथा हि मुक्तवासाः दिगम्बरः साधकः यस्य यस्या वाकर्षणमिच्छति तस्य तस्या वा साध्यपदेन संकेतितस्य संकेतितायां वा नाम ताम्बूलपत्रे मधुना लिखेत् तच्च नाम त्रैलोक्याकर्षणमन्त्रेण संवेष्टयेत् पुनरिहाभिधीयमानमन्त्रेणाभिमन्त्र्य तत्ताम्बूलपत्रं तस्य तस्या वा भक्षयेत् । मन्त्रश्च—ओं ह्रीं क्लीं

अमुकम् अमुकीं वा क्लेदय क्लेदय आकर्षय आकर्षय मथ मथ पच पच द्रावय द्रावय आनय आनय मम सन्निधिं हूं हूं ऐं ऐं श्रीं श्रीं स्वाहा ।

६।६०-६४।—अस्याकर्षणप्रयोगस्य फलश्रुतिः माहात्म्यं च वर्णितम् ।

६।६५-६७।—अपर आकर्षणप्रयोगः ।

ओं क्लूं क्लीं ह्रीं हूं क्रों श्रीं आं ऐं क्रीं कामकलाकालि सर्वाकर्षिणि अमुकम् अमुकीं वा [यस्य यस्या वा आकर्षणमभिप्रेतं तन्नाम द्वितीयान्तं विधाय] आकर्षय स्वाहा इति मन्त्रेण जलपात्रस्थजलमभिमन्त्र्य वामहस्तेन साधकः पिबेत् प्रक्षालयेच्चात्मनो मुखम् । यं यां वा प्रयोक्ता साधक इच्छति तस्य तस्या वा का कथा यो या वा तं पश्येत् स सा वा सर्वाप्याकृष्टा भवेदितीह कथितम् । वशीकरणमपि प्रयोगममुं वक्तुं शक्यम् । यतो हि आकृष्टा व्यक्तिः सदा साधकस्य वशे तिष्ठेदिति शास्त्रस्येहोपदेशः ।

६।६८-६९।—अभिहितप्रयोगस्य प्रभावाभिधानम् ।

६।७०-७६।—पादुकासिद्धिविधिः । तथा हि पलाशकाष्ठस्य पादुके संगृह्य तत्र श्मशानाङ्गारेण—ओं ऐं क्रीं श्रीं ह्रीं हूं कामकलाकालि गन्तव्यभूमिमर्यादमुकं स्थानं खण्डय खण्डय छेदय छेदय त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि स्फ्रों आं क्रों सिद्धिं देहि दापय फट् फट् फट् स्वाहा इति मन्त्रं लिखेदध चात्मनः पादयोः स्नुहीदुग्धं लेपयेत् । एतयोः सिद्धपादुकयोरारूढः साधकः इच्छागामी भवति अर्थात् यं देशं गन्तुमिच्छेत् तत्र गन्तुं प्रभवेत् । पूर्वस्यां दिशि चतुःशतक्रोशपरिमितं दक्षिणस्यां दिशि षट्शतक्रोश परिमितं पश्चिमायामष्टशतक्रोशपरिमितम् उत्तरस्यां दिशि सहस्रक्रोशपरिमितं विदिक्षु वह्नीशानवायव्यनैर्ऋतासु शतक्रोशपरिमितं दूरमलक्षितः सन् आत्मानं प्रच्छन्नं कृत्वा साधकः गन्तुमर्हति । ततो दूरदेशेभ्यः परावर्तितुमपि शक्नोतीति पादुकासिद्धिमाहात्म्यमभिहितमत्र ।

६।७७-८१।—खेचरीसिद्धिविधिः । साधकः चन्द्रग्रहणावसरे स्वर्णक्षीरीलताविशेषस्तस्या मूलमुत्पाट्य रजस्वलाया नार्या भगे दिनत्रयं यावदर्थाद् यावत् सा ऋतुमती तिष्ठति तावत् स्थापयित्वा धूपदीपनैवेद्यादिभिस्तत् स्वर्णक्षीरीलतामूलं पूजयेत् । पुनः सूर्यग्रहणस्य प्रतीक्षा कार्या तदवसरे खञ्जरीटस्य प्रसिद्धपक्षिविशेषस्य रुधिरेण

संयोज्य चूर्णयेत् ततश्च यवत्रितयमिता गुटिका निर्मातव्या। भाद्रपदमासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां तिथौ कुक्कुटस्य बलिमस्मै दत्वा शिखामूले धारयेत्। धारणं चात्र समन्त्रं कार्यम्। तन्मन्त्रस्तु अनुपदमेवोच्यते—

६।८२-८८।—ओं ऐं ह्रीं क्लीं आं क्रों हूं स्फ्रों श्रीं कामकलाकालि रतिमोहिनि वसामांसरक्तप्रिये खेचरं मां कुरु कुरु रक्षोभूतपिशाचसिद्धविद्याधरोरगान् मम वशं कुरु कुरु ह्लां ह्लीं क्षां क्षूं क्रां क्रीं क्लां क्लूं खेचरीसिद्धिदायिनि त्वर त्वर कह कह कालि कापालि हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा।

अत्र बलिदानस्य चूर्णकरणस्य पूजायाश्च विधिर्मन्त्रश्च नाभिहितो इति गुरुपरम्परात. तावदगन्तव्यौ।

६।८८-९३।—खेचरीसिद्धिफलश्रुतिः।

६।९४-११५।—खड्गसिद्धिविधिः।

६।९४-१००।—तथा हि षोडशपलमितं काम्बोजदेशस्य लौहं मकरसंक्रान्तौ अर्थान्माघमासे संग्राह्यम्। कर्कसंक्रान्ति यावदर्थात् तस्य श्रावणमासं यावत् पूजा कर्तव्या। पुन आश्विनकृष्णाष्टम्यां व्योकारमर्थाल्लौहकारं स्वकीये गृहे समाहूय असिं निर्मापयेत् साधकः न तु तदीयगृहं लौहमादाय गच्छेत्। मुक्तचिकुरो दिगम्बरः शुचिश्च लोहकार· प्रतिदिनं किमप्याचरन् असिनिर्माणे मकरसंक्रान्तिं यावत् संलग्नस्तिष्ठेत्। ततो माघकृष्णचतुर्दश्यां नरकनिवारणचतुर्दश्यां खड्गस्य पूजां कृत्वा देव्याः कालिकाया अग्रे स्थापयेत्। पूजाविधिश्चेह गुरुणावगन्तव्यः। इह तस्य नास्ति निर्देशः। धूप दीपनैवेद्यादिना पूजाविधाननिर्देशः दशोपचारं संकेतयति न तु तद्रीतिम्। खड्गस्य मुष्टौ च स्नुहीवटार्काणां दुग्धं लेपयेत्। इमं च खड्गं देव्यै समन्त्रं समर्प्य गृह्णीयात्। अनुपदमेवोच्यते मन्त्रोऽयम् खड्गग्रहणस्य।

६।१०१-१०६।—ओं ऐं हूं क्लौं क्लौं श्रीं घोरनादे दंष्ट्राविकटे मुखमण्डले [दंष्ट्राविकटमुखमण्डले ?] महाघोरे घोरतरे महाभयङ्करे श्मशानवासिनि योगिनी-डाकिनीपरिवृते कल्पान्तकालानलविकराले दुर्निरीक्ष्यरूपे गर्ज गर्ज विध्वंसय विध्वंसय छिन्धि छिन्धि दम दम मर्दय मर्दय पातय पातय उच्छादय उच्छादय क्षोभय क्षोभय मारय मारय द्रावय द्रावय इमं खड्गं देहि मे स्वाहा।

अत्र १०२ पद्यस्य तृतीयचरणे मुखमण्डल इति पाठः समुचितः प्रतिभाति प्रसंगार्थस्वारस्यात् । मातृकानुरोधात् प्रकृतपाठादरः ।

६।१०७।—नृपसाधकस्यात्राधिकारस्तदुपयोगित्वात् खड्गस्य । अत एव स स्वगात्ररुधिरं खड्गाय बलिरूपेण दातुमर्हतीति तद्विधानम् । पश्चादस्मै नरबलिस्तदभावे महिषाबलिश्च दातव्यः ।

६।१०८।—देव्या खड्गादानार्थमनुज्ञाग्रहणमन्त्रोऽयम् ।

६।१०९।—खड्गं हस्ते धृत्वा तत्र अंकोलीतैलं लेपयेत् । अंकोलीतैल मस्माकमपरिचितम् सुधीभिः पाठकैराकलनीयम् तत् । अस्य पद्यस्याक्षरार्थस्तु विचारणीयः सुधीभिः साधकैः ।

६।११०-११४।—खड्गमुष्टौ त्सरुनिवेशनमन्त्रः ।

६।११५।—त्सरुं मुष्टौ निवेश्य खड्गमनावृतमपि रक्षितुं शक्यत इति निर्देशः ।

६।११६-१२७।—खड्गसिद्धिफलश्रुतिः प्रभाववर्णनं च । तदङ्गतया पौराणिककथास्पर्शोऽप्यत्राकलनीयः ।

६।१२८-१३४।—अञ्जनसिद्धिविध्यभिधानम् ।

तथा हि दशदिनात्मकावधौ जातः बालो यदि मङ्गलवासरे म्रियते तदा तस्य खर्परात्मकाधारे भक्षितनवनीतस्य कृष्णमार्जारस्य वान्तं स्नेहस्थानीयमादाय खञ्जरीटपक्षमिश्रितमर्कतूलं (भाषायां रुई प्रसिद्धं) वर्त्तिकास्थाने च कृत्वा श्मशाने कज्जलमारचयेत् कज्जलारचनदिनं तु शनैश्चरं भवति । प्रातः रविवासरे तद् देव्यै समर्प्य नेत्रे स्वयं साधकः समन्त्रमञ्जयेत् । तदञ्जनमन्त्रो यथा—ऐं श्रीं ह्रूं स्क्रों सर्वसिद्धिदायिनि मा मां पश्यन्तु सर्वभूतानि स्वाहा इति ।

शनिवारे कज्जलारचनं ग्रन्थस्वारस्यादिह टिप्पणेऽभिहितमक्षरार्थस्तु सुधीभिः विचारणीयः ।

६।१३५-१३८।—अञ्जनसिद्धिफलश्रुतिः ।

६।१३९-१७०।—गुटिकासिद्धिविधिः । तथा हि—

६।१३६-१४३।—रेखायुतं स्थूलपीतमर्थात् प्रौढं शुचिदेशगतं सरोवरस्थं मण्डूकमेकं संगृह्णीयात् । एकस्मिन् मृण्मये नूतने घटे तं निदध्यात् । तत्र घटे एकपलमितं पवित्रं सूतं निक्षिपेत् सरावेण तस्य घटस्य मुखमाच्छादयेत् पुनस्तं घटं पञ्चवारं जतुभिर्वेष्टयेत्, तथा यतितव्यं यथाण्वपि जलं तत्र न प्रविशेत् । कुम्भे च मन्त्रं लिखेत् । मन्त्रस्वरूपं यथा—

६।१४४-१४८।—ओं ऐं क्लीं स्त्रीं ह्लीं श्रीं हूं आं ह्रौं हसखफ्रें स्फ्रों स्हौंः ग्लूं क्षूं क्षौं फ्रौं क्रीं क्रं जूं ब्लौं वलौं व्रीं क्लूं रव्रौं कामकलाकालि रक्ष रक्ष हं हं हं लं लं वं फट् फट् फट् स्वाहा ।

६।१४९-१५०।—नद्यां यत्र जलप्रवाहस्तत्र हस्तमात्रं खनित्वा घटं तस्मिन् गर्ते संस्थापयेत्, उपरिष्टात् बालुकाः देयाः । यथा तदुपरि प्रवाहः प्रचलेत् तथा विधेयम् । षण्मासावधि घटमिह यत्नतः संरक्षेत् । क्षुधान्वितो भेकस्तत्स्थं सूतं पलमितं प्रत्यहं भक्षयेत् ।

६।१५१-१५७।—प्रत्येकं चतुर्दश्यां तस्मै भेकाय साधको बलिं दद्यात् । यतो हि भेकरूपा स्वयं भगवती तं बलिं गृह्णाति, अतो देवीबुद्ध्यैव तस्य पूजा कर्तव्या । सूतस्तदुदरे स्वयं बद्धो भवेत् । षण्मासानन्तरं नद्यास्तं घटमानीयैकान्तेऽन्धकारमये च गृहकोणे स्थापयेत् । तत्र घटे छिद्रमेकं विधाय तेन च्छिद्रेण षण्मासपर्यन्तं प्रतिमासमेकवारं हिंगुमिश्रितं पलमितं जलं निक्षेपणीयम् । संवत्सरे पूर्णे सति तं कुम्भं बहिर्निष्कास्यान्तरीक्षे शिक्याद्याधारे संरक्षेत् । तत्र विघ्नकरेभ्यो देवदानवराक्षसेभ्यस्त्राणाय मन्त्रेण तदवगुण्ठनं प्रतिदिनं कुर्यात् । यद्यपि मन्त्रेणावगुण्ठनायावद्येरुल्लेखो न विद्यते तथापि रक्षायां सावधानतया निर्देशेन तथाचरणं कल्प्यते ।

६।१५८-१६९।—तत्र गुटिकासिद्धयङ्गभूतस्य घटावगुण्ठनस्य मन्त्रो यथा—
हूं हूं हूं कामकलाकालि यक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचकूष्माण्डजम्भकयोगिनीडाकिनीस्कन्दवेतालक्षेत्रपालविनायकघोणकगुह्यकविनायकेभ्यो रक्ष रक्ष स्वाहा ।

अनन्तरं प्रथमे मासि कृष्णधुत्तूरवृक्षस्य पलमितं रसं द्वितीये मासि तुलसीरसं तृतीये मासि गजपिप्पलीरसं चतुर्थे मासि भृङ्गराजरसं पञ्चमे मासि लक्ष्मणारसं षष्ठे मासि श्वेतमूलवचापत्ररसं कुम्भे छिद्रेण दद्यात् । अतीतेष्वष्टादशमासेषु महिषबलिं तस्मै दद्यात् । ततो वस्त्रैः करं वेष्टयित्वा सिन्दूरारुणवर्णं तं भेकं घटान्निष्कासयेत्

यावत्पर्यन्तं न वमति तावत् पर्यन्तं तं भेकं शनैः धूनयेत् । तद्वान्तं रक्तवर्णं पूजास्थाने समानीय तत्र देव्याः प्राणप्रतिष्ठापूर्वकं षोडशोपचारैः पूजामाचर्य तस्या अनुज्ञामासाद्य च शिखायां समन्त्रं तां भेकवान्तिं बध्नीयात् । इयमेव गुटिकानाम्नाभिधीयते । शिखाया-मस्या धारणमन्त्रस्तु—

६।१७०-१७१ —ओं हसफ्रीं ह्रीं क्लीं क्रों ग्लूं सर्वसिद्धिं देहि देहि स्वाहा ।

६।१७१-१८४।—गुटिकासिद्धेः फलश्रुतिरभिहिता । यत्राणिमाद्यष्टसिद्धयोऽपि भवन्ति का कथान्यासां सिद्धीनाम् । सर्वमेतत्प्रसादेन सुलभं भवति ।

६।१८५-१९२।—तालवेतालसिद्धिविधिः । तथा हि यदि कश्चिद् वीरो महायुद्धे साधकसंमुखे पतित. मृतश्च तर्हि तं सशिरस्कं समादाय श्मशानं साधक आगच्छेत् । तत्र स्वयं शुचिः स्नातः कृत्यनित्याह्निकक्रियः कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां तिथौ रात्रौ तं शवमारुह्य सहस्रं द्विसहस्रं वा त्रैलोक्याकर्षणमन्त्रं जपेत् । पश्चाद्देवी करालिनी तस्मिन् शवे प्रविशति । तत्समये पूर्वत आनीतं वध्यं चौरं बलिं दद्यात् । अस्य नरबलेर्दानं समन्त्रं भवति । तन्मन्त्रस्तु—

ओं ऐं क्लीं स्हौः स्फ्रों ग्लूं ह्रीं क्रों हसखफ्रें क्रौं क्षौं कामकलाकालि बलिं गृह्ण गृह्ण सिद्धिं मे देहि देहि दापय दापय स्वाहा । अनन्तरं तालवेतालौ सिद्धौ भवतः ।

६।१९३-१९६।—तालवेतालसिद्धिफलश्रुतिः ।

६।१९७—अत्रान्येषां प्रयोगाणां समष्ट्याभिधानम् । अन्यकालीपूजाविध्य-ङ्गतया डामरयामलादिग्रन्थेषु ते वर्णिताः सन्ति, तत एवावगन्तव्याः । ग्रन्थकृतः स्वभावः पटलान्ते अग्रिमपटलविषयमवतारयति । परमिह तथा न तेन कृतम् । अपि तु ग्रन्थान्तराभिहितप्रयोगाणां दिक्प्रदर्शनं कृतं प्रसङ्गपतितत्वादिति विशेषोऽव-धारणीयः ।

सप्तमः पटलः ।

७।१।—पटलेऽस्मिन् द्वौ विधी मुख्यतः प्रतिपादितौ । एको हवनविधिरपरश्च योगविधिः । अत एव हवनविध्यन्तर्गतस्य वह्निस्थापनस्य जिज्ञासा ।

७।२-७।—साधकः होमेनेष्टं साधयितुमर्हति । अत्र स्थानस्य होमीयद्रव्यस्य होतुश्च भवत्यपेक्षा । तत्र स्थानप्रसङ्गे प्रथमं कथयति पूर्वोत्तरप्लवं सुन्दरं मण्डलमा

रचनीयम् । मण्डलपदमिह पिण्डिकावाचकं न तु यन्त्रपरम् । नानार्थकपदस्य प्रसङ्गतोऽर्थनिर्णयदर्शनात् ।

द्वात्रिंशदङ्गुलमितो गर्भो यत्राभिजायते ।
एतादृशो मण्डलस्तु चक्राकारः सुवर्तुलः ।। गु० ख० ११।१७-१८।। इति ।

तत्र च मण्डले त्रिकोणं षट्कोणं नवकोणं वा कामनानुरूपं करणीयम् । कामना-भेदाद् होमस्य मण्डले द्रव्ये काष्ठे रीतौ च दृश्यते भेदः । अत एव फलस्यान्नस्य पुष्पस्य वस्त्रस्य रत्नस्यान्यपदार्थस्य च होमे पृथक् फलाभिधानं शास्त्रेषु श्रूयते । देवीं ध्यायता साधकेन समद्भिः सर्पिषा च होमः कर्तव्यः । यद्यपि जपानन्तरं तद्दशांश-होम इति साधारणी रीतिस्तथापि कामनाविशेषसिद्धयै तद्विपरीताचरणनिर्देशोऽपि विशेषरीतितया भवितुमर्हति । तथाहि कामनाविशेषमासाद्य होता विशेषद्रव्येण विशेष-रीत्या विशेषमण्डले होमं करोति चेदनन्तरं जपमपि गुरूपदिष्टसंख्याकमिष्टदेव्यास्त-न्निर्दिष्टपद्धत्या च कुर्यादिति शास्त्रस्वारस्यम् ।

७।८-१४।—मण्डले त्रिकोणादिकं निर्माय साधकः शुचिः कृतनित्यक्रियश्च करन्यासं षडङ्गन्यासं च कुर्यात् । पुनः हृदिस्थितामिष्टदेवतां ध्यायन् अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि ।। इति ऋ० वे० ६।१६।१० । मन्त्रेण वह्निमावाह्य अग्नये रोचमानाय इति मन्त्रेण तं स्थापयेत् । मन्त्रोऽयमस्माक-मपरिचितः स्थापनं चाग्नेर्मण्डलस्येशानकोणे कर्तव्यम् । होमः कर्तव्यः, आहुतिश्च कामनानुरूपा पुष्पस्य फलस्यान्नस्यान्यवस्तुनो वा भवितुमर्हति । अनन्तरमष्टोत्तरं शतं न्यूनतमं लक्षं वाधिकतमं जपं कुर्यात् । जपश्चेष्टदेवताया मन्त्रस्य यादृशी कामना तथासंख्याको विधेयः । महतीच्छा चेत्तस्याः सिद्धयै लक्षं जप्तव्यं लघ्वीच्छा यदि तर्हि तत्सिद्ध्यर्थमष्टोत्तरं शतमेव जप्तव्यम् इति ग्रन्थकृदाशयः—

"कामना गौरवादेव होमो गौरवमिच्छति"

इति पद्येनावगम्यते । होमपदमुपलक्षणं जपमपि तथा बोधयति ।

७।१६।—एकेन तद्द्रव्येण यत्फलं भवति मिश्रितेन तेनैव द्रव्येण फलान्तरमपि सिद्ध्यतीत्याशयः ।

७।१७-२८।—कस्य पुष्पस्य होमेन किं फलं भवतीति स्फुटमिहाभिहितम् । अष्टत्रिंशत् पुष्पाणि इहाभिहितानि ।

७।२६-३६।—फलाहुतिफलानीहाभिहितानि । षड्विंशतिफलानामाहुत्या तत्संख्याकफलावाप्तिकथा यथायथमभिहिता ।

अत्रानभिहितेनापि फलेन होमो भवितुमर्हति ,तत्फलहोमस्य फलमप्यन्यदेवेहानुक्तं भवतीति शास्त्रकृतोऽस्य विश्वासः ।

७।३७-३६।—अन्नाहुतिफलानीहाभिहितानि । विविधविधानि फलानि अन्नविशेषाहुत्या लब्धुमर्हति साधक इति तदभिप्रायः ।

७।४०-४१।—रसाहुतिफलाभिधानम् ।

७।४२-५५।—विविधद्रव्याणां वस्त्रमणिवस्तुप्रभृतीनामाहुत्या नानाविधानि फलानि लब्धुमर्हति साधक इति ।

७।५६-५८।—समिधां भेदेन होमस्य फलेऽपि भेदो भवतीत्यभिहितम् ।

७।५६-७७।—मांसाहुतिफलानि कथितान्यत्र ।

७।७८-७६।—ब्राह्मणवैश्ययोर्महामांसहोमार्पणयोरनधिकारः क्षत्रियशूद्रयोरपि वैकल्पिकोऽधिकारः । द्विजातिपदस्य ब्राह्मणवैश्ययोरर्थयोः संकोचः ।

७।८०-६६।—पक्षिमांसहोमफलानि कथितान्यत्र ।

७।६७-६६।—आहुतिनिर्माणपरिमाणयोरभिधानम् । घृतमधुदधिदुग्धफाणितेक्षुदण्डतिलशर्करासु अन्यतमः सर्वोऽपि आहुतीयफलान्नमांसान्यद्रव्यवस्तुषु मिश्रितव्यः । आहुतीयपुष्पाणि तु समिद्घृतमधुमिश्रितानि कार्याणि । हवनावसरे हवनीयद्रव्यस्याग्नौ प्रक्षेपणे त्रयः कल्पाः भवन्ति—प्रसृतिरर्धमिता त्रिपर्वप्रमिता वा हवनसामग्री प्रक्षिप्यते । अत्रोत्तरोत्तरस्य निन्द्यता पूर्वपूर्वस्य च प्राशस्त्यम् अभ्यर्हितं पूर्वमिति पाणिनीयानुसारात् लोकव्यवहारे तथैव दर्शनाच्च । प्रसृतिरर्धाञ्जलिस्ततोऽर्धमर्धमितम् चुटकीपरिमितम् त्रिपर्वप्रमितम् भवति अंगूष्ठाकनिष्ठामध्यमानामङ्गुलीनां मेलनेन यावद् द्रव्यं ग्रहीतुं शक्यमित्यर्थः ।

७।६६-१०२।—कीदृशे कर्मणि कीदृशं कुण्डं विधाय होमः करणीय इति प्रसङ्गप्राप्तजिज्ञासापनोदाय कुण्डविवरणमिह प्रस्तुतम् । शान्तिपुष्ट्यादिकर्मणि चतुष्कोणं कुण्डं भवति मारणोच्चाटनद्वेषवशीकरणादिकर्मसु त्रिकोणं कुण्डं भवति ।

स्तम्भनमोहनादिकर्मसु वर्त्तुलं कुण्डं भवति । भुक्तिमुक्तिकामनया दीर्घं किन्तु त्रिकोणवर्तुलातिरिक्तचतुष्कोणात्मकमेव कुण्डं भवति अन्तःकरणप्रामाण्यात् फलस्वभावानुरूप्याच्च । अथवा यस्य फलस्य कृते यादृशकुण्डस्यारचनं प्रतिपदोक्तं शास्त्रे तथा विधेयम् अनुक्तावूर्ध्वोक्तमनुसरणीयम् ।

एवञ्च मण्डलारचनं स्थापनमग्नेः कामनानुरूपा होमसामग्री होमानन्तरं जपविधानं होमाङ्गं कर्म होतृस्वरूपं प्रक्षेपणीयहवनपरिमाणकल्पः विविधं हवनकुण्ड स्वरूपं चेति सुस्पष्टं विषया इह साङ्गोपाङ्गमभिहिताः । प्रकरणं चैतत्समाप्तम्

अधुना प्रकरणान्तरं योगविधेरारभ्यते ।

७।१०२-१०५।—वायुरोधेन षट्चक्राणां शरीरान्तःस्थितानां भेदनं योगस्वरूपम् । मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरानाहतविशुद्धाज्ञात्मकानि षट्चक्राणि प्रसिद्धानि सन्ति । योगाभ्यासे सति प्रयोगाः सिद्धिदायिन्यो लघुतां भजन्ते । सविधि योगमभ्यसन् नरः परार्द्धशतजीवितां लब्धुमर्हति इति योगविधिस्तन्माहात्म्यं चेह निर्दिष्टं ग्रन्थकृता ।

७।१०६-१४२।—योगोपकारिणीं नाडीमथ च वायुगतिं तदीयप्रकृतिं च परिचाययति ग्रन्थकारः । येन नाडीशोधने वायुगतिरोधे साहाय्यं लभेत साधकः ।

७।१४३-१४७।—योगानुकूलं स्थानं निर्दिशन् साधकस्याचारमभिदधाति ग्रन्थकृत् । साधकाचारान्तर्गतमेव तस्य त्रिकालस्नानं समाहितान्तःकरणता न्यास-करणीयता भस्मानुलेपः कुशासने मृगचर्मणि वोपवेशनम् आसनाधारभूमिसमतलता गुरुगणेशदेवीनां च यथाशक्ति पूजा च समायान्ति ।

७।१४८-१५१।——योगविधिस्वरूपमभिदधात्यत्र ग्रन्थकृत् ।

७।१५२—१५९।—देव्या निराकारध्यानमभिहितम् । औपनिषदिकेन ब्रह्मणा तुलनीया देव्या निराकारता । तथाहि बृहदारण्यके ३।८।८।—मन्त्रेण्वस्य साम्यं दृश्यते ।

७।१६०-१६४।—षट्चक्रभेदनप्रक्रियाभिधीयते ।

७।१६५-१६६।—षट्चक्रभेदनफलश्रुतिः । वैदिकेषु कर्मकाण्डेषु यज्ञयागादिषु नैष्ठिकानां दृढं विश्वस्तानां भारतीयजनानामिह तान्त्रिके योगमार्गे प्रवर्तनार्थं

यज्ञादिष्वभ्यर्हितानां फलश्रुतौ समुल्लेखः । अतएव राजसूयाश्वमेधवाजपेयपुण्डरीक विश्वजितामुद्धरणम् ।

७।१६७-१६६।—कुण्डलिन्याः स्वस्थाननिवेशप्रक्रियाऽभिहिता

७।१७०-१७५।—अस्य योगाभ्यासस्य माहात्म्यं कथितमत्र ।

योगस्य मोक्षसाधकता न तु प्रयोगान्तराणामिति विशेषकथया योगस्योत्कर्षः सिद्धिदायकप्रयोगाणामपकर्षश्च प्रतिपादितः ।

७।१७६-१८१।—उत्तमः कल्पः मोक्षस्य परमनिःश्रेयसस्य चरमपुरुषार्थस्य च कृते यत्नः । अधमश्च कल्पः सिद्धिप्राप्त्याकाङ्क्षा । यद्यपि योगेन सिद्धयोऽपि लब्धुं शक्यन्ते तथापि मोक्षार्थमेव योगस्योपयोगः कर्तव्यः । अत्र योगविधौ असमर्थैः साकाराया देव्या ध्यानं कर्तव्यम् । ध्यानमपि ऐहिकं सुखभोगादिकमामुष्मिकं च मोक्षं साधयति ।

७।१८१-१६५।—देव्याः साकारस्वरूपध्यानम् ।

७।१६६-२००।—ध्यानस्य विविधसिद्ध्युपायताभिधानम्

७।२०१-२०६।—पूजायाः कोटित्रयनिर्देशः । उत्तमा योगविधिः मध्यमा मानसी पूजा ध्यानात्मिका अधमा बाह्यपूजा । कलियुगे बाह्यपूजायाः प्राधान्यम्, द्वापरे ध्यानस्य प्राधान्यम् । कृते त्रेतायां च युगयोर्योगस्य प्राधान्यम् । योगः गुरुगम्यः कलौ युगे न संभवति । अत एव न्यासपूजादिमाहात्म्यम् ।

भावनाया इह प्राधान्यम् इति कण्ठतोऽभिहितमत्र । यादृशी यत्र भावना तादृशी तस्य फलसिद्धिरित्याशयः ।

अष्टमः पटलः ।

८।१-७।—षोढान्यासोपदेशार्थं भूमिका आरभ्यते ।

८।८-१०।—षोढान्यासस्य महत्त्वातिशयोऽत एव गोपनीयत्वं चाभिहितम् ।

८।११-१७।—षोढान्यासमनुष्ठाय लब्धसिद्धीनां राज्ञां नामानीह कीर्तितानि यैरिह पाठकानां प्रवृत्तिर्भवेत् ।

८।१८-५७—त्रिपुरासुराणामन्यथा संहारासंभवेन तैः साकं युद्धार्थमुद्यतं शिवं प्रति देव्या षोढान्यासोपदेशः कृत इति कथा। कवचमिवायं न्यासो धारकस्य संरक्षक इति महत्त्वातिशयप्रतिपादनचातुर्यं ग्रन्थकृतः । अतोऽस्य माहात्म्यकीर्तनबुद्धयैव त्रिपुरासुराणामन्यथा जेयत्वसंभावनाभावस्य तेभ्यो देवानां भीतेस्ततस्त्राणाय तेषां शिवशरणापन्नतायाः शिवेन षोढान्यासात्मकस्य कवचस्यास्य धारणेन विना तैः साकं पराजयशंकाया अथ च विलक्षणरथनिर्माणस्य च वार्ता परिकल्पिताऽभिहिता वा विद्यते।

८।५८-५९।—षोढान्यासस्य न्याससमष्ट्यात्मकस्य ऋष्यादयोऽत्र निर्दिष्टाः। मन्त्रो न्यासश्च प्रायः षडङ्गः सप्ताङ्गो वा भवति। ऋषिश्छन्दो देवता बीजं शक्तिः कीलकं विनियोगश्चेति वेदागमयोरुभयत्र समानरूपेण सन्ति प्रसिद्धाः। विनियोग पदमुपयोगपरम्।

८।६०-६१।—षोढान्यासान्तर्गतानां न्यासानां नामनिर्देशो यथा नृसिंहन्यासः, भैरवन्यासः, कामकलान्यासः, डाकिनीन्यासः; शक्तिन्यासः, देवीन्यासश्चेति।

८।६२-६८।—अत्र पंक्तिः विकीर्णा ग्रन्थश्च त्रुटित इति प्रतिभाति। ग्रन्थकारस्य नितरां सरला विमला च शैली यथाक्रमं विषयमुद्दिश्य तत्स्वरूपं प्रकाशयति। तस्मादिह प्रथममृष्यादि षडङ्गाभिधानं पुनः करन्यासं हृदयादि षडङ्गन्यासं च मुख्यन्यासस्य पूर्वाङ्गतया स्वीकृतं निर्दिश्य मुख्यन्यासस्य स्वरूपं समुद्घाटनीयं भवति। एतद्दृष्टया ६५ तम पद्यानन्तरं ६२ तमं पद्यं पठनीयम्। पूर्वापरसंबन्धस्य तथैव संरक्षणम् भवति। अत्राष्टौ मातृकावर्गा अभिहिताः येषामुपयोगस्तत्र सुलभः। यथास्थानपाठे तु अस्य पद्यस्य सङ्गतिरेव न दृश्यते। उपक्रमोपसंहारापूर्वताफलार्थ वादोपपत्तीष्वन्यतमस्यापि तात्पर्यनिर्णायकस्यात्र सामर्थ्यादर्शनात्।

६३ तः ६५ यावत् श्लोकाः पूर्वापरसंबन्धयुतानि ऋष्यादिकं षडङ्गं करन्यासं हृदयादिषडङ्गन्यासं च मुख्यन्यासस्य पूर्वाङ्गानि निरूपयन्ति। क्षां अंगुष्ठाभ्यां नमः क्षीं तर्जनीभ्यां स्वाहा क्षूं मध्यमाभ्यां वषट् क्षैं अनामिकाभ्यां वौषट् क्षौं कनिष्ठिकाभ्यां हूं क्षः करतल करपृष्ठाभ्यां फट्।

एवं क्षां हृदयाय नमः क्षीं शिरसे स्वाहा क्षूं शिखायै वषट् क्षैं नेत्रत्रयाय वौषट् क्षौं कवचाय हूं क्षः अस्त्राय फट् इति करन्यास हृदयादिषडङ्गन्यासरूपम्।

६६ तः ६८ यावत् पद्यानामभिप्रायो यद्यपि नास्माभिरधिगतस्तथापि किञ्चि-दूहेनोच्यते तत्सुधिया साधकेन विचारणीयम् । यतो हि मातृकान्यासपरिगणिताङ्गेषु न्यासस्यास्य निर्देशोऽथ च हल् वर्णा एव बीजतया निर्दिष्टाः सन्ति अतः एकपञ्चाशत् भवन्त्यङ्गानि न्यसनीयानि व्यञ्जनानि च पञ्चत्रिंशदेव सन्ति न स्वराणामिहोल्लेखः । षोडशस्वर स्थाने वर्गमध्यस्थानां कवर्गादिवर्णानां बिन्दुविशिष्टानाम् गं जं डं दं बं रं वं लं कं खं गं घं ङं अष्टावृत्त्याष्टसु स्थानेषु न्यासं कृत्वा पुनः कवर्गचवर्गयोर्वर्णानां बिन्दुयुतानाम् कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं अष्टावृत्त्याऽष्टावङ्गानि न्यसनीयानि अनन्तरमेकैकं व्यञ्जनमादायैकैकस्याङ्गस्य न्यास इति पंक्त्यर्थः सङ्गच्छते ।

यद्यपि ज्वालामालीत्यादि नरसिंहस्य नामविशेषोल्लेखेन तदीयध्यानप्रदर्शनेन च नमो युक्तेन चतुर्थ्येकवचनान्तेन तेनात्र भाव्यं न्यासान्तरेषु तत्तद्देवनाम निर्देशवत् तथापि तन्निर्देशकपंक्तिविरहादिह ग्रन्थपातः प्रतीयते । अन्यथा तन्नामध्यानयोरिह वैफल्यं स्यात् । तस्मादवश्यं तन्निवेश्यं तथेति मम मतिः ।

न्यसनीयाङ्गक्रमस्तु इह निर्दिश्यते—

ललाटं, मुखवृत्तं, दक्षनेत्रं, वामनेत्रं, दक्षकर्णं, वामकर्णं, दक्षनासापुटं, वामनासा-पुटं, दक्षगण्डः, वामगण्डः, ओष्ठः, अधरः, ऊर्ध्वदन्ताः, अधोदन्ताः, मूर्धा (ब्रह्मरन्ध्रम्) जिह्वा, दक्षिणभुजमूलं, दक्षिणकूर्परः, दक्षमणिबन्ध, दक्षाङ्गुलीमूलम्, दक्षाङ्गुल्यग्रम्,, वामभुजमूलं, वामकूर्परः, वाममणिबन्धः, वामाङ्गुलीमूलम् वामाङ्गुल्यग्रम्, दक्षिण-पन्मूलम्, दक्षिणजानुमध्यम्, दक्षिणगुल्फः, दक्षपादाङ्गुलीमूलम्, दक्षपादाङ्गुल्यग्रम्, वामपन्मूलम्, बामजानुमध्यम्, वामगुल्फकं, वामपादाङ्गुलीमूलम्, वामपादाङ्गुल्य ग्रम्, दक्षपार्श्वम्, बामपार्श्वम्, पृष्ठं, नाभिः, जठरं, हृदयं, दक्षांसः, ककुत्, वामांसः, हृदयादिदक्षकरः, हृदयादिवामकरः, हृदयादिदक्षपादः, हृदयादिवामपादः, हृदयाद्युदरम् (?) हृदयादिमुखात्मकं व्यापकम् चेति । [द्र० गु० ख० १ भागः, ६ पटलः, श्लोकः ५२३-२६]

अत्र सृष्टिक्रमः ककारादिक्षकारान्तानां वर्णानां यथाक्रममुच्चारणेनाङ्गस्पर्श-विधिः । क्षकारादिककारान्तवर्णानामर्थात् विलोमरीत्योच्चारणेनाङ्गस्पर्शविधिस्तु संहारक्रमः । मध्यादारभ्यान्तंयावदथ चादिममारभ्योपमध्यं यावदुच्चारणेनाङ्ग-स्पर्शः स्थितिक्रमः । अत्र मन्त्राङ्गयोर्व्यतिक्रमो न भवति केवलं क्रमे व्यतिक्रम इत्य-वधेयम् । नृसिंहन्यासे तु सृष्टिक्रमः संहारक्रमः सृष्टिक्रमः स्थितिक्रमश्च कर्तव्य इति चतुर्वारमङ्गस्पर्शः ।

८।६६-७५।—एकपञ्चाशन्नरसिंहनामानि अभिहितान्यत्र । एतान्येव गुह्य-कालीखण्डस्य नवमपटले [१०२२-१०३०] पर्वतनरसिंहन्यासप्रकरणे दृश्यन्ते । इहोल्लिखितैः सह तेषां नाम्नां साम्यमेवास्ति । कुत्रचिदिह दृश्यते पाठभेदः, स तु प्रामादिक एव । मातृकानुरोधेन यथा निर्दिष्टोऽत्र पठितः । गुह्यकालीखण्डस्य पाठ इह शुद्धः प्रतीयते । तथा हि वज्रायुध स्थाने वस्त्रायुधः विद्युज्जिह्वस्थाने विद्युज्जिह्वा घोरदंष्ट्र स्थाने घोरदंष्ट्रा पिङ्गसटस्थाने पिङ्गजटः प्रदीप्तस्थाने प्रदीपः रौद्रस्थाने महारौद्रः तेजोमय स्थाने सर्वतेजोमय इति पाठा अत्र विद्यन्ते । यद्यपि तात्त्विको भेदः वज्रायुधमात्राभिधानेऽस्ति नान्यत्र कुत्रापि तथापि भेदे सति प्रामादिकता तु सिद्ध्यत्येव ।

पर्वतनरसिंहन्यासो व्यापकः । अयं तु नरसिंहन्यासः व्याप्यस्तत्र शक्तिसहितः नरसिंहः । शिवस्य नृसिंहाकारताया आख्यानकम् [गु० ख० ८।१०५६-११०५] अत्र तु केवलं नरसिंहः [ध्यानेन] स्वरूपेण तिष्ठति ।

८।७६-८७।—नरसिंहध्यानमभिहितम् नात्र कश्चिद् विशेषः ।

८।८८-९१।—षोढान्यासान्तर्गतस्य द्वितीयस्य भैरवन्यासस्य ऋष्यादिषडङ्ग-मभिधाय करन्यासहृदयादिषडङ्गन्यासो च निर्दिष्टो । तथाहि क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, । क्रूं मध्यमाभ्यां वषट् । क्रैं अनामिकाभ्यां वौषट् । क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां हूं । क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्, इति करन्यासः । एवं क्रां हृदयाय नमः । क्रीं शिरसे स्वाहा । क्रूं शिखायै वषट् । क्रैं नेत्रत्रयाय वौषट् । क्रौं कवचाय हूं । क्रः अस्त्राय फट् इति

८।९२-९५।—मुख्यस्य भैरवन्यासस्य मन्त्रात्मकं स्वरूपम् । येनाङ्गेषु न्यासः स्यात् ।

ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों ह्रौं हूं क्षूं क्रोध भैरवाय क्षूं हूं ह्रौं क्रों श्रीं ह्रीं ऐं ओं नमः इति मन्त्रस्वरूपम् । प्रतिमन्त्रं भैरवस्य नाम केवलं परिवर्तनीयम् । अङ्गानि एक पञ्चाशन्न्यसनीयानि पूर्वोक्तान्येव । परिवर्तनीयभैरवनामान्यनुपदमेवोच्यन्ते ।

८।९६-१०३।—एकपञ्चाशद् भैरवनामान्यभिहितान्यत्र । गुह्यकालीखण्डे नवमपटलेऽस्त्रभैरवन्यासे नामानीमानि समागतानि नात्र कश्चनोभयत्र भेदः ।

८।१०४-११३।—भैरवस्य ध्यानमभिहितम् नात्र कश्चन विशेषः । नावशिष्यते किमप्यभिधातुम् ।

८।११४-११५।—षोढान्यासान्तर्गतस्य तृतीयस्य कामकलान्यासस्य भूमिका माहात्म्यं सकलन्यासश्रेष्ठतायाः कीर्तनं च।

८।११६-११८।—कामकलान्यासस्य ऋष्यादिषडङ्गमभिलपति अथ च मुख्यन्यासपूर्वाङ्गम् करन्यासं हृदयादिन्यासं च कथयति। तथा हि क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः इति करन्यासहृदयादिन्यासयोर्मन्त्रः। धरा बीजं ल भवति विधिश्च क भवति अत एव धरारूढो विधिः "क्ला" इत्यक्षरं षड्दीर्घाश्च आ ई ऊ ऐ औ अः इति तन्त्रप्रसिद्धाः।

८।११९-१२२।—कामकलान्यासस्य मन्त्रात्मकं स्वरूपमभिहितमिह। तथाहि आं स्क्रों हसखफ्रें स्हौः क्रीं क्रौं जूं ब्लौं क्लौं ग्लूं ब्रीं रव्रौं क्लूं ब्लूं क्लूं क्लीं क्लीं अनङ्गाय क्लीं क्रीं हूं क्रों स्क्रों कामकलाकालि स्क्रों क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा क्लूं क्लूं क्लूं क्लीं नमः।

प्रतिमन्त्रं कामदेवस्य नाम परिवर्तनीयम्। अन्यत्सर्वं बीजादिकं समानमेव स्यात्। एकपञ्चाशदङ्गानि पूर्वोक्तानि न्यसनीयानि। परिवर्तनीयकामदेवनामान्यनुपदमेवोच्यन्ते।

८।१२३-१३२।—एकपञ्चाशत्कामदेवस्य नामानि कथितान्यत्र गुह्यकाली खण्डस्य चतुर्दशतमे पटले एतान्येव नामानि प्रसङ्गादागतानि। उभयत्र साम्यमेव विद्यते नास्ति कश्चन भेदः।

८।१३३-१३९।—कामदेवस्य ध्यानमिहाभिहितम्

८।१४०-१४३।—षोढान्यासान्तर्गतस्य चतुर्थस्य डाकिनीन्यासस्योपक्रमः। समग्रैश्वर्यपात्रतालाभोऽस्य विशेषफलमभिहितम्। डाकिनीन्यासस्य ऋष्यादिकं षडङ्गमभिधाय करन्यासहृदयादिषडङ्गन्यासौ मुख्यन्यासपूर्वाङ्गौ कथितौ।

तथाहि—ख्फ्रां ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रौं ख्फ्रः इत्येतानि षड् बीजानि नमः स्वाहा वषट् वौषट् हूं फडिति मन्त्रानाद्यन्तौ योजयित्वा हृदयादिन्यासः करन्यासश्च कर्तव्यः। उक्तान्येव षड्दीर्घयुतानि डाकिनीबीजानि भवन्ति।

८।१४४-१४६।—डाकिनीन्यासस्य मन्त्रस्वरूपम् ऐं सहक्लह्रीं ह्रीं श्रीं हूं स्त्रीं छ्रीं फ्रें क्लीं क्षूं क्रीं फ्रों क्रौं कालरात्रि डाकिन्यै नमः। आस्यापि न्यासस्य मातृ-

डाम्यासकारोक्तानि अङ्गान्येव न्यसनीयानि भवन्ति । सर्वत्र डाकिन्या नाम परिवर्तनीयम्

८।१४७-१५४।—एकपञ्चाशद्डाकिनीनामान्युक्तानि येषां न्यासे भवत्युपयोगः ।

८।१५५।—डाकिन्यः नमस्कृताः स्तुताः ध्याताश्च सत्य उत्तमां श्रियं प्रयच्छन्ति साधकेभ्यः, विपरीताचरणे तु तान् भक्षयन्त्येव इतीह कथितम् ।

८।१५६-१६८।—डाकिन्या ध्यानमत्रोपवर्णितम् । ध्यानानन्तरं न्यासः कार्य इति सर्वत्र योज्यम् ।

८।१६९।—षोढान्यासान्तर्गतस्य पञ्चमस्य शक्तिन्यासस्योपक्रमः । अस्यन्यासस्य शतं वासराणि यावदनुष्ठानेनावश्यमिष्टसिद्धिर्भवतीत्यभिहितम् ।

८।१७०-१७२।—शक्तिन्यासस्य ऋष्यादि षडङ्गमभिहितम् । मुख्यन्यासस्य पूर्वाङ्गौ करन्यासहृदयादिषडङ्गन्यासौ कथितौ । अग्न्यारूढम् आकाशबीजं रेफयुतं हकारमभिधत्ते । तथा च षड्दीर्घयुतैस्तैरिह पूर्वाङ्गौ न्यासौ करणीयौ । ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः इत्याद्यं नमः स्वाहा वषट् वौषट् हूं फडित्यन्तं मन्त्रं साधकः न्यासयोरुपयुञ्जीत इति भावः ।

८।१७३-१७८।—शक्तिन्यासस्य मन्त्रस्वरूपत्वम् । तथा हि ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं सूक्ष्माशक्त्यै क ख ह्रौं क्षूं क्रौं फट् फट् फट् स्वाहा । एवं मन्त्रान्तरेषु शक्तेर्नामानुपदं वक्ष्यमाणं यथाक्रमं परिवर्त्य कख इत्यक्षरयोः स्थाने चादिषड्व्यञ्जनवर्गाणामाद्याक्षरौ निवेश्य तयोः न्यासे उपयोगः कर्तव्यः । सप्तानामेषां मन्त्ररूपाणामावृत्तिश्चतुर्वारं कृत्वाष्टाविंशतिरङ्गानि न्यसनीयानि । एकत्र अः ह इति युगलवर्णस्थाने निवेशनीयमन्यत् सर्वं पूर्ववत् कार्यम् । पुनः षोडशस्वराणामेकैकं वर्णं वर्णयुगलस्थाने कृत्वा षोडशाङ्गानां न्यासः कार्यः । युगलवर्णस्थाने कादिपञ्चवर्गाणां तृतीयचतुर्थपञ्चमाक्षराणि अकारयुतानि विधाय सर्वमन्यत् पूर्ववत्कृत्वा पञ्चाङ्गानां न्यासः कार्यः । एवमष्टाविंशतिरेकं षोडश पञ्चेति सङ्कलनया पञ्चाशत् स्थानन्यासमन्त्राः संगच्छन्ते । ग्रन्थे निर्देशाभावेन एकपञ्चाशत्तमस्यान्तिममन्त्रस्य स्वरूपं किं भवेदिति सुधीभिः साधकैश्चिन्तनीयम् । न्यासोऽयं स्वतनौ साधकेन न कर्तव्यः किन्तु देव्यास्तनौ कर्तव्य इति विशेषोऽत्र शक्तिध्यानानन्तरं १९३ तमे पद्येऽभिहितम् ग्रन्थकृता । सुधीभिः साधकैः स्वयमपीह विचार्यानुष्ठातव्यम् ।

८।१७६-१८४।—एकपञ्चाशच्छक्तिनामान्यभिहितान्यत्र।

८।१८५।—एताः शक्तयः देव्या पारिषदाः देव्यास्तनौ संविष्टाः सन्तिष्ठन्ते। अतो देव्यास्तनौ एवास्य न्यासस्य कर्तव्यत्वं निर्दिष्टम्

८।१८६-१९२।—शक्तिध्यानमभिहितम्

८।१९३-१९४।—न्यसनीया स्थानगता इति पाठोऽत्र समुचितः प्रतिभाति। न्यसनीयं स्थानगता इति तु प्रामादिकः प्रतिभाति। मातृकानुरोधेन तथापाठ इह परिगृहीतः।

शक्तिन्यासस्य देवीतनुकर्तव्यताकनिर्देशः। ध्यानानन्तरं न्यासः कार्यः रीति-रियमनुक्तस्थलेऽप्यनुसर्तव्या। षोढान्यासान्तर्गतस्यान्तिमस्य षष्ठस्य देवीन्यासस्या-वतरणम्।

८।१९५-१९७।—देवीन्यासस्य माहात्म्यकीर्तनम्। यामलडामरभीमातन्त्र-कौलिकार्णवादितन्त्रेषु निर्दिष्टानां प्रधानतमानां देवीनां मन्त्रध्यानाभ्यां न्यासं साधकः स्वाङ्गेषु कुर्यात्। न्यासाङ्गानि मातृकान्यासकालोक्तान्येव ज्ञेयानि। अत एव न्यासेऽस्मिन् प्रत्येकं मन्त्रभेदो भवेदिति विभावनीयम्।

८।१९८-२०१।—देवीन्यासस्य ऋष्यादिषडङ्गमभिधाय करन्यासहृदयादि-न्यासौ षड्दीर्घयुतैः कामबीजैरर्थात् क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः इत्येतैः करणीया विति निर्दिशति। सर्वमन्यत् समानं पूर्वोक्तमेवानुष्ठातव्यम्।

अत्र १९९ श्लोकस्यान्ते "वर्जिता" इत्युक्तं पदं तस्याभिप्रायो न ज्ञायते। विनियोगश्च कुत्रेति जिज्ञासैव जागर्ति।

८।२०२-२१०।—एकपञ्चाशद्देवीनां परिचयः। एषां ध्यानमन्त्रौ प्रसङ्गो पयोगिनाविति।

८।२११-२१५।—महालक्ष्म्याः मन्त्रध्याने कथिते स्तः। तत्र मन्त्र-स्वरूपम्—ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं इति चतुरक्षरमन्त्रः।

८।२१६-२२०।—वागीश्वरीदेव्याः मन्त्रध्याने कथिते। तत्र मन्त्रः एका-दशाक्षरः—ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः।

८।२२१-२२५।—अश्वारूढाया मन्त्रध्याने कथिते । तत्र मन्त्रः पञ्च-दशाक्षरः—ओं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं आं अश्वारूढायै फट् फट् स्वाहा ।

८।२२६-२३१।—मातङ्गीदेव्याः मन्त्रस्वरूपस्य निर्देशः ।

ऐं ह्रीं श्रीं ओं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखरञ्जनि सर्वराजवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वसत्ववशङ्करि सर्व लोकममुं मे वशमानय स्वाहा ।

८।२३१-२३४।—मातङ्गीदेव्या ध्यानमुक्तम् ।

८।२३४-२३६।—नित्यक्लिन्नायाः पञ्चदशाक्षरमन्त्रस्वरूपम्—ओं ऐं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ऐं ह्रीं स्वाहा ।

८।२३६-२३९।—नित्यक्लिन्नाया ध्यानम्

८।२३९—२४०।—भुवनेश्वर्यास्त्र्यक्षरमन्त्राभिधानम् । तद्यथा—आं ह्रीं क्रों इति । एतदीयमाहात्म्याभिधानं च

८।२४१-२४३।—भुवनेश्वर्या ध्यानम् ।

८।२४३-२४५।—उच्छिष्टचाण्डाल्या द्वाविंशत्यक्षरस्य मन्त्रस्य स्वरूपम्—उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः ।

८२४६।२४८।—उच्छिष्टचाण्डाल्या ध्यानम् ।

८।२४९-२५२।—आरम्भेऽस्य श्रेष्ठतायाः प्रतिपादनम्, पुनश्च मन्त्रस्वरूप-निर्देशः । पञ्चकूटात्मको भैरवीमन्त्रः । तथा हि—सहक्लूं हकल क्ष्रूं.........
[फेत्कारीकूटं] लक्षमह्लजरक्रव्य्रऊं क्ष्सह्लमब्य्रऊं [?]

८।२५३-२५५।—भैरव्या ध्यानम् ।

८।२५६-२५७।—शूलिन्याः पञ्चदशाक्षरो मन्त्रः—ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रहं हूं फट् स्वाहा ।

८।२६२-२६३।—वनदुर्गाया नवाक्षरमन्त्रः—ओं ऐं श्रीं ह्रीं छ्रीं हूं क्रों स्वाहा।

८।२६४-२६६।—वनदुर्गायाः ध्यानम्।

८।२६६।—त्रिपुटायास्त्र्यक्षरो मन्त्रः—श्रीं ह्रीं क्लीं।

८।२६७-२६९।—त्रिपुटाया ध्यानम्।

८।२७०-२७२।—त्वरिताया दशाक्षरो मन्त्रः—ओं ह्रीं हूं आं क्रों स्त्रौं हूं क्षौं ह्रीं फट्।

८।२७२-२७६।—त्वरिताया ध्यानम्।

८।२७७-२८०।—अघोरायाः पञ्चविंशत्यक्षरात्मको मन्त्रः—ह्रीं श्रीं क्रों क्लीं स्त्रीं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं हसखफ्रें हूं अघोरे सिद्धि मे देहि दापय स्वाहा।

८।२८१-२८३।—अघोराया ध्यानम्।

८।२८४-२८६।—जयलक्ष्म्या मन्त्रः।

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रीं (?) जयलक्ष्मि युद्धे मे विजयं देहि ह्रौं आं क्रौं फट् फट् फट् स्वाहा।

८।२८६-२८८।—जयलक्ष्म्या ध्यानम्।

८।२८९-२९०।—वज्रप्रस्तारिणीमन्त्रः—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रौं क्रों वज्रप्रस्तारिणि स्वाहा।

८।२९०-२९३।—वज्रप्रस्तारिण्या ध्यानम्।

८।२९४।—पद्मावत्याः सप्ताक्षरमन्त्रः—ह्रीं पद्मावति स्वाहा।

८।२९५-२९६।—पद्मावत्या ध्यानम्।

८।२९६-२९८।—अन्नपूर्णायाः सप्तदशाक्षरमन्त्रः—

ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा ।

८।२६८-३००।—अन्नपूर्णाया ध्यानम् ।

८।३००-३०४।—कालसंकर्षिण्याः षट्त्रिंशदक्षरमन्त्रः—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं क्रौं क्रीं आं हूं क्षूं ह्रौं ग्लूं क्रौं हसखफ्रें क्ष्रूं फ्रों छ्रीं फ्रें क्लौं ब्लौं क्लूं स्हौः स्फ्रों ह्रौं जूं क्रम्लैं कालसंकर्षिणि हूं हूं स्वाहा ।

८।३०४-३१८।—कालसङ्कर्षिण्या ध्यानम् ।

८।३१९-३२०।—धनदामन्त्रः—क्ष्रूं [?]

८।३२०-३२४।—धनदाया ध्यानम् ।

८।३२५-३२७।—कुक्कुटया अष्टादशाक्षरमन्त्र—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसखफ्रें हूं कुक्कुटि क्रीं आं क्रों फ्रें फ्रों फट् फट् स्वाहा ।

८।३२८-३३०।—कुक्कुटयाः ध्यानम् ।

८।३३१-३३२।—भोगवत्यास्त्र्यक्षरो मन्त्रः—आं क्रों ह्रौं ।

८।३३३-३३४।—भोगवत्या ध्यानम् ।

८।३३५।—शबरेश्वर्या दशाक्षरमन्त्रः —ओं ह्रीं आं शबरेश्वर्यै नमः ।

८।३३६-३३८।—शबरेश्वर्या ध्यानम् ।

८।३३९-३४२।—कुब्जिकायाः मन्त्रः—हलक्षकमह्लसवरयऊं क्षम्लकस्हरयव्रूं रक्षम्लह्लकसछव्य्रऊं हसखफ्रें ह्लहलवरयकऊं लक्षमह्लजरक्रव्य्रऊं ब्लहतह्लसचैं सहक्लह्रीं खफ्रें ।

८।३४३।—ध्यानमस्य पूर्वमुक्तम्

८।३४४-३४६।—सिद्धिलक्ष्म्याः षोडशाक्षरमन्त्रः—ह्रीं हूं फ्रें छ्रीं स्हौः क्रीं क्रों फ्रें क्लीं श्रीं फ्रों जूं ब्लों क्रम्लैं स्वाहा ।

८।३४९-३५१।—सिद्धिलक्ष्म्याः ध्यानमभिहितम्

८।३५२।—बालायास्त्र्यक्षरमन्त्रः—ऐं क्लीं सौः ।

८।३५३-३५६।—बालायाः ध्यानम्

८।३५७-३५९।—त्रिपुरसुन्दर्याः वक्ष्यमाणमन्त्रस्य माहात्म्याभिधानम् ।

८।३६०-३६२।—त्रिपुरसुन्दर्याः मन्त्रः—महलह्रीं महह्लह्रीं कलह्रीं [?] ।

८।३६३।—मन्त्रस्य फलश्रुतिः

८।३६४-४१४।—त्रिपुरसुन्दर्याः ध्यानम् ।

८।४१५-४१६।—तारायाः मन्त्रस्वरूपम्—ह्रीं त्रीं हूं फट् ।

८।४१७-४२६।—तारायाः ध्यानम् ।

८।४२७-४३०।—दक्षिणकाल्याः द्वाविंशत्यक्षरात्मकस्य मन्त्रस्य माहात्म्यकीर्तन-पूर्वकं स्वरूपम्—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

८।४३१-४३२।—दक्षिणकाल्याः महिम्नः कीर्तनम् ।

८।४३३-४४०।—दक्षिणकाल्याः ध्यानम् ।

८।४४१-४४३।—छिन्नमस्ताया मन्त्रस्य माहात्म्यं भयङ्करता च प्रतिपादिता । अत्राष्टसिद्धीनामुल्लेखस्तेनाणिमादिमहासिद्धयोऽष्टौ संग्रहणीयाः ।

८।४४४-४४५।—छिन्नमस्तायाः षोडशाक्षरमन्त्रस्य स्वरूपम्—ओं श्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा" ।

८।४४६-४५९।—छिन्नमस्तायाः ध्यानमुक्तम् ।

८।४६२-४६१।—त्रिकण्टक्याः मन्त्रस्वरूपम्—हूं श्रीं रट्रं क्रों क्रम्लओं क्षः [?]

८।४६२-४६५।—त्रिकण्टक्याः ध्यानम् ।

८।४६६-४७०।—नीलपताकायाः षट्षष्ट्यक्षरमन्त्रस्वरूपम्—

ओं नमः कामेश्वरि कामाङ्कुशे कामप्रदायिके भगवति नीलपताके भगान्तिके महेश्वरि क्लूं नमोऽस्तु ते परमगुह्ये हूं हूं हूं मदने मदनदेहे त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् स्वाहा ।

अत्र मन्त्रस्य यदि षट्षष्ट्यर्णत्वनिश्चयस्तदा स्फुटं ग्रन्थपातः । महेश्वरि योगार्थमिह पंक्तिः काचिन्नास्ति । अयुतार्णमन्त्रे समावेशेनेह समावेशितः । सुधिया साधकेन विचारणीयम् ।

८।४७१-४७३।—नीलपताकादेव्याः ध्यानम् ।

८।४७४-४७७।—चण्डघण्टाया अष्टात्रिंशदक्षरस्य मन्त्रस्य स्वरूपम्—क्रीं क्रीं हूं हूं हूं हूं क्रों क्रों क्रों श्रीं श्रीं ह्लीं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं चण्डघण्टे शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय हूं फट् स्वाहा ।

८।४७८-४८१।—चण्डघण्टाया ध्यानम् ।

८।४८२-४८५।—चण्डेश्वर्याः सप्तविंशत्यर्णस्य मन्त्रस्य स्वरूपम्—ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रों क्रीं स्त्रीं क्लीं स्हजहलक्षम्लवनऊं क्षमक्लह्रहसव्य्रऊं क्ष्लह्मकहनसक्लईं सस्लक्षकमह्रव्रूं क्ष्लह्मव्य्रऊं चण्डेश्वरि श्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

८।४८६-५०१।—चण्डेश्वर्या ध्यानम् ।

८।५०२-५०४।—भद्रकाल्या नवाक्षरमन्त्रस्य स्वरूपम्—ओं फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं क्रौं श्रौं हसखफ्रें क्लीं ह्रीं । अत्र पंक्त्यनुसारं दशाक्षरता भवति मन्त्रस्य अतः "नवाक्षरो महामन्त्रः" इति पंक्तिश्चिन्त्या सुधीभिः साधकैरिह ।

८।५०५-५१४—भद्रकाल्याः ध्यानम् ।

८।५१५-५१८।—गुह्यकाल्याः सप्तदशाक्षरमन्त्रस्य स्वरूपम्—ह्रीं क्लीं फ्रें हूं क्रौं गुह्यकालि क्रौं छ्रीं हसखफ्रें फ्रों छ्रीं स्त्रीं स्वाहा । अस्येह माहात्म्यमपि कीर्तितम् ।

८।५१९-५२९।—गुह्यकाल्याः ध्यानम् ।

८।५३०-५३६।—गुह्यकाल्याः माहात्म्यकीर्तनम् ।

८।५३७-५३८।—अनङ्गमालामन्त्रस्वरूपम्—ओं ऐं आं ह्रीं हूं क्रों श्रौं क्रीं

क्रौं फ्रें अनङ्गमाले स्त्रियमाकर्षय आकर्षय त्रुट त्रुट छेदय छेदय हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

८।५३६-५४४।—अनङ्गमालाया ध्यानम् ।

८।५४५-५५०।—माहात्म्यकीर्तनपूर्वकं चामुण्डाया एकसप्तत्यक्षरमन्त्रस्वरूपम्—ओं क्रों क्रीं फ्रें फ्रों छ्रीं खौं हूं हसखफ्रें ब्लौं जूं ग्लूं ह्रीं क्रम्लें [ह्लौं] क्षूं क्रौं चामुण्डे ज्वल ज्वल हिलि हिलि किलि किलि मम शत्रून् त्रासय त्रासय मारय मारय हन हन पत पत भक्षय भक्षय क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

८।५५१-५६३।—चामुण्डाया ध्यानम् ।

८।५६४-५६७।—वाराह्या मन्त्रस्वरूपम्—ओं नमो भगवत्यै वाराहरूपिण्यै चतुर्दशभुवनाधिपायै वाराह्यै भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा ।

८।५६८-५७५।—वाराह्या ध्यानम्

८।५७६-५७७।—बगलायाः एकत्रिंशाक्षरमन्त्रस्वरूपम्—

ओं नमो भगवत्यै पीताम्बरायै ह्लीं ह्लीं सुमुखि बगले विश्वं मे वशं कुरु कुरु स्वाहा ।

अत्र विश्वं मे च वशं प्रोच्येति ५७७ तमपद्यस्य तृतीयचरणे यदि पठ्यते, तदैकत्रिंशदर्णता मन्त्रस्येह संजायते । यथाश्रुतपाठे तु द्वात्रिंशदर्णता भवति ।

८।५७८-५८१।—बगलाया ध्यानम्

८।५८२-५८४।—जयदुर्गाया अष्टादशाक्षरमन्त्रस्वरूपम्—ओं क्रों क्लीं श्रीं ह्रीं श्रां स्त्रीं हूं जय दुर्गे रक्ष रक्ष स्वाहा ।

८।५८५-५८९।—जयदुर्गाध्यानम् ।

८।५९०-५९३।—नारसिंहीदेव्याः चत्वारिंशाक्षरस्य मन्त्रस्य स्वरूपम्—ओं आं क्रौं हूं जूं ह्रीं क्लीं स्त्रीं क्षूं क्ष्रौं फ्रों जूं फ्रें [रक्रां] जिह्वासटाघोररूपे दंष्ट्राकराले नारसिंहि ह्रौं ह्रौं ह्रौं हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

८।५९४-६०६।—नारसिंहीदेव्या ध्यानम् ।

८।६०७-६०८।—ब्रह्माण्याः सप्ताक्षरस्य मन्त्रस्य स्वरूपम्—ओं आं ह्रीं ग्लूं क्रौं [क्रौं?] श्रीं फट् ।

८।६०९-६१२।—ब्रह्माण्याः ध्यानम् ।

८।६१३-६१५।—वैष्णव्याश्चतुर्विंशाक्षरमन्त्रस्य स्वरूपम्—ओं नमो नारायण्यै जगत्स्थितिकारिण्यै क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं आं जूं स्वाहा ।

८।६१६-६२२।—वैष्णव्या ध्यानम् ।

८।६२३-६२६।—माहेश्वर्यास्त्रिंशदक्षरात्मकस्य मन्त्रस्य माहात्म्यकीर्तनं स्वरूपं च—ओं ह्रौं ग्लूं आं ह्रीं श्रीं हूं माहेश्वरि लक्षमह्लजरक्रव्य्रऊं स्हजहलक्षमलवनऊं क्षलह्मव्य्रऊं क्रम्लैं ब्लौं क्लौं फ्रें क्लूं क्रीं फ्रों जूं ग्लूं स्हौः हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

८।६२७-६३६।—माहेश्वर्या ध्यानम् ।

८।६३७-६३९।—इन्द्राण्याः देवत्वप्रापकस्य अष्टादशाक्षरस्य मन्त्रस्य स्वरूपम्—ओं ह्रीं श्रीं हूं इन्द्राणि ह्रीं ह्रीं हं हं क्षौं क्षौं फट् फट् फट् स्वाहा ।

८।६४०-६४६।—इन्द्राण्या ध्यानम् ।

८।६४७-६५१।—हरसिद्धाया द्विचत्वारिंशदक्षरात्मकस्य मन्त्रस्य स्वरूपम्—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्रीं आं क्रों फ्रों हूं क्षूं हसखफ्रें फ्रें हरसिद्धि [द्धे] सर्वसिद्धिं कुरु कुरु देहि देहि दापय दापय हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

अत्र हरसिद्धि इत्यस्य स्थाने हरसिद्धे इति समुचितः प्रतिभाति पाठस्तथापि मातृकानुरोधेन मूले संशोधनं न कृतम् । मन्त्रो हि संशोधनीयो न भवति । नाम्नोऽन्वर्थकत्वप्रतिपादनव्याजेन स्तुतिरप्यस्याः कृतात्र ।

८।६५२-६५५।—हरसिद्धाया ध्यानम् ।

८।६५६-६५८—फेत्कारिण्या विंशत्यक्षरात्मकस्य मन्त्रस्य स्वरूपम्—ओं क्रौं क्रौं हसखफ्रें हूं छ्रीं फेत्कारि वद वद देहि दापय स्वाहा ।

८।६५९-६६२।—फेत्कारिण्या ध्यानम् ।

८।६६३-६६५।—लवणेश्वर्या मन्त्रस्य स्वरूपम्—ऐं श्रीं आं ह्रीं हूं स्फ्रों स्हौः ख्फ्रें छ्रीं स्त्रीं ठ्रीं ध्रीं प्रीं थ्रीं ह्लीं ओं।

८।६६६-६७०।—लवणेश्वर्या ध्यानम्।

८।६७१-६७२।—नाकुलीदेव्या मन्त्रस्वरूपम्—क्ष्रः छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें [कामकला खण्डस्य १५।३०६ पद्यानुसारं मन्त्रोद्धारोऽत्र विहितः। अत्रत्यपंक्तेराशयो नावगतः। प्राय उभयत्र मन्त्रैक्यविवरणमुपलभ्यते।]

८।६७२-६७७।—नाकुलीदेव्या ध्यानम्।

८।६७८-६८१।—मृत्युहारिण्याः पञ्चविंशाक्षरस्य मन्त्रस्य स्वरूपम्—ओं ह्लीं श्रीं जूं फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रें ह्रौं स्हौः सौः स्हजहलक्षम्लवनऊँ तत्त्वमसि स्हजहलक्षम्लवनऊँ सौः स्हौः ह्रौं फ्रें फ्रूं फ्रीं फ्रां जूं श्रीं ह्लीं ओं।

अत्र रावास्ता इति मातृकानुरोधेन पाठ आदृतः, रावान्ता इति समुचितः पाठस्तथा सत्येव मन्त्रस्य पञ्चविंशाक्षरता चतुरक्षरीपदं च सङ्गच्छेते। अत्र तत्त्वमसीत्यस्यैकाक्षरता कूटे पठितत्वात्।

८।६८२-६८७।—मृत्युहारिण्याः ध्यानम्।

८।६८८-६९४।—कामकलाकाल्याः वक्ष्यमाणैः पञ्चविंशतिभिर्मन्त्रैः व्यापकन्यासः कर्तव्यः। तत्र विधिद्वयम्। एकमन्त्रेणैकवारं व्यापकं न्यस्येदिति। पञ्चविंशति मन्त्राणां निवेशेन पञ्चविंशतिवारान् व्यापकन्यासः कार्य इति प्रथमो विधिः। द्वितीयविधिस्तु सर्वेषां पञ्चविंशतिमन्त्राणामेकवारमुच्चारणम् एकवारमेव न्यासः कार्य इति। अस्याः सप्तदशीमन्त्रम् सर्वान् सानुस्वारान् मातृकावर्णानुच्चोदीर्य अन्ते नम इति योज्यमिति विशेषनिर्देशोऽप्यत्र विद्यते। येन प्रथमन्यासः कार्यः। चतुर्विंशतयश्चास्या मन्त्रा अग्रे वक्ष्यन्त एव।

८।६९५-७०८।—अत्र ये मन्त्रा अभिहितास्तेषां स्वरूपमग्रे त्रयोदशतमे पटले स्फुटी भविष्यति अतस्तत्र एवैतेषां स्वरूपस्य परिज्ञानं कर्तव्यम्। ध्यानमस्या देव्यास्तु प्रागेवास्मिन् ग्रन्थे २।१६-४३।—प्रदर्शितं सर्वेषामपि विशिष्य पृथक्त्वेनाभिहितम्।

८।७०६।—न्यासानन्तरं प्राणायाममथ च षडङ्गं हृदयादिकरादिन्यासं च विधाय शतमष्टोत्तरं मूलमन्त्रं त्रैलोक्याकर्षणाभिधं जप्त्वा न्यासं देव्यै समर्पयेत् ।

८।७१०।—न्याससमर्पणार्थं करे पुष्पस्य धारणमावश्यकम् । पुष्करपदं पुष्पस्योपलक्षणम् । पुष्करस्यार्थात् कमलस्य लाभे विशेषप्रीतिः ।

८।७१०-७१४।—न्याससमर्पणार्थं पद्यबद्धस्य मन्त्रस्य स्वरूपं निर्दिष्टम् ।

८।७१५-७१६।—बलिसमर्पणविधिस्तस्य मन्त्रश्चेह निर्दिष्टस्तत्र मन्त्रस्वरूपम्—ओं ह्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें स्हौः सौः स्हजहलक्षम्लवनऊँ एह्येहि भगवति कामकलाकालि इमं बलिं गच्छ गच्छ [गृह्ण गृह्ण] गृह्णापय गृह्णापय खादय खादय भक्षय भक्षय सर्वसिद्धिं प्रयच्छ वमदग्निमुखि फेत्कोटिपरिवृते हस हस ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हूं हूं हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

अत्र गच्छयुगं [७१७ प्रथम चरणे] इत्यस्य स्थाने गृह्ण युगमिति पाठः समुचितः प्रतिभाति । तथा पाठस्तु मातृकानुरोधेनादृतः ।

८।७२०-७२४।—अनन्तरमुपसंहारोऽस्य षोढान्यासविधेः । अत एव संहारमुद्रया हृदये देव्या आधानम् । षोढान्यासमाहात्म्यम् षोढान्यासकर्तुः प्रशंसा एतत्कर्तुः कर्तव्यतानिर्देशश्चेति दिक् ।

नवमः पटलः

नवमे पटले कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्यमोहनाभिधस्य कवचस्यावतरणम् । एतस्य माहात्म्यकीर्तनं मन्त्रमयमेतदीयं स्वरूपम्. एतदीयफलश्रुतिरेतस्य गोपनीयतायाश्च निर्देश इतीह सविशदमुपपादितानि ।

नास्य कवचस्य सकलसाधारणः साधकोऽधिकारी अपि तु कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्याकर्षणमन्त्रविदः साधकस्येहाधिकारः । तथा चात्र स्फुटमुक्तम्—

लोभादन्ये ये प्रदद्युर्मूर्खास्त्ववक्त्रं विशन्ति ते ।
उपदेशं विना ये वै त्रैलोक्याकर्षणस्य हि ॥
त्रैलोक्यमोहनं नाम पठन्ति कवचं त्विदम् ।
सद्यस्ते मरणं यान्ति भक्षिता योगिनीगणैः ॥ [९।१७-१८]

अस्य माहात्म्यकीर्तनावसरे महाकालः पार्वतीं कथयति—

सर्वं नरस्य सुलभं न तु त्रैलोक्यमोहनम् ।
चिच्छेदिषूणां मूर्धानं सर्वस्वं ददतामपि ॥
राज्यं धनं स्त्रियः प्राणानुपढौकयतामपि ।
सर्वथा देवि नाख्येयं त्रिसत्यं ते ब्रवीम्यहम् ॥ [९।१३-१५]

९।२०-२३ ।—त्रैलोक्यमोहनकवचस्य ऋष्यादिनिर्देशः । अस्य विनियोगस्तु त्रिविधकार्यार्थमभिहितः । तथा हि पुरुषार्थचतुष्टयस्य धर्मार्थकाममोक्षात्मकस्य सिद्धये, देवतायाः प्रीत्यै, शत्रूणां नाशाय राज्यस्य च प्राप्त्यै विनियोगोऽस्येति स्फुटमभिहितम् ।

विनियोगोऽस्य कथितः पुरुषार्थचतुष्टये ।
देवीकामकलाकालीप्रीत्यर्थे च विशेषतः ॥
शत्रुक्षयार्थे राज्याप्त्यै प्रयोगोऽस्य वरानने । [९।२२-२३]

उपसंहारे कवचस्य गोपनीयतां निर्दिशन् ग्रन्थकृत् स्वकीयमिह संप्रदायं प्रदर्शयतीति विशेषः । तथा हि पराम्बा पराशक्तिस्वरूपा कामकलेह देवी त्रिपुरघ्नाय शिवाय कवचमिदं प्रादात् । त्रिपुरघ्नस्तु आदिनाथमयं च संवर्ताभिधमृषिं त्वां चाकथयत् । संवर्तर्षिस्तु दुर्वाससं स पुनर्दत्तात्रेयं स च लोकान् परीक्ष्य तेषु प्रचारयामासेतमिति क्रमशः लोकेऽस्मिन् प्रतिष्ठामिदं कवचमर्जयामास ।

दशमः पटलः

दशमे पटले भुजङ्गप्रयाते छन्दसि रावणकृतं कामकलाकाल्याः स्तोत्रमुपलभ्यते । अत्रोपसंहृतौ फलश्रुतिरपि विद्यते । परमिह पुष्पिकायाम्—इति वामकेश्वरतन्त्रे कालकेयहिरण्यपुरत्रिजये रावणकृतं..........स्तोत्रराजं समाप्तमिति लिखितमस्ति । तस्माद् वामकेश्वरतन्त्रत इहैतत् संगृहीतं न तु आदिनाथोक्तमिति प्रतिभाति । एतादृशी परिस्थितिस्तु नान्यत्र कुत्रापि महाकालसंहितायां [कामकलागुह्यकालीखण्डयोः] विद्यते । तस्मादपवादरूपेणैतद् ग्राह्यम् । स्तोत्राभिप्रायस्तु गम्भीरार्थपरिपूर्णः ललिततरश्चेति साधकैः संप्राह्यमवश्यम् ।

प्रसन्नाकलशविधिः शक्तिसामरस्यकरविधिश्चेत्युभयोरिहाविनाभावः सम्बन्धः । अत एवोभयोरिहैकत्र निर्देशः । यथा गुरुदैवतमन्त्राणामैक्यं सिद्धं विद्यते तथैव तीर्थदैवतशक्तीनामैक्यमिह शास्त्रे प्रतिपादितम् ।

ब्राह्मणस्य तीर्थेऽधिकारो नास्ति । अत एवास्मिन् प्रसङ्गे परिशेषादेव प्रका-

बधिकारः सिद्ध्यति । द्विजपदं द्विजातिपदं चेह विप्रपरं न तु त्रैवर्णिकस्य प्रसिद्धस्य ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यात्मकस्य वाचकमर्थतंत्रोचस्य प्रकरणानुरोधेन स्वीकारात् । तथा च पंक्तिरत्र—

द्विजातेः केवलं तीर्थे नाधिकारः प्रशस्यते । १०।८ ।
सर्वजातीर्द्विजः कुर्याद् विप्रं त्यक्त्वा तु भूमिपः । १०।२० ।

१०।१-८ ।—अयमभिसन्धिः—दशमपटले द्वे प्रकरणे मुख्यतया प्रतिपादिते स्त. । रावणकृतं देव्या भुजङ्गप्रयातस्तोत्रं प्रसन्नाकलशशक्तिसामरस्यकरविधी चेति । स्तोत्रानन्तरमेवानयोर्विध्योरुपक्रमः माहात्म्यकीर्तनं च । उभयोर्विध्योरिहैकत्रैनैव निर्देशः परस्परं संबद्धत्वात् । स्तोत्रं तन्त्रान्तरादुद्धृत्यात्र संगृहीतम् । प्रसन्नाकलशादिस्तु स्वातन्त्र्येण निर्दिष्ट इति विचार्यं पद्यसंख्यायामुभयत्र पार्थक्यं विहितम् ।

१०।६-११ ।—अनयोर्विध्योः समयनिर्देशः । कर्मस्वाभाव्यात् रात्रिरेव प्रशस्तात्र । तथैव विद्यते निर्देशोऽपि ।

१०।११-१३ ।—तीर्थपदं मदिरापरम् । तस्याश्च द्वादशविधता परिगणितेह विद्यते ।

१०।१४ ।—ब्राह्मणस्य सुरार्पणे नाधिकार इति कृत्वा तदनुकल्पोऽत्र फल-रसादिर्निर्दिष्टस्तैरिदं कर्माचरितुमर्हतीति ।

१०।१५-२११ ।—शक्तेः स्वरूपप्रकारयोरिहाभिधानम् । वर्णानुरूपतायाः शक्तिपरिग्रहे निर्देशः किन्तु प्रौढस्यार्थात् साधनाशिखरारूढस्य [न तु वयसाऽस्य सम्बन्धः] कृते नियमस्यास्य नास्त्यपेक्षेति स्फुटमत्र प्रतिपादितम् ।

१०।२१-२२ ।—तीर्थपात्राणां निर्धारणम्।

१०।२३-२४ ।—उक्तविध्योर्देशनिर्णय इति स्थानकालपात्रविचारेण सह स्वरूपमहिम्नावेतयोरुपपादितौ । अत्र प्रयुक्तं पशुपदमदीक्षितां व्यक्तिमवबोधयति ।

१०।२५-२७ ।—उक्तविध्योः प्राग्भवीयानां केषांचन कर्मणामिह निर्देशः ।

१०।२८-३८।—मन्त्रनिर्देशपुरस्सरं पीठस्थापनविधिरिहाभिलषितः । तथा हि गोमयोपलिप्तायां स्वस्तिकादिमांगलिकचिह्नयुतायां भूमौ धातुमद् दारवं वा पीठ-मासनं स्थापनीयम् । तत्स्थापनमन्त्रस्तु—ओं ओं ओं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रूं क्रौं ब्रूं

ग्लूं क्लप्रं ब्लूं रध्रां थ्रीं सौः च्रौं फ्रं ब्लूं ठ्रीं छ्रीं क्रीं ब्लीं क्रौं फ्लक्रौं प्रीं ख्रीं ब्लीं श्रीं फ्रूं ह्स्लह्लवडकखऐं—कसवहलक्षमओं व्रक्म्लब्लवलऊं क्लह्मव्याऊं लक्षमह्-जरक्रव्याऊं श्रीं त्रं क्ष्रूं व्रीं धं च्रं ग्लैं एह्येहि भगवति कामकलाकालि सर्वशक्ति समन्विते प्रसन्नाशक्तिभ्यां सामरस्यं कुरु कुरु मम पूजा गृह्ण गृह्ण शत्रून् हन हन मर्दय मर्दय पातय पातय राज्यं मे देहि देहि दापय दापय फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं हूं हूं हूं हूं हूं हूं हूं हूं हूं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्री ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं फट् फट फट् नमः स्वाहा—अनेन स्थण्डिलोपरि पीठस्थापनं कर्तव्यमिति ।

१०।३८-४७ ।—पीठोपरि सिन्दूरेण यन्त्रालेखविधिः समन्त्रः कर्तव्यः । अत्र मन्त्रस्वरूपमधस्तान्निर्दिश्यते यथामति—ओं फ्रें हसखफ्रें छ्रीं फ्रों स्फ्रों···[परा] क्रीं द्रं भ्रूं क्रों फट् फट् फट् फट् फट् कामकलाकालि घोररावे विकटदंष्ट्रे कालि कापालि नररुधिरवसामांसभोजनप्रिये भगप्रिये भगाङ्कुशे भगमालिनि भगोन्मादिनि भगान्तरे इहागच्छागच्छ सन्निधिं कुरु कुरु ओं फ्रें सिद्धिकरालि ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा क्लीं क्रीं हूं क्रों स्फ्रों कामकलाकालि स्फ्रों क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा फ्रें खफ्रें हसखफ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ओं ओं ओं ओं ओं फट् नमः स्वाहा ।

१०।४७-५० ।—शक्तेः वस्त्रविमोचनम् समन्त्रमिह प्रतिपादितम् । तन्मन्त्रस्तु—ओं ह्रीं सफहलक्ष्रूं फहलक्षीं ह्स्त्रीं सौः खफ्रीं रह्रीं प्रीं फ्रैं जूं फ्रौं हसखफ्रें सहफलह्रीं क्रीं ब्लूं क्षौं क्लीं श्रीं ह्रीं हसखफ्रें नमः स्वाहा ।

१०।५१-५७ ।—निर्दिष्टयन्त्रोपरि निर्वसनां शक्तिमुपवेश्य तदीयाङ्के योन्युपरि तीर्थकलशः स्थापनीयस्तत्र मन्त्रो यथा—ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ह्रीं फ्रों आं हूं स्फ्रों क्ष्रूं फ्रूं ह्रः फ्रूं घ्रां स्हें घ्रीं ह्स्त्रीं श्रीं जय जय भगवति कामकलाकालि सर्वेश्वरि इहागत्य चिरं तिष्ठ तिष्ठ यावत् पूजां करोम्यहम् फ्रें फ्रें फ्रें छ्रीं छ्रीं छ्रीं हूं हूं हूं ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं फट् फट् फट् फट् फट् स्वाहा ।

१०।५८-६० ।—श्रीगुरुशक्तिपात्रादिकानि सम्प्रदायानुसारं तीर्थपूरितानि समासाद्य हस्ताभ्यां तान्याच्छाद्य दशवारं मूलमन्त्रं कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्याकर्षणं जपेत् पश्चाद् धेनुमुद्रयावगुण्ठनं छोटिकया (चुटकीति प्रसिद्धया) दिग्बन्धनं विधाय नवानां मुद्राणामिहाभिहितं प्रदर्शनम्, किन्तु चतसृणां मुद्राणामेवात्राभिधानम् । तस्मात् ग्रन्थपातः प्रतिभाति । अन्यथा कर्मणोरस्य वैफल्यं स्यादिति प्रतिपादितमत्र । किन्तु खेदोऽयमेव यत् कास्ता नवमुद्रा इति निर्णेतुं साधनं न विद्यते ।

१०।६१-६४।—एतदीयकर्माङ्गतयाष्टानां शक्तीनां पूजेह निर्दिष्टा। ताश्च शक्तयः—इच्छा, क्रिया, सिद्धिः, ऋद्धिः, स्वाहा, भीमा, करालिनी, चण्डसंकर्षिणी चेत्यष्टौ। आसामष्टसु दिक्षु भवति पूजा। मध्येऽनङ्गकुलादेव्याः पूजा कर्तव्या। अनन्तरमिह साधक इष्टदेवताया कामकलाकाल्या गुह्यकाल्या वा [यो यस्या उपासकः स तस्याः] पूजां करोत्विति निर्दिष्टम्।

१०।६४-७७।—तीर्थस्य [कुलद्रव्यस्य] शापविमोचनविधिः वैदिकतान्त्रिक-मन्त्राभ्यामभिलपितः। तत्र वैदिकपदं तत्सम्प्रदायपरमतः मन्त्रस्वरूपस्य पौराणिकत्वेऽपि न क्षतिः। तथा हि ते मन्त्राः—

एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥
सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसंभवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद् विमुच्यताम्॥
वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्या व्यपोहतु॥ इति वैदिकमन्त्राः।

तान्त्रिकमन्त्रस्तु—ओं हूं खफ्रें हसखफ्रें छ्रीं श्रीं क्लीं क्रं प्रीं सौः ब्लौं रजहल-क्षमऊँ ब्रकम्लब्लक्लऊँ प्रसन्ने प्रसन्नारूपिणि भगवति कामकलाकालि शुक्रदत्तं शापं मुञ्च मुञ्चापय परमानन्दसामरस्यकारिणि इदं ब्रह्मभूयावहं ब्रह्म भूयासम् स्वाहा नमः फट्—इति वारत्रयं पठनीयः। अनन्तरम्— "आं ईं ऊं ऐं औं अः ब्रह्मशाप-मोचितायै सुधादेव्यै नमः" इति मन्त्रं दश वारं जपित्वा क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः कुलकृत्स्नं शापं मोचय मोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा—इति मन्त्रः दशवारं जप्तव्यः। पुनश्च कामकलाकाल्या मूलमन्त्रस्य त्रैलोक्याकर्षणाभिधस्य जपः निर्दिष्टोऽत्र। यद्यप्यस्य जपे संख्योल्लेखो न विद्यते तथापि जपस्य न्यूनतमा संख्या दश भवति तदुल्लेखस्तु अव्यवहितं प्राक् सञ्जात इति तत्संख्याया दशात्मिकाया इहान्वये बाधकाभावेन दशवारमस्यापि जपः कार्यः।

१०।७८-८२।—आनन्दभैरवभैरव्योर्ध्यानम् पूजा च निर्दिष्टा। इदं च ध्यान-मविकलं गुह्यकालीखण्डस्य दशमपटलेऽपि १०६-११३ तमेषु पद्येषु विद्यते। अनयोः पूजनमन्त्रे विद्यते कश्चन भेद उभयत्र। ग्लूं इत्यनेन सुधाबीजेन वषडन्तेनानयोः पूजा कार्येति गुह्यकालीखण्डे वर्तते। ब्रच्रीं इत्यनेन गुह्यबीजेन आनन्दभैरवभैरवाभ्यां वषडन्तेन पूजानयोरिति कामकलाखण्डेऽभिलपितमस्ति।

१०।८३-८४।—इह सुधादेव्याः स्वरूपध्यानं पूजा चाभिहितास्ति। गुह्यकाली खण्डस्य दशमपटलीयानि ११३-११५ तमानि पद्यान्यविकलान्यत्रापि समुपलभ्यन्ते। पूजैकत्र सुधाबीजेन गुह्यकालीखण्डे अपरत्र कामकलाखण्डे गुह्यबीजेनेति ध्येयम्। अत्र वौषट् इति अन्ते मन्त्रपाठः। तथा चेह ब्रच्रीं सुधादेव्यै वौषडिति मन्त्र-स्वरूपम्।

१०।८५-८६।—कस्मिँश्चित्पत्रे त्रिकोणचक्रालेखः कार्यः। दलविशेष-निर्देशोऽत्र नास्ति, तस्मात्तत्सामान्यग्रहणम्। तत्र वामावर्तरीत्या दक्षिणदिश उत्तरदिशं यावत् अकारादिक्षकारान्तवर्णाः लेख्याः। मध्ये च गुह्यबीजं "ब्रच्रीं" इति वारत्रयं लेखनीयम् पुनरेकं शाकिनी बीजं "फ्रें" इति लिखित्वा तस्य (फ्रें इत्यस्य) दशवारं जपः कर्तव्य इति निर्देश इह विद्यते।

१०।८७-९३।—उपसंहारोऽत्र पटलस्य। अतएवाग्रिमपटलस्य विषयावतारः प्रमुखतो विहितः। तथा च तीर्थे अमृतरूपतां ध्यात्वा तत्रामृतीकरणमुद्राप्रयोगः कर्तव्यः। सम्मुखीकरणान्तर्गतमेतदमृतीकरणम्। तथा चोक्तं गुह्यकाली खण्डे [६।३१७-१८।]

एवंरूपा मद्भवने त्वं तिष्ठेः सर्वदैव हि।
इति या भावना शश्वदमृतीकरणं मतम्॥

पुनश्च धेनुमुद्रया वारुणं मन्त्रम् वं इत्यष्टधा जपेदितीहोक्तम्। ततः पश्चात् अमृतन्यास आचरणीयः। स चाग्रेऽनुपदमेव वक्ष्यते। प्रसङ्गादत्र परमीनामिका-मुद्राव्यवहारोऽपि कर्तव्य इति तत्स्वरूपं कथयति—वामहस्तकनिष्ठया तद्धस्ताङ्गुष्ठस्य तृतीयपर्वस्पर्श एव परमीनामिका मुद्रेति। न्यासेनानेन तीर्थस्य स्वाङ्गस्य शक्तेः घटस्य च स्पर्शः कर्तव्य इति निर्देशः। अयमेवामृतन्यासस्याभिहितो विधिः निर्वाण-न्यासे सामरस्यन्यासे चानुगच्छति। किन्तु सामरस्यन्यासे न्यसनीयानि अङ्गानि भिन्नानि भवन्ति विधिस्तुल्य एवेति ध्येयम्।

एकादशतमः पटलः

११।१।—अमृतन्यासोद्देशस्तन्माहात्म्यकीर्तनं च। दोषनाशः गुणाधिक्याधानं चावश्यमस्याचरणेन जायेते इति कथनमिह प्रवर्तकमत एव माहात्म्यकीर्तना-त्मकम्।

११।२-४।—अमृतन्यासस्य सप्ताङ्गानि [ऋषिश्छन्दोदेवताकीलकं शक्तिः बीजं विनियोगश्चेति] अभिहितानि।

११।४-५।—"पञ्चविंशतिपात्राणि पूर्वोक्तानि प्रकल्पयेत्" कुत्र प्राथम्येनैषां कथनमिति जिज्ञासायां गुह्यकालीखण्डस्य द्वादशतमे पटले १६३२-१६३९ पद्येषु तर्पण-क्रमेऽभिहितानि ग्राह्याणि । गुह्यकालीदेव्याः स्थाने कामकलाकाल्याः ग्रहणमस्याः स्थाने च गुह्यकाल्याः ग्रहणमिति व्यत्यासः कर्तव्यः । उभयत्र व्यत्यासे ग्रन्थभेदेन पद्धतिभेदः प्रतिपाद्यभेदः देवताभेदश्च स्वाभाविक इत्येव तत्र मूलम् । तथा हि चण्डेश्वरी, हरसिद्धा, बाभ्रवी, पिङ्गला, पूर्वाम्नायस्य देवताः । मातङ्गी, संकटा, शूलिनी मुण्डमधुमतीति दक्षिणाम्नायस्य देवताः । कुब्जिका, चामुण्डा, चण्डघण्टा, मायूरीति च पश्चिमाम्नायस्य देवताः । सिद्धिलक्ष्मीः, चण्डयोगेश्वरी, वज्रकापालिनी, कामकला-काली उत्तराम्नायस्य देवताः । भीमादेवी, हाटकेश्वरी, कालरात्रिः, महामाया, अध आम्नायस्य देवताः । महात्रिपुरसुन्दरी, कामाख्या, विश्वरूपा, मोक्षलक्ष्मीश्चेत्यूर्ध्वा-म्नायस्य देवता इति संकलनेन चतुर्विंशतिरेका च मूलदेवी गुह्यकालीति तत्र प्रति-पादितम् । एतासां देवतानां पात्राणि साधाराणि तत्र स्थापनीयानि । यतो हि काम-कलाकाल्या अयुताक्षरनाम्नि मन्त्रे एतासामुल्लेखस्तस्मादेतद्देवतापात्राण्येवेह प्रकल्प्यानीति विज्ञेयानि ।

मया कामकलाकाल्या अयुताक्षरनामनि ।
मन्त्रे मृत्युञ्जयप्राणे सर्वा एव प्रदर्शिताः ॥ गु० ख० १२।१६२७।

व्यत्यासं नैव कल्पयेदित्यस्य तु क्रमे व्यत्यासनिषेध इति तात्पर्यम् । यद्यस्य न्यासस्य प्रत्यहं चिकीर्षा तदानुकल्पस्य तत्राभिहितस्य व्यवहारः न तु प्रथमकल्पस्येति । 'एतन्न्यासे प्रात्यहिके प्रोक्तं मुक्त्वा समाचरेदि"त्यस्यार्थः ।

११।६-१९।—अमृतन्यासस्य स्वरूपाभिधानम् । तथा हि इह पञ्चविंशति-स्थानेषु न्यासः कर्तव्यः । तत्रादौ चत्वारिंशन्मिताः बीजकूटाः सर्वस्थानन्यासेषु निवेश्याः । अत एवादिन्यासमन्त्र एव केवलं तन्निर्देशः क्रियते, यस्य सर्वत्रानु वर्तनम् । एवमन्ते—"इदममृतीकृत्य परमात्मनि हुत्वा स्वयं जुषस्व स्वाहा" इत्यपि सर्वस्मिन्न्यासे योज्यम् । परिवर्तनीयमन्त्रा उभयोरुक्तयोर्मध्ये निवेश्यास्ते चाधो निर्दिश्यन्ते स्थानानि चात्रोल्लिखितानि यथाक्रमं न्यसनीयानि ।

(१) ओं ऐं ह्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं आं क्रों क्षूं स्फ्रों हौं ब्लौं स्हक्लह्रीं फ्रों ग्लूं स्हौः हसखफ्रें फ्रें क्लूं क्षमब्लहकयह्रीं रजहलक्षमऊं हक्लह्लवडकखऐं कसवहलक्षमऔं ब्रकम्लब्लक्लऊं क्रं सौः च्रं रम्लब्रीं सफहलक्षूं प्रीं च्रौं हम्रीं ह्लीं ध्रीं लक्षमह्लजरक्र-व्यूऊं थ्रीं द्रं छ्रूं क्रौं ज्ञानात्मने शिवाय इदममृतीकृत्य परमात्मनि हुत्वा स्वयं जुषस्व स्वाहा—इति शिरसि न्यासः ।

(२)········ इच्छात्मने ईश्वराय············स्वाहा इति ललाटे ।
(३)············कृत्यात्मने शुद्ध्यै··················स्वाहा इति मुखें ।
(४) ·········धर्मात्मने विद्यायै············स्वाहा इति कण्ठे ।
(५)············वैराग्यात्मने लिङ्गाय············स्वाहा इति दक्षस्कन्धे ।
(६)···········ऐश्वर्यात्मने जीवाय···········स्वाहा इति वामस्कन्धे ।
(७)········शक्त्यात्मने आत्मने···········स्वाहा इति दक्षकफोणौ ।
(८)············कैवल्यात्मने सूक्ष्माय···········स्वाहा इति वामकफोणौ ।
(९)············उत्साहात्मने अविद्यायै········स्वाहा इति दक्षमणिबन्धे ।
(१०)···········धैर्यात्मने नियत्यै···········स्वाहा इति वाममणिबन्धे ।
(११)··· ········गुह्यात्मने कालाय···········स्वाहा इति दक्षकराङ्गुलिमूले ।
(१२)··········विवेकात्मने कलायै·······स्वाहा इति वाम कराङ्गुलिमूले ।
(१३)········ ··विकारात्मने रागाय ·····स्वाहा इति दक्षकराग्रे ।
(१४)············सुखात्मने कुलाय ·······स्वाहा इति वामकराग्रे ।
(१५)············आनन्दात्मने अमृताय········स्वाहा इति दक्षवंक्षणे ।
(१६)···········संज्ञात्मने बुद्धये···········स्वाहा इति वामवंक्षणे ।
(१७)···········पुण्यात्मने मायायै···········स्वाहा इति दक्षजानौ ।
(१८)··········क्रियात्मने मनसे······ ······स्वाहा इति वामजानौ ।
(१९)···········विकृत्यात्मने कामाय·········स्वाहा इति दक्षगुल्फे ।
(२०)···········प्रकृत्यात्मने रजसे·· ··· ·· स्वाहा इति वामगुल्फे ।
(२१)··· ·········अहङ्कारात्मने सत्त्वाय ·········स्वाहा इति दक्षपादे ।
(२२)············महदात्मने तमसे · ······ स्वाहा इति वामपादे ।
(२३)···········तन्मात्रात्मने युक्त्यै······ · स्वाहा इति दक्षपादाग्रे ।
(२४)··········लिङ्गात्मने सिद्ध्यै ···· ···स्वाहा इति वामपादाग्रे ।
(२५)··········परमात्मने सामरस्याय··········स्वाहा इति व्यापके ।

परमात्मनीति संलिख्य [पञ्चवा]रमितीरयेदिति पंक्तौ पञ्चवारमित्यस्य स्थाने हुत्वा स्वयमिति समुचितः प्रतिभाति पाठः । तथैव गुह्यकालीखण्डे सप्तमे पटले ५१५ तमे पद्ये पाठो दृश्यते । उभयत्र अमृतन्यासस्यैकरूपत्वमेव विद्यते समासव्यास-शैल्यामुभयत्र यथावसरमस्य प्रतिपादनमिति न द्विरुक्तिदोषः ।

अत्र कामचारः, साधकः प्रतिवारमेकवारं वा मन्त्रं पठेत् । अनन्तरं प्रोक्षण्या पीयूषं सर्वेषु पात्रेषु देयम् ।

११।२१-२२।—पुनश्च वीरस्य भोगस्य शक्तेः कुलस्य गुरोर्देवतायाश्च षट् पात्राणि गृहीत्वा तेष्वपि ऊर्ध्वंनिर्दिष्टमन्त्रैरादितः षड्भिः पूजा कर्तव्या। पश्चादिह सामरस्यनिर्वाणन्यासौ यथाक्रममाचरणीयौ। गुह्यकालीखण्डस्य चतुर्दशतमे पटले ५१४-६४१ पद्येषु पवित्रारोहणकर्माङ्गतयैतौ साधु विवृतौ तत एवावगन्तव्यौ।

११।२३-२६।—कुलकुम्भपूजाविधिः। कलशे तीर्थस्य मद्यस्य पूरणम् समन्त्रं कर्तव्यम्। तन्मन्त्रस्तु—ओं फ्रें हूं हसखफ्रें ह्मखफ्रीं क्लीं ह्लीं स्हौः श्रीं ऐं ग्लूं क्रीं क्लूं फ्रीं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊँ क्षह्लम्लव्य्रऊँ क्षस्हम्लव्य्रईऊँ क्षह्लंम्लव्य्रईऊँ क्षरहम्लव्य्रऊं सलहक्षचलहक्षजलहक्षजक्षत्रें स्हकहलह्रीं सक्लह्लफह्रीं सक्लह्रीं फ्लक्षह्लस्हव्य्रऊँ सक्ष्मह्लभग्लीं ग्लरक्षफ्रयक्लीं ह्लस्लहसकह्रीं रलहक्षवलस्हफ्रूं क्षक्षक्लफ्रचक्षक्षौं क्लह्लन्नमक्षरछ्रीं ह्लहलव्य्रकऊं पञ्चामृतं सुधारूपेण कुम्भेऽस्मिन् संविश संविश तिष्ठ तिष्ठ सन्निधिं कुरु कुरु सन्निधिं तिष्ठ तिष्ठ संविश संविशास्मिन् कुम्भे सुधारूपेण पञ्चामृतम् फट् फट् फट् नमः स्वाहा। अनन्तरं कालीमावाह्य पुष्पमाल्येन नागाङ्क (८६?) मण्डितं घटमाच्छाद्य तत्र घटे दशोपचारेण-[पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयानि गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यपुनराचमनीयानि चेत्यनेन]-देव्याः पूजां स्तुतिं प्रणतिं सन्धूपनं च कुर्यात्। पश्चात् योनिमुद्रां प्रदर्शयन् पञ्चविंशतिपात्रेषु मध्ये देव्याः साधारं पात्रं प्रसन्नचित्तः साधकः स्थापयेत्।

११।३०।—पात्रस्थापनस्थले च पूर्वत एव भूमौ त्रिकोणं तद्बहिश्चतुरस्रं च लेखनीयं यत्र गन्धपुष्पाक्षतैराधारशक्तिपूजनं चरेत् पुनस्तत्र साधारस्य पात्रस्य पूर्वाभिहितस्य स्थापनं कर्तव्यम्।

११।३१-३२।—मूलमन्त्रेणार्थात् प्रधानजप्यमन्त्रेण [त्रैलोक्याकर्षणेन] पात्रस्य संवीक्षणं, फ्रें फडिति मन्त्रेण तस्य क्षालनं, तेनैव मन्त्रेण ताडनं, हूं मन्त्रेणावगुण्ठनं च साधकः कुर्यात्। अवगुण्ठनपरिचयो यथा—

> शीर्षन्यस्ताञ्चला यद्वदधोवक्त्रा कुलाङ्गना।
> तिष्ठेत् तद्वत् यत्करणमवगुण्ठनमुच्यते॥
> संवीक्षणक्षालनताडनानि प्रसिद्धानि।

पश्चात् घटपूर्त्यनन्तरमवशिष्टं मद्यं घटस्य दक्षिणे भागे रक्षणीयम्।

११।३३-३७।—मद्यपूर्णं देव्याः पात्रं वामकरे निधाय तस्य संधपनं कुर्यात्। तत्र वामहस्ते पात्रग्रहणमन्त्रः—ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें फ्रीं ख्रौं ब्रीं प्रीं क्रीं इति।

तस्यं सन्धूपनमन्त्रस्तु—ओं ह्रीं फ्रें प्लूं क्लीं मोहाद्वयु पान्नाशनाय नमः [?] पुनः पात्राधारपूजनं तन्मन्त्रस्तु ख्फ्रें ह्रीं श्रीं जूं क्लीं रह्लीं रछ्रीं स्त्रीं सोऽहं कामकला-कालीदेव्यर्घपात्राधारं साधयामि नमः । अत्राभिप्रायस्तु न वैशद्यमेति । मोहाद्वयु-पान्नाशनाय नमः संविदापुरैरित्यस्य च पदद्वयस्य कोऽर्थः, का चेह संगतिरिति न ज्ञायते ।

११।३८-३९ ।—पात्रस्य पूजा पूर्ववत् गन्धपुष्पाक्षतैस्तन्मन्त्रस्तु—ख्फ्रें ह्रीं श्रीं रां रीं रूं रक्षम्लह्लकसछव्यऊं.........[वामभुक्] क्षलहक्षम्लक्लीं धर्म्याग्निसोमसूर्यान् सकलान्नम इति ।

११।४०-४३ ।—ह्रीं श्रीं यरलवशषसह धूम्रार्चिः कलां श्रीपादुकां नमः । एवं नीलरक्तकलां, कपिलाकलां, विस्फुलिङ्गिनीकलां ज्वालिनीकलां अर्चिष्मतीकलां हव्यवाहिनीकलां वाह्निनीकलां रौद्रीकलां संहारिणीकलामिति विपरिवर्त्य आदावन्ते च प्रथममन्त्र एव संयोज्याधारस्य सन्धूपनं कुर्यात् । पुनरर्घ्यपात्रस्य विधूपनं कर्तव्यम् । तन्मन्त्रस्तु—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं क्ष्रीं क्ष्रौं इति ।

११।४४।—ह्रीं श्रीं क्लीं हूं ख्फ्रें फ्रें रछ्रीं सोऽहमम्बार्घ्यपात्रं स्थापयामि नम इति मन्त्रेण त्रिपाद्यां पात्रं स्थापयेत् ।

११।४५-४९।—साधारस्यार्घ्यपात्रस्य पूजा कर्तव्या । तत्र मन्त्रः—ह्रीं श्रीं हूं क्लीं छ्रीं फ्रें ग्लूं क्षौं क्रौं क्षलहक्षम्लब्रीं सिद्धिप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलायार्घ्यपात्राय नमः । ह्रीं श्रीं क्लीं हूं तपिनीकलां श्रीं पादुकां नमः । एवं तापिनीकलां भ्रामरीकलां क्लेदिनीकलां शोधिनीकलां रोधिनीकलां वारुणीकलां आकर्षणीकलां सुषुम्णाकलां वृष्टिवाहाकलां ज्येष्ठाकलां हिरण्यकाकलामिति यथाक्रमं निवेश्य सर्वत्रास्य मन्त्रस्योप-योगेनार्घ्यपात्रस्य पूजा कर्तव्या ।

११।५०-५२।—कुलकुम्भस्य वामभागे प्रथमं सिन्दूरेण मण्डलमारचनीयम् । पुनस्तं कुम्भं दक्षिणभागाद् वामभागे तस्मिन् मण्डले स्थापनीयम् । दक्षिणवाम-विभागस्तु साधकमपेक्ष्येति बोध्यम् ।

ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें छ्रीं क्रीं हूं हसखफ्रें रफ्रीं रभ्रीं इति मन्त्रेण गन्धपुष्पा-क्षतान्यादाय कुलकुम्भपूजां कुर्यात् ।

११।५३-५४।—रक्षव्रऊँ रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊँ क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्रीं श्रीं ह्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रइं आनन्दभैरवाय वौषट् इति मन्त्रं वारत्रयं पठित्वा कुलकुम्भमुद्धरेत् ।

११।५५-६०।—अस्मिन्नेव पटले २३-२९ पद्येष्वभिहितेन मन्त्रेण शताक्षरेण सहस्राक्षरेण वा [त्रयोदशतमपटलेऽस्मिन्नेव ग्रन्थे वक्ष्यमाणेन] निःशब्दं सूक्ष्मधारया पात्राणि यथाक्रमं तीर्थेन [मद्येन] पूरयीत । अनन्तरं ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रूं फ्रें

ब्रह्माण्डखण्डसंभूत पीयूषसमतावह ।

आपूरितमहापात्र त्वमशेषरसं वहेः ॥

ग्लूं टक्षसनरम्लैं खलह्र वनगक्षरछ्रीं इति मन्त्रेण लेलिहानमुद्रया पात्रसंवेष्टनं कर्तव्यम् । अनन्तरमिह निर्दिष्टानां पञ्चानां मुद्राणां प्रदर्शनं कार्यम् । ताश्च मुद्राः स्तम्भनं चतुरस्रं मत्स्यं गोक्षुरं योनिश्चेति ।

११।६१-७०—प्रसन्नायाः पञ्च शापविमोचनमन्त्रा इह पञ्चविद्यापदेनाभिहिताः । अमी च मन्त्राः गुह्यकालीखण्डस्य दशमे पटले ८१-९५ पद्येष्वविकलं समुपलभ्यन्ते । अत्र तु चतुर्थपञ्चममन्त्रयोः त्रुटिस्तत एव पूरिता अनन्यगतिकत्वात् युक्तिसिद्धत्वात् प्रसङ्गैक्यात् तत्सङ्गतेश्च । तथा च तेषां पञ्चानां मन्त्राणां स्वरूपम्—

(क) ऐं ह्रीं श्रीं ऐं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि क्लीं अमृतं स्रावय स्रावय सौः सुधे शुक्रशापं मोचय चतुरन्वयिनां सिद्धिसामर्थ्यं दह दह महाखेचरी मुद्रां प्रकटय प्रकटय हूं स्वाहा ।

(ख) ऐं ऐं ऐं ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः सुधाकृत्स्नं शापं नाशय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा ।

(ग) ऐं ऐं ऐं छां छीं छूं विकारशोधिनि कुलद्रव्यस्य विकारान् हर हर स्वाहा ।

(घ) ऐं ऐं ऐं ऐं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि महाप्रकाशयुक्ते स्वाहा ।
गुह्यकालीखण्डस्य दशमपटले तु—

ऐं ऐं ऐं ऐं रह्रां रह्रीं रह्रैं रछ्रां रछ्रीं रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं अमृते अमृतोद्भवे अमृतस्वरूपे अमृतवर्षिणि महाप्रकाशयुक्ते स्वाहा इत्युपलभ्यते मन्त्रः ।

(ङ) ऐं ऐं ऐं ऐं क्लौं ह्रीं हूं क्लीं स्त्रीं तिरस्करिणि सकल जय वाग्वादिनि सकलपशुजन......इतः परमत्र त्रुटिः

गुह्यकाली खण्डे तु—

ऐं ऐं ऐं ऐं श्रीं ह्रीं हूं क्लीं स्त्रीं. फें फें खफक्ष्रूं खफक्ष्रीं फखभ्रूं फखभ्रीं फम्रग्लूं रकक्ष्रैं रकक्ष्रौं तिरस्करिणि सकलजनवाग्वादिनि सकलपशुजनवाक्चक्षुःश्रोत्र-घ्राणजिह्वावचस्तिरस्कारं कुरु कुरु फट् फट् इति । इह कामकलाखण्डे ग्रन्थपात इति परिलक्ष्यते ।

द्वादशतमः पटलः

१२।१-४।—कामकलाकाल्याः सहस्रनामस्तोत्रस्यावतरणम् । कायिकं वाचिकं मानसिकं चेति पापस्याघमंजनकस्य कर्मणस्त्रैविध्यमिह त्रिविधमहापापपदेनाभि-प्रेतम् । तदोघस्य समूहस्य नाशने क्षम एष सहस्रनामपाठ इति माहात्म्यमस्य कीर्तितम् ।

१२।४-६।—इह रूढानि गौणानि सांकेतिकानि चेति त्रिविधानि नामानि संगृहीतानि सारात्मकानि । यद्यप्यस्याः लक्षमितानि कोटिमितानि च नामानि वर्तन्ते तथापि तेभ्यः सारोऽत्र समुद्धृतः । यथा दुग्धाब्धेरमृतं संकलय्यते । यतो हि अल्पायुषां नराणां कृते देव्याः सकलनाम्नां कीर्तनमसंभवमिति ।

१२।१०-१४—सहस्रनाम्नः माहात्म्यमभिलपितमिह । अनन्तरं पञ्च पंक्तयः गद्यात्मकाः, यासु ऋष्यादीनि मन्त्राङ्गानि षट् सप्त वा [ऋषिश्छन्दः देवता बीजं शक्तिः कीलकं विनियोगश्चेति] निर्दिष्टानि ।

१२।१५-१३२।—एतेषु श्लोकेषु कामकलादेव्याः सहस्रं नामानि समुल्लिखितानि सन्ति परिगणनया साधु समुपलब्धानि च तानि ।

१२।१३३-१५७।—इहास्य सहस्रनाम्नः फलश्रुतिरभिलपिता । माहात्म्य-फलश्रुत्योरन्तरमवधातव्यम् । प्रवर्तिका तज्जन्यफलाभिधाना फलश्रुतिः स्तोत्रस्यान्ते निर्दिश्यते । महिम्नः कीर्तनं तु माहात्म्यम् स्तोत्रस्यारम्भ एव प्रतिपाद्यत इति विशेषः ।

अनन्तरमस्य प्रधानाङ्गतया निर्दिष्टं गद्यसंजीवनाभिधानं गद्यम्, यस्मिन् प्रमुखतः बीजमन्त्रजातं स्वरूपपरिचायकवाक्यजातं च सन्निविष्टमस्ति । अनेन गद्येन सम्पुटितस्य सहस्रनाम्नः पाठो विधेय इति प्रथमः कल्पः । अथ च तत्राशक्तौ सहस्रनाम्नः पाठान्ते अस्य गद्यस्य वाचनमावश्यकम् । अन्यथा सहस्रनामपाठवैफल्यं स्यादितीहाभिलपितम् । केवलस्य सहस्रनाम्नः पाठो निषिद्धः । किन्तु केवलस्य गद्यसंजीवनस्य पाठेन सहस्रनाम्नः पाठजन्यं पुण्यादि फलं लब्धुं शक्यमिति विशेषः ।

त्रयोदशतमः पटलः

त्रयोदशतमेऽस्मिन् पटले एकाक्षरमारम्य सहस्राक्षरं यावत् कामकलाकाल्याः मन्त्राणां समुद्धारो विद्यते । तादृशजिज्ञासयैव पटलस्यावतरणं संजायते ।

१३।१-४।—अवतरणभागेऽस्मिन् प्रागुक्तविषयसारं निर्दिश्य मन्त्रावबोधाय जिज्ञासा प्रकाशिता ।

१३।५-८।—प्रथमं मरीचिसमुपासिताया मन्त्र ऋष्याद्यङ्गनिर्देशपूर्वकमभिहितः । तथा च मन्त्रः— "ओं ऐं ह्लीं श्रीं क्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रौं ह्रौं क्षौं आं स्फ्रों स्वाहा—इत्ययं सप्तदशाक्षरः मन्त्रः

१३।८-१०।—ह्लीं फ्रें क्रों ग्लूं छ्रीं स्त्रीं हूं स्फ्रों खफ्रें ह्सफ्रीं ह्सखफ्रें क्ष्रौं स्हौः फट् स्वाहा—षोडशाक्षरोऽयं मन्त्रः कपिलोपास्यायाः ऋष्याद्यङ्गनिर्देशपुरस्सरमभिहितोऽत्र ।

१३।११-१२।—हिरण्याक्षोपासिताया नवाक्षरमन्त्रः ऋष्यादिनिर्देशपूर्वकमुक्तः । तथा च मन्त्रः—"खफ्रें रह्लीं रज्रीं रक्रीं रक्ष्रीं रछ्रीं रफ्रीं ह्सखफ्रीं फट्" इति ।

१३।१३-१४।—लवणोपास्यामन्त्रस्तु दशाक्षरः साङ्गमभिलपितः—"ह्ली खफ्रें हूं स्फ्रों क्लीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें स्वाहा" ।

१३।१५-१६।—वैवस्वतोपास्यामन्त्रः पञ्चदशाक्षरः साङ्गमभिहितः—"हूं फट् फ्रें कामकलाकालिकायै नमः स्वाहा" ।

१३।१७-१८।—दत्तात्रेयोपास्यामन्त्रः नवाक्षरोऽङ्गादिनिर्देशपुरस्सरमभिहितः । "ओं ऐं छ्रीं फ्रें क्लीं स्त्रीं स्फ्रों हूं ह्लीं" ।

१३।१६-२०।—दुर्वाससः उपास्यायाः मन्त्रः पञ्चाक्षरः साङ्गमभिलपितः—"फ्रों स्फ्रों फ्रें ख्फ्रें स्फ्रों"

१३।२१-२३।—उत्तङ्कोपास्यायाश्चतुर्दशाक्षरो मन्त्र उक्तः—ऐं श्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें ह्लीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं हूं नमः ।

१३।२४-२५।—कौशिकोपास्यायाः सप्तदशाक्षरमन्त्र उक्तः—'क्षम्लां ह्लीं फ्रें नमः विकरालायै क्लीं ख्फ्रें स्फ्रों नमः हूं [?] स्वाहा ।"

१३।२६-२८।—और्वोपास्यायाः एकोनत्रिंशदक्षरमन्त्रः—"ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें भगवत्यै कामकलाकालिकायै ओं ऐं क्रों क्रीं श्रीं क्लीं स्फ्रों स्फ्रों फट् फट् स्वाहा ।"

१३।२६-३०।—पराशरोपासितायाः पञ्चाक्षरमन्त्रः—"छ्रीं स्फ्रों हूं क्लीं फट्"—अत्र "अस्त्रं पाराशरी" ति समुचितपाठः प्रतिभाति मातृकानुरोधात् अस्त्रपाराशरीति पाठः मूले धृतः ।

१३।३०-३२।—भगीरथोपासितायास्त्र्यक्षरमन्त्रः—"हस्लक्षकमहव्रूं स्हकह्ललह्लीं सक्लह्लकह्लीं ।

१३।३२-३४।—बल्युपास्यायाः षडक्षरमन्त्रः—"ह्लीं स्फ्रों हूं ख्फ्रें क्लीं ख्फ्रें ।

१३।३४-३६—संवर्तोपास्यायाः षोडशाक्षरमन्त्रः—"क्लीं श्रीं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें खफ्रें क्ष्रूं ग्लूं हूं हौं रफ्रें क्रों क्रीं ओं ऐं ।"

१३।३७-३६—नारदोपास्यायाः पञ्चदशाक्षरमन्त्रः—"ओं ऐं क्लीं स्फ्रों ह्लीं खफ्रें छ्रीं हसफ्रीं स्त्रीं हसखफ्रें हूं सफहलक्षूं फट् स्वाहा ।"

१३।३६-४३—गरुडोपास्यायाः सप्तदशाक्षरमन्त्रः—स्हजहलक्षम्लवनऊं ह्लीं सग्लक्षमहरह्लूं छीं क्वलह्लझकह्लनसक्लईं⋯⋯[कूर्मकूट] लक्षमह्लजरक्रव्यऊं⋯⋯[वधूकूट] क्लक्षसहमव्यऊं फ्रें फ्लक्षह्लस्हव्यऊं ह्लसलहसकह्लीं फट् नमः स्वाहा ।

१३।४४-४६—परशुरामोपास्यायाः सप्ताक्षरमन्त्रः—"श्रीं ह्लीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं क्रीं फट्" ।

१३।४६-४८।—भार्गवोपास्यायाः एकादशाक्षरमन्त्रः—"ओं आं क्रों ह्रीं क्ष्रूं ग्लूं फ्रें स्त्रीं छ्रीं स्वाहा।"

१३।४९-५१।—सहस्रबाहूपासितायाश्चतुर्दशाक्षरमन्त्रः—ऐं क्रों स्फ्रों फ्रें खफ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें फट् फट् फट् नमः स्वाहा।"

. १३।५२-५३—पृथूपासितायाः पञ्चाक्षरमन्त्रः—"क्लीं स्फ्रों स्फ्रों क्लीं फट्।"

१३।५४-५७।—हनुमदुपास्याया द्वादशाक्षरमन्त्रः—ओं आं ऐं ओं ईं ओं ह्रीं हूं श्रीं क्लीं कालि करालि विकरालि फट् फट्।"

१३।५८-६७।—कामकलाकाल्याः शताक्षरमन्त्र.—

"ह्रीं क्लीं हूं नमः कामकलाकालिकायै ऐं क्रों श्रीं क्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें खफ्रें सकच नरमुण्डकुण्डलायै हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रों महाविकरालवदनायै महाप्रलयसमयब्रह्माण्डनिष्पेषणकरायै रह्रीं रश्रीं रफ्रें रस्फ्रों रस्फ्रों हूं हूं हूं फट् फट् फट् भयङ्कररूपायै ह्लक्ष्म्लें लक्षों क्षरह्रीं क्षस्त्रीं रक्षश्रीं खं रभ्रें सं ठं ठं ठं फें फें नमः स्वाहा।

१३।६८-१०२।—कामकलाकाल्याः सहस्राक्षरमन्त्रोद्धारः—ओं नमो भगवत्यै कामकलाकालिकायै ओं ओं ओं ओं ओं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं हूं हूं हूं हूं हूं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं संहार भैरवसुरतरसलोलुपायै क्रों क्रों क्रों क्रों क्रों हौं हौं हौं हौं हौं फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें क्षूं क्षूं क्षूं क्षूं क्षूं स्फ्रों स्फ्रों स्फ्रों स्फ्रों स्फ्रों स्हौः स्हौः स्हौः स्हौः स्हौः ग्लूं ग्लूं ग्लूं ग्लूं ग्लूं क्षौं क्षौं क्षौं क्षौं क्षौं फ्रों फ्रों फ्रों फ्रों फ्रों क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रौं क्रौं क्रौं क्रौं क्रौं जूं जूं जूं जूं जूं क्लूं क्लूं क्लूं क्लूं क्लूं प्रकटविकटदशन विकरालवदनायै क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं ब्लौं ब्लौं ब्लौं ब्लौं ब्लौं क्ष्रूं क्ष्रूं क्ष्रूं क्ष्रूं क्ष्रूं ठ्रीं ठ्रीं ठ्रीं ठ्रीं ठ्रीं प्रीं प्रीं प्रीं प्रीं प्रीं हभ्रीं हभ्रीं हभ्रीं हभ्रीं हभ्रीं स्हें स्हें स्हें स्हें स्हें घ्रीं घ्रीं घ्रीं घ्रीं घ्रीं सृष्टिस्थितिसंहारकारिण्यै मदनातुरायै क्रैं क्रैं क्रैं क्रैं क्रैं श्रीं थ्रीं थ्रीं थ्रीं थ्रीं ढ्रीं ढ्रीं ढ्रीं ढ्रीं ढ्रीं ठौं ठौं ठौं ठौं ठौं ब्लूं ब्लूं ब्लूं ब्लूं ब्लूं भ्रूं भ्रूं भ्रूं भ्रूं भ्रूं फहलक्षां फहलक्षां फहलक्षां फहलक्षां फहलक्षां भयङ्करदंष्ट्रायुगल मुखररसनायै घ्रीं घ्रीं घ्रीं घ्रीं घ्रीं खूं खूं खूं खूं खूं क्रूं क्रूं क्रूं क्रूं क्रूं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं चफलक्रों चफलक्रों चफलक्रों चफलक्रों चफलक्रों......................[सुरतपिनी] क्रूं क्रूं क्रूं क्रूं क्रूं गं गं गं गं गं ह्लूः ह्लूः ह्लूः ह्लूः ह्लूः सकचनरमुण्डकृत

[कुण्डलात्यै] कुलायै ल्यूं ल्यूं ल्यूं ल्यूं ल्यूं णूं णूं णूं णूं णूं हैं हैं हैं हैं हैं क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं ब्रूं ब्रूं ब्रूं ब्रूं ब्रूं स्फीः स्फीः स्फीः स्फीः स्फीः ब्जं ब्जं ब्जं ब्जं ब्जं स्हीं स्हीं स्हीं स्हीं स्हीं महाकल्पान्तब्रह्माण्डचर्वणकरायै हैं हैं हैं हैं हैं अं अं अं अं अं इं इं इं इं इं उं उं उं उं उं स्हें स्हें स्हें स्हें स्हें रां रां रां रां रां गं गं गं गं गं गां गां गां गां गां युगभेदभिन्नगुह्यकाल्येकमूर्तिधरायै फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें हसफ्रीं हसफ्रीं हसफ्रीं हसफ्रीं हसफ्रीं हसखफ्रें हसखफ्रें हसखफ्रें हसखफ्रें हसखफ्रें क्षरह्लीं क्षरह्लीं क्षरह्लीं क्षरह्लीं क्षरह्लीं ह्लक्षम्लें ह्लक्षम्लें ह्लक्षम्लें ह्लक्षम्लें ह्लक्षम्लें [जरक्रीं जरक्रीं जरक्रीं जरक्रीं जरक्रीं ?] रह्लीं रह्लीं रह्लीं रह्लीं रह्लीं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रफ्रीं रफ्रीं रफ्रीं रफ्रीं रफ्रीं क्षह्लम्लव्यूऊं क्षह्लम्लव्यूऊं क्षह्लम्लव्यूऊं क्षह्लम्लव्यूऊं क्षह्लम्लव्यूऊं शतवदनान्तरितैकवदनायै फट् फट् फट् ओं तुरु ओं मुरु ओं हिलि ओं किलि ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः महाघोररावे कालि कापालि महाकापालि विकटदंष्ट्रे शोषिणि संमोहिनि करालवदने मदनोन्मादिनि ज्वालामालिनि शिवारूपि भगमालिनि भगप्रिये भैरवीचामुण्डायोगिन्यादिशतकोटि गणपरिवृते प्रत्यक्षं परोक्षं मां द्विषतो जहि जहि नाशय नाशय त्रासय त्रासय मारय मारय उच्चाटय उच्चाटय स्तम्भय-स्तम्भय विध्वंसय विध्वंसय हन हन त्रुट त्रुट विद्रावय विद्रावय छिन्धि छिन्धि पच पच शोषय शोषय मोहय मोहय उन्मूलय उन्मूलय भस्मीकुरु भस्मीकुरु दह दह क्षोभय क्षोभय हर हर प्रहर प्रहर पातय पातय मर्दय मर्दय दम दम मथ मथ स्फोटय स्फोटय जम्भय जम्भय भ्रामय भ्रामय सर्वभूतभयङ्करि सर्वजनवशंकरि सर्वशत्रु-क्षयंकरि ओं ह्रीं ओं क्लीं ओं हूं ओं क्रों ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल कह कह हस हस राज्यधनायुःसुखैश्वर्यं देहि देहि दापय दापय कृपाकटाक्षं मयि वितर वितर छ्रीं स्त्रीं फ्रें ह्स्रीं ठ्रीं भ्रीं थ्रीं प्रीं क्रीं क्लीं ह्रां ह्रीं ह्रूं मुण्डे सुमुण्डे चामुण्डे मुण्डमालिनि मुण्डावतंसिके मुण्डासने ग्लूं ब्लूं ज्लूं शवारूढे षोडशभुजे सोद्यते पाशपरशुनागचाप मुद्गरशिवापोतखर्परनरमुण्डाक्षमालाकर्त्रीनानाङ्कुशशवचक्रत्रिशूलकरवालधारिणि स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर मम हृदि तिष्ठ तिष्ठ स्थिरा भव त्वं ऐं ओं स्वाहा स्हौः क्लीं स्फों खं खं खं खा खां खां [पदवी] ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रूं ह्रूं ह्रूं जय जय जय विजय विजय फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

दशाक्षरत्रुटिरिह कथं पूरणीय इति जिज्ञासाशान्तिः साधकैः सुधीभिः विचार्योहेन कर्तव्या ।

पञ्चदशतमः पटलः

पञ्चदशतमे पटले कामकलाकाल्या दशसहस्राक्षरपरिमितो मन्त्र अभिहितः । एतस्य प्राणायुताक्षरीति संज्ञानिर्दिष्टेह । अस्य मन्त्रस्य स्वरूपमुद्‌पाटयितुमिह प्रयत्नो

विहितः । अत्र कानिचनापरिचितानि कूटानि अभिहितानि येषां स्वरूपमज्ञानादिहानुद्घाटितमेव विद्यते । गणनया चेह द्वात्रिंशदक्षरत्रुटिः सा कथमपनेयेति साधकैः सुधीभिश्चिन्तनीयम् । न चात्र विशेषवक्तव्यस्यापेक्षा मन्त्रात्मकत्वात् पटलस्य ।

मातृकानुरोधात् काश्चन पंक्तयः यथालिखिता एवेह मुद्रापिताः किन्तु तासु संशोधनमपेक्ष्यते यथामति तदिहोपस्थाप्यते । यथा—३५ तमपद्यस्य पूर्वार्द्धः—

१—सर्वलोकमुमे वशमानय ततो वदेदिति मुद्रापितः । अत्र सर्वलोकममुं मे वशमानय ततो वदेदिति पाठः समुचितः प्रतिभाति । तथैवार्थसङ्गतेः, अष्टमपटलेऽस्य मन्त्रस्यैतादृशस्वरूपतायाः दर्शनाच्च ।

२—५५ तमे पद्ये "काममाता" इत्यस्ति । अत्र कामो माता इति समुचितः प्रतिभाति पाठः । बीजद्वयस्य ताभ्यां संकेतितस्येह ग्रहणं यतः ।

३—८८ तमे पद्ये "प्रस्ताविमि" इति वर्तते । अर्थानुरोधं प्रक्रमं चादृत्य "प्रस्तारिणि" इति पठनीयम् ।

४—१०१ तमे पद्ये "कूटेश्वरीति" पाठः प्रामादिकः । अर्थानुसन्धानेन सम्बोधन पदमिह सङ्गतं तस्य । तस्मात् कूटेश्वरि इति पाठः समुचितः प्रतिभाति ।

५—१५३ तमे श्लोके "पुरावागीश्वरि" तथेति विद्यते । "त्रिपुरा वागीश्वरि" इति पाठस्तु सङ्गतिं भजते ।

६—१७१ तमे पद्ये पठ इत्यस्य स्थाने पच इति समुचितः प्रतिभाति पाठः ।

७—३०८ तमे पद्ये परिभारुण्डकापाला इति वर्तते अर्थसङ्गतिस्तु पविभारुण्डकापाला इति पाठे सञ्जायते ।

८—३६१ तमे पद्ये "सद्योधनपद"मिति पाठस्यार्थः सन्दिग्धोऽस्ति "सद्योधनप्रदे" इत्यस्य पाठे सति अर्थसंलग्नता भवति ।

९—४१५ तमे पद्ये "संविः" इति वर्तते सविदिति पाठः समुचितोऽत्र ।

१०—४७३ पद्येऽस्मिन् काव्यमिति पठितम् कार्यमिति पठनीयम् । तथासत्यर्थसङ्गतिर्दृश्यते ।

११—५६६ तमे पद्ये चा क्षिवितत्तो इति पठितम् चाक्षिवितते इति पाठेऽर्थस्य भवति सङ्गतिः।

कामकलाकाल्याः प्राणायुताक्षरी मन्त्रः।

ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रों ह्रौं क्षौ आं स्फ्रों स्वाहा कामकलाकालि, ह्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं ःह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं ठः ठः दक्षिणकालिके, ऐं क्रीं ह्रीं हूं स्त्रीं फ्रें स्त्रीं छ्रीं ख्फ्रें भद्रकालि हूं हूं फट् फट् नमः स्वाहा भद्रकालि, ओं ह्रीं ह्रीं हूं हूं भगवति श्मशानकालि नरकङ्कालमालाधारिणि ह्रीं क्रीं कुणपभोजिनि फ्रें फ्रें स्वाहा श्मशानकालि, क्रीं हूं ह्रीं स्त्रीं श्रीं क्लीं फट् स्वाहा कालकालि, ओं फ्रें सिद्धिकरालि ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा गुह्यकालि, ओं ओं हूं ह्रीं फ्रें छ्रीं स्त्रीं श्रीं क्रों नमो धनकाल्यै विकरालरूपिणि धनं देहि देहि दापय दापय क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं क्षूं क्षृं क्षॄं क्ष्लृं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षः क्रों क्रोः आं ह्रीं ह्रीं हूं हूं नमो नमः फट् स्वाहा धनकालिके, ओं ऐं क्लीं ह्रीं हूं सिद्धिकाल्यै नमः सिद्धिकालि, ह्रीं चण्डाट्टहासनि जगद्ग्रसनकारिणि नरमुण्डमालिनि चण्डकालिके क्लीं श्रीं हूं फ्रें स्त्रीं छ्रीं फट् फट् स्वाहा चण्डकालिके, नमः कमलवासिन्यै स्वाहालक्ष्मि ओं श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः महालक्ष्मि, ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा अन्नपूर्णे, ओं ह्रीं हूं उत्तिष्ठपुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं यदि शक्यमशक्यं वा क्रोधदुर्गे भगवति शमय स्वाहा हूं ह्रीं ओं, वनदुर्गे ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोरघोरतरतनुरूपे चट चट प्रचट प्रचट कह कह रम रम बन्ध बन्ध घातय घातय हूं फट् विजयाघोरे, ह्रीं पद्मावति स्वाहा पद्मावति, महिषमर्दिनि स्वाहा महिषमर्दिनि, ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा जयदुर्गे, ओं ह्रीं दुं दुर्गायै स्वाहा, ऐं ह्रीं श्रीं ओं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशंकरि सर्वग्रहवशंकरि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखरञ्जिनि सर्वराजवशङ्करि सर्वलोकममुं मे वशं मानय स्वाहा, राजमातङ्गि उच्छिष्टमातङ्गिनि हूं ह्रीं ओं क्लीं स्वाहा उच्छिष्टमातङ्गि, उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देविमहापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः उच्छिष्टचाण्डालिनि, ओं ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां मुखं वाचं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ओं स्वाहा बगले, ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं धनलक्ष्मि ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः सरस्वति, आं ह्रीं हूं भुवनेश्वरि, ओं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं आं अश्वारूढायै फट् फट् स्वाहा अश्वारूढे, ओं ऐं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ऐं ह्रीं स्वाहा नित्यक्लिन्ने। स्त्रीं क्षमकलह्रहसव्यूं ....[बालाकूट].............[बगलाकूट] ....[त्वरिताकूट] जयभैरवि श्रीं ह्रीं ऐं ब्लूं ग्लौः अं आं इं राजदेवि राजलक्ष्मि

ग्लं ग्लां ग्लि ग्लीं ग्लुं ग्लूं ग्लृं ग्लॄं ग्लॢं ग्लें ग्लैं ग्लों ग्लौं ग्लः क्लीं श्रीं ध्रीं ऐं ह्रीं क्लीं
पौं राजराजेश्वरि ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रहं ग्रस स्वाहा शूलिनि, ह्रीं महाचण्डयोगे-
श्वरि ध्रीं थ्रीं प्रीं फट् फट् फट् फट् फट् जय महाचण्डयोगेश्वरि, श्री ह्रीं क्लीं प्लूं ऐं
ह्रीं क्लीं पौं क्षीं क्लीं सिद्धिलक्ष्म्यै नमः क्लीं पौं ह्रीं ऐं राज्यसिद्धिलक्ष्मि ओं क्रः हूं आं
क्रों स्त्रीं हूं क्षौं ह्रां फट् [त्वरिताकूट] .... [नक्षत्रकूट] .... सकह्लम
क्षखत्रूं [ग्रहकूट]... .. ..म्नकह्लक्षरस्त्रों [काम्यकूट]... ....यम्लत्रीं [पार्श्वकूट]
....[कामकूट] . ... ग्लक्षकमह्लव्य्रऊं ह्लह्लव्य्रकऊं मफलहलहखफ्रूं
म्लव्य्रवऊं [शंखकूट]......... . म्लक्षकसहह्लूं क्षम्लब्रसहस्हक्षवलस्त्रीं रक्षलह्लमसहकब्रूं
[मत्स्यकूट]...... .....[त्रिशूलकूट] ...... झसखग्रमऊं ह्लक्ष्मली ह्रीं ह्रीं हूं क्लीं
स्त्रीं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं ग्लक्षकमह्लव्य्रऊं हूं अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा अघोरे,
ओं नमश्चामुण्डे करङ्किणि करङ्कमालाधारिणि किं किं विलम्बसे भगवति, शुष्कानने खं
खं अन्त्रकरावनद्धे भो भो वल्ग वल्ग कृष्णभुजङ्गवेष्टिततनुलम्बकपाले हृष्ट हृष्ट
हट्ट हट्ट पत पत पताकाहस्ते ज्वल ज्वल ज्वालामुखि अनलनखखट्वाङ्गधारिणि
हाहा चट्ट चट्ट हूं हूं अट्टाट्टहासिनि उड्ड उड्ड वेतालमुखि अक अकि स्फुलिङ्ग-
पिङ्गलाक्षि चल चल चालय चालय करङ्कमालिनि नमोऽस्तु ते स्वाहा विश्वलक्ष्मि,
ओं ह्रीं क्ष्रीं द्रीं शीं क्रीं हूं फट् यन्त्रप्रमथिनि ख्फ्रें ल्रीं ज्रों क्रीं ओं ह्रीं फ्रें चण्डयोगे-
श्वरि कालि फ्रें नमः चण्डयोगेश्वरि, ह्रीं हूं फट् महाचण्डभैरवि ह्रीं हूं फट् स्वाहा
महाचण्डभैरवि, ऐं ह्रीं क्लीं फ्रें ऐं ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यविजयायै नमः स्वाहा त्रैलोक्य-
विजये, ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रौं जयलक्ष्मि युद्धे मे विजयं देहि ह्रौं आं क्रों फट् फट् फट्
स्वाहा जय लक्ष्मि।.........[अतिचण्ड बीज] महा प्रचण्ड भैरवि हूं फ्रों ? [टकारयुक्त
अतिचण्ड बीज] फटं हूम्लव्रीं बफटं ब्रकम्लब्लवलऊं रफटं महामन्त्रेश्वरि,
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रौं हूं वज्रप्रस्तारिणि ठः ठः वज्रप्रस्तारिणि, ओं ह्रीं नमः
परमभीषणे हूं हूं नरकङ्कालमालिनि फ्रें फ्रें कात्यायनि व्याघ्रचर्मावृतकटि क्रीं क्रीं
श्मशानचारिणि नृत्य नृत्य गाय गाय हस हस हूं हूं कारनादिनि क्रों क्रों शववाहिनि .
मां रक्ष रक्ष फट् फट् हूं हूं नमः स्वाहा कात्यायनि, ऐं ह्रीं श्रीं पैं सैं फैं रैं स्हौः पां
मीं थूं ह्रां [?] ह्रीं हूं [योगिनी कूट]........ हसखफ्रें... .... शिवशक्तिसमरसचण्ड-
कापालेश्वरि हूं नमश्चण्डकापालेश्वरि, ऐं क्रीं क्ष्मीं पौं सखक्लक्ष्मध्रयव्ली क्लीं श्रीं
ध्रीं क्लीं श्रीं ध्रीं महासुवर्णकूटेश्वरि कमलक्षसहह्ल्लूं श्रीं ह्रीं ऐं नमः स्वाहा
सुवर्णकूटेश्वरि ऐं ह्रीं श्रीं आं ग्लीं ईं आं थं नमो भगवति वार्तालि वार्तालि वाराहि
वाराहि वराहमुखि ऐं ग्लूं अन्धे अन्धिनि नमः रुन्धे रुन्धिनि नमः जम्भे जम्भिनि नमः
मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नमः सर्वदुष्टे प्रदुष्टानां सर्ववाक् चित्तचक्षुःश्रोत्र

मुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रं वशं कुरु कुरु ऐं क्लीं श्रीं ठः ठः ठः ठः ठः ओं ऐं हूं फट् ठः ठः ओं ग्लुं ह्लीं वार्तालि वाराहि ह्लीं ग्लुं ओं चण्डवार्तालि ऐं ह्लीं श्रीं आं ग्लूं इं वार्तालि वार्तालि वाराहि वाराहि शत्रून् दह दह ग्रस ग्रस इं आं ग्लुं हुं फट् जय वार्तालि ऐं ह्लीं श्रीं [महाबीज]………स्हौः ओं ह्रीं हूं फ्रें राज्यप्रदे ख्फ्रें हसख्फ्रें उग्रचण्डे रणमर्दिनि हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं सदा रक्ष रक्ष त्वं रूपं मां रूपं च जूं सः मृत्युहरे नमः स्वाहा, अः उग्रचण्डे ऐं [योगिनीकूट]…………हसखफ्रें हसखफ्रीं ओं ह्रीं हसफ्रें हूं फ्रें उग्रचण्डे [चण्डेश्वर महाप्रेत बीजे]… …स्वाहा श्मशानोग्रचण्डे ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रीं [अमृतकूट]……खफ्रीं हसखफ्रीं रुद्रचण्डायै रह्लीं नमः स्वाहा रुद्रचण्डे। ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं [फेत्कारी कूट वामनेत्र विभूषित] चण्डकूटे ख्फ्रें ग्लक्षकमह्ल्व्य्रीं प्रचण्डायै नमः स्वाहा प्रचण्डे, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें ह्रीं [सन्धिकूट]………चण्डनायिकायै नमः त्रूं नमः स्वाहा चण्डनायिके, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें हसखफ्रूं [चण्डेश्वरकूट ईकार बिन्दु युक्त महाप्रेत बीज]………क्लीं नमः स्वाहा चण्डे महादेवि, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रीं चण्डवत्यै क्ष्म्लूं नमः स्वाहा चण्डवति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें क्षम्लकस्हरयब्रूं………ख्फ्रीं [अतिप्रेत] अतिचण्डायै नमः ग्लूं नमः स्वाहा अतिचण्डे, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें………[श्मशान कूट] ख्फ्रीं [महाप्रेत] चण्डिकायै द्रैं नमः स्वाहा चण्डिके, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें, स्हफ्रीं क्लीं हूं………क्लह्रीं कात्यायन्यै ख्फ्रें कामदायिन्यै हूं नमः स्वाहा ज्वालाकात्यायनि, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं क्लीं हूं श्रीं ह्स्रीं महिषमर्दिनि श्रीं ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं उन्मत्तमहिषमर्दिनि ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं [नक्षत्रकूट शंखकूट] महामहेश्वरि तुम्बुरेश्वरि स्वाहा तुम्बुरेश्वरि, ओं ह्रीं क्लीं हूं ग्लूं आं ऐं हूं स्हौः फ्रें चैतन्यभैरवि फ्रें फ्रें स्हौः क्रों आं ऐं ग्लूं हूं क्लीं ह्रीं ओं फट् ठः ठः चैतन्य भैरवि, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं मुण्डमधुमत्यै शक्ति भूतिन्यै ह्लीं ह्लीं ह्लीं फट् मधुमति। वदवद वाग्वादिनि स्हौः क्लिन्नक्लेदिनि महाक्षोभं कुरु स्हौः वाग्वादिनि, भैरवि ह्रीं फ्रें ख्फ्रें क्लीं पूर्णेश्वरि सर्वकामान् पूरय ओं फट् स्वाहा पूर्णेश्वरि, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं रक्तरक्ते महारक्त चामुण्डेश्वरि अवतर अवतर स्वाहा रक्तचामुण्डेश्वरि माहेशि, ओं ह्रीं श्रीं त्रिपुरावागीश्वर्यै नमः त्रिपुरावागीश्वरि, हसें [मारकूट]… …[महाप्रेत बीज]………… कालभैरवि [निशाकूट कूर्चकूट तुङ्गप्रतुङ्गकूट]……………… चण्डवारुणि, ओं अघोरे हा हा घोरे घोरघोरतरे हूं सर्वशर्वशर्वे ल्हें नमस्ते रुद्ररूपे हः हः ओं घोरे, ह्रीं श्रीं क्रों क्लूं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं ख्फ्रें हूं अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा क्ष्रूं अघोरे, ओं ह्रीं फ्रें हूं महादिग्वीरे [महादिगम्बरि] ऐं श्रीं क्लीं आं मुक्तकेशि चण्डाट्टहासिनि छ्रीं स्त्रीं क्रीं ग्लौं मुण्डमालिनि ओं स्वाहा दिगम्बरि। श्रीं ऐं ह्रीं कामकलाकालेश्वरि सर्वमुखस्तम्भिनि सर्वजनमनोहरि सर्वजन

वशङ्करि सर्वदुष्टनिमर्दिनि सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि छिन्धि शृङ्खला त्रोटय त्रोटय सर्वशत्रून् जम्भय जम्भय द्विषान् निर्दलय निर्दलय सर्वान् स्तम्भय स्तम्भय मोहनास्त्रेण द्वेषिणः उच्चाटय, उच्चाटय सर्ववश्यं कुरु कुरु स्वाहा देहि देहि सर्वं कालरात्र्यै कामिन्यै गणेश्वर्य्यै नमः कालरात्रि, [ओं ऐं आं ईं णं ईं ऐह्येहि भगवति किरातेश्वरि विपिन-कुसुमावतंसिनिकर्णे भुजगनिर्मोककञ्चुकिनि ह्रीं ह्रीं हं ह्रं कह कह ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सर्वसिद्धि दद दददेहि देहि दापय दापय सर्वशत्रून् दह दह बन्ध बन्ध पठ पठ [पच पच] मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय हूं हूं हूं फट् नमः स्वाहा· किरातेश्वरि, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं वज्रकुब्जिके हसखफ्रीं प्राणेशि त्रैलोक्याकर्षिणि ह्रीं क्लीं अङ्गद्राविणि स्मराङ्गने अनघे महाक्षोभकारिणि ऐं क्लीं ग्लौः ग्लं ग्लां ग्लिं ग्लीं ग्लुं ग्लूं ग्लृं ग्लॄं ग्लॢं ग्लें ग्लैं ग्लों ग्लौं ग्लः ग्लोः ग्लौं वज्रकुब्जिके, नमो भगवति घोरे महेश्वरि हसखफ्रीं देवि श्रीकुब्जिके रह्रीं स्प्रीं स्प्रूं ङञणनम अघोरामुखि छां छीं छूं. किलि किलि विच्चे पादुकां पूजयामि नमः समयकुब्जिके, ओं ऐं ह्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें क्षह्म्ल्व्यूं भगवति विच्चे घोरे हसखफ्रें ऐं श्री कुब्जिके, रह्रीं रह्रूं स्ह्रौं ङञणनम अघोरामुखि छां छीं छूं किलि किलि विच्चे स्त्रीं हूं स्हौः पादुकां पूजयामि नमः स्वाहा, मोक्षकुब्जिके नमो भगवति सिद्धे महेशानि हसफ्रां हसफ्रीं हसफ्रूं कुब्जिके रह्रां रह्रीं रह्रूं खगे ऐं अघोरे अघोरामुखि किलि किलि विच्चे पादुकां पूजयामि नमः भोगकुब्जिके, ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें श्यों श्यां ? भगवत्यम्ब [प्राभातिककूट सकारादि युक्त प्राभातिककूट]...... कुब्जिकायै हसकलक्रीं यां ग्लौं टां......... ऐं क्रूं ङञणनम अघोरामुखि छां छीं छूं किलि किलि विच्चे श्रां श्रौं हसखफ्रें श्री ह्रीं ऐं जयकुब्जिके ऐं ह्रीं श्रीं सहसखफ्रीं स्हौं भगवत्यम्ब [प्राभातिककूट सकारादियुक्त प्राभातिककूट ईकारयुक्त] कुब्जिके [बालाकूट]............[ईकारयुक्त बालाकूट].........[बालाकूट ऊकारयुक्त] ङञणनम अघोरामुखि छां छीं किलि किलि विच्चे फट् स्वाहा हूं फट् स्वाहा नमः ऐं ऐं ऐं सिद्धिकुब्जिके, ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रीं स्हौः म्लक्षकसहह्रूं सम्लक्षक सहह्रूं सह्रफ्रीं ?............[षष्ठ स्वर विहीनं तु कलाबीजेन भूषितम् । एतद्बीजं समाभाष्य] कुब्जिके ह्रीं ह्रीं आगच्छ आगच्छ आवेशय आवेशय वेधय वेधय ह्रीं ह्रीं सम्लक्षकसहह्रूं म्लक्षकसहह्रूं नमः स्वाहा आवेशकुब्जिके [महेन्द्रकूट]......... हसखफ्रें [पित्सकूट].........[मार्जार मणि ऋषि सारङ्ग कूटानि] ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं कालि कालि महाकालि मांसशोणितभोजिनि ह्रां ह्रीं ह्रूं रक्तकृष्णमुखि देवि मा मां पश्यन्तु शत्रवः श्री हृदयशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि ह्रां हृदयाय नमः हृदय शिवदूति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं नमो भगवति दुष्टचाण्डालिनि रुधिर-मांसभक्षिणि कपालखट्वाङ्गधारिणि हन हन दह दह पच पच मम शत्रून् ग्रस ग्रस

मारय मारय हूं हूं हूं फट् स्वाहा शिरः शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि ह्रीं शिरसे स्वाहा शिरःशिवदूति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं महापिङ्गलजटाभारे विकटरसनाकराले सर्वसिद्धिं देहि देहिं दापय दापय शिखाशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि हूं शिखायै वषट् शिखाशिवदूति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं महाश्मशानवासिनि घोराट्टहासिनि विकटतुङ्गकोकामुखि ह्रीं क्लीं श्रीं महापातालतुलितोदरि भूतवेताल सहचारिणि अनघे कवचशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि कवचाय हूं कवचशिवदूति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं लेलिहानरसनाभयानके विस्रस्तचिकुरभारभासुरे चामुण्डाभैरवीडाकिनी-गणपरिवृते फ्रें ख्फ्रें हूं आगच्छ आगच्छ सान्निध्यं कल्पय कल्पय त्रैलोक्यडामरे महा-पिशाचिनि नेत्रशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशिवदूति। ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं गुह्यातिगुह्यकुब्जिके हूं हूं हूं फट् मम सर्वोपद्रवान् मन्त्रतन्त्रईलि[ति] यन्त्र चूर्णप्रयोगादि कान् परकृतान् करिष्यन्ति तान् सर्वान् हन हन मथ मथ मर्दय मर्दय दंष्ट्राकरालि फ्रें हूं फट् गुह्यातिगुह्यकुब्जिके अस्त्रशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि अस्त्राय फट् अस्त्र शिवदूति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हूं हूं हूं हूं हूंकारघोरनादविद्राविद्राविजगत्त्रये ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते क्लीं क्लीं क्लीं पदविन्यासत्रासितसकलपाताले श्रीं श्रीं श्रीं व्यापकशिवदूति जितेन्द्रिये परमशिवपर्यङ्कशायिनि छ्रीं छ्रीं छ्रीं गलदरुधिरमुण्डमाला-धारिणि घोरघोरतररूपिणि फ्रें फ्रें फ्रें ज्वालामालि पिङ्गजटाजूटे अचिन्त्यमहिमबल प्रभावे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं दैत्यदानवनिकृन्तनि सकलसुरासुरकार्यसाधिके ओं ओं ओं फट् नमः स्वाहा व्यापकशिवदूति, ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं क्रों ह्रीं आं हूं········ [महापुरुष] ह्रौं ग्लूं क्रौं हसखफ्रें फ्रों क्रूं छ्रीं फ्रें क्लौं ब्लौं क्लूं स्हौः स्फ्रें ख्रौं जूं ध्रीं कालसंकर्षिणि हूं हूं स्वाहा कालसंकर्षिणि, ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसखफ्रें हूं हूं कुक्कुटि क्रीं आं क्रों फ्रें फ्रों फट् फट् स्वाहा कुक्कुटि, ओं ह्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें भ्रमराम्बिके शत्रुमर्दिनि आं क्रों ह्रौं हूं छ्रीं फट् फट् नमः स्वाहा ओं भ्रमराम्बिके, फ्रों धनदे ह्रीं सां सीं सूं संकटादेवि संकटेभ्यो मां तारय तारय श्रीं क्लीं ह्रौं हूं आं फट् स्वाहा संकटा-देवि, ओं क्रों ह्रौं भोगवति ओं ह्रीं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं षं सं हं क्षं षः सः हः क्षः हूं नमोः भगवति महार्णवेश्वरि त्रैलोक्यप्रसनशीले क्षां ईं ऊं फट् स्वाहा महार्णवेश्वरि, आं क्षीं पीं चूं भगवति घूं जूं [प्रभातकूट]····· ········ ···म्लक्षक सहह्लूं चण्डक्षक्कारकापालिनि जयकङ्केश्वरि ठः ठः जयकङ्केश्वरि, ओं ह्रीं आं शबरेश्वर्यै नमः शबरेश्वरि। ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रें पिङ्गले पिङ्गले महापिङ्गले क्रीं हूं फ्रें छ्रीं स्हौः क्रीं क्रों फ्रें स्त्रीं श्रीं फ्रों······ब्लौं ध्रीं ठः ठः सिद्धिलक्ष्मि ओं ऐं ह्रीं क्लीं भगवति महामोहिनि ब्रह्मविष्णु शिवादिसकलसुरासुर मोहिनिसकलं जनं मोहय मोहय वशीकुरु वशीकुरु कामाङ्गद्राविणि कामाङ्कुशे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं

औं महामोहिनि, ऐं क्लीं यं क्ष्लीं हुं ह्रां हिं ह्रीं हुं हूं हें हैं ह्लूं हें हैं ह्रों ह्रौं हः ह्लीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं त्रिपुरसुन्दरि हूं नमो मूकाम्बिकायै वादिनो मूकय मूकय आं क्लीं ह्रीं स्हैं स्हः सौः स्वाहा मूकाम्बिके, ह्रीं क्रों हूं फट् एकजटे ह्रीं क्रीं हूं नीलसरस्वति ओं ह्रीं क्रों वीं फट् उग्रतारे ओं श्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये वीं वीं फट् ठः ठः छिन्नमस्ते ओं नमो भगवत्यै पीताम्बरायै ह्लीं ह्लीं सुमुखि बगले विश्वं मे वशं कुरु कुरु ठः ठः वश्य-वगले हूं रक्ष त्रिकण्टकि ओं क्रों क्लीं श्रीं क्रः आं स्त्रीं हूं जयदुर्गे रक्ष रक्ष स्वाहा संग्रामजयदुर्गे ह्रीं क्लीं हूं विजयप्रदे ओं ऐं ह्रीं ग्लूं क्रौं श्रीं फट् ब्रह्माणि, ओं ह्रौं ग्लूं आं ह्रीं श्रीं वीं माहेश्वरि श्रीं ब्लौं क्लौं फ्रें ब्लूं क्रीं फ्रों जूं ग्लूं स्हौः हूं हूं फट् फट् स्वाहा माहेश्वरि, ह्रीं ऐं क्लीं औं कौमारि मयूरवाहिनि शक्तिहस्ते हूं फ्रें स्त्रीं फट् फट् स्वाहा कौमारि। ओं नमो नारायण्यै जगत्स्थितिकारिण्यै क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं आं जूं ठः ठः वैष्णवि। ओं नमो भगवत्यै वराहरूपिण्यै चतुर्दशभुवनाधिपायै भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा वाराहि, ओं आं क्रों हूं जूं ह्रीं क्लीं स्त्रीं क्ष्लूं क्ष्रौं फ्रों जूं फ्रें जिह्वासटाघोररूपे दंष्ट्राकराले नारसिंहि ह्रौं ह्रौं ह्रौं हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा नारसिंहि, ओं क्लीं श्रीं हूं इन्द्राणि ह्रीं ह्रीं जय जय क्षौं क्षौं फट् फट् स्वाहा इन्द्राणि, ओं क्रों क्रीं फ्रें फ्रों छ्रीं ध्यौं णीं हसखफ्रें ब्लौं जूं क्लूं ह्रीं श्रीं क्ष्लूं क्रौं चामुण्डे ज्वल ज्वल हिलि हिलि किलि किलि मम शत्रून् त्रासय त्रासय मारय मारय हन हन पच पच भक्षय भक्षय क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं फट् फट् ठः ठः चामुण्डे ओं नमः कामेश्वरि कामाङ्कुशे कामप्रदायिके भगवति नीलपताके भगान्तिके महेश्वरि क्जूं नमोऽस्तु ते परमगुह्ये वीं वीं वीं हूं हूं हूं मदने मदनान्तदेहे त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् स्वाहा नीलपताके, क्रीं क्रीं हूं हूं हूं हूं क्रों क्रों क्रों श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्री चण्डघण्टे शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय हूं फट् स्वाहा चण्डघण्टे। २६६ पद्यार्थः द्विरुक्ति भजत इति विचारणीयम्। ....

ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रों क्रीं स्त्रीं क्लीं स्हजहलक्षम्लवनऊं [उमाकूट] .... लक्षमहजरक्रब्यऊं हस्लक्षकमहव्रूं म्लकहक्षरस्त्रे चण्डेश्वरि ध्रौं छ्रीं फ्रें क्रौं हूं हूं फट् फट् स्वाहा चण्डेश्वरि, ओं ऐं आं ह्रीं हूं क्रों क्षौं क्रीं क्रों फ्रें अनङ्गमाले स्त्रियमाकर्षयाकर्षय त्रुट त्रुट छेदय छेदय हूं हूं फट् फट् स्वाहा अनङ्गमाले, ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्रीं आं क्रों फ्रों हूं क्ष्लूं हसखफ्रें फ्रें हरसिद्धे सर्वसिद्धिं कुरु कुरु देहि देहि दापय दापय हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा हरसिद्धे, ओं क्रों क्रौं हसखफ्रें हूं छ्रीं फेत्कारि दद दद देहि देहि दापय दापय स्वाहा फेत्कारि ऐं श्रीं आं ह्रीं हूं स्फ्रों स्हौः फ्रें छ्रीं स्त्रीं द्रीं ध्रीं प्रीं थ्रीं क्रां ओं लवणेश्वरि क्रः छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नाकुलि ओं ऐं आं हूं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं जूं मृत्यु-हारिणि ओं ऐं ह्रीं हूं नमो भगवति रुद्रवाराहि खड्गतुण्डप्रहारे क्रूं क्रूं क्रां क्रां

सर्वोत्पातान् प्रशमय प्रशमय क्लीं श्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा वज्रवाराहि, ओं ह्रीं क्लीं क्रों हं हं हं हयग्रीवेश्वरि चतुर्वेदमयि फ्रें छ्रीं स्त्रीं हूं सर्वविद्यानां मय्यधिष्ठानं कुरु कुरु स्वाहा हयग्रीवेश्वरि, ओं ऐं आं ह्रीं स्हः परमहंसेश्वरि कैवल्यं साधय स्वाहा परमहंसेश्वरि, ओं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं निर्विकारस्थचिदानन्दघनरूपायै मोक्षलक्ष्म्यै अमितानन्तशक्तितत्त्वायै क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ओं मोक्षलक्ष्मि ओं क्रीं नमो ब्रह्मवादिन्यै क्रीं ओं नमः स्वाहा, ह्रीं क्लीं हूं फ्रें शातकर्णि महाघोररूपिणि ओं श्रीं छ्रीं स्त्रीं फट् फट् स्वाहा शातकर्णि, ओं ओं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल महेश्वरि सर्वमुखरूपे जातवेदसि ब्रह्मास्त्रेण नाशय सचराचरं जगत् स्वाहा जातवेदसि, ओं आं ऐं क्रों क्रीं श्रीं क्लीं हूं फ्रें महानीले प्रलयाटोपघोरनादघुर्घुरे आत्मानमुपशमय जूं सः स्वाहा महानीले, ओं क्लीं क्रां क्लीं ब्रह्मविद्ये जगद्ग्रसनशीले महाविद्ये ह्रीं हूं ह्रीं विष्णुमाये क्षोभय क्षोभय क्लीं क्रों आं स्हीं शिवे सर्वास्त्राणि ग्रस ग्रस हूं फट्ः ओं स्हीं बगलामुखि सर्वशत्रून् स्तम्भय स्तम्भय ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्राय हूं क्लीं स्हीं ओं नमः स्वाहा विष्णुमाये, ओं ह्रीं फ्रें क्फ्रें श्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं गुह्येश्वरि महागुह्यविद्या-सम्प्रदायबोधिके आं क्रों ग्लूं फट् कृष्णलोहिततनूदरि हौं हां हीं फट् नमः ठः ठः गुह्येश्वरि, ओं नमो श्वेतपुण्डरीकासनायै प्रतिसमयविजयप्रदायै भगवत्यै अपरा-जितायै क्रः श्रीं क्लीं फट् स्वाहा ओं अपराजिते, ओं ह्रीं हुं ह्रां महाविद्ये मोहय विश्वकर्मकम् ऐं श्रीं क्लीं त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् फट् महाविद्ये, ऐं स्हौः क्फ्रें डलखल हक्षखमव्यूं एह्येहि भगवति वाभ्रवि महाप्रलयताण्डवकारिणि गगनग्रासिनि श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें शत्रून् हन हन सर्वैश्वर्यं दद दद महोत्पातान् विध्वंसय विध्वंसय सर्वरोगान् नाशय नाशय ओं श्रीं क्लीं ह्रौं आं महाकृत्याभिचारग्रहदोषान् निवारय निवारय मथ मथ क्रों जूं ग्लूं हसखफ्रीं क्फ्रें स्वाहा वाभ्रवि, ओं ह्रीं श्रीं हूं भगवति महाडामरि डमरुहस्ते नीलपीतमुखि जीवब्रह्मगलनिष्पेषिणि, छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्फ्रें महाश्मशानरङ्गचर्चरी गायिके तुरु तुरु मर्द मर्द मर्दय मर्दय हसक्फ्रें स्वाहा डामरि, ओं ह्रीं फ्रें वेतालमुखि चर्चिके हूं छ्रीं स्त्रीं ज्वालामालि विस्फुलिङ्गरमणि महाकापालिनि कात्यायनि श्रीं क्लीं क्फ्रें कह कह धम धम ग्रस ग्रस आं क्रों ह्रौं नरमांसरुधिरपरिपूरितकपाले ग्लूं क्लौं ब्लूं णीं णी णीं फट् फट् स्वाहा चर्चिके, ह्रीं ह्रीं महामङ्गले महामंगलदायिनि अभये भयहारिणि स्वाहा अभये, ओं ऐं क्रैं ह्रौं स्हौः उत्तानपादे एकवीरे हस हस गाय गाय नृत्य नृत्य रक्ष रक्ष क्षूं फ्रों जूं ब्रीं क्लूं पाशघण्टामुण्डखट्वाङ्गधारिणि फट् फट् नमः ठः ठः एकवीरे, ओं ह्रीं हूं ऐं श्रीं क्लीं आं क्रों ह्रौं भगवति महाघोरकरालिनि तामसि महाप्रलयताण्डविनि चर्चरीकरतालिके जय जय जननि जम्भ जम्भ महाकालि आवेशिन्यै फट् स्वाहा आवेशिनि, ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं क्फ्रें हूं फट् करालिनि मायूरशिखिपिच्छिकाहस्ते सब्रो धनं क्फ्रें क्लौं पां स्त्रीं ऋक्षकर्णि जालन्धरि मा मां

द्विषन्तु शत्रवः नन्दयन्तु भूपतयो भयं मोचय हूं फट् स्वाहा मायूरि, ओं ऐं ग्लूं क्रों इन्द्राक्षि हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा इन्द्राक्षि, क्रीं क्रों क्रूं क्रां ह्रीं फ्रों घोणकि घोणकिमुखि तुभ्यं नमः स्वाहा घोणकि, ऐं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं फ्रें छ्रीं फ्रें हसखफ्रें भीमादेवि भीमनादे भीमकरालि क्ष्रूं हसखफ्रीं फ्रों श्रीं सिद्धेश्वरि सहकह्लीं स्हकह्लह्रीं सक्लह्लकह्रीं महाघोरघोरतरे भगवति भयहारिणि मां द्विषतो निर्मूलय निर्मूलय विद्रावय विद्रावय उत्सादय उत्सादय महाराज्यलक्ष्मीं वितरय वितरय देहि देहि दापय दापय ख्फ्रें हसख्फ्रीं ग्लूं स्हौः ह्रौं हूं क्ष्रौं ब्लीं ह्रीं जय जय राक्षसक्षयकारिणि ओं ह्रीं हूं ठः ठः ठः फट् फट् फट् नमः स्वाहा भीमादेवि, ओं ऐं श्रीं ह्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रीं हसख्फ्रें फें प्रविश संसारं- महामाये फें फट् ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि विष्णुतनुनिर्दलिनि जे जम्भिके स्तें स्तम्भिके छिन्दि छिन्दि भिन्दि भिन्दि दह दह मथ मथ पच पच पञ्चशवारूढे पञ्चागमप्रिये ग्लूं ब्लीं ध्रौं श्रीं क्लीं फें पञ्चपाशुपतास्त्रधारिणि हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ब्रह्मनिकृन्तनि ओं नमः परशिवविपरीताचारकारिणि ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं महाघोरविकरालिनि खण्डार्धशिरोधारिणि भगवत्युग्रे फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें.....................[प्राभातिककूट] म्लक्षकसहह्लूं हूं फट् स्वाहा, ह्रीं हूं अधमस्तके क्रीं ओं हूं फ्रें स्त्रीं फ्रों चण्डखेचरि ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल निर्मांसदेहे ठः ठः चण्डखेचरि, ओं नमः प्रचण्डघोरदावानलवासिन्यै ह्लीं ह्लं समयविद्याकुल-तत्त्वधारिण्यै महामांसरुधिरप्रियायै छ्रीं स्त्रीं क्लीं धूमावत्यै सर्वज्ञतासिद्धिदायै फ्रें फट् स्वाहा धूमावति । ऐं ह्रीं आं ह्लां सौः क्लीं महाभोगिराज भूषणे सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि हूं हूंकारनादभूरिकालनाशिनि भ्रामरि भ्रामरि डमरुभ्रामिणि ऐं क्ली स्फ्रों छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रीं हसख्फ्रें फट् नमः स्वाहा तामसि, ओं ऐं समरविजयदायिनि मत्तमातङ्गयायिनि श्रीं आं क्रः भगवति जयन्ति समरे जयं देहि देहि मम शत्रून् विध्वंसय विध्वंसय विद्रावय विद्रावय भञ्ज भञ्ज मर्दय मर्दय तुरु तुरु श्रीं क्लीं स्त्रीं नमः स्वाहा जयन्ति, ओं श्रीं आं क्रों क्लीं हूं क्ष्रूं ह्रैं एकानंशे डमरुडामरि नीलाम्बरे नीलविभूषणे नीलनागासने सकल-सुरासुरान् वशे कुरु कुरु जन्यिके कन्यिके सिद्धदे वृद्धिदे छ्रीं स्त्रीं हूं क्लीं फ्रें ह्रौं फट् स्वाहा एकानंशे, ऐं ब्रह्मवादिन्यै ब्रह्मरूपिण्यै ठः ठः ब्रह्मरूपिणि ओं ह्लीं श्रीं क्लीं ग्लीं भगवति नीललोहितेश्वरि त्रिभुवनं रञ्जय रञ्जय सकलसुरासुरान् आकर्षयाकर्षय नमः स्वाहा नीललोहितेश्वरि, ऐं श्रीं त्रिकालवेदिन्यै स्वाहा त्रिकालवेदिनि, ओं श्रीं ह्लीं क्लीं स्त्रीं फ्रें हूं फट् ब्रह्मवेतालराक्षसि क्रीं क्ष्रूं फ्रों विष्णुशवावतंसिके छ्रीं स्हौः ग्लूं महारुद्रकुणपारूढे ऐं आं ह्रौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा कोरङ्गि, ओं ऐं श्रीं ह्लीं क्लीं ह्रौं हूं आं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्रीं क्लौं स्वाहा रक्तदन्ति, कः क्लीं ग्लीं फ्रें ख्फ्रें

हसखफ्रीं हसक्ष्कें क्षरह्लीं जरक्रीं रह्लीं रश्रीं फट् स्वाहा भूतभैरवि, ऐं श्रीं आं ईं नमः षडाम्नायपरिपालिन्यै शोषिण्यै द्राविण्यै नामक्यै भ्रामक्यै जूं ब्लुं सौः कुलकोटिन्यै [कुल कोटिट्न्यै] काकासनायै फ्रें फट् ठः ठः कुलकुटिट्नि, ओं क्लीं ग्लूं ह्रीं स्त्रीं हूं फें छ्रीं फ्रों कामाख्यायै फट् स्वाहा कामाख्ये, ऐं आं ह्रीं स्हौः क्रों जूं चतुरशीतिकोटिमूर्तये विश्वरूपायै ब्रह्माण्डजठरायै ओं स्वाहा विश्वरूपे, आं ईं ऊं ऐं औं क्षेमङ्कर्यै ठः ठः क्षेमङ्करि, ऐं ओं ह्रीं क्लीं निगमागमबोधिते सद्बोधन प्रदे [?] भगवति कुलेश्वरि हूं फट् ठः ठः कुलेश्वरि, ऐं क्लीं जगदुन्मादिन्यै कामाङ्कुशायै विश्वविद्राविण्यै स्त्रीपुरुषमोहिन्यै ह्रीं हूं स्त्रीं स्वाहा कामाङ्कुशे, ओं नमः सर्वधर्मध्वजायै सकलसमयाचारबोधितायै हूं तारिणि भगवति हाटकेश्वरि ग्लूं ब्लीं भ्रूं द्रैं श्रीं ऐं फ्रों फ्रें ख्फ्रें मम शत्रून् मारय मारय बन्धय बन्धय मर्दय मर्दय पातय पातय महेश्वरि धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्यं देहि देहि दापय दापय ठ्रीं ध्रीं थ्रीं प्रीं ह्रौं आं क्रों ऐं ओं नमः स्वाहा हाटकेश्वरि, ओं औं ऐं ह्रीं श्रीं शक्तिसौपर्णि कमलासने उच्चाटय उच्चाटय विद्वेषय विद्वेषय हूं फट् स्वाहा शक्तिसौपर्णि, ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसख्फ्रें ग्लां रक्ष्रीं जरक्रीं रह्लीं भगवति महामारि जगदुन्मूलिनि कल्पान्तकारिणि शिरोनिविष्टवामचरणे दिगम्बरि समयकुलचक्रचूडालये मां रक्ष रक्ष त्राहि त्राहि पालय पालय प्रज्वलदावानलज्वालाजटालजटिले हं हं हं नमः स्वाहा महामारि, ओं ऐं रक्ताम्बरे रक्तस्रगनुलेपने महामांसरक्तप्रिये महाकान्तारे मां त्राहि त्राहि [श्रीं?] स्त्रीं क्लीं ह्रीं हूं फ्रें फट् स्वाहा मङ्गलचण्डि, ह्रीं फट् नमश्चण्डोग्रकालिनि परमशिवशक्ति सामरस्यनिर्वाणदायिनि नरकङ्कालधारिणि ब्रह्मविष्णुकुणपवाहिनि ऐं ओं फ्रें प्रत्यक्षं परोक्षं मां द्विषन्ति ये तानपि हन हन नाशय नाशय कूष्माण्डडाकिनीस्कन्द वेतालभयं नुद नुद कोकामुखि स्वाहा, ओं ह्रीं क्लीं फ्रें हूं ओं ह्रीं हूं श्मशानशिखा धारिण्यै भगवत्यै ज्वालाकाल्यै छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रीं फ्रों फट् नमः स्वाहा ज्वालाकालि, ऐं श्रीं क्लीं आं क्रों क्रीं.........[अतिचण्ड] छ्रीं स्त्रीं घोरनादकालि सिद्धिं मे देहि सर्वविघ्नमुपशमय सिद्धिकरालि सिद्धिविकरालि हूं हूं फट् स्वाहा घोरनादकालि, ह्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें छ्रीं उग्रकाल्यै खेचरीसिद्धिदायिन्यै परापरकुलचक्रनायिकायै ग्लूं क्रौं स्त्रीं क्ष्रौं क्लीं त्रिशूलझंकारिण्यै नमः स्वाहा उग्रकालि, ह्रीं स्हौः सौः क्रीं ह्रीं फ्रें फ्रों हूं फट् वेतालकालि, श्रीं ह्रीं ऐं क्लीं क्रीं भगवति संहारकालि ब्रह्माण्डं पिष पिष चूर्णय चूर्णय मां रक्ष रक्ष जं क्लौं हूं हूं हूं फट् फट् नमः स्वाहा संहारकालि, ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं महाघोरविकटरूपाये ज्वलदनलवदनायै सर्वज्ञतासिद्धिदायै क्रीं फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा रौद्रकालि, फ्रें चण्डाट्टहासिनि ख्फ्रें ब्रह्माण्डमर्दिनि हसफ्रीं ब्रह्म

विष्णुशिवभक्षिणि हसखफ्रें मृत्युमृत्युदायिनि..........[नक्षत्रकूट] भक्तसिद्धिविधायिनि म्लक्षकसहहूं भगवति कृतान्तकालि हूं फट् रक्षक्रीं ऊं नमः फट् स्वाहा कृतान्तकालि, ओं ऐं श्रीं क्लीं फ्रें क्रीं छ्रीं स्त्रीं हूं भीमकालि क्रीं क्रीं क्षूं क्रीं श्रीं प्रेत शिवपर्यङ्कशायिनि महाभैरवविनादिनि पशुपाशं मोचय मोचय स्त्रीं फ्रें ख्रीं फ्रों चण्ड कालि हूं फट् फट् चण्डकालि, सौः ब्लीं ठौं प्रीं ईं धनकालि धनप्रदे धनं मे देहि दापय क्रीं फ्रें हूं विषधरवज्रिणि क्लीं श्रीं नमः स्वाहा धनकालि, श्रीं स्फ्रों..............
[सुदीर्घकूटः] ब्लौं क्लौं घोरकालि विश्वं वशीकुरु वशीकुरु सर्वं काध्यं [कार्यं?] साधय साधय करालि विकरालि छ्रीं स्त्रीं फ्रें प्रेतारूढे प्रेतावतंसे ह्रीं श्रीं क्लीं राजानं मोहय मोहय हूं फट् नमः घोरकालि, ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रीं फट् ठः ठः सन्त्रास कालि, क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं लेलिहानरसनाकराले रोरूयमानसजीवशिवा-नक्षत्रमाले छ्रीं स्त्रीं फ्रें प्रेतकालि भगवति भयानके मम भयमपनय स्वाहा प्रेतकालि, ओं ऐं ह्रीं हूं क्लूं प्रूं ख्रौं क्रः फ्रें प्रलयकालि प्रलयकारिणि नवकोटिकुलाकुल चक्रेश्वरि श्रीं घ्रीं ब्लूं म्लैं ह्भ्रीं परमशिवतत्त्वसमयप्रकाशिनि क्रः फट् स्वाहा प्रलय कालि, आं क्रीं क्लीं श्रीं ऐं विभूतिकालि सम्पदं मे वितर वितर सौम्या भव वृद्धिदा भव सिद्धिदा भव जय जय जीव जीव अं प्रां इं ठ्रीं उं श्रीं एं प्रीं ठः ठः फट् फट् फट् नमः स्वाहा ओं ओं ओं विभूति कालि । ओं क्रों ह्रीं क्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं श्रीं ऐं जयकालि परमचण्डे महासूक्ष्मविद्यासमयप्रकाशिनि क्ष्रौं प्लुं वफ्लुं नमः स्वाहा जयकालि, ऐं श्रीं ओं फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रें फ्रैं फ्रों फ्रौं भोगकालि हसखफ्रें हसखफ्रें फट् फट् फट् स्वाहा भोगकालि, हूं नमः कल्पान्तकालि भगवति भीमरावे वफ्लूं भ्रौं फ्रूं म्रूं वं मेघम ले महामारीश्वरि विद्युत्कटाक्षे अरूपे बहुरूपे विरूपे ज्वलितमुखि चण्डेश्वरि रह्रीं ह्भ्रीं स्वाहा कल्पान्तकालि, ओं छ्रीं च्रीं ब्लीं डामरमुखि वज्रशरीरे हूं सन्तानकालि फट् ठः ठः मन्थान कालि [सन्तान कालि], ओं ह्रीं हूं रलहक्षसमहफछ्रीं कहलश्रीं ह्लक्षकमहलसव्म्रऊं क्षम्लकस्हरयव्रुं क्षहलीं दुर्जयकालि हट्टायुधधारिणि वज्रशरीरे रश्रीं रह्रीं क्षह्लव्रीं कालविध्वंसिनि; कुलचक्रराजेश्वरि स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं स्तृं स्त्रें स्त्रैं स्त्रों स्त्रौं स्त्रः फट् फट् फट् स्वाहा, दुर्जयकालि, ऐं आं ईं ऊं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं घोराचार रौद्रे महाघोरवाडवाग्नि ग्रस ग्रस महाबले महाचण्डयोगेश्वरि नमः ठः ठः कालकालि, ऐं क्रैं व्रूं [महा रुद्रान्त मस्तकः पयो बीजं "वं"?] वज्रकालि महाबले क्ष्रौः क्ष्रौं सद्यो महाप्रपञ्चरूपे रौषिकानलं पत पत फेरुमुखि योगिनीडाकिनीखेचरीभूचरी सु [स्व] रूपिणि चक्रसुन्दरि महाकालि कापालि रीं णीं [ध्रीं] रक्षां कह कह त्वां प्रपद्ये तुभ्यं नमः स्वाहा वंजकालि, ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धियोनि महाराविणि परम गुह्याति गुह्य मङ्गले विद्याकालि ब्लां ह्फ्रीं फ्रीं भ्रीं स्क्रीं [स्कीं] [चान्तस्थः कान्त एव च]

रछ्रूं ज्रूं श्रीं छ्रीं धीश्वरी स्वरूपिणि शबरी पीवरी चर्चिके भक्षिके रक्षिके हैं भा ठः ठः ठः फट् फट् फट् विद्याकालि, ओं आं ह्रं ऐं श्रीं श्रीं ग्रीं ज्रूं ग्रं म्लौं ख्रूं छ्रूं ट्रूं श्रीं यं यां यि यीं युं यूं यृं यॄं य्लृं यें यैं यों यौं यः भौं स्वाहा शक्तिकालि, ओं हसखफ्रें नमश्चण्डातिचण्डे मायाकालि कालवञ्चनि महाङ्कुशे [नन्दनकूटं]........ पातालनागवाहिनि गगनग्रासिनि ब्रह्माण्डनिष्पेषिणि हं हं हं नमो नमो नमः हूं हूं हूं ओं ह्रीं हूं क्रैं क्फ्रें महाचण्डवज्रिणि भ्रमरि भ्रामरि महाशक्तिचक्रकर्तरीकुलार्णव चारिणी फि फां फें फूं फौं समय विद्यागोपिनि [किरीटीकूट]............म्लब्व्रमीं स्ह्म्लमहज्रूं महाकालि समयलाभं कुरु कुरु विद्यां प्रकाशय प्रकाशय क्रां ह्रीं क्रौं क्रैं ह्रीं क्रं क्रः फट् स्वाहा महाकालि, ऐं परापररहस्यसाधिके कुलकालि फ्रें छ्रीं स्त्रीं ह्रीं हूं क्लीं ग्लूं हफ्रीं मक्षौः फट् फट् फट् कुलकालि, ओं ह्रीं क्लीं हूं फ्रें परापरपरमरहस्यकालिकुलक्रमपरम्पराप्रचारिणि भगवति नादकालि करालरूपिणि डमबलहक्षमबक्ष्म्यूं [?] फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें मम शत्रून् मर्दय मर्दय चूर्णय चूर्णय पातय पातय नाशय नाशय भक्षय भक्षय सबक्लक्ष्मध्रयब्लीं क्लकहलक्षबमध्रीं सहलक्षम्रठक्षीं [शृङ्खलाकूट] ....[दण्ड कूट]..................... नवकोटिकुलाकुलचक्रेश्वरि सकल गुह्यानन्ततत्त्वधारिणि कूं चूं टूं तूं पूं मां कृपय कृपय ह्रीं हूं फ्रें चतुरशीतिकोटि ब्रह्माण्डसृष्टिकारिणि प्रज्वलज्ज्वलनलोचने वज्रसमदंष्ट्रायुधे दुर्निरीक्ष्याकारे भगवति मुण्डकालि कह कह तुरु तुरु दम दम चट चट प्रचट प्रचट् [हरिहराख्यं तत्कूटं] .... [कूटं कूटाख्यमेव च]...........................[पत्रकूटं]........................ सर्वसिद्धिं देहि देहि सर्वैश्वर्यं दापय दापय विद्युदुज्ज्वलजटे विकटसटे महाविकटकटे ह्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें नमः ठः ठः मुण्डकालि, ओं ऐं आं श्रीं क्लीं ह्रीं क्षूं ब्लीं स्हफ्यूं भौं क्वीं धूमकालि सर्वमेव मे वशं कुरु कुरु पाहि पाहि जम्भिके करालिके पूतिके घोणिके वं वं वं फट् नमः धूमकालि, ऐं क्रौं फ्रें छ्रीं क्लीं आज्ञाकालि ममाज्ञां राजानः शिरसा धारयन्तु हूं फट् स्वाहा आज्ञाकालि, ओं ह्रीं क्रौं ड्रीं ड्रूं तिग्मकालि तिग्मरूपे तिग्मातितिग्मे भ्रमं मोचय स्वं प्रकाशय स्वाहा तिग्मकालि, ओं ऐं ह्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें श्रीं क्लीं हूं महाकालि लेलिहानरसनाभयानके घोरतरदशनचर्वितब्रह्माण्डे चण्डयोगीश्वरीशक्तितत्त्वसहिते मां जां डां दां रां प्रचण्ड चण्डिनि [सद्योधनं ?] महामारीसहायिनि भगवति भयानके चामुण्डायोगिनीडाकिनीशाकिनीभैरवी मातृगणमध्यगे जय जय कह कह हस हस प्रहस प्रहस जम्भ जम्भ तुरु तुरु धाव धाव श्मशानवासिनि शववाहिनि नरमांसभोजिनि कङ्कालमालिनि फें फें फें तुभ्यं नमो नमः स्वाहा महारात्रिकालि, हसखफ्रें भगवति संग्रामकालि संग्रामे जयं देहि

देहि मां द्विषतो मम वशे कुरु कुरु पां पीं पूं पैं पौं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल विद्युत्केशि पातालनयनि ब्रह्माण्डोदरि महोत्पातं प्रशमय प्रशमय ह्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें नमः ठः ठः सङ्ग्रामकालि, ऐं फ्रें छ्रीं हूं क्षौं नक्षत्रनरमुण्डमालालङ्कृतायै चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मायै भगवत्यै शवकालिकायै यूं रूं लूं वूं शूं षूं सूं हूं ळूं दुष्टग्रहनाशिन्यै शुभफलदायिन्यै रुद्रासनायै रह्लीं रफ्क्रीं ह्रं ह्रं ह्रं वं वं वं हूं हूं हूं ठं ठं ठं फट् फट् फट् नमः ठः ठः शवकालि, ऐं ह्लीं क्रीं क्रीं क्रूं क्रें क्रैं क्रों क्रौं [पूर्वं सन्ध्यक्षरे हीनं नाद हीनं तथा प्रिये ?] क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं वमदग्निमुखि फेत्कोटिपरिवृते विस्रस्तजटाभारे भगवति नग्नकालि रक्ष रक्ष पाहि पाहि परमशिवपर्यङ्कनिवासिनि ग्रीं घ्रीं ज्रीं झ्रीं ड्रीं ढ्रीं द्रीं ध्रीं भ्रीं ध्रीं विकरालमूर्तिकतामुपहृत्य दर्शय हूं नमः स्वाहा नग्नकालि, आं क्रों ऐं स्ह्रौः [सर्गहीनं प्रेतबीजं न्रस्यनादकलान्वितम् ?] घूं हूं ल्यूं क्ष्रैं रुधिरकालिकायै निपीतबालनररुधिरायै त्वगस्थिचर्मावशिष्टायै महाश्मशानधावनप्रचलितपिङ्गजटाभारायै क्ष्रौं भ्रौं घ्रौं फ्रौं घ्रौं ममाभीष्टसिद्धिं देहि देहि वितर वितर हूं डाकिनि राकिनि शाकिनि काकिनि लाकिनि हाकिनि सम्बोधनानि नररुधिरं पिब पिब महामांसं खाद खाद ऐं ओं श्रीं ह्लीं क्लीं हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं फट् ठः ठः रुधिरकालि, क्रीं करङ्कधारिणि कङ्कालकालि प्रसीद प्रसीद विद्यामावाहयामि तवाज्ञया समागत्य मयि चिरं तिष्ठतु ठः ठः कङ्कालकालि, ओं ऐं श्रीं आं ऊं ह्लीं क्लीं हूं फ्रें......
[आतिचामुण्डा] क्लीं भगवति भयङ्करकालि त्रैलोक्यदुर्निरीक्ष्यरूपे नवकोटिभैरवीचामुण्डाशतकोटिपरिवृते मम द्विषतो हन हन मथ मथ पच पच विद्रावय विद्रावय पातय पातय निःशेषय निःशेषय रह्लीं ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लैं ह्लों ह्लौं नमः फट् भयङ्करकालि, ओं ह्लीं श्रीं क्लीं ध्रीं स्त्रीं फ्रें ....[भस्मबी] [पाशहीनं भस्मबीजं षष्ठस्वरविभूषितम्]..... [तदेव वाग्भवयुतं ?]......... फ्रों भ्रों क्षरह्लीं म्ररक्ष्रीं रक्ष्रीं स्वाहा फेत्कालि, ऐं हूं प्रम्लाक्षिचिरते विकटकालि फां फीं फूं रह्लैं रह्लैं स्फ्रीः स्फ्रीः त्रुट त्रुट नमः ठः ठः विकटकालि क्रं हूं आये माये ताये प्रचण्डचण्डे रक्षिणि भक्षिणि दक्षिणि ठः ठः करालकालि, ओं फ्रें सर्वाभयप्रदे सर्वसम्पत्प्रदे घटिनि वटिनि कटिनि स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर प्रां प्रीं प्रूं प्रौं प्रः नमः स्वाहा, फ्रें क्फ्रें ओं ऐं आं क्रों क्रीं श्रीं ह्लीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्ष्रौं क्षूं भ्रूं क्रौं घोरघोरतरकालि ब्रह्माण्डवाहिनि निर्गतमस्तके जटाविधूननचकितवपोलोके ज्वालामालिनि संमोहिनि संहारिणि सञ्चारिणि क्लां क्लीं क्लूं बलिं गृह्ण गृह्ण खादय खादय भक्ष भक्ष सिद्धिं देहि देहि मम शत्रून् नाशय नाशय मथ मथ विद्रावय विद्रावय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय जम्भय जम्भय स्फोटय स्फोटय विध्वंसय विध्वंसय उच्चाटयोच्चाटय हर हर धुरु धुरु धम धम मर्द मर्द भस्मीकुरु भस्मीकुरु सर्वभूतभयङ्करि सर्वजनक्षयंकरि फ्रें क्फ्रें ह्सफ्रीं ह्सफ्रें सर्वजन

सर्वेन्द्रियहारिणि त्रिभुवनमारिणि संसारस्तारिणि स्फें स्फौं च्रौं क्ष्रौं म्लैं क्लीं ब्लीं श्री प्रसीद भगवति नमः स्वाहा, ह्लीं हूं क्लीं छ्रीं घोरघोरतकालि ह्लीं फें क्रों ग्लूं छ्रीं स्त्रीं हूं स्फों ख्फें हसफ्रीं हसख्फें क्रैं स्हौः फट् स्वाहा कामकलाकालि, ख्फें रह्लीं रफ्रीं रक्रीं रक्ष्रीं रछ्रीं यह्सखफ्रीं फट् कामकलाकालि,............ [परा] हूं फट् फें कामकलाकालिकायै नमः स्वाहा कामकलाकालि क्रौं स्फों फें ख्फें हूं कामकलाकालि, क्लीं क्रीं हूं क्रों स्फों कामकलाकालि स्फों क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा कामकलाकालि सर्वशक्तिमयशरीरे सर्वमन्त्रमयविग्रहे महासौम्यमहाघोररूपधारिणि भगवति कामकलाकालि क्रः श्रीं क्लीं ऐं आं क्रों हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फें क्रैं स्क्रौं रक्ष्रीं वं रह्लीं क्षह्लम्लव्य्रऊं म्लक्षकसह ह्लूं ह्स्लहसकह्लीं स्हजहलक्षम्लवनऊं सग्लक्षमहरह्लूं हूं हूं हूं फट् फट् नमः स्वाहा—

इति कामकलाकाल्याः प्राणायुताक्षरीमन्त्रः ।

परिशिष्टम् (२)

(ग्रन्थान्तरे समुद्धृताः महाकालसंहिताश्लोकाः)

ख्रिष्टीयषोडशतमशतकस्योत्तरार्द्धभवोऽयं मैथिलस्तन्त्रविन्नरसिंहठक्कुरस्ताराभक्तिसुधार्णवे विविधेषु प्रसङ्गेषु प्रमाणतया महाकालसंहितायाः श्लोकानुद्धरति एवं पुरश्चर्यार्णवेऽष्टादशतमशतकभवे नेपालभूपालाज्ञया प्रणीते तान्त्रिकविषयसंग्रहात्मके ग्रन्थे महाकालसंहिताश्लोकाः समुल्लिखिता उपलभ्यन्ते। तस्मान् मिथिलायां नेपाले च तदानीं महाकालसंहितायाः प्रसिद्धिः प्रचारश्च निश्चीयेते।

कालक्रममनुसृत्येह ताराभक्तिसुधार्णवे पुरश्चर्यार्णवे च समागतानि महाकालसंहितापद्यानि संगृह्यन्ते—

(क) ताराभक्तिसुधार्णवस्य द्वितीयतरङ्गे मन्त्रग्रहणनियमप्रकरणेऽभिहितं महाकालसंहितावचनम्—

न शास्त्रमालोक्य वदेन्नाचरेन्न जपेदपि।
न पश्येन्नोपदिश्याच्च न कुर्यान्नैव साधयेत्॥
गुरूपदेशतो लब्ध्वा जपन्यासार्चनादिकम्।
पश्चात् तत्साधयेत् सर्वं सदा तद्भावभावितः[१]॥

एतत् पङ्क्तिचतुष्टयं पुरश्चर्यार्णवस्यापि प्रथमभागेऽस्मिन्नेव प्रसङ्गे समुपलभ्यते।

(ख) उक्तग्रन्थस्य पञ्चमे तरङ्गे आसवार्पणावसरे तत्प्रकारं प्रदर्श्याभिहितम्—

द्रव्येण सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम्।
एवं दद्यात् क्षत्रियोऽपि पैष्टिकीं न कदाचन॥
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे गव्यं तथा मधु।
राजन्यवैश्ययोर्दानं न द्विजस्य कदाचन॥

१—एतत्पङ्क्तिचतुष्टयं महाकालसंहितायां बीजोद्धाराख्ये तृतीये पटले (श्लोक संख्या ७—८) समुपलभ्यते।

एवं प्रदानमात्रेण हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत्[1]।

× × ×

क्षीरेण ब्राह्मणैस्तर्प्या घृतेन नृपवंशजैः।
माक्षिकैर्वैश्यवर्णैस्तु आसवैः शूद्रजातिभिः[2]॥

(ग) दमनारोपणं कर्मागमेषु प्रसिद्धम् तदधिकृत्य ताराभक्तिसुधार्णवस्य सप्तमे तरङ्गे महाकालसंहिताश्लोकाः समुद्धृतास्ते हि—

दमनारोपणाख्यैका पवित्रारोपणी परा।
प्रतिसंवत्सरं चैते यो न कुर्वीत साधकः॥
तस्य वर्षकृता पूजा व्यर्था भवति भामिनि।
कृतामपि विलुम्पन्ति भूतप्रेतादयो गणाः॥
प्रतिसंवत्सरं तस्मात् कुर्याद् यत्नेन साधकः।
दमनारोपणं कर्म पवित्रारोहणं तथा[3]॥

× × ×

कालस्तदीयो मुख्यस्तु शुक्लपक्षे मधोर्मतः।
मध्यमो माधवो ज्येष्ठः शुचिस्त्वधम उच्यते॥
चातुर्मास्ये प्रविष्टे तु यः कुर्याद् दामनं विधिम्।
न तस्य दुर्मतेः सिद्धिर्विपरीतं च जायते॥
भूताः प्रेताः प्रनृत्यन्ति क्षुधासंपीडितोदराः।
अस्माकं भाग्ययोगेन चेत् कश्चित्साधकोऽधमः॥
सुप्ते जनार्दने कुर्याद् दमनारोपणं विधिम्।
तदा वयं विलुम्पामो भक्षयामोऽर्चनं च तत्॥
अतो वसन्ते शिशिरे ग्रीष्मे कुर्यादमुं विधिम्।
नैव वर्षासु शरदि हेमन्ततौं न च प्रिये॥
तस्मादृतुत्रये पूर्वोदिते दमनकार्चनम्।
न परर्तुत्रये कार्यं देवीप्रीतिं विधित्सता[4]॥

१—द्र० महाकालसंहितायाः कामकलाखण्डः, पटलः ५, श्लोकसंख्या—१२३-१२६।

२—इमेऽस्मिन्ने पङ्क्ती प्रकाशितायां महाकालसंहितायां नोपलभ्येते।

३—द्र० महाकालसंहिता—गुह्यकालीखण्डः, पटलः १४, श्लोकाः ३-५।

४—द्र० तत्रैव, पटलः १४, श्लोकाः ४६-५१।

अद्योत्तरफल्गुनीभं तिथिश्चापि त्रयोदशी ।
शुक्लपक्षश्चैत्रमासो योगो वृद्धिस्तथैव च[1] ॥
इयं तिथिरनङ्गाख्या तव नाम्ना भविष्यति ।
त्वामस्यां येऽर्चयिष्यन्ति गन्धपुष्पादिविस्तरैः ॥
नैवेद्यधूपदीपाद्यैर्गीतवाद्यादिनर्तनैः ।
सु(अ)श्लीलवचनाक्षेपैः मादकद्रव्यभोजनैः ॥
योनिलिङ्गादिशब्दानां प्रलापैर्हास्यकारकैः[2] ।
तत्तदाकारवचनैर्महोत्सवसमन्वितैः ।
त्वं वरानीप्सितान् दद्यास्तेषां मद्वचनं स्मर ॥
तत्परेऽहनि विस्तार्या मत्पूजा मकरध्वज[3] ।
अधिवासनकर्माङ्गभूतं सङ्कल्पमाचरेत् ॥
राशितिथ्यादिकं प्रोच्य वर्तमानतया स्थितम् ।
वार्षिकार्चासमाप्त्यर्थं श्वः कर्तव्यस्य कर्मणः[4] ॥
ततः प्रभाते उत्थाय कृत्वा नित्यक्रियां स्वकाम् ।
कृतार्चासम्भृतिः पूजामण्डपं समुपाविशेत् ॥
मूर्तियन्त्रालयादीनि कुर्यादुज्ज्वलितानि हि ।
संकल्पं पुरतः कुर्यात् तदनन्तरमीश्वरि ॥
दमनारोपकर्माहं करिष्य इति चोल्लिखेत्[5] ।

× × × ×

शक्तिपूजा च कर्तव्या दमनारोपणोत्तरम् ।
कृते पुरस्तात् सकलं विफलं जायते प्रिये ॥
शक्त्यर्चनेऽकृते चापि निष्फलं जायते तथा ।
अतः कार्या शक्तिपूजा दमनारोपणोत्तरम्[6] ॥
समर्च्य दमनं चैत्रे तेन चाभ्यर्च्य कालिकाम् ।
सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।
चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामधिवासनपूर्वकम् ॥

१—द्र० सैव ,, ,, १६ ।
२— ,, ,, ,, ,, ३४-३६ ।
३— ,, ,, ,, ,, श्लोकाः ३६-३७ ।
४— ,, ,, ,, ,, ५४-५५ ।
५—महाकालसंहितायां नोपलभ्यन्ते एताः पञ्च पंक्तयः ।
६—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः १४, श्लोक सं० ३४१-३४२ ।

आरोप्य दमनं दुर्गां विधिनानेन पूजयेत् ।
मयोक्तेन वरारोहे तथा पुण्यफलं शृणु ॥
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च ।
तत्फलं समवाप्यासौ देववद् दिवि मोदते[1] ॥
एवं यः कुरुते पूजां दमनारोपणाभिधाम् ।
भवन्ति नापदस्तस्य कदाचिदपि सुन्दरि[2] ॥
सिद्ध्यन्ति तस्य मन्त्राश्च नारीणां वल्लभो भवेत् ।
सर्वसम्पद्युतः श्रीमान् मोदते दिवि देववत्[3] ॥

(घ) पवित्रारोहणकर्मप्रसङ्गे महाकालसंहितापद्यानि यथेहोद्धृतानि–
कालो ग्रीष्मः शरद् वर्षा एषु मुख्यतमः प्रिये ।
केचिद् वसन्तमिच्छन्ति कालं माध्यमिकं बुधाः ॥
नैव हेमन्तशिशिरौ प्रशस्येते कदाचन[4] ।

(ङ) पवित्रस्य स्वरूपमधिकृत्याभिहितम्
तच्च कार्पासजं ज्ञेयं शाणं वा पट्टजं तथा[5] ।
कृतं नवगुणं सूत्रमुपवीतमुदीर्यते ॥
[त्रयाणां] तद्धि वर्णानामंसे तिष्ठति सुन्दरि ।
तदेव सूत्रं देवानां कण्ठे बहुगुणीकृतम् ॥
पवित्रमिति नाम्नैव कथ्यते निगमादिषु[6] ।
आम्नायभेदाद् भिद्यन्ते सूत्रवर्णाः सुरेश्वरि ॥
पूर्वार्द्धयोः सितं सूत्रं रक्तसूत्रं तथोत्तरे ।
पश्चिमेऽप्यथ पीतं हि अधोदक्षिणयोर्मतम् ॥
न नीलाक्तं भवेत्सूत्रं षडाम्नायेषु कर्हिचित् ।
आम्नायेष्वथ सर्वेषु प्रशस्तं सितमेव हि ॥
कुमारीकर्तितं सूत्रमतिप्राशस्त्यकारकम् ।
पतिमत्या कृतं मध्यमधमं विधवाकृतम् ॥

१— " " " ४२७-४३० ।
२— " " " ४१५ ।
३—म० म० सं० गु० ख० पटलः १४, श्लोक संख्या ४१६ ।
४—म० म० सं० गु० ख० पटलः १४, श्लोक ४५२-४५३ ।
५— " " " ४३६ ।
६— " " " ४४७-४४८ ।

विप्रक्षत्रार्यजातीनां पत्नीभीरचितं शुचि ।
आवर्जितं यच्छूद्राभिस्तदशुच्येव कथ्यते ॥
विशेषतो ह्यमीषां हि विहितं पतिहीनया ।
वेश्यया कर्तितं सूत्रं मेध्यमित्यपरे जगुः ॥
रजक्या वाथ यान्त्रिक्या काषायपटयाथ वा ।
गोप्या वाप्यथ मुण्डिन्या मालिन्या यद्विनिर्मितम् ॥
तत्सूत्रजपवित्रेण साधको नरकं व्रजेत् ।
तस्मात् सूत्रविनिर्माणे यत्नः कार्यो विशेषतः[१] ॥
मध्यमः स्त्रीगृहीयस्तु पुंवारः श्रेष्ठ उच्यते ।
षण्डाहोऽधमकल्पः स्यात् तिथी रिक्ता विवर्जिता ॥
सापि भूततिथौ ग्राह्या चतुर्थी भौम एव च ।
रवौ तु सप्तमी वर्ज्या रिक्ता वर्ज्या गुरावपि ॥
तिथिस्त्याज्या न कापीह भौमेन सहिता यदि ।
पुंनक्षत्रस्य योगेन फलाधिक्यं हि जन्यते ॥
तानि त्वजीवदिनकृत् विष्णवो निर्ऋतिस्तथा ।
कमप्येतेषु पूर्वेद्युः परेद्युरपि वा पुनः[२] ॥
यावत्यो देवताः सन्ति नित्ये नैमित्तिकेऽपि च ।
याश्चावृत्तिपरीवाराः पञ्चायतनसंयुताः ॥
अपेक्षितं हिं सर्वेषां पवित्रमत्र कर्मणि[३] ।
कृताञ्जलिः पद्यमेनं मन्त्ररूपमुदीरयेत् ॥

त्वं सूचनाद् वेदमखक्रियाणां
प्राप्तोऽसि कार्पासज सूत्रसंज्ञाम् ।
त्वया विनिर्माय बहूपवीतं
दास्येऽमरेभ्यो भव सूत्र पूतम्[४] ॥

× × ×

अथ नैमित्तिकसममारभेतार्चनं बुधः ।
नैवेद्यधूपदीपानां कर्तव्या भूयसी स्थितिः ॥

१—„ „ „ „ ४५६-४६३ ।
२—„ „ „ „ ४६४-४६७ ।
३—„ „ „ „ ४७५-४७६ ।
४—„ „ „ „ ४६६ ।

आकारणीया यत्नेन स्वस्ववर्ग्यास्तु देशिकैः ।
कुसुमैस्तोरणं कार्यं बहिरन्तर्गृहस्य च ॥
× × ×
यस्य यस्य तु देवस्य यो योऽर्चावसरो भवेत् ।
तस्य तस्य तु देवस्य तस्मिँस्तस्मिन् वरानने ॥
पवित्रं तस्य दातव्यं तन्मन्त्रोच्चारपूर्वकम् ।
तथा—छागाश्चावश्यकत्वेन दातव्या बलिकर्मणि[1] ॥

(ङ) शिवाबलिप्रसङ्गे ताराभक्तिसुधार्णवे समागताः महाकालसंहिता-श्लोकाः—

पुराद् बहिर्निशाकाले महारण्यसमीपतः ।
गृहीत्वा भक्ष्यवस्तूनि पूजासम्भृतिमप्युत ॥
आप्तैरनुगतो द्वित्रैः प्रदद्याद् फैरवीबलिम् ।
आमानि पक्वान्यपि च मांसानि विधिनार्पयेत् ॥
तत्रोदीचीदिग्वदनो वीतभीः शुचिरूर्जितः ।
प्राणायामं षडङ्गं च विधायार्घ्यं प्रपूज्य वै ॥
उत्थाय मुक्तचिकुरः शिवा आकारयेच्छनैः[2] ।
× × ×
स्थानादस्मादपसरेत् किञ्चिद् दूरतरं प्रिये ।
शिवा यथा वीतभया आगच्छन्त्यन्नसन्निधौ ॥
तत्र स्थित्वा निरीक्षेत किं किं ता भक्षयन्ति हि ।
सर्वा आगत्य चेत्सर्वं प्रदत्तं भक्षयन्ति हि ॥
विनिर्दिशेत् सर्वसिद्धिं राज्यलाभं धनागमम् ।
यद्यत्ता भक्षयन्त्यन्नं तत्तत्फलमवाप्नुयात् ॥
यद्यच्च नैव खादन्ति तत्तन्नैव फलं भवेत् ।
कुमारीपूजनादौ तु विशेषोऽस्योपवर्णितः ॥
तेन नात्र ब्रुवे देवि ग्रन्थाधिक्यभयादपि ।
कुमारीरूपमास्थाय यथामति [याति] महेश्वरी ॥
शिवारूपं तथा कृत्वा स्वयमायाति कालिका ।
ततो भक्तिः प्रकर्तव्या तासु यत्नेन साधकैः ॥

१—ब्र० म० सं० गु० ख० पटलः १४, श्लोकसंख्या ५६१-६४ ।
२—ब्र० म० सं० गु० ख० पटलः १३, श्लोकसंख्या १४२२-२५ ।

शिवासु भक्षयन्तीषु सर्वेभ्यो बलिमाहरेत् ।
संहारभैरवायादौ वटुकेभ्यस्ततः परम् ॥
विनायकेभ्यो मातृभ्यः क्षेत्रपालेभ्य एव च[1] ।
योगिनीभ्यो डाकिनीभ्यः शिवदूतिभ्य एव च ।
पुरोक्तो मन्त्र आसीद्धि तेन तेन बलिं हरेत् ॥
महदैश्वर्यमाप्नोति निःशेषं भक्षयन्ति चेत् ।
अर्धे तु मध्यमा सिद्धिरभक्षे तु विपद् भवेत्[2] ॥
खादित्वोत्थाय तिष्ठत्सु शिवावृन्देषु तत्र हि ।
दण्डवत् प्रणमेत् सर्वाः स्वेष्टदेवीधिया स्वयम् ॥
पुष्पाञ्जलिं समादाय गन्धचन्दनचर्चितम् ।
उत्थाय मुक्तचिकुरो मीलिताक्षो दिगम्बरः ॥
भक्तिशाली वीतभयः किञ्चित् प्रणतकन्धरः ।
स्तुतिं कुर्वीत् स्तवैरेतैर्वरप्रार्थनपूर्वकम् ॥
शिवारूपधरे देवि कामकालि नमोऽस्तु ते ।
उल्कामुखि ललज्जिह्वे घोररावे शृगालिनि ॥
श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रियेऽनघे ।
अरण्यचारिणि शिवे फेरो जम्बूकरूपिणि ॥
नमोऽस्तु ते महामाये जगत्तारिणि कालिके ।
मातङ्गि कुक्कुटे रौद्रि कालकालि नमोऽस्तु ते ॥
सर्वसिद्धिप्रदे देवि भयङ्करि भयापहे ।
प्रसन्ना भव देवेशि मम भक्तस्य कालिके ॥
संसारतारिणि जये जय सर्वशुभङ्करि ।
विस्रस्तचिकुरे चण्डे चामुण्डे मुण्डमालिनि ॥
संहारकारिणि क्रुद्धे सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे ।
दुर्गे किराति शवरि प्रेतासनगतेऽभये ॥
अनुग्रहं कुरु सदा कृपया मां विलोकय ।
राज्यं प्रयच्छ विकटे वित्तमायुः सुतान् स्त्रियम् ॥
शिवाबलिविधानेन प्रसन्ना भव फेरवे ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमो नमः ॥

१—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः १३, श्लोक संख्या १४५९-६६ ।
२—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः १३, श्लोकसंख्या १४६७-६८ ।

इत्येतैरष्टभिः श्लोकैः शिवास्तोत्रमुदीरयेत्[1] ।
ततस्तच्छेषमन्नं यद् भाजनं चान्यदेव वा ।
सर्वं हि निखनेद् भूमौ प्रयत्नेनैव पार्वति ॥
यदि काकाः खराः श्वानो ये चान्ये पापजातयः ।
भक्षयन्ति तदुच्छिष्टं तदा विघ्नः प्रजायते ॥
रात्रावेव समागच्छेन्निर्भयो विपिनान्तरात् ।
आगत्य गन्धपुष्पाद्यैः पुनर्देवीं प्रपूजयेत्[2] ॥

(च) ताराभक्तिसुधार्णवस्य दशमे तरङ्गे पशुबलिप्रकरणे समागताः महाकालसंहिताश्लोकाः—

कृष्णसारं तथा छागं मृगादीनां विधानपि ।
मेषं च महिषं घृष्टिं तथा पञ्चनखानपि ॥
कपोतं टिट्टिभं हंसं चक्रवाकं च लावकम् ।
शरालिं तित्तिरिं मत्स्यान् कलविङ्कं च फेरवम् ॥
अनुक्तं नैव दातव्यं द्विजवर्यैः कदाचन ।
सिंहं व्याघ्रं नरं तद्वत् क्षत्रियः परिकल्पयेत् ॥
विहाय कृष्णसारं च क्षत्रियादेर्भवेद् बलिः ।
सिंह व्याघ्रं नरं दत्वा ब्राह्मणो ब्रह्महा भवेत् ॥
मूष मार्जारकं चाषं शूद्रो दत्वा पतत्यधः ।
चन्द्रहासेन खड्गेन हन्यादेकप्रहारतः ॥
उत्थाय हननं कुर्यात् नोपविश्य कदाचन ।
स्वहस्तेन पशुं हत्वा पशुयोनिमवाप्नुयात् ॥
विं च त्रिपक्षतो न्यूनं महिषादींस्त्रिवर्षतः ।
अन्यं त्रिमासतो न्यूनं न दद्याच्च कदाचन ॥
वृद्धं वा विकृताङ्गं वा न कुर्याद् बलिकर्मणि ।
स्वगात्ररुधिरं दातुं क्षत्रियादेर्भवेद् विधिः ॥
सात्त्विको जीवहत्यां हि कदाचिदपि नो चरेत्[3] ।

१—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः १३, श्लोकसंख्या १४८०-८१ ।
२—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः १३ श्लोकसंख्या १४८२-८४ ।
३—द्र० महाकालसंहितायाः कामकलाखण्डः पटलः ५, श्लोक सं० १२७-१३५।

इक्षुदण्डं च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम् ।
क्षीरपिण्डैः शालिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद् बलिम् ॥
तत्तत्फलविशेषेण तत्तत्पशुमुपानयेत् ।
कूष्माण्डं महिषत्वेन छागत्वेन च कर्कटीम्[1] ॥

(छ) ताराभक्तिसुधार्णवस्य सप्तमे तरङ्गे कुमारीपूजाप्रसङ्गे समुद्धृताः महाकालसंहिताश्लोकाः—

[कुमारीपूजामाहात्म्यम्]

न तथा तुष्यति शिवा बलिहोमस्तुतीरणैः ।
कुमारीपूजनेनात्र यथा सद्यः प्रसीदति ॥
न केवलं पूजयेत् तां भोजयेच्चापि यत्नतः ।
व्यङ्गचता चाप्यकरणात् पूजायाः परिकीर्तिता ॥
करणात् साङ्गताऽपि स्यादन्यस्मिन्न कृतेऽपि हि ।
कौलानां निशिपूजोक्ता स्मार्तानामपराह्णकी ॥
नित्या तु शारदार्चा या काम्या नैमित्तिकीतरा ।

[कुमारीलक्षणम्]

सुस्नातां पीतरक्तादिनानारागोज्ज्वलां शुभाम्[2] ॥
सर्वालङ्कारचित्राङ्गीमज्ञातानङ्गचेष्टिताम् ।
अजातपुंमनःसंगां सप्ताष्टनववार्षिकीम् ॥
अनीचजातिं गौराङ्गीं पितृमातृमतीमपि ।
अदत्तुरामवाग्दत्तामधिकोनाङ्गवर्जिताम् ॥
अदीर्घकेशीमुद्दीप्तां सुस्मितास्यामलोमिनीम् ।

[निन्दितकुमारीलक्षणम्]

श्यावां दीर्घदतीमोतुनयनां पिङ्गमूर्धजाम् ॥
तनुमूनगतिं क्रुद्धां कुब्जां खञ्जां च खर्विकाम् ।
भ्रूकेशाल्पत्वसहितां तथा चैव गलद्व्रणाम् ॥
जातस्तनरजोऽनङ्गां प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
एतद्भिन्ना कुमारी तु वरणीयार्चनक्रमे ।

१—म० सं० कामकलाखण्डः, पटलः ५, श्लोकसंख्या १३६-३७ ।
२—म० सं० गु० ख० पटलः १३, श्लोकसंख्या ११६५,६६,१२०२, ११०७—८ ।

[कुमारीपूजाविधिः]

गीतवादित्रनिर्घोषैरानन्दादरपूर्वकम्[1] ।
नीत्वा पूजागृहद्वारि कुमारीस्ता अयुग्मिकाः ॥
पञ्च वा सप्त वा चापि नवैकादश वा पुनः ।
मुख्यैका तासु कर्त्तव्या या स्यात् सर्वाङ्गसुन्दरी ॥
बह्वीनामप्यभावे हि भवेदेका कुमारिका ।
काम्ये नैमित्तिके चैका बह्वयः शारदपूजने ॥
श्रेणीभूता उत्थिताश्च नम्रीभूतानना अपि ।
स्थापयित्वा क्रमेणैता मुख्यामादौ नियोज्य च ।
देवीबुद्धिं विधायास्यां साधको विगतज्वरः ।
गृहीतमदिरामत्रः कल्पितार्चनसम्भृतिः ॥
प्राणायामं विधायादौ ततो भूतापसारणम् ।
गुरुं गणपतिं नत्वा वामदक्षिणयोस्ततः[2] ।
मध्ये कुमारीं च तथा मूलदेवीस्वरूपिणीम्
छोटिकाभिस्तथा तालत्रितयैर्बन्धनं दिशाम् ॥
तथा—कुमार्याः मूलभूतायाः पादौ प्रक्षालयेत् ततः ।
तथा—तज्जलं मस्तके दद्याद् देवीपादोदप्रज्ञया ॥
सोत्तरीयांशुकेनैव पादाम्बूपनयेत् ततः ।
पुनरक्षतमादाय विघ्नानुत्सारयेत् प्रिये ॥
उदीर्यमाणमन्त्रेण तालत्रयपुरःसरम् ।
तारपाशकलाकूर्चास्त्राणि प्रथमतो वदेत् ॥
भूतान्यपसारय च विघ्नान्नाशय चेत्यपि ।
हृच्छीर्षे चरमे दद्यात् एकविंशाक्षरो मनुः ।
कुमार्या सहिताः सर्वे तया देवीस्वरूपया ।
दर्शनार्थं समायान्ति यावन्तो देवयोनयः[3] ।
प्रेताः भूताः पिशाचाश्च गन्धर्वा गुह्यका अपि ।
राक्षसा दानवा यक्षा ये चान्ये क्रूरकर्मिणः ॥

१—द्र० सैव पटलः १३, श्लोकसंख्या १२०६—१४ ।
२—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः १३, श्लोकसंख्या १२१५—२० ।
३—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः १३, श्लोकसंख्या १२२०-२१, १२२८, तथा १२३१—३५ ।

सह प्रविश्य कौमार्या मण्डपं शारदार्चनम् ।
लुम्पन्ति च कुमार्यर्चां पूजां विध्वंसयन्ति च ॥
अतो वारद्वयं कार्यं विघ्नस्योत्सारणं प्रिये ।
ततः स्ववामहस्तेन कुमार्याः दक्षिणं करम् ॥
गृहीत्वा दक्षचरणविनिःक्षेपपुरःसरम् ।
पंक्तिभूताः कुमारीस्ताः श्लोकरूपं मनुं पठन् ॥
पूजागृहान्तः शनकैर्नमन्मौलिः प्रवेशयेत् ।
समस्तजगतामाद्ये जगदाधाररूपिणि ।
कुमारीरूपमास्थाय प्रविशेदं गृहं मम ।
भवत्याः कीदृशं रूपं जाने मातरहं न हि[1] ॥
कुमारीरूपमेवेदं पश्यामि नरचक्षुषा ।
भक्तिं मदीयां विज्ञाय त्वत्पादाम्बुजयोः शिवे ॥
त्वया प्रकटितं रूपमीदृशं सर्वसिद्धये ।
दृष्टिः कार्या न मे पापे सञ्चारेणासतः पथः ॥
दृढायां केवलं भक्तौ दातव्या सुरवन्दिते ।
शिवाद्यास्तवरूपं हि कीदृशं नेति जानते ॥
ज्ञास्यामि को वराकोऽहं पाञ्चभौतिकविग्रहः ।
इति पञ्च पठन् श्लोकान् स्वपृष्ठेनैव तारयेत् ॥
अनीक्षमाण एवेशि गीतवाद्यपुरःसरम् ।

× × ×

मुख्यं तत्पूजनं प्रोक्तं मुख्याया एव तन्मनुम् ॥
तत्पूजयैव ताः सर्वाः पूजिताः स्युर्न संशयः ।

× × ×

बलिं दत्वा ततो देवयोनिभ्यः परमेश्वरि[2] ॥

[कुमारीन्यासविधिः]

आरभेत निरालस्यः कुमारीन्यासमुत्तमम् ।
नामान्यादौ खलु महाचण्डयोगेश्वरी मता ॥
ततः सिद्धिकराली च पुनः सिद्धिविकराल्यपि ।
महाडामर्यथ ज्ञेयाः वज्रकापालिनी ततः ॥

१—द्र० संव पटलः १३, श्लोकसंख्या १२३५—४१ ।
२—द्र० संव पटलः १३, श्लोकसंख्या १२४१-४५, १२५२-५३, तथा १२६४ ।

मुण्डकापालिन्यट्टहासिन्येते ह्रे परिकीर्तिते[1] ।
[2]प्रतिपदादि पूर्णान्तं वृद्धिभेदेन पूजयेत् ॥
महापर्वसु ता देवि विशेषादुपचारकैः ।
महानवम्यां देवेशि कुमारीश्च प्रपूजयेत् ॥
मिलितां पूजयेद्वस्तु षोडशैश्चैव भक्तिमान् ।
चण्डकापालिनी कालचक्रेश्वर्यप्यनन्तरम् ॥
गुह्यकाली ततः कात्यायनी कामाख्यया सह ।
चामुण्डा सिद्धिलक्ष्मीश्च कुब्जिका तदनन्तरम्[3] ॥
मातङ्गी तदनु ज्ञेया चण्डेश्वर्यथ कीर्त्यते ।
सर्वशेषेऽथ कौमारी एता अष्टादशेरिता ॥
अङ्गान्यतो वच्मि शिरो मुखं तदनु चक्षुषी ।
कर्णौ नासापुटे चापि कपोलौ तत्पुरौ [?] पुनः ॥
अधरोष्ठौ दन्तपंक्ती स्कन्धौ हृदयमेव च ।
बाहू च जठरं पृष्ठमूरुजानू तथैव च ॥
जंघे पादौ च सर्वाङ्गं तावन्त्येव स्थलानि च ।

पुनः सप्तमतरङ्गे—

ततोऽर्घ्यस्थापनं कुर्यात् नित्यके यदुदाहृतम् ॥
पूजोपकरणस्यापि शुद्धिरुक्ता पुरोक्तवत्[4] ।
ततो ध्यानं प्रकुर्वीत कुमार्या वक्ष्यमाणकम्[5] ॥
उपचारांस्ततः सर्वान् पाद्यादीन् स्तुतिपश्चिमान्[6] ।
भूषणानि दुकूलानि सिन्दूरालक्तकावपि ॥
कज्जलादर्शविख्याततालवृन्तानि पेटिका ।
परिकर्माधारचोलमञ्चिका पीठदोलिका ॥

१—द्र० सैव पटलः १३, श्लोकसंख्या १२६५, १२७२—७४ ।

२—इतश्चतस्रः पंक्तयोऽसंबद्धाः संगतिविरहात् न चैताः महाकालसंहितायाः इत्यवधेयम्

३—द्र० म० सं०गु० ख० पटलः १३, श्लोकसंख्या ७४-७५

४—द्र० सैव पटलः १३, श्लोकसंख्या १२७६—१२७९।१२८१ ।

५—पङ्क्तिरियं संयोजकमतएव प्रकृतग्रन्थकर्तुर्न तु महाकालसंहितायाः

६—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः १३, श्लोकसंख्या १२८८,

मञ्चालिका च मञ्जूषा पादुके कुथपट्टके।
चन्द्रातपोपसंख्यानं तथोद्वर्तनभाजनम् ॥
शय्योपधानपर्यङ्काः समुद्गा च प्रसाधनी।
प्रतिग्राहश्च हिन्दोला तथा सीमन्तवर्त्तिका ॥
गोरोचनामृगमदौ कर्पूरं कुङ्कुमं तथा।
एवमादीनि चान्यानि यावच्छक्यानि सुन्दरि ॥
प्रदातव्यानि वस्तूनि कुमारी तुष्यते तथा।
ततो यत् स्थापितं पात्रं कुमार्यै प्रतिपादयेत् ॥
स्वीकुर्यात् सा च तत्रैव तथा यत्नं समाचरेत्।
अगृहीते तु तत्पात्रे महान् दोषोऽभिजायते ॥
अतो यत्नस्तथा कार्यः स्वीक्रियेत तथा तथा।
ततो गृहीत्वा कुसुमाक्षतं तस्याः कलेवरे ॥
पञ्चाशत्संख्यकाः शक्तीः क्रमतः परिपूजयेत्।

[कुमारीशक्तिनामानि]

ता इदानीं प्रवक्ष्यामि सावधाना निशामय।
आद्या जया च विजया ऋद्धिदा माययान्विता।
कला च सिद्धिदा सूक्ष्मा प्रभा स्यात् सुप्रभा ततः।
विद्युता च विशुद्धिश्च नन्दिनी च विशुद्धियुक्[1] ॥
अपराजिता च ललिता लक्ष्मीर्गौरी तथैव च।
अथ मेधा च गायत्री सावित्री च स्वधा पुनः ॥
स्वाहेच्छे च क्रिया विद्या प्रज्ञा दीप्ता च चेतना।
भद्रा ज्येष्ठा तथोमा च शिवा च मुदिता क्षमा ॥
श्रद्धाथ विमला कौमुद्यपि वै विशदा ततः।
अशोका ज्ञानदा चैव बलदा राज्यदापि च।
मैत्री तदनु रुद्राणी भवानी च मृडान्यपि।
सर्वज्ञा चण्डिका वापि कुमारी सर्वशेषगा ॥
पञ्चाशत् संख्यका एता कुमार्याः शक्तयः स्मृताः।
भैरवानष्ट तदनु पूजयेदक्षतादिभिः ॥
भैरवीभ्यस्ततो विघ्नविनायकेभ्य एव च।

१—द्र० संव पटलः १३, श्लोकसंख्या १२६२—१३०२।

बटुकक्षेत्रपालाभ्यां योगिभ्यस्तथैव च[1] ॥
भूतेभ्यः प्रेतयक्षेभ्यः डाकिनीभ्यस्तथैव च ।
कुर्वीत पूजनं देवि कुसुमाक्षतचन्दनैः ॥
पुनरष्टौ सर्वशेषे इंज्ता देवीर्यजेत् प्रिये ।
महामाया कालरात्रिस्ततो वै सर्वमङ्गला ॥
पूज्या डमरुका पश्चात् राजराजेश्वरी तथा ।
सम्पत्प्रदा भगवती कुमारी तदनन्तरम् ॥
समाप्येत्थं कुमार्यर्चां तत्पुरो भुवि वारिणा ।
वर्तुलं मण्डलं कृत्वा तन्मध्ये कुलकामिनीम् ॥
विलिख्य जपाकुसुमाक्षतचन्दननागजैः ।
पूजयेन्मण्डलं तच्च शुभदायै नमो वदेत् ॥
स्थालीगतं ततः सर्वमन्नं तत्र निवेश्य हि ।
नानाविधां च सामग्रीं लेह्यचोष्यादिघट्टिताम् ॥
मांसमीनसुरापूर्णां भक्ष्यचर्व्यादिपूरिताम्[2] ।
कुमारीदक्षहस्तं च स्थापयित्वान्नमूर्धनि ।
उत्तानं वक्ष्यमाणेन मनुनान्नं समुत्सृजेत्[3] ॥

× × ×

इतरासां कुमारीणां प्रत्येकं पूजनं चरेत् ।
गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैरन्नसंभृतैः ॥
अन्नानि यादृशान्यस्यै मुख्यायै कल्पितानि हि ।
अन्याभ्यस्तादृशान्येव दातव्यान्येष निश्चयः ॥
फलाफलं तु मुख्याया ज्ञेयमत्र विपश्चिता ।
भुञ्जानासु कुमारीषु न तूर्यध्वनिमाचरेत् ॥
नान्यत्र च मनो दद्यात् संबाधं नैव कल्पयेत् ।
कोलाहलं निषेवेत अमङ्गल्यानि यानि च ॥
रुदितापानवायुं च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
सावधानो भवेदत्र किमादौ भक्षयन्ति ताः ॥

१—द्र० संब पटलः १३, श्लोकसंख्या १३०३—१३०८।
२—द्र० संब पटलः १३, श्लोकसंख्या १३०९—१३१५।
३—द्र० संब पटलः १३, श्लोकसंख्या १३१५—१६

मिथः किं वा प्रजल्पन्ति कुत्र वा वस्तुनि स्पृहा ।
कुत्र दृष्टिं प्रक्षिपन्ति भीताः किं वा वदन्त्यमूः ॥
इत्यादि नानाजातीयाश्चेष्टा आसां प्रयत्नतः ।
सावधानतया ज्ञेया भद्राभद्रस्य सूचकाः ॥
भञ्जयन्तीषु तास्वेव पठेत् तत्स्तोत्रमत्वरम् ।
कृताञ्जलिर्नम्रशिरा आसामन्ने क्षिपन् दृशौ ॥

[कुमारीस्तोत्रम्]

जयकालि महाभीमे भीमरावे भयापहे ।
संसारदावाग्निशिखे वृजिनार्णवतारिणि ॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रभूतेशप्रभृत्यमरवन्दिते ।
सर्गपालनसंहारकारिण्यहितमारिणि[१] ॥
गुह्यकालि परानन्दरसपूरितविग्रहे ॥
परब्रह्मरसास्वादकैवल्यानन्ददायिनि ।
गुणातीतेऽपि सगुणे महाकल्पान्तनर्तकि ।
कुमारीरूपमास्थाय विज्ञे प्रज्ञास्वरूपिणि ॥
आगतासि ममागारं शारद्यर्चासमाप्तये ।
सांवत्सरिककल्याणसूचनाय तथैव च ॥
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि सफलं जीवितं मम ।
यस्मात् त्वमीदृशं कृत्वा कौमारं रूपमुत्तमम् ॥
गुह्यकाली समायाताब्दिकपूजाजिघृक्षया ।
त्वमेवैतेन रूपेण देवेभ्यः प्रार्थिता पुरा ॥
दत्तवत्त्यसि साम्राज्यं वरानपि समीहितान् ।
मह्यमप्यद्य देवेशि वरं देहि सुपूजिता ॥
ब्रह्मणे सृष्टिसामर्थ्यं त्वं पुरा दत्तवत्त्यसि ।
विष्णवे च त्वमेवादास्तथा पालनशक्तिताम् ॥
महारुद्राय संहारकर्तृत्वमददः शिवे ।
देवेभ्यश्चापि दैत्यानां नाशने दक्षतामपि ॥
अन्तर्यामिन्यसीशानि त्रिलोकीवासिनामपि ।
निवेदयामि किं तेऽहं सर्वकर्मैकसाक्षिणि ॥

२—म० संव पटलः १३, १३२४—३४ ।

शत्रुनाशं राज्यलाभं शरीरारोग्यमेव च।
त्वत्पादाम्बुजयोर्भक्ति याचेऽहं चतुरो वरान्॥
नमस्ते भगवत्यम्ब नमस्ते भक्तवत्सले।
नमस्ते जगदाधाररूपिणि त्राहि मां सदा[1]॥
मातर्न वेद्मि रूपं ते न शरीरं न वा गुणम्।
भक्त्या हृत्स्थितया पूजां तव जानाम्यनन्यधीः॥
त्वं माता त्वं पिता बन्धुस्त्वमेव जगदीश्वरि।
त्वं गतिः शरणं त्वं च स्वर्गस्त्वं मोक्ष एव च॥
विहाय त्वां जगन्मातर्नान्यां जानामि देवताम्।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमोनमः॥
एभिः श्लोकैः स्तुतिं कुर्यात् कुमारीणां वरानने।
दद्यादाचमनीयं हि भोजनान्ते गतत्वरः॥
ततः प्रदद्यात् ताम्बूलं मृगचन्द्राधिवासितम्।
सह वाद्यादिभिस्तावदनुव्रज्य विसर्जयेत्॥

कुमारीभोजनचेष्टाभ्यां शुभाशुभफलज्ञानम्।

शुभाशुभफलं वच्मि सांप्रतं तव पार्वति[2]॥
तत्राप्यादौ शुभं वक्ष्ये विपरीतं ततोऽस्य च।
तदुच्छिष्टं ततो दद्याज्जम्बुकेभ्योऽथ भूतले॥
निखनेदप्सु वा देवि समालोड्य विसर्जयेत्।
आदौ भक्ते करे दत्ते सुभिक्षं विषये भवेत्॥
पायसे यजमानस्य पशुवृद्धिः प्रजायते।
घृते स्यादायुराधिक्यं पूप ऐश्वर्यमृद्ध्यते॥
तथा मोदकशष्कुल्योः सन्ततिर्भूयसी भवेत्।
मत्स्यजातिष्वर्थलाभः कृशरे यानसम्पदः॥
मांसे तु पुत्रलाभः स्यात् तेमने कामिनी भवेत्।
फलं मांसविशेषस्य भिन्नं भिन्नं ब्रुवे हि तत्॥
अर्थलाभस्तु वाराहे खाड्गे तु विजयो रणे।
माहिषेण तु मांसेन राज्यप्राप्तिर्भवेद् ध्रुवम्[3]॥

१—द्र० सैव पटलः १३, श्लोकसंख्या १३३४—४५।
२—द्र० सैव पटलः १३, श्लोकसंख्या १३४५-५०।
३—द्र० सैव पटलः १३, १३५०--५६

आरोग्यं हारिणेनाशु कार्ष्णसारेण वाग्मिता ।
शाशे मेधाविता गच्छेदाजेऽप्यजरतामपि ॥
आवये पलले देवि सर्वकल्याणमाप्नुयात् ।
कामठे मेदिनीलाभो बह्वन्नत्वं च राङ्कवे ॥
वार्ध्रीनसे शत्रुनाशो हांसे मनुजवश्यता ।
कीर्तिस्तु महती दध्नि दुग्धे सम्पदनुत्तमा ॥
पिष्टके तनयावाप्तिः शाके च रिपुसंक्षयः ।
हालायां पुण्यवृद्धिः स्यात् चोष्ये संसत्सु वाग्मिता ॥
धनागमः फाणिते तु कूर्चिकायां बलोन्नतिः ।
तुम्बीवृन्ताककूष्माण्डकारवेल्लपटोलकैः ॥
घोषशूरणदीर्घाङ्घ्रिमूलकैस्तेमने कृते ।
विद्यालाभो भवेद्देवि तक्रे वाक्पटुतापि च ॥
गोधूमचूर्णघटितवस्तुनि प्रतिभावने ।
देव्यां दृष्टौ भवेन्मोक्षो मण्डपेऽप्युन्नतिर्भवेत् ॥
चामरछत्रयोस्तालवृन्तपर्यङ्कयोरपि ।
घण्टादर्पणयोश्चापि दृग्दाने भूपतिर्महान् ॥
आकल्पालङ्करणयोः स्पर्शचालनदृष्टिषु ॥
नानाविधानि सौख्यानि भवन्ति महितुः प्रिये ॥
एवं विधानि भूयांसि चेष्टितान्यशनानि च ।
शुभादेशीनि जायन्ते विपरीतान्यतः शृणु ॥
मुख्यभूता कुमारी चेद्धसति द्वित्रिवारकम् ।
दुर्भिक्षं जायतेऽवश्यं प्रजाः स्यु पीडिता अपि ॥
राजा विनाशमायाति कुमार्या रोदने कृते ।
उच्चारे तु महामारी पुरीषे पुरदाहनम् ॥
अभोजने शत्रुभयमापदो बहुभोजने ।
अभाषणे त्वामयाः स्युर्विपदो बहुभाषणे ॥
उपसर्गा बहुविधाश्चेष्टया करपादयोः ।
अतिलज्जा विनाशाय तथा निर्लज्जता शुचे ॥
नानोत्पातास्तु मौने स्युः स्वापे राज्ञो विनाशनम् ।
सर्वनाशस्तु भीतायां क्रुद्धायां मृत्युरेव च[1] ॥

१—रु० यं०, पटलः १३, श्लोकसंख्या १३५७—७२ ।

आवेशे तत्क्षणाद् राजा म्रियते नात्र संशयः ।
शङ्कितायां शत्रुशङ्का श्रान्तायामीतितो भयम् ॥
चिन्तितायां तु विज्ञेय तद्राष्ट्रस्यैव पातनम् ।
मोहे चित्तविनाशः स्याज्जाड्ये पूजा तु निष्फला ॥
चाञ्चल्ये चञ्चला लक्ष्मीः पूजकस्यैव जायते ।
विषादवत्यथ यदि कुमारी तत्र जायते ॥
सराजं सप्रजं राष्ट्रं तदा सीदति पार्वति ।
रोगेण म्रियते राजा यदि रुग्णा प्रजायते ॥
दुर्भिक्षमरकातङ्कामत्यश्रू णि विमुञ्चति ।
सर्वनाशो भवेत्तर्हि धुनोति यदि मस्तकम् ॥
त्रस्तायां रिपुतस्त्रासस्तस्य राज्ञः प्रदिश्यते ।
कम्पे सति स्याद् विमुखी कालिका परमेश्वरी ॥
नीचैः शिरश्चेत् कुरुते असन्तुष्टा तदेश्वरी ।
हीनायुः स्यात्तदा पृथ्वीपतिश्चेद् गद्गदस्वना ॥
पूजकस्य भवेद् दैन्यं व्याकुला यदि जायते ।
मोहेन व्याकुलायां तु सर्वं नगरमाकुलम् ॥
व्रीडितायां भवेद् रोगः स्वेदे दारधनक्षयः ।
अधोवायुं त्यजति चेत् कुमारी दैवयोगतः ॥
पीडितं परचक्रेण तदा भवति पत्तनम् ।
गीतं गायति चेत्तत्र कुमारी रहिता क्रिया ॥
सप्रजाराष्ट्रतनयदारस्य नृपतेर्मृतिः ।
सहागताभिः कदाचिन्मुख्या विवदते यदि ॥
तदा समायात्यकस्मात् परचक्र सुदारुणम् ।
यया कयाचित् सार्द्धं वा येन केनचिदेव वा ॥
कुमारी भाषते वीतभयमन्दाक्षसाध्वसा ।
प्रजायन्ते तदा तस्य विषयेषु षडीतयः ॥
व्यत्यासं यदि भक्ष्यस्य कुर्वते करचालनैः ।
व्यस्तं समस्तं भवति मनसो वाञ्छितं प्रिये[1] ॥

१—रु० तंत्र, पटलः १३, श्लोक संख्या १३[illegible] ।

नैवेद्यनीकृतं यत्तद् द्रव्यं देव्यै तु सप्तपि ।
तच्चेत् कराभ्यां स्पृशति कान्दिशीको भवेन्नृपः ॥
निर्वापयति चेद् दीपं कुमारी मुखमारुतैः ।
बुद्धिभ्रंशो भवेत्तर्हि ज्ञानदीपश्च नश्यति ॥
दैवक्षोभाद्धि नृत्यन्ति कुमार्यश्चेत् सुराकुलाः ।
सराष्ट्रकः सविषयः श्मशानमिव जायते ॥
वस्त्रांस्तुत्सृज्य नग्नाः स्युर्यदि तत्र कुमारिकाः ।
म्रुक्षीमभ्रियते तर्हि राजा समरमूर्द्धनि ॥
यदि फूत्कृत्य कूर्दन्ते करौ धृत्वा भ्रमन्ति च ।
भूतावेशः क्षितीशस्य जायते नात्र संशयः ॥
उच्चरिष्यामि हर्म्ये वा वदन्तीत्थं कुमारिकाः ।
भोजनावसरे तर्हि महामरीभयं भवेत् ॥
वामे वा दक्षिणे वापि चलत्तारकया दृशा ।
दत्तभ्रमया घूर्णयते शिरः स्वस्य कुमारिका ॥
कुरुते वाट्टहासं सा येन त्रस्यन्ति मानवाः ।
भूतावेशो भवेत्तर्हि प्रेता नृत्यन्ति वा पुरे ॥
दन्तैर्दन्तान् पीडयित्वा कुर्यात् कटकटारवम् ।
प्रयाति सदनं मृत्योः सदारसुतबान्धवः ॥
कृशाङ्गुलिमिषे कृत्वा संदश्योष्ठं रदेन च ।
सन्तर्जयति शीर्षं च कम्पयन्ती कुमारिका ॥
तदेव फलमुद्दिष्टं यः स्यात् कटकटारवे ।
आत्यन्तिकं भजेन्मौनं करेणान्नं स्पृशेन्न च ॥
शिरोऽत्यर्द्धं च नमयेदङ्गुष्ठेन लिखेद् भुवम् ।
विदध्यात् भूतले रेखां करजैर्निष्प्रयोजनम् ॥
संहताभ्यां कराभ्यां च कण्डूयेदथवा शिरः ।
तृणान्यकारणं छिन्द्यादङ्गुलीस्फोटमाचरेत् ॥
पाणिभ्यां मुद्रयेन्नेत्रे द्वौ कर्णौ पिदधाति वा ।
कुर्वीत वा बाहुरिकां पार्ष्णिघृष्टिं करोति वा[1] ॥

१—ब्र० सं०, पटलः १६, श्लोकसंख्या १४४८-१४७७ ।

महान्तं ग्रासमादत्ते मुखं व्यादाय तिष्ठति ।
अन्नोपरि क्षुतं धत्ते जृम्भणं वा मुहुर्मुहुः ॥
गृहीत्वा पाणिना वान्नं चतुर्दिक्षु क्षिपत्यपि ।
उत्थाय वा प्रचलति त्यक्त्वान्नं पूजनं तथा ॥

आयाति वमनं वास्याः स्यातां रोमाञ्चवेपथू ।
निर्गच्छतोऽथवा गात्रात् पूयास्रे हेतुमन्तरा ॥
अकस्मादेव कुरुते काकुं चेत् कारणं विना ।
अश्लीलं बल्गति तथा स्ववर्ग्यार्थे प्ररोदिति ॥

अमुक्तालङ्कृतीर्मुञ्चेद् गृहं यास्यामि वा वदेत् ।
यस्य कस्यापि कुर्याद् भर्त्सनं तत्स्थले स्थिता ॥
उपालभेत वा काञ्चित् सहैवास्या उपेयुषीम् ।
भिनत्ति वाऽनिदानं सा स्वहस्तवलयानि वा ॥

कृते मृतस्य कस्यापि बन्धोः शोचति तत्रगा ।
यत्किञ्चिद् वा प्रलपति निर्निमित्तं कुमारिका ॥
सर्वमेतदमङ्गल्यं विज्ञेयं त्रिदशार्चिते ।
दुर्भिक्षं धननाशश्च रोगो मारीभयं तथा ॥
पदे पदेऽत्र विपदः शोको व्याधी रिपून्नतिः ।
परचक्रागमोऽकस्मादग्निदाहः पुरे गृहे ॥

मृत्युस्त्रासश्च दारिद्र्यं विच्छेदो बन्धुभिः सह ।
भूतप्रेतपिशाचाभिनिवेशोऽपि गृहे गृहे ॥
अष्टभिश्च महारोगैः प्रजानां निधनं भवेत् ।
इतस्ततः प्रधावन्ति लोकाः भयनिपीडिताः ॥

किं बहूक्तेन देवेशि कल्प आकालिको भवेत् ।
इतरेषामणीयस्तु भयं राज्ञां महद् भवेत् ॥
कुमारीचेष्टितद्वारा ज्ञायते हि शुभाशुभम् ।
वार्षिकं च फलं राज्ञो जयो वाथ पराजयः ॥
मृत्युर्दुःखं धनं सौख्यं शत्रुभीतिर्बलोन्नतिः ।
राज्यवृद्धिः प्रजापीडा व्यङ्ग्यतानीकसंक्षयः[1] ॥

१—द्र० सैव, पटलः १३, श्लोकसंख्या १४०१—१४ ।

कुमारी पूजनात् सर्वं जायते भोजनादपि ।
परीक्ष्यं यत्नतस्तस्माद् राज्ञा स्वस्य शुभाशुभम् ॥
अर्चातोऽपि विशेषेण भोजनेन सुरेश्वरि ।
जाते शुभे समीचीनं वृत्ते तदितरन्न हि ॥
काम्यार्चा बहुसम्भारैर्दोषं तज्जं निवारयेत् ।
निवृत्त्य स्वगृहं याता यदि रुग्णा कुमारिका ॥
तस्मिन्नेवाहनि भवेत् तथापि न शुभं फलम् ।
इत्यादिफलबाहुल्यं शुभस्याप्यशुभस्य च ॥
मया विविच्य कथितं प्रियस्व हृदि यत्नतः ।
ततो निशीथसमये विधिवत् पूजनं पुनः ॥
पीठमूर्त्योः प्रकुर्वीत धूपदीपानुलेपनैः ।
नैवेद्यैरुपहारैश्च गीतवाद्यादिभिस्तथा[1] ॥

पुरश्चर्यार्णवे समागताः महाकालसंहिताश्लोकाः—

(क) निशामयाधराम्नायगोचरान् देवतामनून् ।
यत्राद्यभूता विख्याता भीमादेवी भयानका[2] ॥
कुलबाला च दुर्गा च सर्वाम्नायप्रपूजिता ।
तयोः पूजा तु सर्वत्र नित्यत्वेनाभिधीयते ॥

कालीस्वरूपप्रकारप्रदर्शनप्रसङ्गे प्रथमतरङ्गे—

(ख) काली नवविधा प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
आद्या दक्षिणकाली च भद्रकाली तथा परा ॥
अन्या श्मशानकाली च कालकाली चतुर्थिका ।
पञ्चमी गुह्यकाली च पूर्वं या कथिता मया ॥

१—द्र० सं०, पटलः १३, श्लोक संख्या १४१५—२० ।

कुमारीपूजनप्रसङ्गः पुरश्चर्यार्णवस्य तृतीयभागे विंशतितमतरङ्गेषु १०८। पृष्ठतः ११०० पृष्ठं यावद् वर्तते । तत्रापि एत एव महाकालसंहिताश्लोकाः संगृहीताः सन्ति प्रमाणतयेति न द्विरुल्लेख इह परिशिष्टे कृत इत्यवधेयम् ।

एवं शिवाबलिप्रकरणम् पुरश्चर्यार्णवस्य तृतीये भागे पत्रत्रये ११०२ तः ११०४ यावत् पृष्ठाङ्केषु दृश्यते । तत्रापि त एव महाकालसंहिताश्लोकाः संगृहीताः प्रमाणतया ये खलु तारामक्तिसुधार्णवे समुपलभ्यन्ते । तस्मादिह परिशिष्टे तेषामपि द्विरुद्धृतिर्न विहिता ।

२—द्र० महाकालसंहिता, गुह्यकालीखण्डः, पटलः ६, श्लोकसंख्या २२६-३० ।

षष्ठी कामकलाकाली सप्तमी धनकालिका।
अष्टमी सिद्धिकाली च नवमी चण्डकालिका[1] ॥

प्राणायामप्रसङ्गे तत्र तृतीयतरङ्गे—

(ग) मूलमन्त्रस्य जापेन मात्राषोडशकेन हि।
वामनासापुटेनैव पूरयित्वानिलं बलात् ॥
पुनस्तस्य चतुःषष्ट्यावृत्त्या वायुं विकुम्भ्य च।
पुनर्द्वात्रिंशदावृत्त्या मूलमन्त्रस्य पार्वति ॥
नासापुटेन दक्षेण रेचयेद् सकलानिलम्।
प्रकारेणेदृशेनैकः प्राणायामो हि जायते[2] ॥
आवश्यकं तत्त्रयं हि फलाधिक्यं समुच्चये।

भूतशुद्धिप्रकरणे तस्मिन्नेव तरङ्गे—

(घ) हृत्पुण्डरीकादात्मानं ज्वलद्दीपशिखाकृतिम् ॥
सुषुम्णा वर्त्मना ब्रह्मबीजमन्त्रेण मस्तके।
सहस्रदलमध्यस्थे संयोज्य परमात्मनि ॥
वामनासापुटेनाथ पूरयित्वा समीरणम्।
सबिन्दु वायुबीजं च धूम्रवर्णं विभाव्य च ॥
तदेव बीजं देवेशि पञ्चाशद्वारमीडयेत्।
तदुत्पन्नेन वातेन शुष्कं देहं विचिन्त्य च ॥
सहैव रेचयेद् वायुं ततो नासापुटेन च।
वामेन वायुमुत्तोल्य सहस्रदलमध्यगम् ॥
विभाव्य परमात्मानं चन्द्ररूपं वरानने।
सानुस्वारं वायुबीजं पञ्चाशद् वारमुच्चरन् ॥
तस्मात् चन्द्रात्सुधावृष्ट्या देहमाप्लाव्य सुन्दरि।
भूबीजेन सनादेन शुद्धं संयोज्य विग्रहम् ॥
लीनीकृतानि यानीह पञ्चभूतानि वै पुरा।
यथास्थानं स्थापयित्वा ब्रह्मबीजं पुनर्गृणन् ॥
अहंकारादिभिस्तत्त्वैः सहैव परमात्मनि।
जीवात्मानं समाकृष्य स्थापयित्वा हृदम्बुजे ॥

१—द्र० महाकालसंहिता कामकलाखण्डः, पटलः१, श्लोकसंख्या [illegible]।

२—द्र० ,, गुह्यकालीखण्डः, पटलः६, श्लोकसंख्या [illegible]।

देवीरूपमथात्मानं चिन्तयेत् क्षणमूर्जितः[1]।

अमृतीकरणप्रकरणे तस्मिन्नेव तरङ्गे—

(ङ) ततः प्रसूनं संगृह्य त्रिखण्डामुद्रया सुधीः।
करकच्छपिकां बद्ध्वा ध्यानं देव्याः समाचरेत् ॥
यस्य मन्त्रस्य यद् ध्यानं यादृशं परिकीर्तितम्।
तेनैव ध्यानयोगेन ध्यायीत जगदम्बिकाम् ॥
वहन्नासापुटद्वारा हृदयाम्बुजमध्यतः।
देवीं पुष्पे समानीय पुष्पं मन्त्रे प्रविन्यसेत्[2] ॥

उपचारपरिचयावसरे तस्मिन्नेव तरङ्गे—

पाद्यार्घाचमनीयं स्नानीयं चत्वार्यनुक्रमात्।
गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ॥
पुनराचमनीयं च दशैतान् संप्रचक्षते[1]।

निषिद्धविहितपुष्पाण्यधिकृत्य तत्रैव—

(च) तुलसीभिरपामार्गैर्धूस्तूरैः सिन्धुवारकैः।
अर्कपुष्पैर्वासकैश्च नैव देवीं प्रपूजयेत् ॥
शिरीषैः कर्णिकारैश्च चम्पकैः कोविदारकैः।
वकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरुण्टकैः ॥
लताभिर्न ह्यवृक्षस्य मृदुदूर्वाङ्कुरैरपि।
काञ्चनारैरशोकैश्च पुन्नागैः केतकीदलैः ॥
सेफालिकाभिर्यूथीभिर्जातीभिर्दमनैरपि।
शतवर्गैर्मल्लिकाभिरम्लानैर्बन्धुजीवकैः ॥
झिण्टीभिश्च जपापुष्पैः।करवीरैश्च किंशुकैः।
पारिजातैः पाटलैश्च पद्मनीलोत्पलैरपि ॥
माधवीभिर्मरुवकैरपराजितयापि च।
वसनैश्च कदम्बैश्च द्रोणपुष्पैश्च केसरैः।
अर्चयेत् कुसुमैरेतैर्देवीं साधकसत्तमः।
विल्वपत्रं यथा प्रीतिकरं देव्या वरानने ॥

१—प्र०म०सं०गु०च० पटलः ६, श्लोकसंख्या ४७३-७४,४७८-७६, ४८२-८७।
२—प्र० म० सं०, गु० च० पटलः १०, श्लोकसंख्या १७७—१७६।
तथा ज्ञा० च० पटलः ५, श्लोकसंख्या १०८—१०६।
१—प्र० म० स० गु० च० पटलः ६, १७४—७५।

न तथान्यत् किञ्चिदस्ति पुष्पेषु प्रीतिकारकम्।
अतो यत्नेन दातव्यं विल्वपत्रं त्रिपत्रयुक्[1] ॥

× × ×

(छ) एक जातीयकैः पुष्पैर्भिन्नजातीयकैरपि।
माला तथैकवर्णा स्यात् भिन्नवर्णापि वा भवेत् ॥
सा पुनस्त्रिविधा ज्ञेया परिणाहवशेन तु।
पतेद् हृदयपर्यन्तं या मालामोदशालिनी ॥
वैकक्षिका सा विज्ञेया सर्वावरतया स्थिता।
अधोऽवलम्बिनो नाभेः कौसुमी या स्रगुच्यते ॥
सा धोरणी परिज्ञेया मध्यमा पूर्वतोऽधिका।
आगुल्फस्त्रंसिनी या तु पादपद्मोपरि स्थिता ॥
वनमालेति सा प्रोक्ता सर्वाभ्यः स्रग्भ्य उत्तमा[2]।

दूतीयाग प्रकरणे निषिद्धशक्तिपरिगणनावसरे तत्र

(ज) ऋषिकन्यां न चाकर्षेन् मद्यपानां च कन्यकाम्।
द्विजातीनां स्त्रियं चापि व्रतस्थानां स्त्रियं तथा ॥
गुर्वङ्गनां गुरोः पत्नीं सगोत्रां शरणागताम्।
शिष्ययोषां न चाकर्षेद् पापिनां वनितां तथा ॥
नापुष्पितां गुर्विणीं वा बालापत्यां तथा पुनः[3]।

पुनः कीदृशो शक्तिः परिग्राह्येति तत्रैव—

स्नातां दिव्याम्वरधरां नानालङ्कारभूषिताम्।
युवतीं पीनवक्षोजां तथा चाकृतभोजनाम् ॥
हस्ते गृहीत्वा वामोरौ स्थापयेच्छक्तिमुत्तमाम्।
अशक्नुवानो वोढुं तां देवीं वामेऽथ वासने[4] ॥

पुनः द्विजस्यानधिकारोऽत्रेति यथा—

स्वयोषां परयोषां वा नैवाकृष्य द्विजो जपेत्।
लोभाद् यदि चरेदेवमधो याति द्विजस्तदा ॥

१—द्र० म० सं० गु० ख०, पटलः ६, २३५—२४२।
२—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः ६, श्लोकसंख्या ३६०-६४।
३—द्र० म० सं० कामकलाखण्डः, पटलः ५, श्लोकसंख्या १४५—४७।
४—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः १०, श्लोकसंख्या १७०७—८।

इहामुत्र फलं नास्ति हीनायुरपि जायते[१] ।

पुरश्चरणप्रकरणे तत्राभिहितम्—

(ञ) नियमास्तत्र भूयांसः प्रकर्तव्याः प्रयत्नतः ।
अवैधकरणात् सिद्धिहानिः स्यान्नात्र संशयः[२] ॥

बलिप्रसङ्गेऽभिहितम्—

गणेशवटुकक्षेत्रपालेभ्यो बलिमाहरेत् ।
योगिनीभ्यश्च पूर्वादिप्रादक्षिण्येन देशिकः ॥
गणाधिपतये पश्चाद् वटुकाय निवेदयेत्[३] ।

कालीमन्त्रपुरश्चरणप्रकरणे—

द्विजानां चैव सर्वेषां दिवाविधिरिहोच्यते ।
शूद्राणां च तथा प्रोक्तं रात्राविष्टं महाफलम्[४] ॥
× × ×
द्रव्येण सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम् ।
स्वकीयां परकीयां वा सामान्यवनितां तथा ॥
जपेयुस्ताः समाकृष्य क्षत्रविट्शूद्रजातयः[५] ।
× × ×
श्रूयते यत्फलाधिक्यं तन्त्रादौ मद्यदानतः ।
तद्धि शूद्रपरं ज्ञेयं न तु द्विजपरं प्रिये[६] ॥
× × × ×
कदाचिदनुकल्पोक्तां दद्याद् देव्यै द्विजः सुराम् ।
उपमद्यानि ते वच्मि तानि देव्यवधारय ॥
आर्द्रकस्य गुडस्यापि समभागे भवेत्सुरा ।
ताम्रपात्रे तथा क्षौद्रं पयो गव्यं तथात्र च ॥
नारिकेलोदकं कांस्ये रीतौ तालरसोऽपि च ।

१—ब्र० म० सं०, कामकलाखण्डः, पटलः ५, श्लोसंख्या १४१—४२
२—ब्र० म० सं० ,, पटलः ६, श्लोकसंख्या ६ ।
३—म० सं० गु० ख० पटलः १०, श्लोकसंख्या १६१८, १६२४ ।
४—ब्र० म० सं० का० ख० पटलः ३, श्लोकसंख्या ७३ ।
५—ब्र० म० सं०, का० ख० पटलः ५, श्लोकसंख्या १२३, १५४ ।
६—ब्र० म० सं० गु० ख० पटलः ६, श्लोकसंख्या ४२० ।

रसालश्च रसो रङ्गे शङ्खे वा पानसो रसः ॥
मधूकपुटके द्राक्षा तत्पुष्पं तद्दलेऽपि च
चिञ्चारसं पद्मपत्रेऽश्वत्थे कारकपानकम् ॥
उपमद्यानि चैतानि द्वादश स्युर्वरानने ।
द्विजो दित्सति चेन्मद्यं दद्यादेतानि नो सुराम् ॥
एतान्यपि न देयानि सात्त्विकैर्धर्मभीरुभिः ।
मद्यं वाप्युपमद्यं वा मद्यं नाम न गच्छति ॥
पातित्यं किन्तु नामीभिस्तैरेव पतितो भवेत्[१] ।
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे गव्यं तथा मधु ॥
राजन्यवैश्ययोर्दानं न विप्रस्य कदाचन ।
एवं प्रदानमात्रेण हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत्[२] ॥
वस्तुष्वन्येषु तिष्ठत्सु देवीप्रीतिकरेषु च ।
किमेतया वै सुरया कदन्नमलरूपया ॥
भूतप्रेतपिशाचार्थं पूयमिश्रं सुरामिषम् ।
तत् ब्राह्मणेन नो देयं देव्यै नात्तव्यमेव च ॥
न चैतया तुष्यति सा बहु वापि घृणायते ।
उद्विग्ना च भवेत् तस्माद् दद्यान्नैव द्विजः सुराम् ॥
हतो वेदो हतो धर्मः परलोको हतः स्वकः ।
कुलं हतं हता जातिर्हतं ब्राह्मण्यमेव च ॥
प्राज्ञंमन्येन मूर्खेण पिबता ज्ञानतः सुराम् ।
किं कृतं साधितं किं वा किञ्च वा समुपार्जितम् ॥
यदयं हतवान् स्वस्य सर्वं मद्योपसेवनात् ।
एवमेवाज्ञानमग्नो मामप्याशु हनिष्यति ॥
उद्विग्नैवं महामाया भवेत् तदवलोकनात् ।
कैवर्तपुक्कसम्लेच्छरजकान्त्यावसायिनाम् ॥
चर्मकारनटप्रोथमेदोवेणूपजीविनाम् ।
सिद्धदुर्गन्धिशुष्कान्नं द्रव्यं मह्यं निवेद्य हि ॥
सुधावत् पिबतां पुंसां कथं विट्सु नहि स्पृहा ।
अन्ये न सन्ति वस्त्वाद्या नैवेद्यकरणाय किम् ॥

१—ब्र० म० सं०, गु० ख०, पटलः ६, श्लोकसंख्या ४३५-४४२ ।
२—ब्र० म० सं०, का० ख०, पटलः ५, श्लोकसंख्या १२५—२६ ।

अस्पृश्यं यत् तदानीय मह्यं ददति कौलिकाः ।
ऋचो यजूंषि सामानि ह्यथर्वाङ्गिरसस्तथा ॥
वेदेभ्यः कोटिगुणिता महामन्त्रास्तथैव च ।
ये पावयन्ति देहस्थान् मद्यैराकण्ठपूरितैः ॥
मामपि प्लावयिष्यन्ति किमाश्चर्यं हि ते जनाः ।
सात्त्विकैरेव नैवेद्यैः कन्दैः पुष्पैः फलैर्दलैः ॥
अभावे भाव[तोय]भक्तिभ्यां सत्यं तुष्टा भवाम्यहम् ।
न मद्यमांसविस्तारैः प्रेतराक्षसभोजनैः ॥
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा मरीच्यत्र्यङ्गिरोमुखाः[1] ।
एतेषामन्वयोद्भूताः पुनरन्ये सहस्रशः ॥
कश्यपश्चैव दुर्वासा दत्तात्रेयश्च चन्द्रमाः ।
बृहस्पतिर्विश्रवाश्च शक्तिर्दक्षो मृकण्डुजः ॥
नारदः कपिलो व्यासः कालाग्निर्जमदग्निजः ।
दाक्षः कविरथर्वा च शाण्डिल्यो गौतमो मनुः ॥
नचिकेता भरद्वाजः श्वेताश्वतर एवच ।
और्वो दधीचिश्च्यवन ऋचीकश्च पराशरः ॥
शातातपो लोमशश्च जैगीषव्यश्च देवलः ।
पैठीनसिर्वीतहव्यः संवर्तोऽगस्तिरासुरिः ॥
उपमन्युर्मतङ्गश्च तथा बाजश्रवाः कठः ।
उद्दालकश्चारुणेय आश्वलायन एव च ॥
उत्तङ्कश्च यवक्रीतः कात्यायन ऋतश्रवाः ।
एते चान्ये च मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥
ईजानाः क्रतुभिः सर्वैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
गृणन्तो निगमं सर्वं कुर्वन्तो दुश्चरं तपः ॥
ध्यायन्तो निष्कलं ब्रह्म जपन्तो मामकं मनुम् ।
सर्वदा सात्त्विकैरेवोपचारैः पूजयन्ति माम् ॥
सदा मय्यर्पितहृदः सदा मद्भावभाविताः ।
सदा मच्छरणं प्राप्ताः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥
वाय्वाहारा निराहारा ऊर्ध्वरेतस एव च ।

१—ब्र० म० सं० गु० ख० पटलः ६, श्लोक संख्या ३८१—३९४ ।

तपोबलाद् भ्रंशयितुं शक्रमप्यलमीदृशाः ।
न निवेदितवन्तस्ते किमर्थं मदिरां मयि ॥
विज्ञायास्यां महादोषं निन्द्यतां पापहेतुताम् ।
गर्हाकरत्वं पातित्यकारित्वं पूतितामपि ॥
परलोकविनाशित्वं तथा नरकहेतुताम् ।
विप्रस्वजातिहन्तृत्वं म्लेच्छतुल्यत्वकारिताम् ॥
अतस्तत्यजुरेवैनां संगृह्य श्रुतिपद्धतिम् ।
यद्यस्यां दोषराहित्यं पुण्यकारित्वमेव च ।
स्यात् तदा ते कथं मह्यं दद्युर्नैव सुरां द्विजाः[1] ॥
धर्मव्यवस्थां ज्ञात्वेत्थमन्येऽपि द्विजजातयः ।
निवेदयिष्यन्ति नैव मह्यं मद्यं कथञ्चन ॥
बोधिता अपि शास्त्रार्थैरनादृत्य वचो मम ।
मोहाद् व्यवहरिष्यन्ति लोभोपहतचेतसः ॥
ये केचित् तान् धर्मराजः शासिष्यति न संशयः ।
तीव्रैर्दण्डैर्महाघोरनरकादिनिपातनैः ।
इति सत्यं पुरा मह्यं प्रोवाच जगदम्बिका ॥
तत्राहमवदं देवि देवीवक्त्रोत्थिताक्षरैः ।
अतः परं श्रुत्युदितं धर्ममद्वाक्यमेव च ॥
देव्याज्ञां च समुल्लङ्घ्य ये दास्यन्ति सुरां द्विजाः ।
तेषां शास्त्री महामाया श्रोतव्यं शृण्वतः परम् ॥
द्विजेतरः संप्रदद्याद् देव्यै मद्यं सदा रहः ।
स्वयं महाप्रसादं च भुञ्जीत प्रत्यहं प्रिये ॥
मांसानि दग्धमीनाश्च सर्वदैव निवेदयेत् ।
शूद्रादीनामथैतेषां सद्यस्तुष्यति कालिका ॥
द्विजानां यावती निन्दा कथिता मद्यदानतः ।
शूद्राणां तावती ज्ञेया प्रशस्तिर्वरवर्णिनि ॥
अतः शूद्रः प्रयत्नेन देव्यै मद्यं निवेदयेत् ।
दीर्घायुष्ट्वमरोगित्वं वाग्मित्वं राजमान्यताम् ॥
पुत्रक्षेत्रकलत्रार्थपरिपूर्णत्वमेव च ।
अन्ते स्वर्गादिगमनं शूद्रः प्राप्नोति मद्यतः ॥

१—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः ६, श्लोकसंख्या ३९५-४०८ ।

श्रूयते यत्फलाधिक्यं तन्त्रादौ मद्यदानतः ।
तद्धि शूद्रपरं ज्ञेयं नैव द्विजपरं प्रिये ॥
स्वयं यदन्नो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ।
पितरश्च तदन्नाः स्युरित्येवं वैदिकी स्थितिः ॥
प्राणिजातिषु सर्व्वासु मानुष्यमतिदुर्लभम् ।
मानुष्येष्वपि देहेषु शूद्रः श्रेष्ठोऽन्त्यजातितः ॥
शूद्राच्छतगुणो वैश्यो वैश्यात् साहस्रिको नृपः ।
नृपात् कोटिगुणो विप्रो ज्ञेयः स्वाध्यायतत्परः ॥
अत एव हि सर्गादौ जगत्सृष्ट्वा चराचरम् ।
यद्यत् सारतरं वस्तु तद् ब्रह्मादाद् द्विजातये ॥
वेदाः षडङ्गशास्त्राणि क्षमा सत्यं तपो धृतिः ।
शौचं दानं दया धर्मो विवेकः कलभाषिता ॥
त्यागः शान्तिश्च मर्यादा स्वाध्यायोऽध्यात्मचिन्तनम् ।
यज्ञाः सर्वहविर्गव्यं पयो मेध्यान्नमेव च ॥
एतेषां विपरीतानि ददौ शूद्रेभ्य एव च ।
त्रयाणामपि वर्णानां दासभावमदात् ततः ॥
सर्वशिल्पोपजीवित्वं मन्त्राराहित्यमेव च ।
अनाशीस्त्वमशौचत्वमपाङ्क्तेयत्वमेव च ॥
अस्पृश्यत्वमपाठित्वमसम्भाष्यत्वमेव च ।
मद्यमांसोपयोगित्वं तद् विक्रेतृत्वमेव च ॥
देवेभ्यस्तत्प्रदातृत्वं तदुत्पादित्वमेव च ।
म्लेच्छादिदेशगमनं तत्संपर्कित्वमेव च ॥
महासाहसकारित्वं वेदाश्रोतृत्वमेव च ।
एतस्मात् कारणाद्देवि वेदमर्यादयानया ॥
ब्रवीमि मदिरादानेष्वेषामेवाधिकारिता ।
दोषोऽणुरपि नैतेषां देवेभ्यो मद्यदानतः ॥
फलातिरेकता वापि श्रूयते निगमादिषु ।
अतः प्रयत्नतः शूद्रो दद्याद्देव्यै परिश्रुतम् ॥
तामेव वर्जयेद् विप्रः सदा प्राणात्ययेऽपि हि[1] ।

१—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः ६, ४०८—४३४

निशम्यापोदृशान् दोषानथ चेद् ज्ञातुमिच्छति ॥
स च सा च विजानाति धर्मं वा पापमेव वा[१] ।
× × ×
गुह्यकाल्यास्तु मन्त्राणामष्टादशभिदाः प्रिये ।
सर्वागमेषु गोप्यास्ते न प्रकाश्याः कदाचन ॥
मन्त्राणां भेदतो ध्यानभेदाः स्युर्विविधास्तथा ।
यन्त्रभेदा अपि तथा वाहनानां भिदास्तथा ॥
यो मन्त्रो येन चाभ्यस्तस्तन्नाम्ना सः प्रकीर्तितः ।
ब्रह्मणा च वशिष्ठेन रामेण च तथा प्रिये ॥
हिरण्याक्षानुजेनापि कुवेरेण यमेन च ।
भरतेन दशास्येन बलिना वासवेन च ॥
विष्णुनान्यैश्च देवैश्च दैत्येन्द्रैर्विविधैरपि ।
उपासिता सिद्धिहेतोर्लब्धा सिद्धिश्च भूयसी ॥
शतवक्त्राशीतिवक्त्रा षष्टिवक्त्रा तथैव च ।
षट्त्रिंशदानना विंशदानना परिकीर्तिता ॥
तथा विंशतिवक्त्रा च दशवक्त्रा च कालिका ।
पञ्चवक्त्रा त्रिवक्त्रा च द्विवक्त्रा चैकवक्त्रिका ॥
या गुह्यकाली तन्मध्ये भरतोपासिता प्रिये ।
दशवक्त्रा षोडशार्णा चतुष्पञ्चाशदोर्युता ॥
सर्वासां गुह्यकालीनां सा वै मुख्यतमा स्मृता ।
तामेवादौ व्याहरामि व्याहरिष्ये ततः पराः ॥
षोडशाक्षरको मन्त्रः कीलितश्चाप्यकीलितः ।
तत्रादौ कीलितं वच्मि ततो वक्ष्याम्यकीलितम् ॥
कीलकाकीलकध्यानमेकमेव हि पार्वति ।
आदौ वेदादिमुद्धृत्य ततः पस्य द्वितीयकम् ।
एकारयुक्तं तदधो रेफं बिन्दुं च योजयेत् ॥
सिद्धिशब्दं ततः प्रोच्य करालि च विनिर्दिशेत् ।
लज्जां क्रोधमनुस्मृत्य कफोणि वाममुद्धरेत् ॥
वामदृग्बिन्द्वधोवह्नियुक्तं कुर्यात् ततश्च तम् ।

१—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः ६, श्लोक संख्या ४३५ ।

वधूबीजं पुनर्मन्त्रद्वितीयं बीजमुद्धरेत् ॥
हृन्मन्त्रो वह्निजाया च मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ।
अथवा कामिनीबीजात् पूर्वं क्रोधमनुस्मरेत् ॥
इयं हि भरतोपास्या कीलितापि च शापतः[१] ।
× × ×

भरतोपास्या षोडशाक्षरी द्विविधा तत्राद्या कीलिता द्वितीया त्वकीलितेत्यर्थः । सप्तदशाक्षरीमाह—

रामोपास्यामतो वक्ष्येऽक्षरसप्तदशान्विताम् ।
सापि हारीतमुनिना कीलिता तपसो बलात् ॥
आदौ तस्यैव मन्त्रस्य चतुरोऽर्णान् समुद्धरेत् ।
द्वितीयबीजोपरि च हसखं विनियोजयेत् ॥
एवं तु पञ्चमं बीजं षष्ठं खेन च वर्जितम् ।
सप्तमं हसहीनं च करालि तदनन्तरम् ॥
त्रयोदशैकादशके स्थाने सप्तममक्षरम् ।
पञ्चमं द्वादशस्थाने द्वितीयं च चतुर्दशे ॥
आद्यं पञ्चदशे कुर्याद् वह्निजायान्तगो मनुः ।
हारीतोपासिता ह्येषा च्यवनोपासितां शृणु ॥
षष्ठपञ्चमयोरस्य व्यत्ययः समुदीरितः ।
एतावतैव भवति च्यावनी सुमहाफला ।

अत्रापि रामोपासिता सप्तदशाक्षरी द्विविधा हारीतोपासिता च्यवनोपासिता च । तयोर्मध्ये हारीतोपासितैव कीलिता च्यवनोपासिता तु न कीलितेति बोध्यम् ।

ऋष्यादिकमाह—

षोडशाक्षरयोर्मन्त्रभेदयोरधुना ब्रुवे ।
ऋष्यादिकं ततः सप्तदश्याश्च कथयामि ते ॥
अथर्वा ऋषिरुद्दिष्टो जगती छन्द उच्यते ।
देवता गुह्यकाली च द्वितीयार्णं तु कीलकम् ॥
शक्तिस्तु दशमं बीजं द्वितीये नवमं भवेत् ।
पुरुषार्थचतुष्कस्य सिद्धये कामनास्थितिः ॥

१—द्र० म० सं० गु० ख० पटलः १। श्लोक संख्या १—१६ ।

सुप्तवक्ष्यास्तु मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिर्मतः।
छन्दश्च सुप्रतिष्ठाख्यं देवता गुह्यकालिका ॥
पञ्चमार्णं कीलकं स्यात् सप्तमं शक्तिरुच्यते।
तदेव विपरीतं हि च्यावन्यां समुदीरितम् ॥
प्रयोगः सर्वसिद्ध्यर्थं जपे प्रोच्चारितो भवेत्।
अन्येषां मन्त्रभेदानां यदुद्धारं वदामि ते ॥
तदा ऋष्यादिकं तेषां कथयिष्यामि पार्वति[१]।

अथ षडङ्गन्यासस्तत्रैव—

द्वे पञ्च त्रीणि च द्वे च द्वे पुनर्द्वे पुनस्तथा।
वर्णाक्षराणां भारत्यास्तत्तत्स्थाने प्रविन्यसेत् ॥
तावन्तोऽर्णाः सप्रणवास्तत्र तत्र स्थले न्यसेत्।
यादृशी च्यावनीमन्त्रवर्णावल्यनु तिष्ठति ॥
तारयोर्मध्यवर्तीनि देवीवर्णानि तानि हि।
न्यसेत् स्थानेषु तेष्वेव हारीतोपासिते मनौ[२] ॥

ध्यानमाह—

भरतोपासिता या च रामोपास्या च या स्मृता।
ध्यानं तयोरेकमेव कथ्यमानं मया शृणु ॥
ध्यायेद् देवीप्रभावोत्थप्रोच्छलद्रक्तवारिधिम्।
उत्तुङ्गोत्तुङ्गकल्लोलप्रपूरितदिगन्तरम् ॥
तत्र द्वीपं रक्तमांसपूरितं रक्तवालुकम्।
नवकोटिकचामुण्डाकोटिभैरववेष्टितम् ॥
तन्मध्ये मण्डलं ध्यायेद् योजनायुतविस्तृतम्।
भैरवीकोटिघटितं प्राकारं तत्र चिन्तयेत् ॥
एकं श्मशानं तन्मध्ये शतयोजनविस्तृतम्।
चिन्तयेत् प्रोच्छलद् वह्निज्वालाव्याप्तर्क्षमण्डलम्।
योगिनीकोटिविहितकरतालिकचेष्टितम् ॥
नारान्त्रनद्धमुण्डस्रक्कृततोरणमालिकम्।
तदन्तः स्थायिनीं कालीं ध्यायेन्निश्चलमानसः[३] ॥

१—द्र० म० सं० गु० ख०पटलः ५ श्लोक संख्या १७—२७।
२—,, ,, ,, ५, ,, १६६—१६६।
३—द्र० म० गु० ख० पटलः १, श्लोकसंख्या २८—३४।

रत्नसिंहासनं दिव्यं हीरामुक्तादिनिर्मितम् ।
धारयन्तं चतुष्कोणे युगं वेदं विचिन्तयेत् ॥

सत्ययुगं च ऋग्वेदं शुक्लवर्णं च पूर्वगम् ।
त्रेतायुगं यजुर्वेदं पीतवर्णं च दक्षगम् ॥

द्वापरं सामवेदं च रक्तं पश्चिमदिग्गतम् ।
अथर्ववेदं च कलिं श्याममुत्तरदिग्गतम् ॥

उपवेदस्य शुभ्रस्य मूर्ध्नि सिंहासनं स्थितम् ।
तस्य सिंहासनस्योर्ध्वमन्यत् सिंहासनं महत् ॥

स्वस्वास्त्रवाहनयुतैर्दिगष्टपतिभिर्वृतम् ।
देव्याः सिंहासनधरांस्तांश्च ध्यायेदतन्द्रितः ॥

स्वां स्वां दिशमवष्टभ्य स्थितान् परमशोभितान् ।
इन्द्रं पीतं सवज्रं च स्थितमैरावतोपरि ॥

पावकं रक्तवर्णं च छागस्थं शक्तिपाणिकम् ।
यमं कृष्णं कासरस्थं दण्डहस्तं भयानकम् ॥

निर्ऋतिं धूमवर्णं च खड्गहस्तं तुरङ्गमम् ।
वरुणं पाशहस्तं च शुभ्रं मकरवाहनम् ॥

श्यामं वायुं ध्वजधरं हरिणोपरि संस्थितम् ।
गदाधरं कुवेरञ्च कुङ्कुमाभं नरे स्थितम् ॥

ईशानं शुभ्रवर्णं च शूलहस्तं वृषे स्थितम् ।
सिंहासनं तृतीयं च पञ्चप्रेतैर्वृतं प्रिये ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते पञ्च महाप्रेताः स्थिताः सिंहासनादधः ॥

पीतः श्यामस्तथा रक्तो धूम्रः श्वेतः क्रमादिमे ।
दण्डं चक्रं च शक्तिं च शूलं खट्वांगमेव च ॥

धारयन्तो मुखे न्यस्ततर्जनीकास्त्रिलोचनाः ।
केशरिद्विपकोलाश्च फेत्काररवभीषणाः ॥

ऊर्ध्वं स्थूलतरं घोरं कृष्णवर्णं चतुर्भुजम् ।
पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं च कीकशाभरणान्वितम् ॥

खट्वाङ्गं कर्त्तृकां दक्षे कपालं डमरुं तथा ।
धारयन्तं मुण्डमालायुतं दंष्ट्राप्रभीषणम्[1] ॥

१—म० म० सं० पु० ख० पटलः १, श्लोकसं० ३३—५० ।

तदूर्ध्वं षोडशदलं पद्मं यज्ञोपकल्पितम् ।
ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमो वाजपेयश्च षोडशी ॥
चयनं पुण्डरीकश्च राजसूयोऽश्वमेधकः ।
बार्हस्पत्यं विश्वजिच्च गोमेधो नरमेधकः ॥
सौत्रामण्यर्धसावित्री सूर्यकान्तोऽचलम्भिदः ।
एतादृशैः षोडशभिर्दलैः पद्मं प्रकल्पितम् ॥
तस्योपरि ततो ध्यायेच्छिवासनमनुत्तमम् ।
बिन्दुनादयुतं नील शशाङ्ककृतलाञ्छनम् ॥
महार्घरत्नाभरणं त्रिनेत्रं भीमदर्शनम् ।
वज्रदंष्ट्रानखस्पर्शं पद्मपृष्ठे शिवोत्तमम् ॥
पिङ्गोग्रैकजटाभारं द्विभुजं नागहारिणम् ।
वसानं चर्मवैयाघ्रं शूलखट्वाङ्गधारिणम् ॥
अष्टपत्राम्बुजं तस्योपरिष्टान्नवमासनम् ।
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुर्दिशि ॥
यशो विवेकः कामश्च मोक्षश्चेति विदिग्दिशि ।
एवमष्टदलाम्भोजोपविष्टां गुह्यकालिकाम् ॥
ध्यायेन्नीलोत्पलश्यामामिन्द्रनीलसमद्युतिम् ।
घनाघनतनुद्योतां स्निग्धदूर्वादलद्युतिम् ॥
ज्ञानरश्मिच्छटाटोपज्योतिर्मण्डलमध्यगाम् ।
दशवक्त्रां गुह्यकालीं सप्तविंशतिलोचनाम् ॥
द्विद्विनेत्रयुतां वक्त्रे वामदक्षिणसंमुखे ।
सप्तस्वन्येषु वक्त्रेषु त्रित्रिलोचनसंयुताम् ॥
उर्ध्ववक्त्रं द्वीपकाख्यं चण्डयोगेश्वरीति हि ।
तस्याधः केशरिमुखं श्वेतवर्णं विभीषणम् ॥
तस्याधः फेरुवक्त्रं च कृष्णं त्रैलोक्यडामरम् ।
वानरास्यं ततो वामे रक्तवर्णं महोज्ज्वलम् ॥
नरास्यं तदधो ज्ञेयं किर्मीराभं महोत्कटम् ।
ऋक्षवक्त्रं भवेद्दक्षे धूम्रवर्णं भयानकम् ॥
गारुडास्यं ततो वामे पिङ्गवर्णं सुचञ्चुकम् ।
दक्षिणे मकरास्यं च हरिताभं प्रकीर्तितम्[1] ॥

१—ज० म० सं० गु० का० पटलः १, श्लोक सं० ५१—६५ ।

गजास्यं वामतः प्रोक्तं गौरवक्त्रं स्त्रवन्मदम् ।
हयास्यं दक्षिणे काल्याः श्यामवर्णं विचिन्तयेत् ॥
महादंष्ट्राकरालानि दारुणस्वनवन्ति च ।
अट्टाट्टहासयुक्तानि स्त्रवद्रक्तानि सर्वदा ॥
लेलिहानविनिष्क्रान्तललज्जिह्वान्वितानि च ।
अहर्निशं कम्पमानान्यास्यानि दधतीं शिवाम् ॥
भीमनिर्ह्रादिनीं भीमां भ्रूभङ्गकुटिलाननाम् ।
पिङ्गलोर्ध्वजटाजूटां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ॥
नानारत्नविनिर्माणसुमुण्डस्वर्णभूषणाम् ।
स्त्रवद्रक्तनृमुण्डासृक्कृतनक्षत्रमालिकाम् ॥
आकण्ठगुल्फलम्बिन्यालङ्कृतां मुण्डमालया ।
श्वेतास्थिगुलिकाहारग्रैवेयकमहोज्ज्वलाम् ॥
शवदीर्घाङ्गुलीपङ्क्तिमण्डितोरःस्थलस्थिराम् ।
कठोरपिङ्गलोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताम् ॥
महामारकतग्राववेदिश्रोणिपरिष्कृताम् ।
विशालजघनाभोगामतिक्षीणकटिस्थलाम् ॥
अन्त्रनद्धार्भकशिरोवलत्किङ्किणिमण्डिताम् ।
चतुःपञ्चाशता दोष्णां भूषितां जगदम्बिकाम् ॥
रत्नमालां कपालं च चर्मपाशं तथैव च ।
शक्तिं खट्वाङ्गमुण्डे च भुशुण्डीं धनुरेव च ॥
चक्रं घण्टां ततो बालप्रेतशैलमतः परम् ।
नरकङ्कालनकुलौ सर्पमुन्मादवंशिकाम् ॥
मुद्गरं वह्निकुण्डं च डमरुं डिण्डिमं तथा ।
भिन्दिपालं च मुशलं पाशं पट्टिशमेव च ॥
शतघ्नीं च शिवापोतं वामहस्तेषु बिभ्रतीम् ।
अथ दक्षभुजे रत्नमालां कर्त्रीमसिं तथा ॥
तर्जनीमङ्कुशं दण्डं रत्नकुम्भं त्रिशूलकम् ।
पञ्च पाशुपतान् बाणान् शोषकोन्मादमूर्छकान् ॥
संहारकान् मृत्युकरानेवं नामप्रधारिणः ।
कुन्तं च पारिजातञ्च छुरिकां तोमरं तथा[1] ॥

१—म० म० सं० गु० ख० पटलः १, श्लोक संख्या ६६—८०।

पुष्पमालां डिण्डिमं च गृध्रं चैव कमण्डलुम् ।
मांसखण्डं श्रुवं बीजपूरं श्रुचं तथैव च ॥
परशुं च गदां यष्टिं मुष्टिं कुणपलालनम् ।
धारयन्तीं महारौद्रीं जगत्संहारकारिणीम् ॥
जवापुष्पाभनागेन्द्रकृतनूपुरयुग्मकाम् ।
पाटलोरगनिर्माणलसदङ्गदशोभिताम् ॥
धूसराहिकृतस्फीतकटिसूत्रावलम्बिनीम् ।
सुपाण्डुरभुजङ्गेन्द्रकृतताटङ्कशोभिताम् ॥
श्वेतदर्वीकरानद्धजटामुकुटमण्डिताम् ।
वैयाघ्रचर्मवसनां द्वीपिचर्मोत्तरीयकाम् ॥
किङ्किणीजालशोभाढ्यां वीरघण्टानिनादिनीम् ।
नूपुरारावललितां घर्घराशब्दभीषणाम् ॥
कटकाङ्गदकेयूरनरास्थिकृतशोभनाम् ।
रक्तपद्ममयीं मालां पादपद्मावलम्बिनीम् ॥
काञ्चीकट्टारकप्रेङ्खत्कटिमध्यविराजिताम् ।
ब्रह्मसूत्रोज्ज्वलत्कण्ठयोगपट्टोत्तरीयकाम् ।
सौम्योग्रभूषणैर्युक्तां नागाष्टकविराजिताम् ।
रत्नकुण्डलकर्णश्रीपञ्चकालानलस्थिताम् ॥
पद्मोपरि स्थितां देवीं नृत्यमानां सदोदिताम् ।
पद्मासनसुखासीनां सर्वदेवाधिदेवताम् ॥
मुक्तहुंकारजिह्वाग्रं चालयन्तीं विचिन्तयेत् ।
त्रिकोटिशक्तिचामुण्डानवकोटिभिरन्विताम् ॥
महायोगिनिकोटीनामष्टादशभिरूर्जिताम् ।
चरन्तीं च हसन्तीं च डाकिनीषष्टिकोटिभिः ॥
भैरव्यशीतिकोटीभिः परिवारैश्च वेष्टिताम् ।
कोटिकालानलज्वालान्यक्कारोद्यत्कलेवराम् ॥
महाप्रलयकोट्यर्कविद्युदर्बुदसन्निभाम् ।
दुर्निरीक्षां महाभीमां सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥
शत्रुपक्षक्षयकारीं दैत्यदानवसूदिनीम् ।
निर्विकारां निराभासां कूटस्थां चिद्विलासिनीम्[1] ॥

१—इ० म० सं०, गु० छ०, पटलः १, श्लोकसंख्या ८१—९६ ।

अद्वैतां परमानन्दां नित्यां शुद्धां निरञ्जनाम् ।
सृष्टिः स्थितिश्च संहारोऽनाख्या भासा पदाभिधाम् ॥
वेदान्तवेद्यां कैवल्यरूपां निर्वाणकारिणीम् ।
गुणातीतामातमरूपप्रबोधातीतगोचराम् ॥
एवं ध्येया महाकाली प्रोद्भिन्ननवयौवना ।
पञ्चवक्त्रस्य मध्यस्था गुह्यकाली परेश्वरी[1] ॥

अथ पुरश्चरणं तत्रैव ।

पर्वते वा नदीकूले शून्यागारे शिवालये ।
पीठे चतुष्पथे कुर्यात् पुरश्चरणमुत्तमम् ॥
नियमास्तत्र भूयांसः प्रकर्त्तव्याः प्रयत्नतः ।
अवैधकरणात् सिद्धिहानिः स्यान्नात्र संशयः ॥
त्रिकालमाचरेत् स्नानं हविष्यं भक्षयेन्निशि ।
स्वमन्त्रं चाक्षसूत्रं च गुरोरपि न दर्शयेत् ॥
त्यजेद् दुष्टप्रवादं च परोवादं च वर्जयेत् ।
तथा दुर्जनसंसर्गान् स्त्रीशूद्रालापनं तथा ॥
वस्त्रं कुशासनं व्याघ्रचर्म चापि नृमुण्डकम् ।
आसनं च महादेवि प्रशस्तश्चोत्तरामुखः ॥
शुद्धस्फटिकरुद्राक्षनृमुण्डास्थिविनिर्मिताम् ।
जपमालां शुभां विद्धि प्रशस्तामुत्तरोत्तराम् ॥
अनेनोक्तविधानेन लक्षसंख्यं जपेन्मनुम् ।
होमं दशांशतः कुर्यात् तर्पणं चाभिषेचनम् ॥
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत् प्रिये[2] ।

× × ×

दशवक्त्रातु या प्रोक्ता गुह्यकाली मया तव ।
प्रकृतिः सा परिज्ञेया कालीनां जगदम्बिका ॥
अन्या विकृतयः प्रोक्ताः कार्यकारणभेदतः ।
सैव ज्ञेया वरारोहे निर्गुणब्रह्मरूपिणी ॥
जगत्सर्वं वशे तस्या वश्या कस्यापि सा न च ।
विश्वं सर्वं सृजति सा कोऽपि सृजति तां नहि ॥
सा पालयति संसारं तां पालयति कोऽपि न ॥

१—म० म० सं० गु० ख०, पटलः १, श्लोक संख्या ६७–१०१ ।
२—म० म० सं० का० ख०, पटलः ६, श्लोक ५–१२ ।

तां न संहरते कोऽपि सा सर्वं संहरत्यदः ।
तदाज्ञयाऽनिलो वाति सूर्यस्तपति तद्भयात् ॥
तद्भीत्याग्निः पचत्यन्नं मृत्युश्चरति तद्भयात्[1] ।

× × ×

मकलाकालीमन्त्र :—

परात्पर परेशान शशाङ्ककृतशेखर ।
योगादियोगिन् सर्वज्ञ सर्वभूतदयापर ॥
त्वत्तः श्रुताः मया मन्त्राः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ।
विधिवत् पूजनं चापि न्यासावरणकक्रमैः ॥
तारा च छिन्नमस्ता च तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
बाला च वगला चापि त्रिपुरा भैरवी तथा ॥
काली दक्षिणकाली च कुब्जिका विव[शव]रेश्वरी ।
अघोरा राजमातङ्गी सिद्धिलक्ष्मीस्त्वरुन्धती ।
अश्वारूढा भोगवती नित्यक्लिन्ना च कुक्कुटी ॥
कौमारी चापि वाराहो चामुण्डा चण्डिकापि च ।
भुवनेशी तथोच्छिष्टचाण्डाली चण्डघण्टिका ॥
कालसङ्कर्षिणी चापि गुह्यकाली तथापरा ।
एताश्चान्याश्च वै देव्यः समन्त्राः कथितास्त्वया ॥
किन्तु कामकलाकालीं नोक्तवानसि मे प्रभो ।
तत्किं मय्यपि गोप्यं ते प्रायशः परमेश्वर ॥
न हीदृशं त्रिलोकेषु तव किञ्चन विद्यते ।
यदकथ्यं मयि भवेदपि प्राणाधिकाधिकम् ॥
तत् किं गोपयसि प्राज्ञ मयीदं दैवतं महत् ।
यद्यस्मि ते दयापात्रं मान्यास्मि स्नेहभाजनम् ॥
अनुग्राह्यास्मि कान्तास्मि तदेमां वद साम्प्रतम् ।
देवीं कामकलाकालीं समन्त्रध्यानपूर्विकाम् ॥

महाकाल उवाच

धन्यास्यनुगृहीतासि तया देव्यैव सर्वथा ।
यत्ते बुद्धिः समुत्पन्ना तां देवीं प्रति भामिनि[2] ॥

१—द्र० सं० वि०गु०ख० पटलः १, श्लोक संख्या १२६–३० तथा १३४—१[illegible]
२—द्र० म० सं० का० खं० पटलः १, श्लोक संख्या १—१२ ।

विधाय शपथं देवि कथयामि तवाग्रतः ।
न हीदृशं भुक्तिमुक्तिसाधनं भुवि विद्यते ॥
यथार्थमात्थ देवि त्वं गोप्यत्वं चापि सर्वथा ।
किन्तु भक्तिविशेषात्ते कथयामि न संशयः ॥
राज्यं दद्याद् धनं दद्यात् स्त्रियं दद्याच्छिरस्तथा ।
न तु कामकलाकालीं दद्यात् कस्यापि न क्वचित् ॥
इन्द्रेणोपासिता पूर्वं देवराज्यमभीप्सता ।
वरुणेन कुवेरेण ब्रह्मणा च मया तथा ॥
रामेण रावणेनापि यमेनापि विवस्वता ।
चन्द्रेण विष्णुना चापि तथान्यैश्च महर्षिभिः ॥
सहेलं वा सलीलं वा यस्याः स्मरणमात्रतः ।
विद्यालक्ष्मीः राज्यलक्ष्मीः कीर्तिलक्ष्मीर्वशे स्थिता ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
राज्यार्थी लभते राज्यं कान्तार्थी कामिनीं शुभाम् ॥
यशोऽर्थी कीर्तिमाप्नोति मुक्त्यर्थी मुक्तिमाप्नुयात् ।
अणिमाद्यष्टसिद्ध्यर्थी सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात्[1] ॥
द्विसप्ततितमं यावद् पुरुषाः पूर्वजाः स्मृताः ।
तेषां भाग्योदयैः पूर्णैर्विद्येयं यदि लभ्यते ॥
तदा सर्वस्वदानेन गृह्णीयादविचारयन् ।
कृतकृत्यं मन्यमानो गुरोः पादावभिस्पृशन् ॥
एकतः प्राणदानं स्यादेकतश्चैतदर्पणम् ।
तुलया विधृतं चेत्स्यादेतद् दानं विशिष्यते ॥
पूर्वजन्मार्जितैः पुण्यैर्लभ्यते वा न लभ्यते ।
शपथं कुरु देवेशि प्रकाश्येयं न कुत्रचित् ॥
सत्यं सत्यं त्रिसत्यं मे ततो वक्ष्यामि पार्वति ।
नो चेत् तेऽपि न वक्ष्यामि प्रमाणं तत्र सैव मे ॥

देव्युवाच

शपे त्वच्चरणाब्जाभ्यां हिमाद्रि शिरसा शपे ।
शपे स्कन्दैकदन्ताभ्यां यद्येनामन्यतो ब्रवे[2] ॥

१—प्र० म० सं० का० का० पटलः १, श्लोक संख्या १३—२० ।
२—„ „ „ „ २८,२९,३१,३३—३६ ।

शपेऽथ वा तया देव्या यां मे त्वं कथयिष्यति ।
प्रकाशयामि यद्येनां सैव मे विमुखी भवेत् ॥

महाकाल उवाच

साधु साधु महाभागे प्रतीतिर्मेऽधुना त्वयि ।
अकार्षीः शपथं यस्मात् तस्माद् वक्ष्याम्यसंशयम् ॥
समाहिता सावधाना भव देवि वरानने ।
विधेहि चित्तमेकाग्रं बद्ध्वाञ्जलिपुटं प्रिये ॥
कालीं कामकलापूर्वां शृणुष्वावहिता मम[1] ।
× × ×
या गुह्यकाली सैवेयं काली कामकलाभिधा ॥
मन्त्रभेदाद् ध्यानभेदाद् भवेत् कामकलात्मिका ।
यथा त्रिभेदा तारा स्यात् सुन्दरी सप्तसप्ततिः ॥
दक्षिणा पञ्चभेदा स्यात् तथेयं गुह्य कालिका ।
सप्तधा ध्यानमन्त्राभ्यां जायते भिन्नरूपिणी ॥
यथा पञ्चाक्षरो मन्त्रो देवी चैकजटा स्मृता ।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो देवी दक्षिणकालिका ॥
तथान्येष्वपि देवेषु मुख्यासु बहुषु प्रिये ।
देवी कामकलाकाली मनुरष्टादशाक्षरः ॥
षोडशार्णा यथा मुख्या सर्वश्रीचक्रमध्यगा ।
तथेयं नवकालीषु सदा मुख्यतमा स्मृता ॥
त्रैलोक्याकर्षणो नाम मन्त्रोऽस्याः परिकीर्तितः ।
तस्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन पार्वति[2] ॥
श्रुत्वावधारयस्वेमां सर्वकल्याणहेतवे

मन्त्रोद्धारमाह—

आद्यवर्गाद्यवर्णोऽक्ष्णा वामेन परिशीलितः ।
मूर्ध्नि मूर्धा यतृतीययुगधः परिकीर्तितः ॥
बिन्दुवामाक्षिसंयुक्तो वह्निः खपरमस्तकः ।
वामश्रुत्यर्धचन्द्रेण तृतीयः सपरो भवेत् ॥
दक्षस्कन्धोर्ध्वदन्ताभ्यां चाक्ष[धो]रो बिन्दुमस्तकः ।
ओष्ठवर्गद्वितीयो हपूर्वाधरोष्ठबिन्दुयुक् ॥

१—द्र० म० सं० का० ख० पटलः १, श्लोक संख्या ३७—४०।
२—,, ,, ,, ,, ४७-५४ ।

षडक्षराणि संबोध्य यथानामस्थितिक्रमात् ।
प्रतिलोमेन चोद्धृत्य तानि बीजानि पञ्च वै ॥
भूतबीजाद्यमारभ्य मारबीजान्तमेव हि ।
वैश्वानरवधूयुक्तो मन्त्रो ह्यष्टादशाक्षरः ॥
अस्याः स्मरणमात्रेण यावत्यः सन्ति सिद्धयः ।
स्वयमायान्ति पुरतो जपादीनां च का कथा ॥
सप्त कामकलाकाल्याः मनवः सन्ति गोपिताः ।
तेषु सर्वेषु मन्त्रेषु मुख्योऽयं परिकीर्तितः ॥
स्मरणादस्य मन्त्रस्य मूर्छिताः सर्वदेवताः ।
स्तम्भिताः वेपमानाश्च उत्तिष्ठन्त्यतिविह्वलाः ॥
निदेशवर्तिनो भूत्वा वर्तन्ते चेटका इव ।
किं बहूक्तेन देवेशि सत्यपूर्वं ब्रवीम्यहम् ॥
सहस्रवदनेनापि लक्षकोट्याननेन वा ।
महिमा वर्णितुं शक्यो नास्य वर्षायुतैर्मया ॥
सामान्यतो विजानीहि यद्यदिच्छति साधकः ।
तत्तत्करोति सकलं प्रजापतिरिवापरः ॥
त्रैलोक्याकर्षको नाम मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।

ऋष्यादिन्यासमाह

अतः परं प्रवक्ष्यामि छन्दश्चर्षिं च बीजकम् ।
अस्य कामकलाकालीमन्त्रस्याहमृषिर्मतः ॥
छन्दश्च बृहती ख्यातं देवी चेयं प्रकीर्तिता ।
आद्यबीजं तु बीजं स्यात् क्रोधार्णं शक्तिरेव च ।
विनियोगोऽस्य सर्वस्य सर्वदा सर्वसिद्धये ॥
षडङ्गं पञ्चबीजैस्तैर्नाम्नाप्येकं च कारयेत् ।
नामाक्षराणि प्रत्येकं तत्र देयानि पार्वति ॥

अथ ध्यानम्

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि कुरु चित्तैकतानताम् ।
उद्यद्घनाघनाश्लिष्यज्जपाकुसुमसन्निभाम् ॥
मत्तकोकिलनेत्राभां पक्वजम्बूफलप्रभाम् ।
सुदीर्घप्रपदालम्बिविस्रस्तघनमूर्द्धजाम् ॥ [1]

१—म० का० सं०, का० ख०, पटलः २, श्लोक संख्या १—१७ ।

ज्वलदङ्गारवच्छोणनेत्रत्रितयभूषिताम् ।
उद्यच्छारदसम्पूर्णचन्द्रकोकनदाननाम् ॥
दीर्घदंष्ट्रायुगोदञ्चत्विकरालमुखाम्बुजाम् ।
वितस्तिमात्रनिष्क्रान्तललज्जिह्वाभयानकाम् ॥
व्यात्ताननतया दृश्यद्द्वात्रिंशद्दन्तमण्डलाम् ।
निरन्तरं वेपमानोत्तमाङ्गां घोररूपिणीम् ॥
अंसासक्तनृमुण्डासृक् पिबन्तीं वक्त्रकन्दरात् ।
सृक्कद्वन्द्वस्रवद्रक्तस्नापितोरोजयुग्मकाम् ॥
उरोजाम्भोजसंसक्तसंपतद्रुधिरोच्चयाम् ।
सशीत्कृति धयन्तीं तल्लेलिहानरसज्ञया ॥
ललाटे घननारासृग्विहितारुणचित्रकाम् ।
सद्यश्छिन्नगलद्रक्तनृमुण्डकृतकुण्डलाम् ।
श्रुतिनद्धकचालम्बिवतंसलसदंसकाम् ।
स्रवदस्रौघया शश्वन्मानव्या मुण्डमालया ॥
आकण्ठगुल्फलम्बिन्यालङ्कृतां केशवद्धया ।
श्वेतास्थिगुलिकाहारग्रैवेयकमहोज्ज्वलाम् ॥
शवदीर्घाङ्गुलीपंक्तिमण्डितोरःस्थलस्थिराम्
कठोरपीवरोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताम् ॥
महामारकतग्राववेदिश्रोणिपरिष्कृताम् ।
विशालजघनाभोगामतिक्षीणकटिस्थलाम् ॥
अन्त्रनद्धार्भकशिरोवलत्किङ्किणीमण्डिताम् ।
सुपीनषोडशभुजां महाशङ्खाश्चदङ्गकाम् ॥
शवानां धमनीपुञ्जैर्वेष्टितैः कृतकङ्कणाम् ।
ग्रथितैः शवकेशैः स्रग्दामभिः कटिसूत्रिणीम् ॥
शवपोतकरश्रेणीग्रथनैः कृतमेखलाम् ।
शोभमानाङ्गुलीमांसमेदोमज्जाङ्गुलीयकैः ॥
असिं त्रिशूलं चक्रं च शरमङ्कुशमेव च ।
लालनं च तथा कर्त्रीमक्षमालां च दक्षिणे ॥
पाशं च परशुं नागं चापं मुद्गरमेव च ।
शिवापोतं खर्परं च वसासृङ्मेदसान्वितम्[1] ।

१—ह० म० सं०, का० ख०, पटलः २, श्लोकसंख्या १८-३२ ।

लम्बत्कचं नृमुण्डं च धारयन्तीं स्ववामतः ।
विलसन्नूपुरां देवीं ग्रथितैः शवपञ्जरैः ॥
श्मशानप्रज्वलद्घोरचिताग्निज्वालमध्यगाम् ।
अधोमुखमहादीर्घप्रसुप्तशवपृष्ठगाम् ॥
वमन्मुखानलज्वालाजालव्याप्तदिगन्तराम् ।
प्रोत्थायैव ह्रि तिष्ठन्तीं प्रत्यालीढपदक्रमात् ॥
वामदक्षिणसंस्थाभ्यां नदन्तीभ्यां मुहुर्मुहुः ।
शिवाभ्यां घोररूपाभ्यां वमन्तीभ्यां महानलम् ॥
विद्युदङ्गारवर्णाभ्यां वेष्टितां परमेश्वरीम् ॥
सर्वदैवानुलग्नाभ्यां पश्यन्तीभ्यां महेश्वरीम् ॥
अतीवभीषमाणाभ्यां शिवाभ्यां शोभितां मुहुः ।
कपालसंस्थं मस्तिष्कं ददतीं च तयोर्द्वयोः ॥
दिगम्बरां मुक्तकेशीमट्टहासभयानकाम् ।
सप्तधा बद्धनारान्त्रयोगपट्टविभूषिताम् ॥
संहारभैरवेणैव सार्धं सम्भोगमिच्छतीम् ।
अतिकामातुरां कालीं हसन्तीं खर्वविग्रहाम् ॥
कोटिकालानलज्वालान्यक्कारोद्यत्कलेवराम् ।
महाप्रलयकोटचर्क विद्युदर्बुदसन्निभाम् ॥
कल्पान्तकारिणीं कालीं महाभैरवरूपिणीम् ।
महाभीमां दुर्निरीक्ष्यां सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥
शत्रुपक्षक्षयकरीं दैत्यदानवसूदिनीम् ।
चिन्तयेदीदृशीं देवीं कालीं कामकलाभिधाम्[1] ॥

अथ पुरश्चरणं तत्रैव

अतः परं प्रवक्ष्यामि पौरश्चरणिकं विधिम् ।
एकस्मिन् यत्र विहिते सिद्धिस्तात्कालिकी भवेत् ॥
भूमिशुद्धिर्द्रव्यशुद्धिः पूर्वैव कथिता मया ।
यमाश्च नियमा ये स्युः पुरश्चरणकर्मणि ॥
सर्वानेव प्रयुञ्जीत सततं भक्तितत्परः ।
कृतनित्यक्रियः प्रातः कृतपूजाविधिः शुचिः ॥

१—द्र० म० सं० का० ख० पटलः २, श्लोकसंख्या ३३—४३ ।

नरास्थि निखनेद् भूमावस्त्रमन्त्रमुदीरयन् ।
तारं क्रोधोऽनु ह्रीं पाशस्मरभूतान् समुद्धरेत् ॥
सिद्धिमुच्चार्य देहीति युग्मं वह्नयङ्गनां वदेत्[1] ।

अथ कामकलायन्त्रम्

यन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि तत्र धेहि मनः प्रिये ।
भूपुरे वसुपत्राढये[?] पद्ममष्टदलान्वितम् ॥
केशराणि प्रकल्प्यानि तदन्तश्चापि कर्णिकाम् ।
कर्णिकान्तस्त्रिकोणस्य त्रितयं पृथगेव हि ॥
बहिस्त्रिकोणकोणेषु लिखेद् बीजत्रयं शुभम् ।
मायाबीजं तु वामे स्यात् क्रोधबीजं तु दक्षिणे ॥
अधः पाशं विनिर्दिश्य कन्दर्पार्णं तु मध्यतः ।
तदन्तः स्थायिनी देवी तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
एतद्यन्त्रं महादेवि सर्वकामफलप्रदम् ।
एतस्य सर्वयन्त्राणि कलां नार्हन्ति षोडशीम्[2] ॥

गुह्यकालीयन्त्रम्

सबिन्दुत्र्यारपञ्चारविभिन्ननवकोणयुक् ।
वृत्तयोरन्तरेऽष्टारयुतं तदनु भाविनि ॥
वस्वर्कभूपच्छदनाम्भोजवृत्तान्वितं ततः ।
अष्टाशनिसमायुक्तमन्तर्बहिरथापि च ॥
अष्टशूलाष्टमुण्डाढयं वह्निज्वालायुतेन हि ।
श्मशानेनावृतं शेषे शोणितोदेन वेष्टितम् ॥
यन्त्रराजमिदं देवि पूजनाय प्रकल्पितम् ।
भरतश्च्यवनश्चापि हारीतश्च जवालकः ॥
दक्षश्चैते जनाः पञ्च पूजयन्त्यमुनाम्बिकाम् ।
बिन्दुः पञ्चारषट्कोणत्रिकोणनवकोणगः ॥
अष्टारवृत्तसहितषोडशच्छदपद्मयुक् ।
पूर्ववृत्तान्वितः शेषे पूर्ववत् सकलं प्रिये ॥
पूज्योऽयं रामयक्षेशनाहुषाणां वरानने[3] ।

× × ×

१—म० सं०, का० ख० पटलः ३, श्लोकसंख्या २४-२८ ।
२—द्र० म० सं० का० ख० पटलः २, श्लोक संख्या ४५—४६ ।
३—द्र० म० सं० गु०, ख०, पटलः ५, श्लोक संख्या १३—१६ ।

तथा—

तदुपर्यैव चास्तीर्यं स्वासनं सुष्ठु कल्पितम् ।
नृमुण्डमग्रतः कृत्वा नरास्थिजपमालया ॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः ।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च ॥
दशांशं होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत् ।
होमे सन्तर्पणे चैव पूजावत् कथितो विधिः ॥
पूजायां वा प्रयोगे वा होमे वा तर्पणेऽथ वा ।
गुह्यकालीविधानेन सर्वं कार्यं शुचिस्मिते ॥
अत्रानुक्तं विधानं यत् तत्तत्यं तत्प्रकल्पयेत् ।
तत्राप्यनुक्तं यत् किञ्चित् तत्रोक्तो दक्षिणाविधिः[१] ॥

इति कालीमन्त्रपुरश्चरणप्रकरणम् ।

× × ×

श्रीविद्यामन्त्रपुरश्चरणप्रकरणे

नातः परतरा विद्या न भूता न भविष्यति ।
केनापि नैव शप्तेयं न च केनापि कीलिता ॥[२]

× × ×

उद्यच्चन्द्रोदयक्षुब्धरक्तपीयूषवारिधेः ।
मध्ये हेममयीभूमीरत्नमाणिक्यमण्डिता ॥
तन्मध्ये नन्दनोद्यानं मदनोन्मादनं महत् ।
नित्याभ्युदितपूर्णेन्दुज्योत्स्नाजालविराजितम् ॥
सदा सह वसन्तेन कामदेवेन रक्षितम् ।
कदम्बचूतपुन्नागनागकेशरचम्पकैः ॥
वकुलैः पारिजातैश्च सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ।
झङ्कारमुखरैर्भृङ्गैः कूजद्भिः कोकिलैः शुकैः ॥
नानावर्णैरथान्यैश्च द्विजसङ्घैर्निषेवितम् ।
शिखिकारण्डहंसाद्यैर्नानापक्षिभिरावृतम् ॥
नानापुष्पलताकीर्णैः शोभितं वृक्षखण्डकैः ।
पर्यन्तदीर्घिकोत्फुल्लकमलोत्पलसम्भवैः[३] ॥

१—द्र० म० सं०, का० ख०, पटलः ३, श्लोकसं० २८—३३ ।
२—द्र० म० सं०, का० ख०, पटलः ८, श्लोकसंख्या ३५८—३५९ ।
३—द्र० म० सं०, का० ख०, पटल : ८, श्लोकसंख्या ३६४—६९ ।

रजोभिर्धूसरैः सम्यक् सेवितं मलयानिलैः ।
ध्यात्वैवं नन्दनोद्यानं तदन्तः प्राङ्गणं स्मरेत् ॥
शुद्धकाञ्चनसंकाशवसुधाभिरलङ्कृतम् ।
प्राङ्गणं चिन्तयित्वेत्थं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥
तन्मध्ये मण्डपं ध्यायेद् व्याप्तब्रह्माण्डमण्डलम् ।
सहस्रादित्यसंकाशं चतुरस्रं सुशोभितम् ॥
रत्नतेजः प्रभापुञ्जपिञ्जरीकृतदिङ्मुखम् ।
मध्यस्तम्भविनिर्मुक्तं कोणस्तम्भसमन्वितम् ॥
महामाणिक्यवैदूर्यरत्नकाञ्चनभूषितम् ।
मुक्तादामवितानाढ्यं रत्नसोपानमण्डितम् ॥
मन्दवायुसमाक्रान्तं गन्धधूपतरङ्गितम् ।
रत्नचामरघण्टादिवितानैरुपशोभितम् ॥
जातीचम्पकपुन्नागकेतकीमल्लिकादिभिः ।
रक्तोत्पलसिताम्भोजमाधवीभिः सुपुष्पकैः ॥
बद्धाभिश्चित्रमालाभिः सर्वत्र समलङ्कृतम् ।
तिर्यगूर्ध्वलसद्रक्तपुत्तलीकोटिमण्डितम् ॥
नानारत्नादिभिर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्मणा ।
तन्मध्ये भावयेन्मन्त्री पारिजातं मनोहरम् ॥
स्वर्णादिरत्नभूमिं च बालुकां काञ्चनप्रभाम् ।
उद्यदादित्यसंकाशं व्याप्तब्रह्माण्डमण्डलम् ॥
शतयोजनविस्तीर्णं ज्योतिर्मन्दिरमुत्तमम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारमण्डितम् ॥
रत्नोपक्लृप्तसंशोभिकपाटाष्टकसंयुतम् ।
नवरत्नसमाक्लृप्ततुङ्गगोपुरतोरणम् ॥
हेमदण्डशिखालम्बिध्वजावलिपरिष्कृतम् ।
मध्यकोणस्थितस्तम्भनवरत्नसमन्वितम् ॥
महामाणिक्यवैदूर्यरत्नचामरशोभितम् ।
कल्पवृक्षे गिरेः पार्श्वे छत्रं तन्मण्डपोपरि ॥
सुवर्णसूत्रैरचितं तन्मध्ये रत्नमण्डपम् ।
तन्मध्ये स्फुरितं ध्यायेत् त्रिश्टृङ्गं ज्योतिरुत्तमम् ॥[1]

१—ब्र० म० सं० का० ख० पटलः ८, श्लोकसंख्या ३७१—८५ ।

तस्य मध्ये महाचक्रं पीयूषपरिपूरितम् ।
रत्नसिंहासनं तस्या वेद्या मध्ये स्मरेच्छुभम् ॥
विरिञ्चविष्णुरुद्रेशरूपपादचतुष्टयम् ।
सदाशिवमयं साक्षात् तस्मिन् परशिवात्मकम् ॥
पुष्पपर्यङ्कतन्मध्ये श्रीमदुद्यानपीठके ।
पर्यङ्कबन्धविलसन् स्वस्तिकासनशालिनीम् ॥
ध्यायेत् परशिवाङ्कस्थां पद्ममध्योज्ज्वलाकृतिम् ।
त्रिपुरां सुन्दरीं देवीं बालार्ककिरणारुणाम् ॥
जपाकुसुमसंकाशां दाडिमीकुसुमोपमाम् ।
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमारुणसन्निभाम् ॥
स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम् ।
कालालिकुलसंकाशकुटिलालकपल्लवाम् ॥
प्रत्यगारुणसंकाशवदनाम्भोजमण्डिताम् ।
किञ्चिदर्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ॥
पिनाकधनुराकारभ्रूलतां परमेश्वरीम्
आनन्दमुदितोल्लासलीलान्दोलितलोचनाम् ॥
स्फुरन्मयूखसंघातविलसद्धेमकुण्डलाम् ।
स्वगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्वमृतमण्डलाम् ॥
विश्वकर्मविनिर्माणसूत्रविस्पष्टनासिकाम् ।
ताम्रविद्रुमविम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम् ॥
दाडिमीबीजपङ्क्त्याभदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ।
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ॥
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ।
कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणालसदृशैर्भुजैः ॥
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकरां भुजाम् ।
कराम्बुजनखज्योतिर्विद्योतितनभस्तलाम् ॥
मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् ।
त्रिबलीवलयामुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ॥
लावण्यसरिदावर्तनिम्ननाभिविभूषिताम् ।
अनर्ध्यरत्नधटितकाञ्चीयुतनितम्बिनीम् ॥[1]

१—रु० म० सं०, का० ख०, पटलः ८, श्लोकसंख्या ३८६—४०१ ।

नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजिवराङ्कुशाम् ।
कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुमीश्वरीम् ॥
लावण्यकुसुमाकारजानुमण्डलबन्धुराम् ।
लावण्यकदलीतुल्यजंघायुगलमण्डिताम् ॥
गूढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम् ।
तनुं दीर्घाङ्गुलीछन्ननखराजिविराजिताम् ॥
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिधृष्टचरणाम्बुजाम् ।
शीतांशुशतसंकाशकान्तिसन्तानहासिनीम् ॥
लौहित्यजितसिन्दूरजपादाडिमरागिणीम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाङ्कुशकरोद्यताम् ॥
रक्तपद्मनिविष्टां तु रक्ताभरणभूषिताम् ।
जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ॥
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां तु पञ्चवाणधनुर्धराम् ।
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम् ।
महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुणविग्रहाम् ।
सर्वशृङ्गारवेशाढयां सर्वाभरणभूषिताम् ॥
जगदानन्दजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ।
जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् ॥
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां सर्वशक्तिमयीं भजे ।[१]

अथ दीपिनीविद्या तत्रैव

वाङ्माया कमला बीजं वाग्भवाद्ये नियोजयेत् ।
तारं लक्ष्मीं च वाग्बीजं मन्मथं भुवनेश्वरीम् ॥
तज्जप्त्वा च ततः पश्चाद् वाग्भवाख्यं समुच्चरेत् ।
प्रणवं भुवनेशानीं रमां कामं च वाग्भवम् ॥
कामराजं ततो जप्त्वा त्रैलोक्यक्षोभकारकम् ।
ऊँकारं चापि वाग्बीजं रमां मन्मथमायया ॥
स्वप्नावतीं महादेवि जपेत् तत्र समाहितः ।
प्रणवं चाधरं कामं रमां च भुवनेश्वरीम् ॥
मधुमतीं ततो जप्त्वा मायाश्रीकूर्चबीजकम् ।

१—रु० म० सं० का० ख० पटलः ८, श्लोकसंख्या ४०२—४१० ।

प्रणवाद्यं च देवेशि हंसबीजपुटीकृतम् ॥
एतद्वीजं समुच्चार्य शक्तिकूटं ततो जपेत्[1] ।

× × ×

छिन्नमस्तामन्त्रपुरश्चरणम्—

अथातश्छिन्नमस्तायाः मन्त्रं ते व्याहराम्यहम् ।
जिघृक्षयापि यस्य स्युः साधकस्याष्टसिद्धयः ॥
नातः परतरा काचिदुग्रा देवी भविष्यति ।
तस्मादसक्तैर्मनुजैर्न ग्राह्येयं कथञ्चन ॥
सिद्धिर्वा मृत्युरपि वा द्वयोरेकतरं भवेत् ।
प्रणवं च रमाबीजं लज्जां वाग्भवमेव च ॥
वज्रवैरोचनीये च इत्येवं तत उद्धरेत् ।
क्रोधद्वयं ततश्चास्त्रं स्वाहान्तः षोडशाक्षरः ॥

× × ×

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि तत्र चेतो निवेशय ।
स्वनाभौ नीरजं ध्यायेत् शुद्धं विकसितं सितम् ॥
तत्पद्मकोशमध्ये तु मण्डलं चण्डरोचिषः ।
जपाकुसुमसङ्काशं रक्तबन्धूकसन्निभम् ॥
रजःसत्त्वतमोरेखायोनिमण्डलसन्निभम् ।
मध्ये तस्या महादेवीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ॥
छिन्नमस्तां करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम् ।
प्रसारितमुखीं भीमां लेलिहानोग्रजिह्विकाम् ॥
पिबन्तीं रक्तधारां च निजकण्ठसमुद्भवाम् ।
विकीर्णकेशपाशां तां नानापुष्पसमन्विताम् ॥
दक्षिणे च करे कर्त्रीं मुण्डमालाविभूषिताम् ।
दिगम्बरां महाघोरां प्रत्यालीढपदस्थिताम्[2] ॥

१—कृतेऽप्यायासे पद्यान्येतानि महाकालसंहितायाः गुह्यकालीकामकलाकाली-खण्डयोः नोपलब्धानि । अत एव सुधीभिरस्य महाकालसंहितान्तर्गतत्वमिह पुरश्चर्यार्णवेऽभिहितं चिन्तनीयम् ।

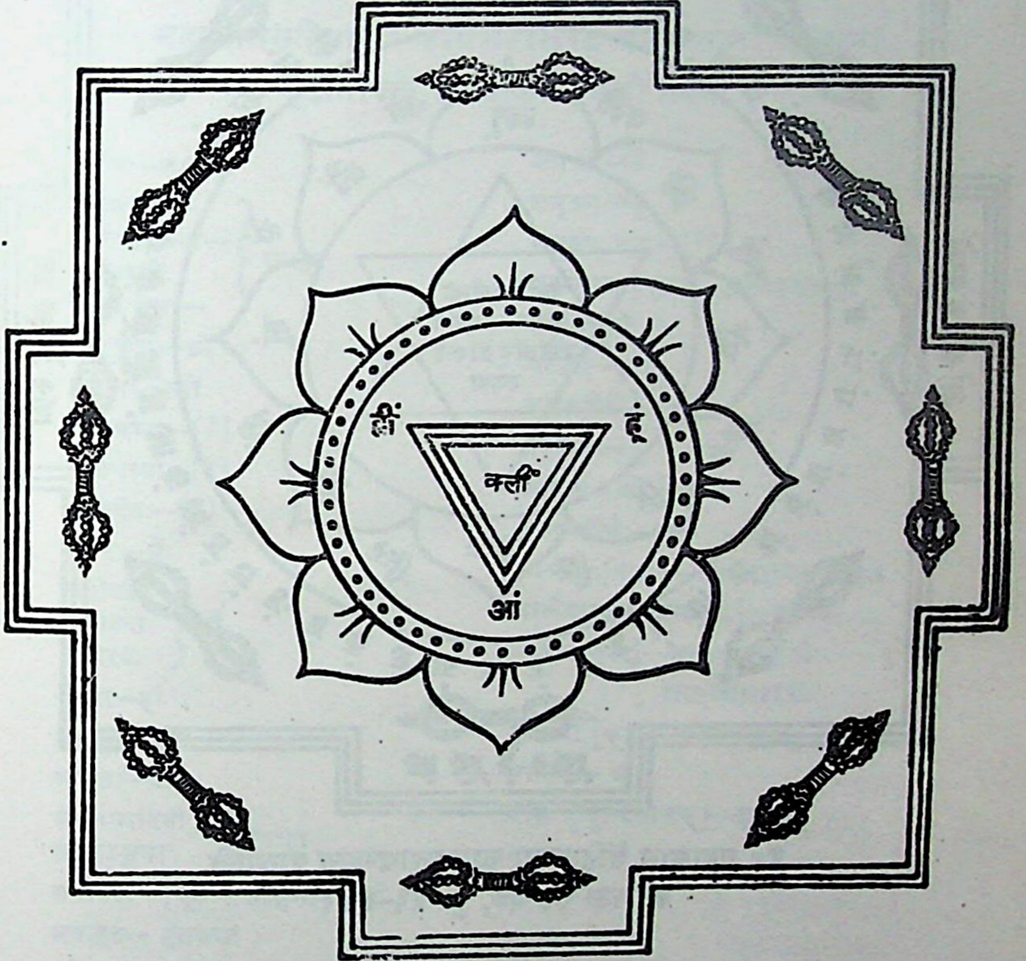
२—पु० च० सं०, कां० खं०, पटल ८, श्लोकसंख्या ४४१-४५० ।

अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
सदा षोडशवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम् ॥
नागाङ्गनां नागकाञ्चीं नागनूपुरसंयुताम् ।
नागकुण्डलसंयुक्तामष्टनागसमन्विताम् ॥
विपरीतरतासक्तरतिकामोपरि स्थिताम् ॥
डाकिनीवर्णिनीयुक्तां वामदक्षिणयोगतः ।
दक्षिणे वर्णिनीं ध्यायेद् वामपार्श्वे तु डाकिनीम् ॥
वर्णिनीं लोहितश्यामां मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ।
कपालकर्त्रिकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ॥
देवीगलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।
अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥
डाकिनीं वामपार्श्वे तु कल्पान्तज्वलनोपमाम् ।
विद्युच्छटाभनयनां दन्तपंक्तिवलाकिनीम् ॥
दंष्ट्राकरालवदनां पीनोत्तुङ्गपयोधराम् ।
महाघोरां महादेवीं मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ॥
लम्बोदरीं कालरात्रीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
लेलिहानमहाजिह्वां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
कपालकर्तृकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ॥
देवीगलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।
करस्थितकपालेन भीषणेनातिभीषणाम् ॥
आभ्यां निषेव्यमाणां तु ध्यायेद् देवीं विचक्षणः ।
दुर्निरीक्ष्यां चेतसापि सर्वकामफलप्रदाम्[1] ॥

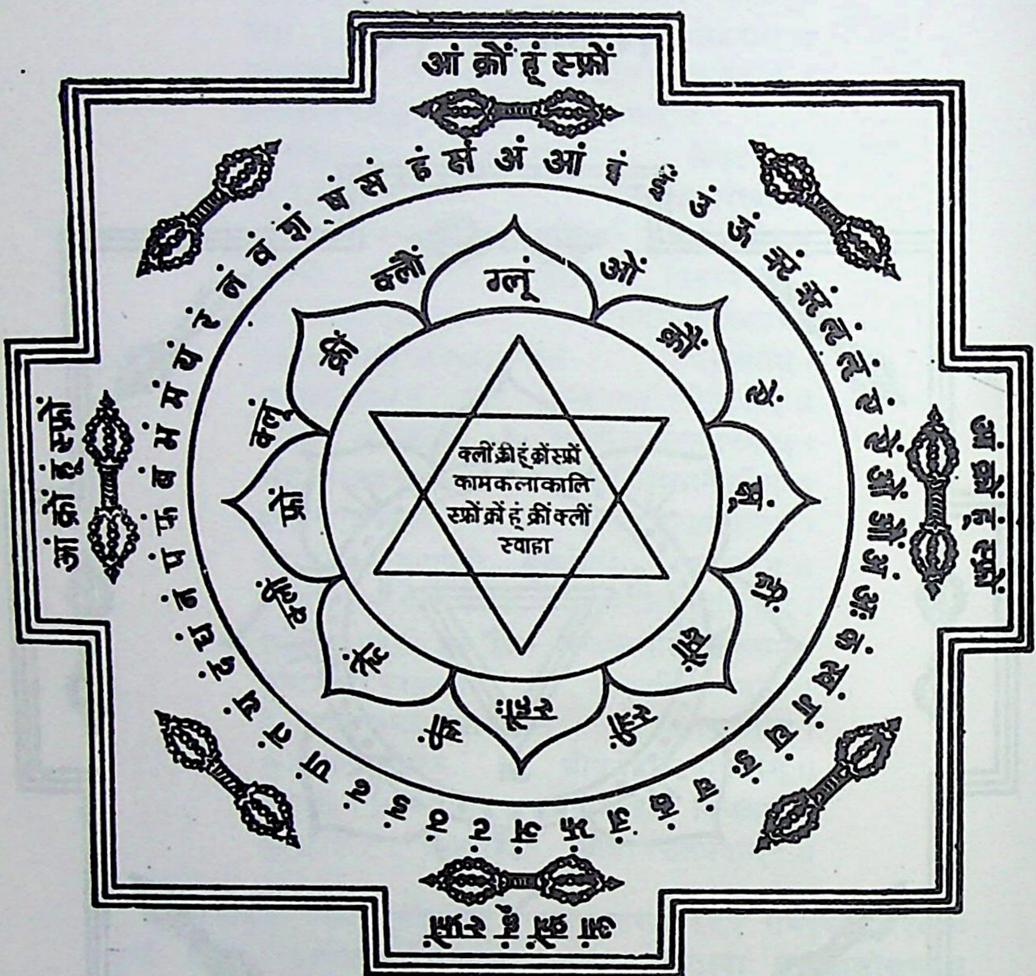
पुरश्चर्यार्णवस्य तृतीयभागे एकादशतरङ्गे ९९३ तमपृष्ठतः १०७८ पृष्ठं यावत् दुर्गोत्सवविधिप्रकरणे महाकालसंहितायाः गुह्यकालीखण्डस्य त्रयोदशपटलीयाः श्लोकाः प्रायशः सहस्रमिताः सङ्कलिताः सन्ति । सर्वेषां पद्यानामिह समावेशो ग्रन्थकलेवरं वर्धयेदिति विचार्य स नैव विहितः । तत एवाकलनीयास्ते श्लोकाः सुधीभिः साधकैरिति प्रार्थ्यते ।

१—द्र० म० सं०, का० ख०, पटल ८, श्लोकसंख्या ४५१-४५६ ।

परिशिष्टम् (३)



द्र० महाकालसंहितायाः कामकलाखण्डस्य द्वितीयपटलस्य
श्लोकाः ४५-४६, पृ० ११।



द्र० महाकाल संहितायाः कामकलाखण्डस्य षष्ठपटले
श्लोकाः २२-३०, पृ० ५६-५७।

परिशिष्टम् (४)

महाकालसंहिताय : कामकलाखण्डे समागतानां बीजानां कूटानाञ्च वर्णानुक्रमात्मको कोषः ।

अग्निः—रं

अग्निजाया— } स्वाहा
अग्निवल्लभा— } स्वाहा
अग्निस्त्री } स्वाहा
अग्न्यङ्गना— } स्वाहा

अङ्कुशः—क्रों

अङ्गना—स्त्रीं

अतिचण्डः—[?]

अतिचण्डा—[?]

अतिप्रेतः—[?]

अधरः—ऍं

अधोदतः } ओं
अधोदन्तः } ओं
अघोरदः } ओं

अद्वा—ह्रां

अनङ्गः—क्लीं

अनन्तः—ध्रां

अनलभाविनी } स्वाहा
अनलाङ्गना } स्वाहा

अनाख्या—[कूटः] क्षस्हम्लवयरऊं

अनाहृत— हसखफां

अनेहसः—जूं

अप्सरसः—गां

अबला—स्त्रीं

अमरः—य्लैं

अमृतम्—ग्लूं

अमृतम् कूटः- [?]

अश्वमेधः [कूटः] ह्लस्लहमकह्लीं

असूया—णीं

अस्त्रम्—फट्

अस्थिभेदी—ठं

आकाशः—हं

आगमः— ओं [?]

आगमशीर्षः—ओं

आग्नेयः [कूटः]—रक्षम्लह्लकसछव्यऊं

आग्नेयास्त्रम् [उपकूटः]—रम्लव्रीं

आज्ञा [कूटः]—क्षरहम्लव्यईऊं
क्षस्हम्लव्यईऊं

आनन्दः [कूटः]—स्हलकह्लक्ष्म्रूं

आनन्दः—भ्रूं

आद्य [सृष्टिवीजम्]—हसखफ्रूं

आधारः—म्रौं

आमर्षः—हूं

आमृतम्—ग्लूं

आस्यम्—आं

इन्द्रः [बीजम्]—[?]

इन्द्रः]कूटः] रक्षलह्लमसहकभ्रूं, लम्लव्रीं

इन्द्रस्वरः—औ
इष्टिः [कूटः]—[?]
इष्टिः— रव्लीं
ईशः [कूटः]
ईशानः [कूटः]—व्रकम्लव्लक्लऊं
इर्ष्या—षीं
उग्रः—ढ्रीं
उत्तमाङ्गम्—स्वाहा
उदुम्बरः— म्रीं
उमा [कूटः]—[?]
ऊर्ध्वदन्तः—ओ
ऋषिः [कूटः]—[?]
ऐडः [कूटः]—शम्लव्य्रई, रलहृक्षकलसहृफूं
ओष्ठः—ए
कन्दर्पः—क्लीं
कपालः—भ्रीं
कमला—श्रीं
कर्णिका—क्षरह्रीं
कला—ईं
कल्पान्तः—हसफीं
कवचम्—हूं
काकिनी—फीं
कापालः—भ्रीं
कामः—क्लीं
कामः [कूटः]—[?]
कामलम्—श्रीं
कामाङ्गना [रतिः]—क्लूं
कामिनी—स्त्रीं
काम्यः [कूटः]—[?]
कालः—जूं
कालः [कूटः]—यम्लव्रीं
कालरात्रिः—ख्फीं
कालिका } क्रीं
काली }
कालीयः }
किरीटी [कूटः]—[?]
कुण्डलः [कूटः]—रक्षक्रींऊं
[कुण्डलिनी]
कुमारः— } ह्लूः
कुमारकः— }
कुलाङ्गना—ह्लीं
कुलिकः—स्हौः
कुलिका—क्ष्रस्त्रीं
कूर्चः—हूं
कूर्चः [कूटः]—[?]
कूर्मः—घ्रीं, तीं,
कूष्माण्डी—क्रौं
कृत्या—हस्ख्फ्रीं
कृष्णभार्यका—श्रीं
कोणः—रीं
कौरजः—खं
क्रमः—भ्रीं, ध्रँ,
क्रूरः—रट्रँ,सिं,
क्रोधः—हूं
क्रोधीशः—[?]
खम्—हं
खेचरः [कूटः]—?
खेचरी—ख्रीं
खेचरी [कूटः]—सखवलक्षमध्रयव्लीं
खेदकः—रूं
क्षमा—ज्रूं
क्षेत्रपः— } क्षौं
क्षेत्रपालः— }

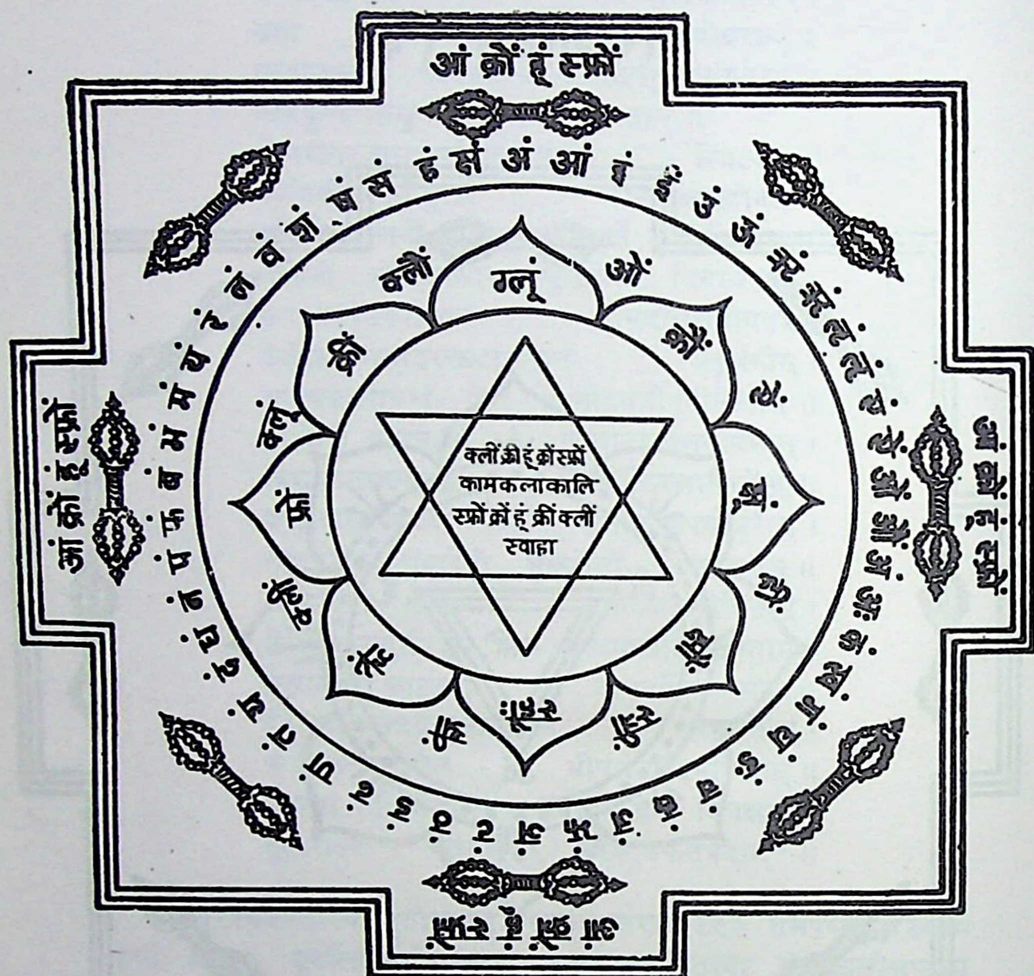
क्षोणी—लं
क्ष्वेडः—व्रं
गजघटा [कूटः]—[?]
गणपः—
गणपतिः— } गं
गरुत्मत्—क्रौं
गान्धर्वः—स्फौं
गायत्रीमुखम्—ओं
गारुडः—क्रौं
गुह्यम्—व्रच्रीं
गुह्या—क्ष्लप्रैं
गौरी—क्रः
ग्रहः [कूटः]—[?]
घण्टिका—रफ्लीं
घनः—क्लौं
चक्रः [कूटः]—रक्षव्रभ्रघ्रम्लऊं
चक्षुः—रस्फ्रों
चण्डः—फ्रों
चण्डेश्वरः—[?]
चतुर्थस्वरः—ई
चतुर्दशस्वरः—औ
चन्द्रः—ग्लौं
चन्द्रः [कूटः]—सकह्लमक्षबव्रूं
चामुण्डा—क्रैं
चामुण्डा [कूटः]—[?]
चूडा—स्वाहा [?]
चूडामणिः—रक्ष्रीं, रक्रीं
चैतन्यम्—ऐं
जम्भः—रफीं
जयः—क्रं
जलदः—क्लौं
जाया—स्त्रीं
ज्येष्ठः—द्रूं
डाकिनी—ख्फ्रें
डाकिनी [कूटः]—मह्लक्ष्लब्ध्रऊं
तत्त्वम्—स्हें
तडित्—ब्लौं
ताण्डवी [कूटः]—म्लव्रमई
तात्पुरुषः [कूटः]—क्षमब्लहृकयह्लीं
तापिनी—म्रां
तारः—ओं
तारकः—ओं, रां,
तातींयकः—ह्रीं (?)
तुङ्गः—रच्रीं
तुङ्गः (कूटः)—(?)
तृतीयः—ह्रीं (?)
त्रपा—ह्रीं
त्रिकूटा—र्य्रूं
त्रिपुटा—प्लूं
त्रिशक्तिः—क्रूं
त्रिशिखा—क्रीं
त्रिशूलः (कूटः)—(?)
त्रेता—ह्सखफ्रें
त्वरिता (कूटः)—(?]
त्वष्टा—क्रग्रौं
दक्षनेत्रकम्—इं
दक्षस्कन्धः—क
दक्षिणचक्षुः—इं
दक्षिणा—रफ्रें
दण्डः—ह्लां
दस्रः—ब्लीं
दानवः—श्रीं

दिवाकरः (कूटः)—म्लकह्लक्षरस्त्रीं
(अथवा) नदक्षटक्षव्यईऊँ
दीर्घतनुच्छदः (कवचम्)—हूं
द्रावणः—ह्स्फ्रीं
द्वादशाहः (कूटः)—क्षलहक्षम्लव्रीं
द्वादशिका—ऐ
धनदा—क्ष्रूं
धरा—लं
धरा(कूटः)—ग्लक्षकमह्लव्यऊँ
धर्मः—क्रौं
धर्म्यः—(?)
धृतिः—क्ष्रौः
ध्यानम्—वूः
ध्रुवः—यौं
नकुलीशः—ह (?)
नक्षत्रम्—क्लैं
नक्षत्रम्(कूटः)—?
नन्दनम्—ह्लौं (?]
नभः—हं
ना—पां
नाकुलम्—त्रीं
नागः—व्रीं, तां,
नादः—अं
नारसिंहः—क्ष्रौं
नालीकम्—क्षरस्त्रीं
निरञ्जनम्—स्हीं
निर्मलम्—ज्लूं
निशा(कूटः)—?
नीलः—फ्रौं
नृसिंहः—क्ष्रौं
नृसिंहः [कूटः]—क्षम्लव्रसहह्स्ह क्षक्लंस्त्रीं

पङ्क्तिः—रध्रीं
पदवी—?
पद्मम् [कूटः] म्लव्य्र वऊं
पद्मा—श्रीं
पन्नगः—तां, व्रीं
पयः—वं [?]
परः— ?
परमात्मीयम्—तत्त्वमसि
परा [कूटः] सहक्लह्रीं
परापरः—हसखफ्रं
परापरः [कूटः] हस्लक्षकमह्लव्रूं
पविः—ध्रीं
पावित्रम्—?
पाशः—आं
पाशुपतम् [कूटः]—सग्लक्षमहरह्लूं
पार्श्वम् [कूटः] ?
पित्र्यम् [कूटः]—?
पिनाकीशः— क्षरस्त्रां, खफ्रीं, [?]
पिशाचः—ठः
पीयूषम्—ग्लूं
पुण्डरीकः [कूटः]—पलक्षह्लस्हव्यऊं
पैशाचः—ठः
प्रणवः—ओं
प्रभा—ह्लीं
प्रमदा—स्त्रीं
प्रलयः [कूटः]—स्हक्षम्लव्यऊं [?]
प्रलयः—हसफ्रीं, हसफ्रों
प्रतुङ्गः—[कूटः]—?
प्राभातिकम्—[कूटः]—?
प्रासादः—ह्रौं
प्रेतः—स्हौः

फेत्कारी—हसखफ्रें
वहिरथ [कूटः]—क्षलहक्षम्लक्लीं
बलिः—रछ्रीं
बाला—क्ष्स्रीं
बाला [कूटः]—[?]
बृहद्—[?]
बृहद् [कूट]—स्हकह्ललह्रीं
ब्रह्म—ठौं
ब्रह्म [कूटः]—क्लक्षह्लव्रमयऊं
अथवा क्ष्लफ्लौं
ब्रह्मनिर्मितम्—[सृष्टिः] रक्षखरऊं
ब्रह्मा—डों
ब्रीडा—ह्लीं
भगः— ?
भस्मली— ?
भारुण्डा—प्रीं
भारुण्डा [कूटः]—क्षहलीं
भासा [कूटः]—क्षह्लम्लव्य्रऊं
भासा—व्रफथ्रूं
भीरुः—स्त्रीं
भुजगः—तां, व्रीं
भुवनेशी / भुवनेश्वरी } ह्रीं
भूतः—स्फ्रों
भूतिनी—ख्फ्रीं
भूमिः—लं
भैरवी—सौः
भैरवी [कूटः]—क्षमक्लह्लहसव्य्रऊं
भोगः—हसखफ्रीं
भोजङ्गमः—तां, व्रीं
भौतम् / भौतकम् } स्फ्रों, रलहक्षफ्रूं,

मणिः [कूटः]—भक्ष्लरमहसखफ्रूं
मणिमेखला– [?]
मत्स्यम् [कूटः]—[?]
मदनः—क्लीं
मनः—ठ्रीं, ह्रीं
मनः [कूटः]—डलखलहक्षखमव्य्रऊं
मनोभूः / मन्मथः } क्लीं
महद्—प्रूं
महती—?
महाकालः—?
महाक्रोधः—क्ष्रूं
महापुरुषः—?
महाप्रलयः—[?]
महाप्रेतः—[?]
महाबीजम्—क्ष्रूं
महारुद्रान्तमस्तकः—[?]
महारुषः—क्ष्रूं
महाव्रतम् [कूटः]—स्हक्षमह्लक्षग्लीं
महासूया—क्षूं, णूं [?]
महासेनः–[?]
मही—लं
मा—श्रीं
मातृका / माता } पौं
मानसम्—ठ्रीं
माया / मायिकः } ह्रीं
मारः—क्लीं
मारः [कूटः]—?
मार्जारः [कूटः]—?
माहेन्द्रः [कूटः] –?



द्र० महाकाल संहितायाः कामकलाखण्डस्य षष्ठपटले
श्लोकाः २२-३०, पृ० ५६-५७।

परिशिष्टम् (४)

महाकालसंहिताय : कामकलाखण्डे समागतानां बीजानां कूटानाञ्च वर्णानुक्रमात्मको कोषः ।

अग्निः—रं

अग्निजाया—
अग्निवल्लभा—
अग्निस्त्री
अग्न्यङ्गना—
} स्वाहा

अङ्कुशः—क्रों

अङ्गना—स्त्रीं

अतिचण्डः—[?]

अतिचण्डा—[?]

अतिप्रेतः—[?]

अधरः—ऐं

अधोदतः
अधोदन्तः
अधोरदः
} ओं

अध्वा—ह्रां

अनङ्गः—क्लीं

अनन्तः—ख्रौं

अनलभाविनी
अनलाङ्गना
} स्वाहा

अनाख्या—[कूटः] क्षस्हम्लवयरऊं

अनाहत— हसख्फ्रां

अनेहसः—जूं

अप्सरसः—गां

अबला—स्त्रीं

अमरः—म्लैं

अमृतम्—ग्लूं

अमृतम् कूटः- [?]

अश्वमेधः [कूटः] ह्लस्लह्मकह्लीं

असूया—णीं

अस्त्रम्—फट्

अस्थिभेदी—ठं

आकाशः—हं

आगमः— ओं [?]

आगमशीर्षः—ओं

आग्नेयः [कूटः]—रक्षम्लह्लकसछव्य्रऊं

आग्नेयास्त्रम् [उपकूटः]—रम्लव्रीं

आज्ञा [कूटः]—क्षरह्म्लव्य्रईऊं

क्षस्हम्लव्य्रईऊं

आनन्दः [कूटः]—स्हलकह्लक्ष्रूं

आनन्दः—भ्रूं

आद्य [सृष्टिबीजम्]—हसखफ्रूं

आधारः—म्रैं

आमर्षः—हूं

आमृतम्—ग्लूं

आस्यम्—आं

इन्द्रः [बीजम्]—[?]

इन्द्रः]कूटः] रक्षलह्लमसहकब्रूं, लम्लव्रीं

इन्द्रस्वरः—औ
इष्टिः [कूटः]—[?]
इष्टिः— रखीं
ईशः [कूटः]
ईशानः [कूटः]—ग्रफम्लम्लफ्लऊं
इर्ष्या—षीं
उग्रः—ठ्रीं
उत्तमाङ्गम्—स्वाहा
उदुम्बरः— म्रीं
उमा [कूटः]—[?]
ऊर्ध्वदन्तः—ओ
ऋषिः [कूटः]—[?]
ऐडः [कूटः]—शम्लव्मई, रलहृक्षकलसहफूं
ओष्ठः—ए
कन्दर्पः—क्लीं
कपालः—भ्रीं
कमला—श्रीं
कर्णिका—क्षरह्रीं
कला—ई
कल्पान्तः—हसफीं
कवचम्—हूं
काकिनी—फीं
कापालः—भ्रीं
कामः—क्लीं
कामः [कूटः]—[?]
कामलम्—श्रीं
कामाङ्गना [रतिः]—क्लूं
कामिनी—स्त्रीं
काम्यः [कूटः]—[?]
कालः—जूं
कालः [कूटः]—यम्लव्रीं
कालरात्रिः—खफीं
कालिका
काली
कालीयः
} क्रीं
किरीटी [कूटः]—[?]
कुण्डलः [कूटः]—रक्षक्रींऊं
[कुण्डलिनी]
कुमारः—
कुमारकः—
} ह्रूः
कुलाङ्गना—ह्रीं
कुलिकः—स्हौः
कुलिका—क्ष्स्त्रीं
कूर्चः—हूं
कूर्चः [कूटः]—[?]
कूर्मः—ध्रीं, तीं,
कूष्माण्डी—क्रीं
कृत्या—हस्खफ्रीं
कृष्णभार्यका—श्रीं
कोणः—रीं
कौरजः—खं
क्रमः—भ्रीं, क्ष्रीं,
क्रूरः—रद्रीं, सि,
क्रोधः—हूं
क्रोधीशः—[?]
खम्—हं
खेचरः [कूटः]—?
खेचरी—ब्लौं
खेचरी [कूटः]—सखक्लक्षमध्रयब्लीं
खेदकः—ह
क्षमा—ज्रूं
क्षेत्रपः—
क्षेत्रपालः—
} क्षौं

क्षोणी—लं
क्ष्वेडः—ज्रं
गजघटा [कूटः]—[?]
गणपः— } गं
गणपतिः— } गं
गरुत्मत्—क्रौं
गान्धर्वः—स्फ्रौं
गायत्रीमुखम्—ओं
गारुडः—क्रौं
गुह्यम्—ब्रच्रीं
गुह्या—क्ष्लप्रैं
गौरी—क्रः
ग्रहः [कूटः]—[?]
घण्टिका—रफ्लीं
घनः—क्लौं
चक्रः [कूटः]—रक्षब्रभ्रध्रम्लऊं
चञ्चुः—रस्फ्रों
चण्डः—फ्रों
चण्डेश्वरः—[?]
चतुर्थस्वरः—ई
चतुर्दशस्वरः—औ
चन्द्रः—ग्लौं
चन्द्रः [कूटः]—सकहलमक्षब्रूं
चामुण्डा—क्रैं
चामुण्डा [कूटः]—[?]
चूडा—स्वाहा [?]
चूडामणिः—रक्रीं, रक्रीं
चैतन्यम्—ऐं
जम्भः—रफीं
जयः—क्रं
जलदः—क्लौं
जाया—स्त्रीं
ज्येष्ठः—द्रूं
डाकिनी—ख्फ्रें
डाकिनी [कूटः]—मह्लक्ष्लव्य्रऊं
तत्त्वम्—स्हैं
तडित्—क्लौं
ताण्डवी [कूटः]—म्लब्रमई
तात्पुरुषः [कूटः]—क्षमव्लहकयह्लीं
तापिनी—म्रां
तारः—ओं
तारकः—ओं, रां,
तार्तीयकः—ह्रीं (?)
तुङ्गः—रच्रीं
तुङ्गः (कूटः)—(?)
तृतीयः—ह्रीं (?)
त्रपा—ह्रीं
त्रिकूटा—ल्यूं
त्रिपुटा—प्लूं
त्रिशक्तिः—क्रूं
त्रिशिखा—क्रीं
त्रिशूलः (कूटः)—(?)
त्रेता—ह्सखफ्रें
त्वरिता (कूटः)—(?]
त्वष्टा—क्र्ग्रौं
दक्षनेत्रकम्—इं
दक्षस्कन्धः—क
दक्षिणचक्षुः—इं
दक्षिणा—रफ्रें
दण्डः—ह्रां
दस्रः—ब्लीं
दानवः—श्रीं

दिवाकरः (कूटः)—म्लकह्लक्षरस्त्रीं
(अथवा) नदक्षटक्षव्म्रईऊँ
दीर्घतनुच्छदः (कवचम्)—हूं
द्रावणः—ह्भ्रीं
द्वादशाहः (कूटः)—क्षलह्क्षम्लव्रीं
द्वादशिका—ऐ
धनदा—क्ष्रूं
धरा—लं
धरा(कूटः)—ग्लक्षकमह्लव्य्रऊँ
धर्मः—क्रौं
धर्म्यः—(?)
धृतिः—क्ष्रौः
ध्यानम्—वूः
ध्रुवः—यों
नकुलीशः—ह (?)
नक्षत्रम्—व्लें
नक्षत्रम्(कूटः)—?
नन्दनम्—ह्लौं (?]
नभः—हं
ना—पां
नाकुलम्—व्रीं
नागः—व्रीं, तां,
नादः—अं
नारसिंहः—क्ष्रौं
नालीकम्—क्षरस्त्रीं
निरञ्जनम्—स्हीं
निर्मलम्—ज्लूं
निशा(कूटः)—?
नीलः—फ्रौं
नृसिंहः—ध्रौं
नृसिंहः [कूटः]—क्षम्लव्रसहस्ह क्षक्लंस्त्रीं

पङ्क्तिः—रध्रीं
पदवी—?
पद्मम् [कूटः] म्लव्य्र वऊं
पद्मा—श्रीं
पन्नगः—तां, व्रीं
पयः—वं [?]
परः— ?
'रमात्मीयम्—तत्त्वमसि
परा [कूटः] सहवलह्रीं
परापरः—ह्सखफ्रं
परापरः [कूटः] ह्स्लक्षकमह्लव्रूं
पविः—ध्रीं
पावित्रम्—?
पाशः—आं
पाशुपतम् [कूटः]—सग्लक्षमह्रह्लूं
पार्श्वम् [कूटः] ?
पित्सम् [कूटः]—?
पिनाकीशः— क्षरस्त्रां, खफ्रीं, [?]
पिशाचः—ठः
पीयूषम्—ग्लूं
पुण्डरीकः [कूटः]—फ्लक्षह्लस्हव्य्राऊं
पैशाचः—ठः
प्रणवः—ओं
प्रभा—ह्लीं
प्रमदा—स्त्रीं
प्रलयः [कूटः]—स्ह्क्षम्लव्य्रऊं [?]
प्रलयः—ह्सफ्रीं, ह्सफ्रों
प्रतुङ्गः—[कूटः]—?
प्राभातिकम्—[कूटः]—?
प्रासादः—ह्रौं
प्रेतः—स्हौः

फेत्कारी—हसखफ्रें
वह्निरथ [कूटः]—क्षलहक्षम्लक्लीं
बलिः—रछ्रीं
बाला—क्षस्रीं
बाला [कूटः]—[?]
बृहद्—[?]
बृहद् [कूट]—स्हकह्ललह्लीं
ब्रह्म—ठौं
ब्रह्म [कूटः]—क्लक्षह्लव्रमयऊं
अथवा क्ष्लफ्लों
ब्रह्मनिर्मितम्—[सृष्टिः] रक्षखरऊं
ब्रह्मा—डों
व्रीडा—ह्लीं
भगः— ?
भस्मली— ?
भारुण्डा—प्रीं
भारुण्डा [कूटः]—क्षहलीं
भासा [कूटः]—क्षह्लम्लव्य्रऊं
भासा—व्रफथ्रूं
भीरुः—स्त्रीं
भुजगः—तां, व्रीं
भुवनेशी } ह्रीं
भुवनेश्वरी
भूतः—स्फों
भूतिनी—ख्फ्रीं
भूमिः—लं
भैरवी—सौः
भैरवी [कूटः]—क्षमक्लह्लहसव्य्रऊं
भोगः—हसखफ्रीं
भोजङ्गमः—तां, व्रीं
भौतम् } स्फ्रों, रलहक्षफ्रूं
भौतकम्

मणिः [कूटः]—भक्लरमहसखफ्रूं
मणिमेखला— [?]
मत्स्यम् [कूटः]—[?]
मदनः—क्लीं
मनः—ठ्रीं, हीं
मनः [कूटः]—डलखलहक्षखमव्य्रऊं
मनोभूः } क्लीं
मन्मथः
महद्—प्रूं
महती—?
महाकालः—?
महाक्रोधः—क्ष्रूं
महापुरुषः—?
महाप्रलयः—[?]
महाप्रेतः—[?]
महावीजम्—क्ष्रूं
महारुद्रान्तमस्तकः—[?]
महारुषः—क्ष्रूं
महाव्रतम् [कूटः]—स्हक्षमह्लक्षरलीं
महासूया—क्ष्रूं, णूं [?]
महासेनः—[?]
मही—लं
मा—श्रीं
मातृका } पौं
माता
मानसम्—ठ्रीं
माया } ह्रीं
मायिकः
मारः—क्लीं
मारः [कूटः]—?
मार्जारः [कूटः]—?
माहेन्द्रः [कूटः]—?

माहेश्वरः [कूटः]—क्वलह्लझकह्लनसक्लईं

मीनकेतनः } क्लीं
मीनध्वजः }

मुक्ता—क्ष्रीं

मुखम्—आं

मेखला—रक्ष्रीं

मेघः—क्लौं

मेदिनी—लं

मेधा—ऐं

मैंधः—ऐं

यक्षः—क्ष्लौं

याम्यम् [कूटः]—हम्लव्रीं

योगः—रध्रूं

योगिनी—छ्रीं

योगिनी [कूटः]—[?]

योषित्—स्त्रीं

रतिः—क्लूं

रतिप्रियः—क्लीं

रथन्तरः—म्रूं

रमा—श्रीं

राथन्तरः—म्रूं

रामा—स्त्रीं

रावः—फ्रं

रुक्—हूं

रुद्रः—फहलक्षां, द्रैं,

रुद्रस्वरः—ए,

रुषः } ह्रूं,
रोषः }

रौद्रः } द्रैं
रौद्रकः }

रौद्रः [कूटः]—सहठलक्षह्लमक्रीं

लक्ष्मी—श्रीं

लज्जका } ह्रीं
लज्जा }

लाङ्गूलम्—हफ्रीं

वक्त्रम्—भ्रीं, आं,

वगला [कूटः]—[?]

वज्रम्—ध्रीं

वधूः—स्त्रीं

वधूः [कूटः]—[?]

वनिता—स्त्रीं

वराहः [कूटः]—म्लक्षकसहह्लूं

वह्निः—रं

वह्निकामिनी }
वह्नि जाया }
वह्निनारी }
वह्निनितम्बिनी } स्वाहा
वह्निपत्नी }
वह्निभार्या }
वह्निवल्लभा }
वह्निसुन्दरी }

वाक्—ऐं, जौं, ति,

वाक्यांशः—?

वाग्भवः }
वाग्वादिनी } ऐं
वाणी }

वामकर्णः—ऊं

वामदेवः [कूटः]—रजहलक्षमऊं

वामनेत्रम्—इं

वामश्रुतिः—ऊं

वामाक्षि } इं
वामेक्षणम् }

वायवीयम् [कूटः] } क्षम्लकस्हरयब्रूं
वायुः [कूटः] }

वायुः—यं
वाराहिकः [कूटः]—म्लक्षकसहहॢं
वारुणः—वं
वारुणः [कूटः]—ह्रहलव्य्रकऊं
विघ्नः—पलक्रों
विद्युत्—ब्लौं
विधिः—क, ब्रूं,
विरिञ्चिः—ब्रूं
विशुद्धिः—ह्लैं
विश्वजित् [कूटः]—क्षक्षक्लफचक्षक्षौं
विषम्—ज्र
विषम् [कूटः]—?
विष्णुजाया }
विष्णुनितम्बिनी } श्रीं
विष्णुवल्लभा }
वेतालः—सफलक्षूं
वेदमस्तकः }
वेदशिरः } ओं
वेदादिः }
वैद्युतम्—ब्लौं
वैधः—क, ठौं, डों, रक्षछ्रीं,
वैश्वानरवधूः }
वैश्वानराङ्गना } स्वाहा
वैष्णवम् [कूटः]—ग्लफक्षफक्ष्रीं
वैहायसम् [कूटः]—हलक्षकमह्लसव्य्रऊं
व्यूहः [कूटः]—कम्लक्षसहब्लूं
व्योम [कूटः] क्ष्लह्लमव्य्रऊं
व्योम—ह
शक्तिः—ब्लूं
शक्तिः [कूट]—झसखव्य्रमऊं
शक्रस्वरः—औ
शंखः—ग्लां

शङ्खः [कूटः]—[?] सलहक्षव्रठक्षआं
शम्भुः [कूटः]—स्हजहलक्षम्लवनऊं
शम्भुवल्लभा—क्रः
शाकिनी—फ्रें
शांकरः—?
शांकरः [कूटः] लक्षमह्लजरक्रव्य्रऊं
शाङ्करी [कूटः]—?
शाम्भवः—क्षरस्त्रां, खफ्रीं
शाम्भवः—[कूटः]—स्हजहलक्षम्लवनऊं
शिरः }
शीर्षः } स्वाहा
शृङ्खला—क्षरहॢं
श्रीः—श्रीं
श्रीकण्ठः [कूटः]—क्लक्षसहमव्य्रऊं
श्मशानम् [कूटः]—[?]
षष्ठस्वरः—ऊ
सदाशिवः—[?]
सद्योजातः [कूटः]—हक्लह्लवडकखऐं
सन्धिः (कूटः)—(?)
समाधिः—ह्रैं
सर्पः—व्रीं, तां
सर्पः (कूटः)—म्लकह्लक्षरस्त्रैं
संविद्—फें
संहारः—हसफ्रौं
संहारः (कूटः)—स्हक्षम्लव्य्रऊं
सानुः—रह्रीं
सानुः (कूटम्) ?
सारङ्गः (कूटः)—?
सारस्वतम्—ऐं
सार्णः—क्रों
सिद्धः (कूक्षः)—क्लह्लवनगक्षरछ्रीं

सिद्धिः—क्रां
सिंहः—णूं
सुदर्शनः—स्कीं
सुधा—ग्लूं
सुन्दरी—स्त्रीं
सुरतपिनी—?
सूर्यः—सः
सृणिः- क्रों
सृष्टिः—ह्सखफ्रूं
सृष्टिः (कूटः)—रक्षखरऊं
सोमः—सकह्लमक्षखव्रूं
सौत्रामणिः (कूटः)—ग्लरक्षफथरक्लीं
सौपर्णः—क्रौं
स्त्री—स्त्रीं
स्थाणुः—उं
स्थितिः—(कूटः) रक्षक्रूं
स्मरः—क्लीं
स्वर्णम् (कूटः)
सुवर्णम् (कूटः) } क्लीं श्रीं घ्रीं

हयग्रीवः—क्रूं
हरपत्नी
हराङ्गना } क्रः
हरिजाया—श्रीं
हरिपुत्रः—क्लीं
हरिसुन्दरी—श्रीं
हर्षः—हें
हंसः (कूटः) ब्लहतह्नसचैं
हंसी (कूटः)—?
हाकिनी—रक्षश्रीं
हारः—ह्लक्षम्लैं
हार्दम्—नमः
हिरण्यगर्भः (कूटः)—क्षरहग्लव्यईं
हृत्
हृदयम् } नमः
हृल्लेखा—?
हेतुः—ऐं
ह्रीः—ह्रीं

———

परिशिष्टम् (५)

विशिष्टशब्दसूची

फ

ब

भ

ल

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
७	३	युगाधः	युगधः
१०	१३	०संस्थाभ्या	०संस्थाभ्यां
१४	१७	ह्ल	ह्ल्
२१	८	०रलंकताम्	०रलंकृताम्
२३	२१	दत्वा	हुत्वा
२४	६	बलिमति	बलिमिति
३५	१६	ससार	संसार
३६	१०	विघोऽय	विघोऽयं
४०	१०	२४	२५
४१	६	ठद्वयान्ता	ठद्वयान्तो
४२	५	यीगिनीति	योगिनीति
"	८	स्वयभू	स्वयंभू
४३	२०	चिन्मये	चिन्मयि
४४	६	मडल	मण्डल
४५	१७	तार्था	तीर्था
४६	५	प्रपूजयेत्	प्रपूरयेत्
"	१५	विष्णुक्रन्ता	विष्णुक्रान्ता
४८	१६	वंहू	बंहु
"	२०	वृन्दै	वृन्दै
५०	२	गोडीं	गौडीं
५१	४	१३२	१३३
"	१२	२३७	१३७
५२	१२	१४३	१४५
५३	१	प्रयोगागतसुन्दरीणां	मूलदेव्याः
५४	४	चंतुविशति	चतुर्विंशति
५५	१३	दृष्टवा	दृष्ट्वा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
५६	४	१०	१७
५७	८	बज्राठ्यं	वज्राढ्यं
६१	५	पलास	पलाश
६४	८	घार	घोर
६५	१३	एव	एवं
,,	१६	पुंगव	पुंगवः
६६	१६	प्रति०क्षण	प्रतिक्षण
७०	६	मार्करीं	मार्कवीं
७५	१०	१२	१३
७७	१८	३६	३७
७८	५	कर्प्पूरै	कर्प्पूरैः
८१	६	होमनाधिकार	होमानधिकार
८५	२०	पादाङ्गष्ठाङ्ग	पादाङ्गुष्ठाङ्ग
८६	१६	महात्म्या	माहात्म्या
६२	१४	२६६	१६६
६५	१	पाथिवर्षयः	पार्थिवर्षयः
,,	८	पैठीनसिवीतंहव्यः	पैठीनसिर्वीतहव्यः
१००	१५	वस्त्रायुध	वज्रायुध
,,	१८	विद्युज्जिह्वा	विद्युज्जिह्वो
,,	,,	घोरदंष्ट्रा	घोरदंष्ट्रो
,,	२०	प्रदीपो	प्रदीप्तो
१०८	१५	चित्ताग्नि	चिताग्नि
११०	७	स्वरात्	स्वरान्
,,	पादटि	१७५-१७६	१७६-१७७
११२	५	प्रतिष्ठतः	प्रतिष्ठितः
११५	१२	रत्नपाठोपरि	रत्नपीठोपरि
११८	१	अर्थाकर्णय	अथाकर्णय
१२०	१४	सवोपरि	शवोपरि
१२४	२०	अब्धा	अब्धौ
१२५	५	खड्ग	खड्गं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२५	१०	रत्नमौलि	रत्नमौलिं
१२९	१०	वितानंरूप	वितानैरूप
,,	१५	निमितं	निर्मितं
१३०	१४	परशिवाक	परशिवाङ्क
१३७	४	भगान्तिके	भगाङ्किते
१४४	७	पदयुगं	पतयुगं
,,	८	काला	काली
१४५	१६	चाद्धृत्य	चोद्धृत्य
१४८	२१	दक्षिणम	दक्षिणेन
१४९	१९	जगस्थिति	जगत् स्थिति
१५१	४	च्छलद्ङगा	च्छलद्गङगा
,,	१५	भुङ्गि	भृङ्गि
१५५	१८	रावास्ता	रावान्ता
१५६	१९	सहाम्नायनिकस्य	महाम्नायनिकस्य
१५६	३	नरीप्युपासिता -	मरीच्युपासिता
१५९	१५	कुप्यान्नमेन्न	क्रुध्यान्नमेन्न
१६०	१	कवचस्यवतरणम्	कवचस्यावतरणम्
,,	२२	फलाभिधानम्	माहात्म्यनिर्देशः
१६२	६	करालिनं	करालिनी
१६५	९	सवर्तो	संवर्तो
१७६	१३	हृत्यां	हृत्या
१८४	२५	नानाप्रयोगकथनं	अमृतन्यासो
१९०	३	नागहाग	नागहारा
१९५	५	माध्वा	माध्वी
२०३	११	वाञ्छितं	वाञ्छितं
२०४	३	ह्रीं	ह्रीं
२०५	१४	फत्कारी	फत्कारी
२०९	४	मेधा	मेधा
२१०	१४	त्तितयं	द्वितयं
२११"	८	क्षेत्रप्रचण्डी	क्षेत्रपचण्डी

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
२२१	१४	यागिनी	योगिनी
२२४	३	सर्वलोकमुमे	सर्वलोकममुंमे
२२५	६	विभूषितः	विभूषितम्
२२७	२२	क्राधास्त्वं	क्रोधास्त्वं
२२८	१	हृदये	हृदयं
"	१४	प्रस्ताविनि	प्रस्तारिणि
२२९	१३	कटमुत्तमम्	कूटमुत्तमम्
"	१५	कूटेश्वरी	कूटेश्वरि
२३०	५	शाघ्र	शीघ्रं
२३२	१६	महिषमदिनि	महिषमर्दिनि
२३३	२२	पुरा	त्रिपुरा
२३४	२२	द्विषां	द्विषान्
२३५	११	पठ	पच
२३५	१२	विध्वसय	विध्वंसय
"	१५	स्मराङ्गणे	स्मराङ्गने
"	१७	महाक्षोभकारिणी	महाक्षोभकारिणि
२३८	१६	पुजयामि	पूजयामि
२४६	२२	परि	पवि
२५०	१५	भाविनि	भाविनी
२५३	१७	पाशकाले	पाशकले
"	२०	पदं	प्रदे
२५५	१७	शवारूढ	शवारूढे
"	१६	संविः	संवित्
२५७	२३	रामा	रमा
२६०	१५	काव्यं	कायं
२६३	३	मारुडण्स्थो	मारुण्डस्थो
२६५	१७	रहस्यकाली	रहस्यकालि
२७०	१	तिष्ठन्तु	तिष्ठतु
२७१	१	प्रचण्डचण्ड	प्रचण्डचण्डे
"	२२	वितती	वितते



मुद्रक : एकेडमी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद. फोन-2500970